

झलकियाँ

मीठी • सख्त • मामिक

निरजननाथ आचार्य



झलकियाँ

आप गीता और पर गीता घटनाओं
की सस तथा चुगीनी
अनुभूतियों

लेखक
निरजननाथ आचार्य

प्रकाशक
हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड, मम्बई-४
शाखा २१, दरियागज, दिल्ली-६

● लेखक

जीवन जन्म, सन् १९११ ग्राम मौही (राजस्थान) अनोखी सुझ वृद्ध और प्रतिभा के धनी सफल राजनीतिज्ञ, पर साथ ही स्पन्दनशील हृदय पारदर्शक दृष्टि और क्रियात्मक दृष्टिकोण दिल आर दिमाग में एक तूफान इस देश और दशवासियों के लिए एक पीड़ा और अटूट प्रेम बड़ से बठोर पर कुसुम से भी कोमल ।

गति विधि सन् १९३८ में बनारस में प्रवेश सन् १९५० में उदयपुर शार एसोसिएशन के अध्यक्ष सन् १९४४ से १९५३ तक मेवाड़ राज्य रेलवे मजदूर संघ के अध्यक्ष सन् १९५४ से सन् १९७७ तक उदयपुर नगर निगम के अध्यक्ष सन् १९५७ में राजस्थान विधान सभा के उपाध्यक्ष सन् १९६२ में उपसिपा एवं गृहमन्त्रालय का पद सन् १९६६ में गाय मन्त्रिमण्डल में विधि एवं न्याय मंत्री सन् १९६६ के ही सितम्बर माह में गृहमन्त्रालय चतुर्थ चुनाव में मारली (राजस्थान) क्षेत्र से राज्य विधान-सभा के लिए चुन कर जाये । अगति, राजस्थान विधान सभा, जयपुर में अध्यक्ष ।

सर्जना 'आस्ट्रेलिया के जन्म, ' विस्मृति के पत्र, ' विचारे पात ' विचार्यों ने कहा ' कुछ प्रसिद्ध रचनायें ।

श्री निरञ्जननाथ आचार्य जी की सस्मरणात्मक कृति 'श्लक्तियों' की कुछ मनोरम छत्रियां ना बहुत ही रुचि लेकर मने देखा और मेरे चित्त का एक अपूर्व प्रसादन प्राप्त हुआ—वेसा प्रसादन जो सस्मरणात्मक रचनाओं से प्रायः प्राप्त नहीं होता है। है ता यह सस्मरण क्री पुस्तक, इसमें कुछ शैली—जाप या पर—घटनाओं की भाव भरी याद की गद् है, पर इसमें नाटक की मजीबता तथा नुनीलापन आ गया है जो सीधा दिल को छू लेता है। मने, अपनी सुविधा के लिए, कला की एक परिभाषा बना ली है। कला वह जो निरीह, दुःख अथवा नातिसफल साधना को ले, पर उनका ही अपार शक्ति से समन्वित कर दे। गोदावरी हो तो त्रिपमय पर अमृत का फल दे, तभी ता वह कला वस्तु होने का गौरव प्राप्त करेगी। हम कमीटी पर 'श्लक्तियों' कला वस्तु होने का दावा कर सकते हैं।

सस्मरणीय घटनाएँ काद विशेष महत्त्वपूर्ण नहा वे ही साधारण सीधी-सादी। जिह स्मरण किया गया है वे पात्र भा विशेष नहा। भाषा भी मोद बहुत गन्दार नहा विशेष अदाज भी नहीं,—पर 'कुछ गत ता ऐसी है हा' जो दिल में चमक भर देती है। वह क्या है उसे मनोचित्रलेख या महदय ही समझें।

देवराज उपाध्याय

२३, जगत् '६७

अध्यय, हिन्दी विभाग,

उदयपुर विश्वविद्यालय,

उदयपुर (राजस्थान)

अपनी बात •

“श्लक्ष्णियाँ !”—मर केले राजनातिक और सामानिक सपन म जमा अनुभूतियों पर आधारित घटना-जा का सफल है। घटनाएँ जाप पीता और कुठ पर पीती ह। पुस्तक कैसे क्या उन पडी है, इस तार म क्या नहूँ। जैसी जो है, वह आपने समज है। इतना ही जानता हूँ कि अपने को और अपने पग पडी ठाप को पूरी सच्चाई के साथ रखने की मने चेण की है। पाठकों को पुस्तक रुचिकर और उपयोगी लगे ता में ममङ्गला मेरा प्रयास सफल रहा ।

१० अगस्त '६७ राजन धन
५१ सरदार पटेल माग
जयपुर

} निरचननाथ भाचाय

क्या-कहाँ ?

लेखक

प्रस्तावना

अपनी बात

१ अतिम चाह	१
२ सड़कर चोले	७
३ तिनदगी, केवल जिंदगी	१२
४ शराबी हूँ, हैवान नडा	१३
५ मामन्ती रसक !	२०
६ इज्जामो का इज्जाम	३१
७ माली बारा ! फल दो	४६
८ वक्त आ गया	५१
९ चुत्पा और शारी	५६
१० यह अमिशाप !	६१
११ राजनीति और दास्ती	६९
१२ भूय की ज्वाला	७७
१३ इमशान और दशिणा	८६
१४ मेरे हमदद	९१
१५ एक श्रद्धाजलि !	९४

अतिम चाह

‘चिट्ठी !’ आवाज के साथ दरवाजा खटखटाते डाकिए ने खत का पका, उड़ी उल्लसता से खत मने उगया और रोला । एक बार पत्ता, फिर पत्ता, और फिर पत्ता ।

बृद्ध जोधसिंह पास बैठे थे, उद्विग्न थे और मौन । बाल, ‘मेमा क्या कागज है जा बार बार पढ़ रहे हो ?’—स्वयं म जाधसिंहनी न यग न पुट था ।

‘देवीसिंह का पत्र है’, मने जवाब लिया ।

‘क्या ! देतु न कागज !’ बृद्ध रोमांचित हो जाए, रॉपते हाथा से पत्र उहाने छीन लिया, ऑरों म ऑसू आ उल्ल थे । नापी और मूँछ ने सवन जगल म से झॉफते, कँपते, उनने हाट, गत न रूप म ‘दबु’ का प्यार करने न लिख आतुर हो उठे थे ।

उस नहसे गत म बृद्ध की आत्मा और जीवन के धग्मान भग थे, पत्र न सनने की अपनी विनयता के कारण मूर्क, अशांत, यथित, यह, उसके स्वर्ग मात्र म अपने हृत्थ की प्यास बुझा रहे थे । ऑस यह चले थे, एक बेहागी जा छान थी ।

यह सन दंग नम्रता स मने कहा, ‘लाइए, म पत्र देता हूँ ।’

बृद्ध चाहे, मजग हुए, पत्र का देना, उल्ल पल्ल । पुन मुट्टी म दबाच लिया, माना स्नेह का अपने अचल से दूर करना नहीं चाहते न ।

मने फिर कहा, ‘मुझ दीजिए, म पत्र देता हूँ ।’

‘क्यों ! मेरे ‘देतु’ का पत्र है, मैं खुद पढ़ूँगा ।’ वह भावनेग में रोले ।

पत्र बृद्ध ने हरय मे लिपका था, ऑसू झर रहे थे जानता था,

सज्जित देवीसिंह की तस्वीर टेंगी हुई थी। जोधसिंह रियावर हुआ। देवीसिंह फौज में लेफ्टिनेंट बना और वह अपने पिता के ही समान हथ पुष्ट, बहावर तथा दिम्बनोरा था। अपन समय में वह एक अच्छा खिलाडी भी रहा था।

जब कभी गाँव का कोद आदमी मिलने जाता, वे उसका ध्यान तस्वीर की ओर रखा करते और कहते, 'यह है, मेरा बेटा देवीसिंह। फौज में लेफ्टिनेंट है। पहले लद्दाख में क्षमा, अब नेफा के मोर्चे पर चीनियों के दाँत रगड़े कर रहा है।' इसी प्रकार अपने बेटे की प्रशंसा करते वह अघाते नहीं थे।

जोधसिंह नब्बे वर्ष पार कर चुके थे, वह थक चुके थे और प्रयाण चाहते थे। उस एक इच्छा श्रेय थी। बेटे से अन्तिम बार मिलने की तमन्ना। बेटे से मिल पाने की आशा उन्हें नहीं थी, पर जाग्रह उनका ज्ञान पर जट जमाए था। कदर बार टेलीफोन से बात करने की इच्छा भी वह प्रकट कर चुके थे, पर नेफा और लद्दाख के मोर्चे पर से टेलीफोन से बातें कर पाना नितान्त असम्भव था। जोधसिंह मरना चाहते थे, पर बेटे से बिना मिले नहीं।

मैं भी बार-बार के उनसे आग्रह स थक चुका था। उनका बुलावा आता रहता, मैं जाने में सजोच करता और रह जाता। इस प्रकार उनसे मिले एक माह से ऊपर होने आए थे, बुलावे के उनके वारण्ट, मेरे पास इस रीति परापर आते रहे। मैं बड़बुद म था, कैसे उन्हें सान्त्वना दूँ? बेटे से मिलने के विद्वानस ने उनके जीवन को अब तक संभाल रखा था।

शाम मुझ खरर मिली, जोधसिंह की हालत खराब है। यह सप्ताह मुश्किल से ही गायद गुजरे। मुझे याद किया था। मैं कुछ विचित्र हुआ, गीता पाठ की उह चाह नहीं थी, न राम-नाम मुनने की आकाशा। बेटे की आवाज को फोन पर सुनना ही एक मात्र उनकी अभिलाषा थी, यही था उनका पुण्यलाम और यही था उनका मोक्ष।

×

×

×

श्री इन्दरमिह—रिपयट मैनिव । आदिमर । अच्छी पगन । रसा दार बर । दाना का एक दूधर पर भरोसा । मुग्धा और स्वस्थ । समय क मदुपयाग याग्य अब काइ काम उनय पास नहा था, रिती दास्ताना का भवार उनर पास था । उहीं का मुनान म वह अपना समय काटते और व्यस्त दीगत थ । आगुन्तरा सा उनक यहाँ सम्मान था । उमर उर खुराक मिलती थी, समय रगता था ।

इन्दरमिहजी क यहा म पहुँचा । उ राग रूम म रठ, हुक्का गुटगुदान म मशगूल थ । मन नमस्कार किया । तब ता उन्हान मुक्ष रगा । दग्गत ही छाती म लगा लिया पीठ थपथपात कुसा पर रेग्न सा आपर करत गाले, 'बहा । आज रेम रास्ता भूल गए ।'

जमान कुछ हूँ, रि इसग पहँ हा, मुझ गौर म दग्गत रठ गाले, 'अर ! दग्गत ही तुम्ह एक बात याद आ गए । यहा भुलकण्ड हूँ, फिर भूल जाऊँगा कह हूँ । सुन्दर का पत्र था श्रीमिह सा पता पृछा था और जाधमिह जी का पुगल—उम पृछी था ।'

म खुद जिम रात का उगना चाहता था वह स्वय ही उ आइ । मुक्ष गहत मिशी । दामिह क नभा माचें पर हान री सूचना, जाधमिह जी री शृङ्गारस्था, जार पुत्र म मिलन की उरभी प्रचण्ट व्यग्रता का मन जित्र किया ।

गर से छाती फलात इन्दरमिह गाल, 'आरिख इ रिस्तना राद पान । मने भी रिपयर हान म पहले, लटर का पात्र म करा दिया था—क्या भगसा है रग जावन सा ।' कहत इन्दरमिह चिता म डर गण ।

रिपय का आर उनसा प्यान राचन मन कहा, 'बुद्ध मरणामन ह, रात मन म रह गद ता मद्गति न हागी ।' उ दामिह म पान पर रात करन क लिए अत्यन्त यग्र ह । मोरत रठ गाले, जागिर रात ता रू का अपन बट म हा करनी है न ?'

‘जी। वृद्ध या विद्वान् जमेगा। सुग्न और मताप से वह भर सन्ने।’

‘कौन पड़ी बात है। यहाँ फोन है आप जाधसिंहजी को ले आइयेगा। जैसा बग मेरा, वैसा बग उनका मुग्ध, देवीसिंह की तरह घातें कर लेगा।’ चहरे पर मद मुस्कान रिगोरते इन्वरसिंहजी ने कहा।

सदाशुभृति जीर महयाग ने लिष्ट धन्यवाद दस्त्र भन उनम निदा ली।

×

×

×

रात्रि न साइ नौ प्रज रहे थे, बट से फोन पर बात होने की प्रतीक्षा में इन्द्रसिंहजी न यहाँ एक कमरे म वृद्ध जाधसिंहजी पलंग पर लेट ये। बट से फोन पर मिग्न की प्रसन्नता के कारण, कल रात भर वृद्ध नाद न ले सने थ। तनीयत भी आज अधिफ रसारा थी गोलने की शक्ति क्षीण हा चुना थी। जा दुछ थी, उम वेट से बातचीत करने म रत्न करना चाहत थे। मौत का छाया चेहर पर आ भंडराइ थी, पर उसम भी प्रसन्नता की एक झलक, झलक रही थी। पास म रते फोन पर उननी जॉप गडा थी।

साप्ते नौ प्रने टलाफान की घटी प्रजी। वृद्ध पिजली की तटप लिष्ट उठ पेटे। रिमावर को मैन टठात, ‘हलो, हेले,’ बातचीत क दौर का बाधा।

‘हला। मान ? दबीसिंह। लो राजी साहन से बात करो।’

वृद्ध क चहर पर सरसता छा गद आत्म निभार हो, वं नाले

‘बुण दनु। बग दनु। जुण ? थू गोलरिया काइ ?

‘हाँ। मूँ हूँ। दबीसिंह। म्शरा पगाल्गगणा जे माता जी की।’

‘थू देउ। देधु गोल रियो हे ?’ रुंधे कठ से जाधसिंह अपनी आवाज को दूर पंक्त वाले, ‘थू कश्यान हे ? कणी गान नी छावना तो नहीं है ? कदी आवला। थू नटे है ?’

‘म मन में हँ, नाम आगण नहीं ! हटा कटा ।’

‘ता—तू मना में है ‘ज’ चित्रा’ ‘नहा’ ‘जगदम्बा
 योगी रगवाली’ ‘राल रौंका नगो’ ‘ज’ ‘गानदान का नाम
 रगवाँ’ ‘रहाटुग रूँ’ ‘इमान ।’

कहन-कहन जाधकिह की आँगे पन्द हा आ। गिमीयर का मुँ स
 ट्याण, वह धीर धीर, अब मी रहनहा रह थ, ‘तु— म्हाग तु ।’

जगदम्बा योगी रगवाली ”

गिमीयर ट्ट गया गहन लटक आ, ममन र महार वृद्ध अब
 चिरनिद्रा में थ ‘तु’ की राणी न उन्हें सुन की मात्र री थ। रही
 वृद्ध व निष्ठ गीता और र गानर मिद हू थी ।



खंडहर बोले ।

गोलकुटा ।

विशाल खंडहर का उजटा बगीचा । चित्रनों का सहारा लेती विशाल तीमार । कहीं पूरी, नहीं सजी हुई तो कहीं अपना नामोनिशान मिगाने की प्रतीति म अन्की हुई । विस्तीर्ण और विशालकाय दीमार । छोटी-बड़ी चित्रना पर, पहाड़ियों के धरे म, महलों के अवगोपा को अपन सीने में लपेटे, प्रीम गीत, सजावात—सबने थपेडों का सामना करती अर भी अटिग सजी है ।

इनकी विशालता, मुददता और अभेग्रता का अर कोद महत्व नहीं है । पर पृथ्वी पर खड ये भग्नावगोप आसानी से अर भी भूलुण्डित नहा होना चाहते । इनने गम में शताब्दियों की दास्तानें ह । सीने म मूरु इतिहास की धडरन हैं । अस्थियों किसी की यहाँ समाधि म हैं, तो बरबादी किसी की यहाँ दफनाइ हुई है । ऐदनय किसी का सीने में इसके कराइ रहा है तो नीरता किसी की अचेतन में यहाँ सोइ पडी है ।

परेब और जालसाजी इन खंडहरों में बोल्ती ह, तो किसी के हृदय का सौन्दय, किसी की प्रेम गाथा, किसी की वेदना, यहाँ के अणु परमाणु के अतराल में मौन है । इतिहासकारों के लिए ये खंडहर ऐतिहासिक सत्यासत्य के अन्वेषण का अतुल भंडार हैं तो यही भावुक यन्त्रि के लिए बोल्ते और जीवित खंडहर हैं ।

×

×

गाइड ने कहा, 'इस किले के नौ दरवाजे ह । गबन महराव हैं और अटतालीस सुरगें । तुतुब शाही बश के सात बादशाहा ने एक सौ सत्तर वर्षों तक यहाँ राज्य किया । सुल्तान अली इस बश के पहले

मैं अतीत क इतिहास में जा भटका । निगाह एक ऊँचे गुम्बज पर पड़ी । चूना पथरी से घूट रहा था । पत्थर अपना जगह में हट रहे थे । नाव खरब रही थी और ऊँचाई जमीन की आर पिनच रही थी । इन सब दृश्या ने मुझे कल्पना क पत्ता पर पिठा दिया ।

‘—आज तारा मस्जिद पर नमाज है । सामन्ता क साथ, मने हाथी पर, बादशाह सलामत किले की आर तशरीफ ले जा रहे ह ।

सैकड़ों का मौत क घाट उतार, बादशाह सलामत आज जग जीत कर लौट हैं । खुदा की कुदरत गाल-गाल मौत से बच ह । उसी खुशी म आज नमाज है ।

‘‘ और इधर जनाने महल में कौन ह ? क्या सुन्ने भजन ह । क्या सुग्घ गीचा । फज्वाओं का श्रावण भादों लगा है । ह्यागस की यहाँ रंगरलियाँ हैं । सामन्त युद्ध की जिभापिना स लींटे ह । यहाँ अब राग रग हागा । प्रेम होगा और रगिन्ता यहाँ झमेगी ।

‘हाय ! हाय ॥ गजब हा गया, बादशाह-सलामत का कल ।’

‘किमने किया ?’

‘हुनु । शाहजाद साहब ने ।’

सामोनी ! कल ही शहजादे साहब, गही नगी हाग । बादशाहत अभी नहीं मरती । न कल होती है । यहाँ आँसू पहाना है मना ।

‘ × × ×
फिला टूट चुका है । फोज अन्दर घुस जाइ है । बादशाह सलामत कैद कर लिए गए ह । गामाश ! बादशाहत कैद नहा होती । चा कैद हो गए उनका जमाना लद गया । अब जालमगीर औरराजेव की हुकूमत है ।

अरे ! महल में यह किमनी सवारी चली आ रहा है ? बगम साहब ! जालमगीर का मुबारकबाद देने—

सामान ! जमान न हिलाना । जमाना हुकूमत क साथ चलता है । हुकूमत का शतरज का यह गैल जमर है । माँहरे बदलत रहे हैं और बदलते रहेंगे ॥

×

×

×

वह दगा ! कि की ऊँची और चौड़ी तीराय व मीन पर तापे तनी पटी है । इस कि की पहलारी का तापित इन पर है । आकाश और पृथ्वी की आर अपन तीर हुए गाल—गायधान और छत्र । गतान्दिया म मान है आर अषमय ! गिन रही है, कि भी अर है, अपन अपन म्याना पर—वैम आदग की प्रती म में हों !

आर उधर है गन्नागार ! यहाँ पटा है र, मड मर हथियारों का—छाती-बटी रन्दुई है, भा और रगु है, तापे है और गा है । कि गून में कभी याग भी महमत था, आर व ही याधिया की छ म्यानी का गिरा है ! जिनका गाज, गाय आर मग्मान था । आर वही कतर में गिरती अपनी गान्ताने मुना रही है ।

X

X

X

यह कि कद वागगाहों की हुनुमता और उनक गाम अन्वाचारों का ग्य चुका है । इसका मन्तमा बगुनाहा व गून म रेंगी पटी है !—अर म जमीन पर कयामत तर गद गद कर मन्त रहना ही इसक गुनाहों की गता है ।

कि की चार तीरागी में, कभी भयकर युद्ध का दग्ता हूँ और आर म भर उठता हूँ । कभी जग्य अन्वाचारों का हान देग गिरा उठता हूँ । कभी मुख्य भवता म गिरगी मग्मता में श्रम उठता हूँ ता कभी अन्त पुर की मगियों व भगम में छूटा हूँ ।

दग्ता ! गायधानी म पग धरना । ना जान कान हस्ती, कौन ललना म जमी में मा रही है ! पगा न हा कि अनजान उमर हीन पर तुम्हार पैर पट जायें ! यहाँ की मगीपता आर मौल्य, यहाँ की मन्ती और पन्ना, यहाँ की गीता आर कायरता, कहा तुम्हार पाँव की आहट म चाक, जग न पद । व निद्रा में है । उन्ने गान ग ।

/

X

X

मैं धीमे धीमे पग बगता बाहर निकल रहा था कि गण्डहरों ने पीछे से कहा

‘यह अतीत का ही नहीं, बतमान का भी इतिहास है । बतमान का भी एक दिन विस्मृति व इसी अँधरे में साना होगा ।’



और धड़कें साथ उपदेश साधु ने पास पैठा ^३ । लगा जैसे वह उपदेश से कहीं गड़ा और श्रेष्ठ हो ।

मैं बैठ गया । देखा कि वह उपदेश साधु के आटम्बर से लिपटा है और उठासीन । मैं उसने और पास लिपटा आया । यहाँ से वह मेरे हाव भाव और सज्जा को देग और समझ सज्जा था । उसकी नजर मुझसे मिली । नाक भौहों को चढ़ा मने उसे सज्जा दिया । होठ उसने खुले और दनी मुस्कान को उसने गहर दिग्गज । आँसू ने इशारा करने पर वह उठा और दूसरी ओर चल दिया ।

मैं भी उठ उसन सामने आन गड़ा हुआ । बोला, 'अर यार । यहाँ जाते हो ? यहाँ पैठा न ।'

'ओकरे तग करेंगे ।'

'क्या परवाह करते हो ।' मैंने कहा ।

'अच्छा । तो आधा यहाँ मजा लेवें ।'

दोनों वहीं बैठ गए ।

मैंने कहा, 'मिगरेट ।'

छूटते ही वह बोला, 'हाँ हाँ । क्या नहा ।'

मिगरेट दी । उसन जलाकर गहरा कश खाँचा और धीरे धीरे धुआँ गार मुँह से निकालना शुरू किया ।

मैंने सज्जा प्रश्न किया, 'आप कौन ? यहाँ कब से ?'

निम्नकोव छूटते ही वह बोला, 'यह क्या सवाल ? यह कैसी दागनी !! अर भाइ । मैं जैसा हूँ, वैसा दिग्गज था हूँ । तुम और हम, गनों ही इतान और दागों ही शरीफ । जब मैं मिने तब मैं ही यहाँ । आप भी कमाल ! क्या सवाल !'

उसका हस जगज ने मेरे आगे क सभी प्रश्नों क प्रत्येक का छोट मगाट दिया । फिर भी मैंने कहा

'ता तुम गीजन हा ?'

'हाँ, क्यों नहीं । क्या सुगा ?'

हम जाना हम री-मी उलझन में साहर बिचल था था कि पाप में
गया। बापूना ने उग आ धर।

एक न कहा, 'साया ! आत्मद्वीप का आग !'

दूसरा बाल, 'बापा ता, मे पाप हो उँगा कि नहीं ?'

तीसरा ने पूछा, 'बाबा कर म्गारा ?'

तीसरा प्रश्न लगभग एक साथ ही पृष्ठ हुए थे। तीनों का चेहरा भी
उगता साथ ही टिया।

हा ग्याउगा। पाप हो जाग। मे मर्गेगा नग।'

बालक तो बालक रहत। चार्ल्या और गगन चिन्का स्वभाव।
एक न चेरा नरे मे रधा रूपन मीना, दूसरा ने हाथ का चकड़ी मीनी
जाए तीसरा तो उगन रुध पर ही चल रेग।

पर कमाने। यह न चिन्किटाया, न धारा ही उग जाया। पर
मन्त्रा उगन चार पर मन्त्री मी। उर कहता रहा।

'धर भाऊ तम बाल गापाल, यह क्या मन्त्रा ?' गाना भाऊ। उर
रहा थ। उगना अर मे गुम्म भन। पीटैगा !'

बालक मानी उर उगक साथ बिल्लाट कर चलत रा। उगन
निवृत्ति पर उर बाल, 'लगा ? धंस नरक्यत थ।'

मे सिपय ता गुट न उगा रोहिता था। कहा, 'ता ता, चला
हाल न।'

'हा हा, चला।' कहा यह उग। अपने मन्त्र स्वभाव में यह आग
हा चिया जा मे उगक पाउ-पउ।

पीउ चलत मेन कहा, 'महागन ! गचा जापका उगना !'

अपना कुर्से का चरों की आर इंगारा रगन यह राग, परना
रही। उहुत है।'

साय क हाल मे प्ररग करत ही कहा रगनला मर गन। मर
गाभर मे महागन री उगन रह गण। मानी क हटनन उग। पर
महागन पर उग मर की ना प्रतिक्रिया नहीं। उर ना भाऊ जा एक

धुर्सी दवा बैठे । मैं भी उनसे कुछ दूर जा एक ओर बैठ गया ।

मैनेजर महोदय जाग उठला हुए आए । उसने बोले, 'महाराज ! निकलिये यहाँ से । दिखाइ नहा देता, मॉ-बहन यहाँ बैठी हैं ।'

साथ ही मैनेजर ने राधा का हाथ पकड़ा और उठा, राहर ढकेलना चाहा । इस विपदा स्थिति में पडने पर उसने मेरी ओर देखा । मैंने दस का एक नोट चुपके से निकाला, उसे दिखाया और गोली बना उसके पास पक दिया ।

राधा ने चुपके से नोट उठाया । अत्र क्या था । बाया शेर थे । एक झटके से उसने अपनी बाँह छुड़ाई । एक मुस्कान, क्षणिक । फिर क्रोध में फुकारता, अपने स्वाभिमान की रक्षा करता वह बोला ।

'यह होटल है । यहाँ जो पैसा देता है, वह अधिकार रखता है । जा, नहीं हटता । नहीं हट्टेगा ।'

मैनेजर बोला, 'पैसा ! और तरे पास ! राधा ! सत्र होटलवाले तुम्हारे नाम को रोते हैं । इज्जत से बाहर हो जाइए करना ।''

'करना क्या ? शीतान ! बेइज्जती करता है । यह है ' वह उसने दस का नोट मैनेजर पर फेंका ।

होटल में एक सनाटा । मालिक कत्तय विमूढ । मैनेजर चक्रम । अत्र शीतान उभरा मेहमान और सम्मान उसका अधिकार ।

मेरी ओर सकेत करता और हुकम देता मैनेजर से वह बाला, 'जा, मेरे इन मेहमान के लिए और हमारे लिए—चाय, आइन्मीम और समोसे ला ।'

मैनेजर ने गुस्से का निगला और सत्र करना शुरू किया । महाराज रोप प्रकट करता, उडबडाता, खाता रहा । खाने पर निल माँगा । चुकाया । पचास पैसे टिपन और चैपते जाना बोला, 'समझे ! आइन्दा ऐसी हरकत न हो ।'

वह उठा और बाहर चल दिया । मैं बैठ रहा । उसने कुछ दूर निकल जाने पर, होटल का मालिक दौड़ा पास आया । बोला, 'साहर !

जाय इस जन्मान के चगुन म वैम वैम ! यह तो यहाँ का माना गुदा है ।'

म मीन रहा । उग और नहर निरल आया । मानिक मुस विगरे पर उग गता रहा ।

महागत्र जगत दूर नही तिरु थ । थानी दर में ही म उगम आ मिला ।

'कदा रेमी गग ।' मगगत न कदा ।

'कदा रेमी तिमार्ह ?' जगत म मन कदा ।

रह गिलगिला उग आर नी मे मुसम रिदुता भी म गुम हा गया ।

×

×

×

आन तीगय तिन है । गायगा का समय । रही नक्की लेक । पाक थ कान म पथर की पर पर भेग, भागजा का भापण गता वही आत्मवगी माधु । पर आन हमारागा गाधु रहा न गग पर रहा था । उगरी गान म चारों आर नहर गुमा-दूर और पाग । पर रह न तीग्या । मुहा उगरी गान थी आर गान मगी जरी थी । आगिर कामयार हुआ । तुठ दूर चुम्बु की आट में, गिगग का धुँआ छाटा, गलका न माथ, उगरी शक मुभ मिगी । निचय ही, रह रही था ।

उग आर गग । आग मिया । उमन मुस्मान दी । मन हाथ का ह्याग कर, भापणी गाधु की आर उग पुगया । ह्याग थ ममस गया पर मान रहा । मग निगा उगरी गिगी था । थानी दर नद एक पुगिष गग म गतरिद करन पाया । बातरीत वा गी हा, पर गग म एक मव कता मग दरी । रह मुस्मान आर गगिन्व की भापगा ग उग आर मीधा वाली चाल म भापण ग गाधु थ मम उ आन गहा हुआ । पूण निर्भीर ट्रानिक थ गिगादी की मानिक उमन हाथ उगया । मानों भापण गगन वा आटा द गग हा ।

भापण वल हान पर गग का कहन मुना, 'मगगत नारट है ।

गिरफ्तार हो जाओगे ! यहाँ भापण देना मना है । पुलिस ने कहलाया है । भागो यहाँ से ।' वह दूर खड़े पुलिस मैन की ओर उसने सन्नत किया ।

श्रोता चकित । साधु भी उलझन में । भापण बन्द हो गया था । वह मरे दम उठा । रात्रा को घुणा से घूरता एक ओर चल दिया । मुझे भी आश्चर्य था । रात्रा ने उस ध्यवहार को मैं पकड़ नहीं पा रहा था । भीड़ छँटने पर, रात्रा को अपनी आर द्यारे से बुलाया । थोड़ी ही देर में, वह मेरे पास आ बैठा ।

मैंने कहा, 'तुमने यह क्या किया ?'

त्रिना किसी दुग्ध के वह तुरन्त बोला, 'कुछ नहीं किया । पुलिस वाले ने काम बताया सो कर दिया ।'

'तुम गुण्टे हो यार । चन्ते रास्ते छेडतानी करते हो ।' उसने मेप पर छाँग कसते मैंने कहा ।

'अरे यार ! इस पर भी तो लोग पीठे पड़े रहते हैं । तुम आओ अपनी कुटिया पर तो देखो और जानो । रात रात भर जागना पटता है । कोद दबा माँगता है । कोद लडना । किसी के भूत चिपटा है तो किसी के पिशाच । मैं उडा परेगान रहता हूँ । सब कहता हूँ लोग से कि देखो, म हूँ हना कुछ नहीं । न सिद्ध हूँ, न सत । लेकिन लाग हैं कि इस पर भी मेरा पीज नहीं छाटते । उन्टे और दौटते हैं ।' यह कह उसने मुससे भी अपना पिंड छुटाना चाहा ।

मने कहा, 'यार ! साधु क वेप म तुम एक गुण्टे हो । कुटिया पर तुम्हारी आएँ तो सातिर करोगे ?'

'क्या नर्हा ! आओ और जरूर आओ । तुम्हें मात सिगएगे । आटा ले जाओगे और कुछ धी और शक्कर । आम तले वाठी नना लगे और लट्ट । जर्तन एक है, दूमरा माँग लगे । आना क्या प्यारे ! साथ चलो । माल छानेंगे ।'

उसनी रात्रा ने एक अच्छी ग्यासी पिन्निफ का समों बाँध दिया-

हो गया और बोला, 'अरे यार ! चना जोर गग्म खाओगे ?'

मैं बोला, 'हाँ हाँ ! आपने लिए लाऊँ क्या ?'

'लाना क्या । यह सब अपने ही बच्चे हैं । ऐ चनेगाले ! आना धर ।'

कहने की देर न थी कि चनेगाला आ धमका । वह खाता रहा, मैं सरीदता रहा । उसे परमाह न थी मेरे खाने न खाने की । हाँ, बीच बीच में दूसरार जरूर हाँ जाता था ।

'चना जायनेदार है । नमक और सटाद सभी अदाज से पडी है ।'

वह कह रहा था और मैं देख रहा था कि उसकी पैनी दृष्टि चारा आर घूम रही थी मानों किसी की ग्लोज और शिफार म हा ।

मैं कुछ दूर जा बैठ गया । बच्चे खेत रहे थे । उन्हें देखने लगा । ध्यान टूटा ता फिर राग का ध्यान आया । देगा कि हुचूर कालेज के लडकों ने बीच, कुछ दूरी पर, बेंच पर बैठे हैं । धडल्ले से धूम्रपान में व्यस्त । रात हो आई थी । मुझे भी पाक से जाना था । मैं उसने पास पहुँचा । कहा, 'महाराज ! अच्छा तो चल ।'

'अरे यार ! कहाँ जाते हो । चलो तुम्हें अच्छी जगह पर ले चलते हैं । वहाँ हनुमानजी के भजन भाव हाने ।' लटकों से अपने को मेरी ओर माटते वह बोला ।

मैंने कहा, 'यार ! किस प्रसन्न में पट रहते हो । साधु होकर लटकों के साथ सिगरेट पान ।'

'देखो यार शि ग्न मत दो । यह सब पधन में तोड चुना हूँ । मैं अपन तरीके का आदमी हूँ । जिन्दगी को खुशनुमाँ देगना चाहता हूँ और जिंदा दिली से जीना ।' वह बोला ।

मैं अपने टेरे पर लौट आया । वह न मालूम कहाँ रहा ।

×

×

×

चौथा दिन ! आरिंसी दिन आबू पहाड के टहराव का । आज राग के जीवन का पैदा में निमाल लेना चाहता था । उसी उद्देश्य और

मन्त्रों में तबही एक पद था। मन्त्री पदों में और अर्थों में चर-
 गता वादि । एव द्वायस वाचा कदा विद्या नरा विद्या । आर्य
 यदु मद्र, इम मद्र मद्र । एव यदु नय नरा आर्य । एव पुंशु
 मद्रि आर्य नरा वा एक पुंशु । इत्यादि मद्र द्वायस पदा ।

एक ही मन्त्रों में मन्त्री पदों में मन्त्री पदों में मन्त्री पदों में मन्त्री पदों में
 मन्त्री पदों में मन्त्री पदों में मन्त्री पदों में मन्त्री पदों में मन्त्री पदों में
 मन्त्री पदों में मन्त्री पदों में मन्त्री पदों में मन्त्री पदों में मन्त्री पदों में

शराबी हूँ, हैवान नहीं ।

कमलाकर और कन्हैयालाल दोनों ज़िगरी दोस्त । साथ कालेज म पड़े, साथ होस्टल में रहे । शिक्षा समाप्ति के बाद दोनों ने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों को अपनाया । कमलाकर कूदे राजनीति म तो कन्हैयालाल ने वकालत को चुना ।

कमलाकर राजनीति के चक्कर म पड़ अनेकों बार जेल गए । यातनाएँ सही आर कष्ट । लगन ओर सेवा के रल पर वह थोड़े ही समय में जनता के प्रिय हो गए । राजनीति के क्षेत्र में भी एक स्थान उनका बन गया । जहाँ तर प्रश्न था पारिवारिक जीवन का, वह और अस्त-यस्त ही हुआ था । जैसे की तगी से गृहस्थ जीवन रस्त और जात-रहित था ।

कन्हैयालाल ने भी मेहनत और लगन से वकालत म अपने को अच्छा जमा लिया था । अरुण कमाया, ररचा और जोडा भी । स्वभाव से अल्ट्रा, मुक्त और निद्र-द्र । आजादी के परवानों की उहोंने खुले दिल सहायता की, पर छिपे । सुना था, वकालत और इमानदारी साथ नहा निभती है । उसका निभाव आर जमाव देता तो कन्हैयालाल में । वह इमानदार था । उसका दृष्टिकोण माननीय था । मिजाज का वह गरीब परवर । आमद का एर अच्छा भाग गरीब म रँट जाता ।

साथ पाँच के बाद कन्हैयालाल का आफिस बल बन जाता था । दिल मिले दोस्तों का केन्द्र ! राजनीति की पेंतरेवाजी और वकालती नौक-शौक से दूर ! शारीरिक और मानसिक थकान आर तनाव को दूर करने और ररने का एक साधन । कन्हैयालाल को एर चस्का था शराब का । वह पीता था ओर रूत पीता था । खुले आम पीता था, छिपाकर

जिन्दगी के अतर को उसने समझा । रोता, 'हमारा क्या है । हम हैं हुक्मत की रियाया । पंद्रह साल की वफ़ालत ने मुझे सत्र कुछ दिया है । धन दोलत, मान-सम्मान । जनता के दिल को भी माने लगा हूँ । वफ़ालत के समय डट कर वफ़ालत करता हूँ । फुरसत के समय उतना ही डट कर पीता हूँ । किसी को विशुद्ध करने नहा पीता । कमलाकर, मरा यसन मेरा अपना है । जन जीवन से उसका वास्ता नहा । मदहोशी मेरी अपनी है । लय्य है मेरा जन हित और जन सेवा ।'

'हाँ भाद ।' उग करते कमलाकर रोता, 'जीवन तो हमारा ही जनता से वास्ता रखता है । हमारी जिंदगी हे खुली पुस्तक । यतिगत जिन्दगी, इस जिंदगी में हमें कहीं नसीब है ।'

× × ×

धीरे धीरे कमलाकर हुक्मत के नशे में तल्लीन होता गया । स्त्रियों और कन्याओं के प्रति उसका रुझाव, धन पतिया के प्रति उसका पक्ष पात, निरन्तर चला गया । यों धीरे धीरे वह जनता की आलोचना का विषय बनता गया । प्रतिष्ठा उसकी गिरने लगी । अचुरित विनाश के इस पौध को मुख्य मंत्री देखने में असमर्थ थे । वह थे मदहोश, सत्ता के हाथी पर सवार । जनता कुचली जा रही थी । और यों वह जनता से दिन प्रति दिन दूर, और, और दूर होते जा रहे थे । जाने अनजाने में अहंकार उह प्रसता गया और वह उसका प्राप्त करने रहे । शासन दलता गया ।

× × ×

चुनाव ! जैसे-जैसे तारीखें नजदीक आती गई, राजनैतिक चहल पहल चली गई । कमलाकर के मुकामले, विभिन्न दल अपना-अपना उम्मीदवार खड़ा करने में जुटे थे । जितने नाम सामने आये, सब कम टाकर से हलके पड़ते थे । दिना तक मैदान में कमलाकर के नाम की ही गूँज रही । नामजदगी के दो दिन और शेष थे । कदैयालाल का नाम भी जनता के सामने आया । भ्रातियाँ पैला । कोद उसे शरणी कहता तो कोद आरामतल । पर आम जनता उसने पक्ष में थी । पलडा कभी

निजी सत्र-धों का प्रदान था।—बीच-बीच में नारों और तालियों की गड़गड़ाहट।

उपस्थित जन-समुदाय के मानस को अपने पत्र में उभरता समझ, कमलाकर भाषण में, कन्हैयालाल की यत्र-तत्र रितलियाँ उटाने और व्यक्तिगत छँटाकशी पर उतर आये थे। भाषण समाप्त हुआ। जनता पर उसके असर को देख, कायकताओं और स्वयं कमलाकर को भी अपनी शक्ति और विजय में पूर्ण विश्वास हो चला था।

रात के ग्यारह बज आये थे। जनता विखरने लगी थी। कन्हैयालाल को अत्र गोलना था। समय था कम और कहना था उसे बहुत कुछ। अपने को उसने सयत किया। विश्वास और साहस के साथ दृष्टी जनता को संशोधन कर उसने अपना भाषण प्रारम्भ किया

‘मुझ शरानी के भी कुछ विगरे उद मुनते जाइए। शरानी कम गोलता है, पर जत्र गोलता है ता जिंदगी के अनुभव से गोलता है।’

जाटुई प्रभाव। उन्ते उठते लोग बैठ गए। चलते-चलते ठिठक गए। लोगों को लगा मानों शरानी का रूप में कोई देव पुरुष उनसे कुछ कह रहा है। इस चमत्कार को देख कन्हैयालाल का होसला बुलंद हुआ। धारा प्रवाह उसका भाषण चल पड़ा।

‘आप जानते ही हैं, कमलाकर मेरे पुराने मित्र हैं। चुनाव में हम एक दूसरे के विरोध में खड़े हैं। अलग अलग हमारे दृष्टिकोण हैं। यदि किस्मती से मैं शरानी हूँ। अत्र भी नये मैं हूँ। कमलाकर भी नये मैं हूँ— हुजूमत न। क्या यह सच नहीं? सो हम दोनों अपने-अपने नये मैं हूँ और जधे हूँ। मेरा नशा, आप जानते हैं, मेरे तत्र ही सीमित है। उससे किसी का कुछ विगटा नहीं। विगाड हुआ या मुघार, जो हुआ सो मेरा। पर मेरे दोस्त कमलाकर का नशा जुम्म दा रहा है। यह वक्त बीती सेनाओं को याद कराने और उनके गीत गाने का नहीं है। आप क्या कर रहे हैं और आगे आपको क्या करना है? प्रश्न यह है जो आज से सत्रप रखता है। मैं शरानी हूँ। आजाद तनीयत हूँ। आपसे लिया

और कन्हैयालाल ने बोटल को जमीन पर दे मारा । जनता की करतल ध्वनि ने अपनी मूक सहमति प्रकट की ।

×

×

×

सुना गया, कन्हैयालाल की मजूपाओं में मतपत्र ही मतपत्र थे । और कमलाकर की मजूपाओं में मतपत्रों के साथ-साथ, आरोप-पत्रों एव महिलाओं के चित्रों की भी भरमार थी ।



सामन्ती खनक !

सुरह के पाँच बने थे। गारगाड का जानाकारी गाड़ी तीन गाड़े पाँच बने उदधपुर में दृष्टी थी। काल बली के चतुर्दश आम-पाठ पद्रह-बीग लोंगे गढ़ थे। चौगढ़ पर दिल्ली की रक्तियाँ लगे रहीं थीं। लोंगेगाटे सवारियाँ के इतवार में चक्करन थे।

भमारियाल सराय में एक मुगाफिर निकला। बस्मा और मिस्तर हाथ में लिए थे। लोंगेवालों ने उभ आ धर।

‘दृशन के कितने पैस लागे ?’ मुगाफिर ने पूछा।

‘साँचे ! जाठ से गारह आने की गृह है। जा आये द द !’ लोंगेवाला ने जवाब दिया।

पर मुगाफिर चार आन में दृशन पहुँचाना चाहता था। आगिर, उनमें से एक दस रू पर भी मुगाफिर का ने जान के लिए तैयार हो गया।

लोंगेवाला ने लाना कमी की, ‘गारह साँचे ! मजदूरी कम करके क्यों घाड़ की घाग मान हो !’

इनमें भी एक था। जा तुप था जीर उलास। परगान था जीर अगाव। लोंगेवाला की लानाकारी में उमर भरत नहीं लिया था। अबत उम्र, मुगलिन गरीर, कलार, गाल चहर, साफा बंधा। नुरीनी मूँटें। अपन सन्द घाड़ का धरपवाता रहे गन्य था। मुगाफिर ने पहरे उमरे ही पृष्ठ था। उसने एक म्यथा मागा था।

‘जानता हूँ, लोंगेवाला की अपनी एक जमात हाती है। पर यह सौदे घान्वाला तुझे अलग ही नजर आया ! कौन था वह ?’—मुगाफिर ने लोंगेवाला पर लोंगेगाटे से लिनासा जीर उमुक्ता प्रकट करने पूछा।

‘कोन बाबूजी ! वह लगी मुकीली मूँछोंगाला ?’

‘हाँ हाँ, वही बदावर !’

‘वह हमारा प्रेसीडेंट है साहन ! हम लोगों म उस वही है जो एक बात बोल्ता है । सगरी बैठे या न बैठे । उसे चिंता नहा । जो मुँह से निकल गया, निकल गया । निकली बात वह कभी नहा बदलता ।’

मुसाफिर की जिज्ञासा बढ़ी और उसने पृथ, ‘आफिर है कौन ? सकल सुरत से तो सानदानी नजर आता है ।’

‘आपने ठीक पहचाना बाबूजी ! उड़े ऊँचे सानदान का है ! राजा हरिद्वद्र पर भी मुसीबत आद थी । अपने बुरे दिन गुजार रहा है, बाबूजी !’

मुसाफिर को जिज्ञासा में धी की आहुति पडी । वह और भडकी । बोला, ‘आफिर यह सब क्या किस्सा है ? कुछ खुलासा बहो ।’

‘बाबू ! उस हमारा प्रेसीडेंट जो है न ! राजा जगबहादुर का लडका है । भेसाड ने सोलह प्रमुख ठिकानों में इसका उडा ठिकाना था । दरवाजे पर हाथी झमते थे सने, बाबू ! इसने पिता उड़े हजर महाराणा की मूँछ के गाल थे । एक लाल की रोटी थी साहन ! जग में पुरखाओं ने इसने सिर कटगाए ह । उडा स्तमा था, बडी इज्जत थी । दस साल तर तो हमारा यह प्रेसीडेंट हिंडोले से ही नीचे नहीं उतरा, साहन ! चाकर थे, दासियाँ थी । उडा सगला था । एक समय था । पर बाबू दिन बदलते देर नहा लगती । जाने दो बाबू । सुना है रोजी के बक्त उदकिस्मती का नाम लेने से सारा दिन सगम जाता है ।’ यह कहते तंगेगाले ने घोट के चातुन मारा ।

बहानी कुछ कम रोचक न थी, मुसाफिर की जिज्ञासा और भडक उठी थी, तंगेगाले को सतरा था अपनी रोजी का ! चार आने तय हुए थे, मुसाफिर ने उसे एक बपया देने को बहा । तंगेगाले को उदकिस्मती किस्मत में बदलती नजर आद । वह गाल चला ।

‘बाबू ! मिगड की दास्ताँ, काल रात की तरह लगी होती है इस गल

बहादुर का अपना 'नामो' क अच्छा दिन याद नहीं है। कच्ची उम्र थी पर वह गुजर !

'बढ़ हज़र का गिज़ार का शोर था, हुसम था गिज़ार क समय पर पर कोई दूसरा गाला न चलाए। जच्छ गिज़ारी थ, गिज़ार भी गाथू, वह पैदल ही करत थ, मिज़ाज क उच्छ कच्छ थ आर गम्म, एक दिन की रात है, जगजहादुर उच्छ हज़र क गाथ गिज़ार म गाथ थ, अगानन ही हाथिया म एक मुनहग उच्छ निरला और उच्छा गी उच्छ हज़र की आर ! हज़र की जान पर आन बनी। अब आप ही क गाथर ! मल्ल जग बहादुर यह मर दख मकत थ ! उछोन गाला नागी और उच्छ का गिज़ार हा गया। गाली अगर नहीं चलात ता गाथू ! बढ़ हज़र गम थे !'

लरी शौम छादकर, मुगलिन क कुछ पहन म पहन ही, उछा जारी रगा, 'गाथूनी ! गान का मिज़ाज उच्छ ! नागन हात क्या दर लगती है ! उनका गबला, गिबाना, गम्पति गर खल कर ली गच्छ, जगजहादुर का मदर्नो क अहात म आर उनथ जनान का गनगम म गहन का हुकम लिया गया।

'लागा का ग्याल था गला की नागनी है, याद अरम क याद आप ही मिच्छ जायगी। जगजहादुर की उच्छिमनी गाथू ! याद समय याद ही बढ़ हज़र दर लार मिधार गण और उमथ एक ग माल याद हा जगजहादुर भी भगवान् का प्यार हूण !'

हमाग प्रगीच्छ, उ ही जगजहादुर क लच्छ है। आजकल आ महाराणा हैं न गाथू, उ हान ही उद मरद घोषा उछा है। आपन दगा ही है, क्या पानीतर घाटा है। आर उमका मालिन भी जान उम नान वाला है, गाथू !'

रुशन आ पहुँचा था। लौंगगा की कहानी भी गम-गी हा चली थी। एक का नाट लौंगगा का उच्छ मुगलिन उछा। लौंगगा न नाट का मिच्छ माथ लगाया और दूसरी गवारी की गह म उछा।

× × ×

दो साल इस बात को हुए गुजरे । मुसाफिर दाम्तान का दर्द लिए कहीं विलीन हुआ कौन जाने । बलरहादुर तौंगा चलाते हुए भी अपनी परम्परागत वश प्रतिष्ठा और राजपूती आन को न तो भूल ही सका और न वह उसे छोड़ ही सता ।

तौंगेवालों से वह सत्र तरह भिन्न था । आदत में, व्यवहार में, रहन सहन में । सुडौल शरीर, उम्र पर ब्रिजिम और कोट । झुनी पगड़ी और बल खाद मूँछें । मुसाफिर उसे तौंगावाला समझते तो आरिफ़ जैसे । नतीजा था उमरी रोजी दूसरा न मुसारले कुछ न हो पाती थी ।

तौंगा सुन्दर, घोडा पानीदार, चालक जानदार—सत्र कुछ था । पर कुछ न था । राजी का मसला बलरहादुर के लिए अच्छा खासा सिरदद था । सत्रारियों को जमाने का काम उसका पुराना हज़री (सेवक) करता था । सत्रारियाँ पूरी होने पर वह रास बलरहादुर का सँभला देता । इस तरह मालिक और मेयर, एक-दूसरे पर आश्रित, जैसे तैमने अपनी गुजर कर रहे थे ।

× × ×

तौंगा लेने और चलाने में पूव, बलरहादुर ने पन्द्रह वर्ष, सामन्त गाही न अनुशासन में गुजारे थे । सुबह होते ही लम्बी अँगरसी, कमर बँधा, उस पर परतल्ला और कगर, सिर पर पगड़ी और पन्नेड़ी, इस सजधज के साथ वह महाराणा के दरबार में गुजरे के लिए जाते थे । लौटने पर सामन्तों के साथ ही भाजन करते । बलरहादुर न पिता जगदहादुर अपनी जागीर के पाठवी पुत्र थे । जागीर गपिस मिल जाने की समावना के कारण उनके मान और मयादा में अधिक क्षति नहा हुई थी । यही कारण था कि बलरहादुर का विवाह महाराणा के गर्चे से रहे ठाट-बाट से हुआ था ।

एक हज़र की मौत के बाद समय ने पलटा रखा । नए महाराणा ने गही पर बैठते ही बलरहादुर को दी जाती सभी सुविधाएँ बन्द कर

गयी। तब से राजाद्वारा ही हाथ में आया। जहाँ का अपने हाथ में लिया।

द्वितीयशताब्दी में वैदिक काल पर भी सामन्तशाही की परम्परागत प्रथाएँ उभरीं देनी चली गयीं। सामन्तों का, मन्त्रीय सभों पर, राजा की मन्त्रीय आदि में नियुक्त हो, वह फिर कुछ धर्मों के लिए अपने का जागीर का मालिक और पुरस्कारों की प्रतिष्ठा का जामिन महसूस करता था। मन्त्री पर उत्तर जाने पर भी, स्वामिमान में वह नीचे नहीं उतरता था। उसका जीवन सामन्तशाही की तदनुसार चलता था।

महान्त में पुरस्कार था, अपने जीवन में उभरी महान्त जन्मी थी। उसमें 'जनताता', वह उभर अभिमान की परम्परा का उद्देश्य था। दाना पानिया मास-गवर्, 'जनताता', सम्पादित कर, उसमें सामन्ती सम्मान का रायम रखी था। पानिया के साथ वह मान्य करता। उसमें राजा गवर् के कुछ ही। या जहाँ की स्मृतियों सिम्प्लि के साथ में देखा जाती। वह रहा पहुँच जाता जहाँ उभरी गान गौरव रखता रहती। उस प्रकार दिन में वह मन्त्रीय था और गत का अपनी शाह जागीर का मालिक। उस प्रकार दिन पर दिन गुणवत्ता, जिन्दगी का वह स्वीय जा रहा था।

×

×

×

मन्त्रीय प्रथा की राजा जयन्ती था। जनता में प्रताप जयन्ती मनाने का एक जाह और अपूर्व ज्ञान था। महाराजा ने मन्त्री की गति का पश्चाना था। मन्त्रीय में भाग लेने की ज्ञान स्वीकृति दी थी। मन्त्रीय निकलने में पुण मन्त्रीय दिया था।

गाम के पाँच राजे थे। ताप दृष्टि के साथ ही गजराय प्राणिक में मन्त्रीय चल पड़ी। आजाद मनान में पुरस्कार मन्त्रीय का सिम्प्लि और विद्यालय प्रसार में परिणत हुआ था। मन्त्रीय के जाग था नरकार। पाठ था मन्त्रीय की मना, हीर मन्त्रीय में सुसम्प्लि। फिर रणरक्षण और मन्त्रीय (प्राचीन मन्त्रीय) मन्त्रीय मन्त्रीय की पन्थियाँ। उसमें हीर था

प्रतिष्ठित नागरिका का समूह । अत में था, महाराणा प्रताप का हाथी । स्वर्ण की अम्बाराणी । उस पर बैठे थे राणा प्रताप । सैन्य भेज म ॥ आँखें बड़ी, छाती चौड़ी, विशाल माल, लम्बा कद, सिर पर लोहे का टाप, जिहम पर जरे रखर और हाथ में भाला, एकदम राणा प्रताप । जनता के आकर्षण का एकमात्र क्षेत्र ॥

‘महाराणा की जय ।’ का उद्घोष, धातावरण का वीराचित भावनाओं से ओतप्रोत कर रहा था । राणा प्रताप के रूप में, हाथी पर बैठे अजनबी मौन था, पर सजग । अतीत की स्मृतियों में यह उलझ आया था ।

अमूल्य व्यक्तियों को धृष्टा और सम्मान की भावनाओं से अपनी आर देखते और अभिनन्दन करते देख, वह अपने का भूँ चुका था । यह राणा प्रताप था । उनका तेज, उनका शौर्य और साहस, उसमें दमनने लगा था ।

जड़स शन शन गहर के प्रमुख भागों से होता, अपने गन्तव्य पर आ पहुँचा । यहाँ महाराणा के सभापतित्व में प्रताप जयती समाराह होनेवाला था ।

आजाद मैदान की प्रमुख वारादरी पर काश्मीरी मालीन निडा था । वारादरी के बीच-बीच, स्वर्ण छत्र मण्डित सिंहासन पर, महाराणा आसीन थे । दोनों ओर, सामन्ता पांगक में, गिदमतगार चँवर पर रहे थे । सामने एक ओर मेगाड के प्रमुख सामन्त, अपनी प्रतिष्ठा और राज्य सम्मान के क्रमानुसार अपने अपने आसनों पर निराजे थे । दूसरी ओर बैठे थे राज्य के मन्त्रीगण और उच्च पदाधिकारी ।

जड़स की शान शौकत का रखान करने के बाद एक प्रमुख सामन्त राव सरुम्बर ने निवेदन किया, ‘जनदाता ! महाराणा प्रताप की शक्ति में किसी ऐसे गैरे आत्मी का हार्थी पर बैठाया जाना और फिर ‘महाराणा प्रताप की जय ।’ के उद्घोषों से ऐसे व्यक्ति का अभिनन्दन होना, अनन्त दाता । यह तो मेगाड की परम्पराओं का मन्वील है । एक माधारण व्यक्ति

वा महाराणा के कपड़े, गण और हथियार धारण करना, हमारा ज़रमा है।'

मदम्वर के सरदार अपने राप का पूरी तरह व्यक्त नहीं कर पाए थे कि शीर में ही राप दलगादा बाल उठे।

'अनन्ता ! अब आपका क्या हुकम है ? आप 'अनन्ता' हुकम है या वह तांगेवाला जो महाराणा के भेष में है ? हमारे जीवन की प्रतिष्ठा का प्रश्न है यह, अनन्ता ! गीत है, प्रताप जयन्ती धूमधाम में मनायी जाती चाटिण थी। पर तांगेवाला महाराणा प्रताप जनक सिन्हा ! यह जनकारी है अनन्ता ! हुकम होना चाहिए कि जग आत्मी का गिर काट आपसी नज़र स्थिरा जाए।'

महाराणा ने तब तक राप सामान्य के अनुरूप ही महाराज का जौंस था। पर अब उन्होंने अपने मामन्ता का बल ग्रात पाया तो वह कुछ विजित हुए। उद ग्रात करने का इति मय कुछ रत्न हो जा रहे कि मामन में प्रयाग ने ऊँच गार में मुचिउ स्थिरा। अनन्ता ! महाराणा प्रताप की गवारी चौकान में जा पहुँची है।'

गूरना ने महाराणा का क्षुभ कर दिया। वह अपने कान में भाल पाए। आजा हुद

'महाराणा प्रताप के भेषधारी व्यक्ति का नुरन्त हात्ति किया जाए। मन्नाहिजा हागा।'

गमा में गनाटा छा गया।

शानी ही दर में, हाथी में उतारा गया, महाराणा प्रताप, अपने नरन्ती मामन्ता के साथ, गारन्ती में गणित हुआ।

हुकम हुआ 'आगतुक का प्र गरा करा। मन्नाहिजा हागा।'

आपका हात ही, मिवाहिया ने महाराणा प्रताप का दूर गड़ रहने का मयत किया। सिन्नु वह रत्ना ही गया। रत्ना नहीं। चात आर में उम गवने को मिवाही गौट पद।

पुन आग हुई 'इसे दूर बैग दिया जाए।'

आज्ञा को सुनते ही महाराणा प्रताप का भेप बाल उठा, 'किसको दूर बैग दिया जाए, अन्नदाता ? अन्नदाता के पूज्य को ! उस राणा प्रताप का, जिसके यश पर आपका रानदान जीवित है। उस प्रताप के कच, दाल, शल, तलवार के रूप में उसके शौर्य को आप जूतियां मगाना चाहते हैं ?'

अपमान से क्रोधित, आग के गाले उगलता, रत्नरजित आँगना में महाराणा का घूरता वह बोलता गया,

'जाओ, अज करा अन्नदाता से। तौंगा चलाते हुए भी इस चाकर का स्वाभिमान रत्न नहीं हुआ है। राणा प्रताप को मेरा पुरस्काराने भी सिर भेंट किए हैं। मेरी रगों में भी बड़ी रून दौट रहा है। मेरा स्थान इन सामन्तों से नीचे नहा। जा भी हो अभी मैं राणा प्रताप हूँ।'—कहता वह सिपाहिया ने व्यूह का तोड़ता, बैग से आगे बढ़ता, महाराणा के नजदीक पहुँच गया !

दरबार में खलबली मच गई। दरबारी किर्तयविभूत, खड़े खड़े रह गए।

सामन्त आपा ग्यो चुनना था। महाराणा की हकूमत से टकराने का नतीजा, उस राजपूत के दिमाग से परे था। आखिर बही हुआ जा सामन्ती युग में होता आया था। दूसरे दिन लोगों ने उसे कठपुतले के सीपकों में देखा। लगता था, मानों राणा प्रताप स्वयं ही अक्बर की नजरबंदी में बन्द हों !



हजामों का हजाम

हमिद्वार । हर की पैनी का पारन धाट । तोंनों जार गगा का प्रगाट । धाट क एर आर उहों की पनियों ता टूगरा आर भिगमद्दा आर नाप्या की कतार । यहा मों गगा, मकटों क टोंनों का कपन प्रगाह में गमट अगिल्ल रहती गती । गनहभाजर की अगिया विगजन रगन म भी हगरी गगण म पट्टा था ।

हर की पैनी । ट्पामीन, विगज जोर अनामन ! फिर भी ममर विनार पर जीवन की विगिगज उमरी चरया और उगगा वैचिय, नागा रूपा म पल जोर विगगा । म यगों की पीन और अपनी ट्पामीनता म गहत चाहता था । पल का पार कर टूगर विनार पट्टा यहाँ पडा की लम्बी कतारें थीं । नजमानों म भाट आर विग टाग रगन में क अम्ल थ ममर गामन ही एर कतार हजामा की भी थी ।

मन अपन पट म रहा, 'मुक्त फग्मन है, अच्छी हजामन रगनी है ।'

पटा उगा, 'धर उधर फिर, लाट कर आया और नाग, रावनी । मर प्रन व कर आया हूँ गामन वंग लगाण, यह हजाम पैग है ।— रग पुराना है हजामा भी अच्छी रनाठा है । पटा लिग्या भी है ।'

म चर, मीग हजाम की उगी भी रंग पर जा रंग । उग्र थी हजाम रा जधर, गुकल पर सिगृजन थी और ह्यार्यों चहग रगा गगा ममन गगा गल्ल जगह जान पैगा हूँ । यह क्या ? उगन की माँटें कि पाया, मिर पर ता हजाम की रबी का मरर गुरू हा चुका है । म भी मनारजन क मर म हा आया ।

पूरा, 'रहा नाम । कितनी कमाह कर 'अ हा ?'

‘बाबूजी ! यह तो सच मौसम पर मुनम्बर है ।’

‘निर भी—!’

‘यहा हुनूर ! डन्-सौ रुपय व आस-पास महीने म हो जाता है ।’

‘आर सरकार को टैक्स कितना देना पडता है ?’

‘एक पैसा राज का बाबूजी !’

आन्चय म पडा, ‘एक पैसा राज !’

‘आपना ताब्युन होता है बाबूजी ! पर बाबूजी ! आज जहाँ म रल गुजगती है, उम जमीन पर पहले हम भाइया का ही धब्जा था, हम लाग की यहाँ आनाद उस्ती थी । सरकार ने जमीन लै ली, रन्व लाइन निकली, आप जानते ही ह बाबूजी, सरकार व मामने किसकी चली है । हम लाग शरणाभिया की तरह इधर-उधर उसाए गए । आर सरकार ने हमारी इमदाद में हर की पैनी पर हजामत करने का यह स्थान सुराित कर दिया । तब म हमारी यहाँ की बेटक का, एक पैसा राज, हमस लिया जाता है ।’

मने पृण ‘यह मय लेगी म है या जयानी ?’

वह सोल, ‘बाबूजी हम नाइ ह । हमारी जाति चतुर और चालाक हाठी है हम सच समझत ह, यह सच लेगा म है ! बाकायदा एआमट है इमका ।’

अब हमारी बातचीत एक ताल मेठ से चल निकली थी । मं हजामत भी बनवा रहा था और साथ ही उम आदमी को परण भी रहा था । हजाम भी समझ गया था कि आज उसके हाथ म किसी कारिल आदमा का सर आया है मैं मौन रहा, उह भी चुपनी माधे रहा कँची उसकी चलती रही ।

मैंने स्वामागी ताड़ी, पत्रा, ‘रात दिन तुम हजामत बनाते हा, ऐसे व्यथित लोगों की, जिनकी हजामत म तुमको प्रसन्नता नहा होता, बेचैन, यतत, वे अपनी पीटा और दद लिए तुमसे मुडन करवाते ई ।’

हजाम न कहा, पिगा ही यहा है, गावूनी । उनरे दाह का हृदय पर बहुत कम असर हाता है और गावूनी । प्रतिदिन ही एक ही अनुभूति हृदय का कणार बना रही है ।

गता क तार म हजाम न समझ गिया था कि उसर गामन का प्राहर काह अतीर आरमी है । काह रण आर मातरीर । म भी समझ रहा था कि तिसर हाथा में गव अनकों भिर आत है, उसका मना वैगनिक अरयन भी कमतर नहीं हा सकता । उसर चण का गैर म कह सकता था कि हजाम म जीवन का समस्तन की रही श्रमता है ।

मैंने पूछा, कितन लम्बे है, तुम्हारे ?

तीन ।

पूछा, 'संरत बना क्या करता है ?

'बकालत करता है, गावूनी ।'

मत्र जांचर हुआ और प्रमन्नता भी । कावूलीरग में यह उगा, जाह । ता उसन भी गाप का ही पगा प्रहा किया है ।

हजाम गाला, 'यह कैसे, गावूनी ।'

'तुम हजामत बनात हा और तुम्हारा लम्बा भी बुद्धि म गणों का हजामत ही ता बनता है । ग्या एक आमदना का स्वर एक, उन्हा म मका मरक, आर तुहारी भी लम्बान शक्ति, यात्रकों की । अतर रण कमान र तरन में तुम्हारा म्तर और कैंची, उसर पास भी ता बुद्धि का उन्हा ।'

हजाम म मरक में प्रमन्न हुआ । हजामत गतम हुआ । उस विगाम हा गरा ग कि जाह म्तर वम्बान म उस गामी जरी मरगी मिलेगी ।

भिर की कतिग करत क गत, हजाम की नर मरी म्तर पना । यह एकदम म्तर चक्रा कैंची उगा । 'गर्भर गावूनी ।' मैं इन अमी काट गता है ।

क्या वह म्बना, देना मैं भी म्बना मन कना, 'हर लया,

गन्ध कर डालोगे । ऐसा न करो ।’

वह भी चकित और मैं भी चकित । मेरी भाह में एक लगा सफेद गाल उसको दिखाई दिया था । गाल क्या ? जैसे खँखार नाग था । भाह के काले बालों में से ग्राह्य शोकता हुआ, जैसे मेरी जवानी को ही वह चुनौती दे रहा था । उस पर बैँची चलाकर हज्जाम उसका अभियान का नौचनना चाहता था ।

मैंने उससे कहा, ‘यह गंगा का दिनाग ! आत्म परीक्षण का यह स्थल ! अह को घोने का यह साधना केन्द्र !’ फिर यह बैँसा तुम्हारा धातक आक्रमण, इस सफेद गाल की बेगसी पर ? जो बाल मुक्त का भारी जीवन की निपमता का बोध कराता है, उस पर तुम्हारा जाघात ।’

हज्जाम माना दाशनिक था, जीवन की यथाथता को वह समझता था । बैँची उसने रसी, भाह को सँघार, सफेद गाल उसने और ग्राह्य निशाला । उसको अपना सिर नगाया और दोना हाथा से प्रणाम किया । जैसे वह मेरा मजाक कर रहा था !

जाने के लिए मैंने हज्जाम को नमस्कार किया ! उसने भी झुक कर प्रणाम किया । भानो दो मोतमिर दिदाट ले रू ये । मता चलने का था किन्तु अब भी हज्जाम को यह विश्वास था कि जैसे मैं उसको पयाम पारिश्रमिक इनाम में देनेवाला हूँ । उसकी जिज्ञासा, आतुरता और बेचैनी को देखकर, न जाने क्यों, उसके मन का पाटा देने की मुझे सूझी—एक मानसिक धक्का !

मैंने कहा, ‘क्या कहूँ । आज एक गलती कर गया । चला आया, जल्दी से स्नान करने के लिए । ग्राह्य हज्जामत कराने का नहा था । और डर भी था कि अगर पैसा जेब में ले गया तो मुमकिन है चेरा कर्ग के हाथ मेरी जेब पट जाए । इससे गाली जेब ही चला आया । अभी तो आपका कुछ भी देने में, मैं विवश हूँ । गंगा का यह दिनाग है । बटा पवित्र है । यहाँ आकर खादमी बग्मानी नहीं करता । बेइमान

मी यहाँ नमानदार बनता है। सय असय का समझता है। नास्तिक आन्तिक हाता है। विनाम कर। मगय पहुँच ही किसी आत्मी न हाथ, जापका पैसा भेजता हूँ।

हजाम चरित, मर चहरे का रूपता रह गया। विनाम उसका अविश्वास में बदला पर मुझ से नकली मातनिर म वह न मा तो क्या कह। मन उस उद्विग्न पाया। उसका विनाम विग्न का फिर एक बार और प्रयत्न किया। विनाम क्या, कृष्ण एक और आवात पहुँचाने का।

मन कहा, 'मान भी ला कि मगय पहुँच म नूट गया, ता भी विनाम गये कि घर पहुँच ही मनिआर म आपका अपना निश्चय ही भेजूंगा।'

यह सुन, मर प्रति गदा-महा विनाम भी उसका जाता रहा। मर विन ही मन्त्री मुखन प्रान रगन ही मसी आग नष्ट हु। यह चुप, म भी चुप। तनों एक दूसरे न व्ययन में व्यस्त।

चन न राट म मन उस नमस्कार किया कन 'मय पर आपका विनाम हा ता चरूँ ?'

हजाम न तरकाव चरी, 'कहिन सानूजी' बट बाल, 'मे तो खान पर जा रहा हूँ। यों पर निर जानवाला नया। आप आदमा व हाथ भी पैस भेजेंगे तर भी म टुकान पर नहीं मिलेंग।'

मन कहा, 'मग विनाम गन कर चले। म जात ही मनिआर म मन भूंगा।'

अन ता मग मामला सनाचर ग। न न मग मोगन की विनि में था और न म ही मग दनगाग ग।

न निगन हा बाग, 'सानूजी' अन ता म मग पर विनाम उर कर ही चरता हूँ।'

मन कहा, 'उठ विनों क गन नया कि मर इमान न सम्बध में तुम्हारी प्रति निमूल थी। चार-पाँच विन का ही बात है। तुम मुझको

वहमान समझोगे और मैं भी तुमको भला आदमी नहीं। जो अविद्यास करना है, वह भी तो भला नहीं।'

मैं नमस्कार कर उठ खड़ा हुआ। तब हजाम ने कहा, 'आप कष्ट मत करियगा, पैसा भेजने का। मैं समझूँगा, आज की समाद गंगा माई को भेंट कर दी।'

मैंने उसको धन्यवाद दिया और कहा, 'तुम मुझसे बहुत ऊँचे हो। मुझसे कहीं अधिक श्रद्धा है तुम्हारी गंगा माद में। जो मजदूरी नहीं आता है, उसको भी तुम गंगा की अर्चना में समर्पित कर रहे हो।'

मैं खाना हुआ, तिरछी नजर से देखा, वह अपना सामान सट्टाल रहा था। शायद मोचता होगा 'आज जिस मनहूस का मुँह देखा। गंगा की शक्ति में एक शैतान आ टपराया। क्या अच्छी रात कर गया। दशनशास्त्र के क्या सुंदर विचार रात गया। हजाम आदमी इन हाथा से निकाल दिए, पर यह तो मुझको भी धोखा दे गया।'

कुछ आगे गंगा, मैं रुका, आर लौट, फिर उसकी चंच पर आ बैठा। उसका विचार लौट। समझा मैंने मजाक की थी। मैंने जेब में हाथ डाला, एक चबनी निकाल उसको दी। वह तमस गया। उद्विग्न होकर उसने मेरी ओर देखा, बोला, 'वह क्या? गंगाजी!'

मैंने कहा, 'दतनी मेहनत तुमने की और मैं तुमका प्यास पारि शक्ति न हूँ, यह कैसे हो सक्ता है?'

'फिर गंगाजी! यह चबनी क्या ज्यादा है?' चबनी में तो कलम निवाली जाती है।'

मैंने कहा, 'गंगा किनारे तो अचना होती है। सेवा होती है। यहाँ जजमान से माँगने नहा, श्रद्धा से जजमान देता है।'

उह बोला, 'गंगाजी। इसको भी ले जाओ। मुझे कुछ नहा चाहिए।'

मैं फिर आगे बढ़ा, लौट, अपनी चार अठनी दी। इसको भी उसने मजाक समझा, इसने बाद वह चंच पर बैठ गया और कहने लगा।

‘गधूनी, मुझ न चरनी चाहिए और न अटनी ही। आप थोड़ा यहाँ बैठ जायें, आप किस गुरु में, जौन हैं ? अगर यह पता लगा सारा, तो समझेंगा, जीवन में एक परीक्षा जारी था, यह परीक्षा हुआ, वही सब परिश्रमिक होगा।’

मैं बैठ गया। उसने प्रश्न किया, आप क्या में जायें ?

‘गुरुस्थान में।’

‘वधूनी माय हा। आपका नाम ?’

‘निरजन नाथ नायाय।’

यह हस्ता-वस्त्रा, सम्मान-गा, मुझ दक्षता रह गया, आश्चर्य में था, ‘आप गुरुस्थान विधान समाप्त कर लें। नरभक्त गुरुम पता करता हूँ, आपकी गुरु उगम आती रहती है। अब मुझ मनाप हा गया। सब कुछ नष्ट चाण्ड।’

मग पाल खुल ग, जीवन न यथाथ का काहर न न किया। मातृपरी का मुझपर जावरण आ गया। मैं रहा आत्मी हा गया था। मर अन्तर का सास्त्रिक आत्मी, अब गायर था। हजामत न अपनी दास्तान गुरु की

‘गधूनी। उस घाट पर गारिन्द गुरुम पत की अभिषेका विमान्त हुए मन ही उनक गिनतारों का मुझ किया था। महागणा उदयपुर की भी गिनतारों वहाँ आते, उन लोगों की हजामत भी अभी घाट पर हुए। लालबहादुर शास्त्रीली का भी अभिषेक आते उनक गिनतारों न साथ ही मन मूँते। गत यह कि गुरुस्थान पर, गुरु-वत् आत्मिया न हजामत मने की है। पर गधूनी। विद्वान्ति और विद्या आदमी की हजामत करन का असर ता आज मिला है।’

अब मैं एक मातृपरी आत्मी था। अमली आदमी नहीं। अब मैं खुदवा निदान्य आर तीन म्पत उभ दिष्ट। अब ता हजामत गुरु प्रमन था। उमन एक कितान निदानगी और मर सामन गुरु करत हुए कदा, ‘गधूनी। सबको आत्मियों व हममें हस्तापर है। मैं यहाँ का ऊँचा

कायकता हूँ । हज्जामत बनाता हूँ । प्रभाव भी रखता हूँ ।'

मने कित्ताय के पने पलटे, पत के हस्ताशर, लालपहादुर के हस्ताशर और विठला के हस्ताशर । हस्ताशर पर हस्ताशर ॥ जिन जिन के उस कित्ताय में हस्ताशर थे, वह सत्र गगा मैया के प्रवाह म मिलीन हो चुके थे । हस्ताशर रूप में ही उनका अवगोप अब उस कित्ताय म शेष था । म उस रहस्य पर सोच ही रहा था कि वह सोला, 'बाबूजी । आप भी हस्ताशर कर द ।'

मने रहा, 'क्या ? मुझे भी अतीत की पत्ति म दर्पना चाहते हा । --सकत देना चाहते हो कि मेरा उत्तमान भी किमी समय अतीत हाने वाला है ।—

मने अपने को और अपने चित्तन प्रवाह का गंगा । कित्ताय उगा और लिगा, 'हज्जामों का हज्जाम—निरजननाथ आचार्य ।'

अनायास ही जो कुछ लिख गया था, उसे पटा ता उमम सत्यता आर यथाथता पाटा । यह हज्जाम जीर में भी । दोनों एक ही स्तर पर थे । यह हज्जाम था हज्जामों में, तो में था राजनीति का हज्जाम ।

जिसके गदगी का दर पैटा और जुटा था। एक स्त्री ओर पुरुष। मजदूरी मर जाने की तैयारी में जुड़ उठावले और अस्त-व्यस्त। समबत यही बच्चों के माँ पाप थे।

चरित्र और विस्फुरित नरा से बच्चों को देता। वह अपने खेल में मस्त थे और उनका ध्यान मेरी ओर न था। स्कूल का समय अभी न हुआ था। तमाश में वृत्ति में उन्होंने जन-मन-गण गाया। लेफ्ट राइट मोलते हुए तीना ने एक परेड कर डाली। तुरन्त ही एक उनमें से शिवाजी उन पैंग। गालिफा उन पैठी शॉसी की रानी। लटके ने कहा, मैं शिवाजी। लटकी गौली, मैं शॉसी की रानी !! भाइ बहनों में वाक्-मुड सा उठ गया।

‘हम देश के लिए मरगे। हम दुश्मन से मिडगे !! हम दुश्मना को मारेंगे। जय हिन्द।’ इन उद्धोषण न देन की मौजूदा स्थिति और परिस्थिति के भँवर में मुश्किलें ले जा छाडा। मैं पुलकित हो आया। चिंतन में पडा।

मेरी टकटकी देर से बच्चों की ओर ही थी। आगिर ध्यान उनका भी मेरी ओर हुआ। मैंने गदन हिलाइ और हाथ से इगारा किया। वह देखते रहे, माना मैं तमांगा होऊँ, चिडियापर का कोइ जीव।

मैंने कहा, ‘फूल लोगे’।

तीनों लममग एक साथ ही रोते, ‘आपसे नहीं। माली रामा से हम फूल लेंगे।’

देखता क्या हूँ कि मा-गी रामा ता स्वय ही हाथा में फूल लिए उधर आ रहे थे। लगता था, बच्चों ने उह साध रखा था। माली रामा, गालिफा को फूल दे, स्वय भी उन फूल-जैसे बच्चा से खेलने लगें थे।

मैं लौट देखिल तर आया। चाय ठडी हो रही थी। टाम्प की आर हाथ पडाया वह भारी हो आया। मुँह तर न जा पाया। देखिल पर सजे सय “यजन मेरे लिए चुनौती उन गए आर एक प्रश्न ?—

य शालक ! त्वय लिपि मुद्रा का बाल भाग नहीं । म अथ अर
ता । य प्रति भी यह लक्षण । मात आर मार कुर्मी पर भी पर
रत । भारताता और विनि म गाया ।

‘माली राजा ’ माली बाबा ” की आवाज न मुद्र बाबा ने था
का भोजन व वगैरा होता तो व जन कर यह मय मय मुद्र अर या म
गाया गया रहा । चला । मित्राहारा का एक पुत्र म योध मय । बर
की आर शारा । निगाह करी उतर भी अर मय मय मुद्र ही व गाव
रत थ । मा उ = पुरा लिखाया । मर पर हाथ मय मय मय की
वीच मय दान का मय मी लिया । रत्न मयी म मय व । पुत्रा
मन करी अर कर लिया । एक ने जमीन पर गिरन म पर ही मय
मय लिखा । शालक ने पहला माला । यह आरम म मित्रा रा
विगत कर ही म म कि म मा का मय मय ‘कहा है मय ?

मयन एक मय मय लिखा ‘माहर न मित्रा ही है । कहा शालक
न मी अर इगार लिया ।

मा न आर दगा व वार मरी और मीधा एक एक मय मय
उनक मय करनी शाली, माहर की मित्रा हमरा मय शक्ति । मदी
यह मयी हमरा मय मुद्राक । परा मय, ‘कहन व मय मय व
हाथ म मयन पुत्रा मीना अर मीना पर म मय ।

मय वीचन म । व मय मय का परहन म मय मय थ । मदी
मा न मयनी म मयन मयन की एक तीनी मय मुद्र पर मरी । म
धायक मयन मय पर मय मय मय मय आर मयना मय ।

रह मय है । मरीना का अविनाम मय कुलमता है । मय अर
मयनाय की मय मय मय मय मय मय मय मय मय मय मय मय
थ । मय मय की मय मय मय मय मय मय मय मय मय मय मय
मय का मय मय मय, मय मय मरी मय व मय मय आर मय मय
का मय मय मय मय मय मय मय मय मय मय मय मय मय मय
व मय मय मय मय मय मय मय मय मय मय मय मय मय मय

घरती चली जा रही हैं। हवा का एक हल्का सा झोका कभी भी उड़-
प्रचट ज्वालाओं में बदल सकता है।

भवनों से गरीबा को सदा ही दया के स्थान पर निर्भयता, सहायता
की जगह क्रूरता मिली है। अतः वे इससे विपरीत व्यवहार की कल्पना
भी करें तो कैसे करें? इस कारण अट्टालिका से उतरी मेरी यह सहानु-
भूति उनकी दृष्टि में उनका मरसौल थी। इसमें उनका क्या दोष?
कलाल की दुकान पर त्रिकते दूध के स्थान पर अगर गारा की भ्रांति
हो जाए तो कौन सा आदचय। लगा, इन अट्टालिकाओं से सच्चा स्नेह
नहीं उभर सकता। यहाँ का दया धम, थोथे आडम्बर का मात्र प्रदर्शन
है। यह है उन युग युग से होते कार्य-कलापा का प्रभाव जो अट्टालिकाओं
की ऊँचाई से सदा होते रह रहे हैं। मैं ऊँचाई पर और यह निरीह बालक
समतल धरती में भी नीचे, गट्टे में बनी एक झोपड़ी के बानी। मेरे
और उनके बीच कितना अंतर! स्थान और स्थिति में कितनी
असमानता।

मैं अपने को रोक न सका। उनकी माँ के दूर निकलते ही मिठाई
का एक और पुडका उना बच्चा को सनेत करके उनकी ओर फका।
उ होने उसे रूपन लिया। वहाँ से वे भागे—कहीं दुबक कर लाने के
लिए। बच्चों की प्रसन्नता देख मुझे कुछ सतोष मिला।

बच्चे और उनकी झोपड़ी। मैं और यह भजन। दोनों में कितना
महान् अंतर? इस विषमता का अंत कहाँ? ज्यों ज्यों चित्तन की
गहराई में उतरता था, उलझन कुछ और बढ़ती ही जाती थी। मैं
सज्ञा शून्य-सा चित्तन में गोते रा रहा था। मंदिर और पाठशालाओं
के घण्टों ने मुझे सचेत किया। एक ओर बच्चे उठलते कूदते, पुदकते
सेलते, अपने अपने स्कूलों को जा रहे थे। दूसरी ओर लोग जल पान,
गध फूल हाथों में लिए और कुछ रिक्त हस्त भी मदिरों की ओर जाते
दिखाइ दिए।

मन ने कहा, भारत का देहधारी देव अगर कोई है तो यह जो

सूना का ढोला जा रहा है। मंदिर इनाम पाठशालाएँ जहाँ राष्ट्र का निमाण होता है। मन्दिर, मस्जिद, गिरा, गुम्बदार, गीता और कुशन, वास्तु और धर्म साधन की उत्पत्तियाँ और जनक प्रकाश में अगर इन साधनों की साधना हो गई तो हमारी पूजा साधक। हमारा जन साधक। पर क्यों? हम तो भ्रम में पड़ रहे हैं। सन्तों से निर्णय की जाए, पाप से अपान की जाए।

मेरे ऊँचाई पर! राष्ट्र की निधि और धराहर से वास्तु जमीन के तट से धर्म के चरणों में रहते हुए भी मर गए, स्नेह और महान यथा से वास्तु। मेरे अपन में सीमित, अपन स्वाध्याय के लिए! बाहर से विद्वान्ता।

पूना में जन तक गता, प्रातः से सन्ध्या जात रहे। मेरे आग कर्मा, वे समस्त जात। पुढका फरता, यह लना दा साधक हात। आज मे घर पर हूँ। दूर, बहुत दूर, उन लोगों से। नानक के समय में सन्ध्या पास है। फिर भी पूना से र साधक मरी आँखा से जाग आ जात है। आज भी पाठशाला का म विद्यया म विद्य न दे मुना का दग्गता हूँ तब रही ध्यान और उही ध्वनि गूँतली है, 'माली गाना। माली गाना पूरा गी।' और मय धाव हय हा जाग है।



वक्त आ गया

मैं मंत्री हूँ ! शानदार मेरा बँगला ! बँगले के चारों ओर कुछ एकड़ भूमि का घेरा है, छोटा सा स्विमिंग पूल है, दूब के दो सुन्दर लॉन हैं जिन्हें किनारे फूलों और पौधों से सुसज्जित हैं । कमरे अनेकों हैं मेरे बँगले में ! मेहमानों के लिए अलग 'गेस्ट हाउस' है । सेपकों के लिए अलग 'सर्वेन्स क्वार्टर' हैं । लोहे का सुरक्षित फाटक है । फाटक पर तैनात है मेरी सुरक्षा के लिए सत्री !

मैं मंत्री हूँ । जनता से चुना हुआ और उसी से डर है मेरी सरकार को । मैं मंत्री हूँ, दावित्वों से लदा, पर उससे एफ़दम घेतार ! अधिकारों और पद के नगे में चूर, म गौरवया हूँ । गव से छाती मेरी फूटी और माथा मेरा टनना है !

सबरे के छ बजे थे । मेरी कार गेरेज से अभी तफ़ नहीं आद थी । मुझे आज दौरे पर खाना होना था । जहाँ पहुँचना था, वहाँ का समय निश्चित था । मिलनेवालों की भीड के आतक से, जिनफ़ आने का समय हो चला था, मैं रचना चाहता था । डरता था कि आवागमन गुरु हुआ तो कहा व्यावहारिकता निभाने में ही समय न चला जाए । अच्छा यही समझा कि सडक के किनारे सटे होकर ही कार की राह देखू । पैदल ही निकल पडा । फाटक से बाहर जाया । सडे होने के स्थान की खोज म हा था कि एड पुराने कप्रिस्तान पर मेरी दृष्टि जा अटकी ।

पुराना कप्रिस्तान ! जो कि मेरे बँगले फ़ सामने जरा कुछ दूर था । पर जिसकी जानकारी से मैं था अब तफ़ शून्य !—दोनों में आपसी कितना बडा अन्तर है ! एक वीरान है, दूसरा आनाद ! एफ़ जट है

और मौन दूसरा घंटा है और मुग्ध। बैंगल्य बीगया है सत्ता की मदहासी आर अधिहार क अधहार म । और यह पुगता कन्निगा, उग मदहासी जीर अधहार का, जवन तं दगाण धूनि भूमिगत करता, मांन गूगता दता जीर सावधान करता पत्ता है ।—दिग् ६ वे, जा चा ६ ।

आपाने म हा मर कदम कन्निगात की जा र क रिक्ते । यहाँ साये गभी अपरिणिता, एन गाभ, एक हा रर म, एक ही बात, मर गन स कहन लग—'मगार तार है ।' माता जरा क इन शास्त्र सत्य की अनुभूति, इस जन्ता की गहराई म पैठ उठोने पाइ हा ।

इस गन्य का आंसा सार पत्ता है, मन्ता महता क मुन स मुना है । जुठ जुठ समझा भी है । पर आज हालत मरी अतीव भी । म क्षीन क गत्य की सान म गहरी दुखी लगा गया था । सहम आया था ।

म रिगाय म साया था । इमानी जैगणाइ की आगत स भग प्यात दृग । आगत की रिशा म पत्ता । सीमण से रनी कत्र—चवूतरा नुमाँ । दाता आर चवूल क छाट माट गृज आर हाड इमार । और उग कत्र पर सोया था एक इमान । कमीन और निरर पहने था । दानों ही चिथट हा रं थे । भादमी जगन था आर स्वरथ । बालों में मिट्टी मरी थी । गाली थी रती हुइ । पाँजा म न टूगी चयल थी न पत्तूने ही ।—इस पर भी यह एक बैनित्री, नि शकता आर दरच्छदता क साथ साया हुआ था ।

जैगटाइ के साथ उसने एक आर करवट बदली । प्यान से दया, चिथट हुण उसन निरर आर कमीन तल की रिफनाइ और फाटे घाँस भरे थे । चहरे पर भी जगह जगह काला रागन पैसा कुछ पुता था । जीर हाथ भी कागिय स भर थे । समझन दर नहा लगी रि वह रिखी कारगाने का मजदूर है । उसकी रिगता और गरासी मेरे पद क अहकार को नोचने लगी । मं सरमाणदार था और वह मुझसे शापित

मजदूर। मैं शासक था और वह मेरा कोपभाजन।

एक साथ कई विपरीत भावनाएँ मेरे मानस को उद्बेलित करने लगी। मजदूर और क्रांति, शोषण और विद्रोह, असमानता और समान अधिकार! कत्र पर सोता मजदूर इस शोषण के विरुद्ध प्रतिशोध की आग लिए तूफान की तरह आगे बढ़ता मुझे नजर आया। और मैं? हकूमत का नुमाद दा बन उसके आन्दोलन का दमन और हनन कर रहा था। उसका करवट म इन्कलाब के दहकते गोले और उसकी जँगटाइ में प्रतिशोध की विनगारियाँ मुझे दीर्घीं।

द्वन्द्व और द्वन्द्व! जमाना था, जब म स्वयं मजदूर आन्दोलन का अगुआ हुआ करता था। और आज मैं ही जैसे उन्हें कुचलने म सतोष मान रहा था। बाहरे मनुष्य! तेरी गलिहारी!

मजदूर ने बेचैनी क साथ, कई करवट बदल डालीं। नाद से शायद वह थक चुका था। और उठने की चेष्टा म, अलसाया और कुछ हडबडाहट म था। सोचा, यह मजदूर! यह इंसान! हमारे मुख्य की ताकत, उत्पादन का आधार, शक्ति का केन्द्र! काश! होश म आए और अपनी शक्ति की जँगटाइ ले। शोषण के विरुद्ध क्रांति की करवट बदले। फिर क्या देर लगेगी इस असमानता की धर का समतल होने में?

देखता क्या हूँ कि एका और इंसान कत्र की जोर चला जा रहा है, मुझे नफरत से देखता। वह सोये मजदूर के पास रखा हुआ। उसे थपथपाता और उसके सिर को दोना हाथा म उठाता, वह गोल,

‘उठ ना। अरे उठता क्यों नहा? अब वक्त हो गया। उठ, देख सपर हो गया।’

मैं सहमासा रखा सपर देग रहा था। ‘वक्त हो गया’ शब्दों से मुझे लगा कि जैसे मजदूर जँगटाइ और करवट लेता जाग रखा हुआ है। शोषण ने शायित की शक्ति क आगे जैसे धुटने टेक दिए हैं। मजदूर ना वक्त आ गया है, उसका सपेरा हा गया है।

हान की पों पों से मग माय-स्वप्न टूटा । तया, कार आ चुकी है और महक विनार गला है । फत्र न पास रत्न मन्त्र क कथे पर हाथ रख मन पृग, 'क्या रात है ? तुम लाग यहाँ कैसे ? यह लगता क्यों नहीं ?'

मुझसे और सराला से उतामीन-शा वह राग, 'मान न लिप । और जगह कहीं मिलती ?, माह्य ।'

'आज मज्दूरा पर नहीं जाना है क्या ?'

'जाना-जाना आज स रात है साँव । मज्दूर न स्यादक की थी । मालिक ने छँटनी कर दी । गरीबी उँन ली । मूर निगनाद क नाग लगाए थे साँव । और आज हमारा ही मुनादा है गया ।' रम्बी साँस ग्याचता वह गाल ।

'पहरे रुहो रहत थे ?' मने पृछ

'मालिक न एक कार्गीर र सी था । उसी म हम दानों छँटनी के समय कुछ पैस मित्र थे । सा जाल रात का कत्रिग्यान का मरगाना बना डाला । गन यह गान स गुनथ । अर दिन निरुल आया है यह कत्रिग्यान है । यहाँ भी मरने क रात मान का इन हाता है । जीते ली नहीं ।'

टकर मार न दानों चल लिप । म भी मानमित्र द्वद रेफर कार में आ गैग ।—न्याय की माँग । उत्तर जमान का । समानता का सिद्धांत । असमानता का व्यवहार ।—यह प्रानराचन श्रात भी मुझ कुरदता रहता है ।

बुढ़ापा और शादी

चेमर में बैठा आत्म परीक्षण में लीन कुछ लिखने की धुन में था कि मित्रवर सनसनाते कमरे में दाखिल हुए, ना अदन, ना शिष्टाचार ! बोले, 'भुना कुछ !'

पेन को गढ़ किया ! जानता था, मित्रवर जक्सर उटती दिलचस्प कहानियाँ लाया करते हैं। मोचा, आज भी कुछ वेसी ही कोइ चटनी या चाट होगी। दिन उत्साह दिलाए ही मैंने प्रछा

'क्या है ?'

'सच ! कुछ नहीं जानते ! वह बुढ़ापे में शादी करने जा रहे हैं ! लडकी भी उनके ऑफिस की ही कोइ स्टेनो है। वेसे ही डींग मारते हो कि वह तुम्हारे दोस्त हैं ! सय जगह चचा रहे ! ओर हजरत ई कि पता तय नहीं ?'—आश्चर्य में पडते मित्रवर बोले,

'जानते ही हो, अर्थे से बाहर रहा हूँ ! थोडी देर पहले ही उनका फोन था, हो सफ़ता है, इसी विषय पर मिलना और बात करना चाहते हो। साथ उनकी ओर ही मैं जा रहा हूँ !'

'अरे यार ! जरा असलियत का पता लगाना ! हम सय सचाइ जानने को उत्सुन और चिंतित हैं। तुम सय जान सकोगे। और दोस्त अगर बात में सचाइ नजर आए तो भाद को समति देना। अगर इस रास्ते से हट्या सभो तो सच, बहुत भला हो !'

'क्या क्या बात है ! आज यह उट्टी सलाह कैसी ? तुम जैसे मन 'चलों के लिए कोइ एक आरूपण नदर ता होना चाहिए ! देखो भाद ! मैं तो रास्ते में रोड़े जटमानेवाला हूँ नहीं, हमें मुल्क को पैरागिया का तो बनाना नहा है !'—मैंने बात को हल्के पुलके ढग से टालते और व्यग करते हुए कहा।

X

X

Y

मित्ररत्न मन्त्रालय की स्वर रकर आज थे, वह मर, अनन्ध
मित्रों में थे, निद्राम विभाग के एक उच्च-पदाधिकारी। पत्नी के
दरान्त का गहन रूप हा जुग थे, उन्नत पवनन रूप, कर्म भाग। मर्ग
के गुरु नगर लोथ वह मर। कमर सुका, गुरु कुठ नानागी रूप
आज थे।—

लोगों की दृष्टि में, मर वह मित्र, मन्त्रालय, नमानार और मन्त्र
कृत्यनिष्ठ थे। ज्ञान आरका दृष्टि में, वह मित्रकारी, मरुद्वय और प्रकृत
बुद्धि थे। दूसरों की उन्नत से एकत्रम उन्नत। उन्नत पुत्रों अरुपुत्रों की
चर्चा में मरत जा। जसनी प्रणम के लिए अरुत्त धर।

उन्नत मर के लोथ उन्नत प्रणम मर मुनी पटना थी। म
उन्नत थाग गलों से शर हाग आर उर मरुत्त कि मर अनन्धन हा
रग है।

आप मरुत्त था, अरुनी विरुत्त में। मानासक धमिचार आप
की भावनाओं में विरुत्त हुआ मर दीरग था। मरुत्त धमिचारों
का उन्नत नगर उन्नत मर अनन्ध मरुत्त की मरुत्त का उन्नत
मर मरुत्त उन्नत—उन्नत मर ही मरुत्त उन्नत था अरु उन्नत। पर
मरुत्त का उन्नत मरुत्त उन्नत थी।—उन्नत मरुत्त उन्नत था मरुत्त
द्विगुण न गुरु में मरुत्त उन्नत उन्नत मरुत्त उन्नत के लिए कुरु हा। म
अरुत्त उन्नत विरुत्त में, उन्नत का उन्नत उन्नत मानन के लिए उन्नत
था। पर मरुत्त का उन्नत कुरु।

अरुत्त उन्नत। मरुत्त में उन्नत। उन्नत मरुत्त में अरुत्त मित्रकारी।
द्विगुण का उन्नत उन्नत मरुत्त उन्नत उन्नत उन्नत मरुत्त। आर
अरुत्त उन्नत उन्नत मरुत्त उन्नत उन्नत।—वह क्या था, क्या नहीं,
वह मरुत्त उन्नत था, द्विगुण न गुरु। आरुत्त मरुत्त हा अरुत्त मरुत्त में
मरुत्त, नमानार और कृत्यनिष्ठ हान की अरुत्त री।

उन्नत पवनन की आरुत्त में अरुत्त उन्नत आरुत्त मरुत्त था, उन्नत विरुत्त

आम चचा का था ! पर महाशय उस जोर से एकदम बेगनर थे और अनभिज्ञ !

×

×

×

सध्या को महाशय के घर पहुँचा, जौपचारिण वातालाप म समय गुजर रहा था ! मुख्य प्रश्न को न तो ये ही छेड़ रहे थे और न म ही, दोना ही सतन थे । टेबिल पर पड़ी पुस्तक, 'स्वास्थ्य दपण' को मने उठा लिया ।

सहसा पृछा, 'ओह ! आजकल स्वास्थ्य पर अध्ययन हो रहा है ?'

'तुटुस्ती हजार न्यामत ! अच्छी किताब है, आप भी पढियेगा !'

किताब क पृष्ठा को फलटते मन पृछा, 'बच्चे का स्वास्थ्य कैसा है ?'

'बीमार रहता है । कल बुलार एन-सा तीन था, कोद देनमाल करने वाला नहा है । मैं ऑफिस रहता हूँ, वह पीछे त्रिल त्रिलाया करता है । आप जानते ही ह नौकर आपिर नौकर ही होते है !'

'देख रहा हूँ, मामीजी ये जाने से आपका जीवन जस्त-व्यस्त हो गया है, बच्चा भी बे-सहारा रह गया है । स्वास्थ्य भी आप का विगड चला है ।' मने सहानुभूति प्रकट करते कहा ।

'आप ठीक कह रहे ह । किताबें जरूर है, पर स्वास्थ्य पर इसका असर मैं नहीं होने देना । स्वास्थ्य तो ठीक ही है । म इस मार निश्चय पर पढचना चाहता हूँ । 'निणय कर ही डालना चाहता हूँ । इसी कारण आप को भी कष्ट दिया है ।'

यह कहते महाशय ने पास पड़े आइने को कुतूहलरस उठा लिया । वह बातें कर रहे थे और साथ ही टन छिर, अपना मुरतटा आइने म देखते भी जात थे । म उनने आशय का समझ चुका था । वह मुझसे अपने स्वास्थ्य का आश्वासन चाहते थे । प्रश्न लगभग स्पष्ट सामने था । और अधिक स्पष्ट करने का साहस अभी वह उठोर नहीं पा रहे थे । मुझसे शायद कुछ सुझाव चाहते थे । मैं बच रहा था । कहीं मेरी दिलचस्पी

×

×

×

मित्ररत्न चिन महाशय की गहर गहर जाण थे, वह मरु, अनय मित्रों म स थे, विज्ञान विभाग व एक उच्च-पदाधिकारी। पनि न दहान्त ना ग तीन उप ही गुजर थे, उग्र पवन उप, कद नाग। भादा न गल नगार जा थे वह मरुद। कमर धुसी, दाव कुठ ननापरी उप आन टड।—

लागों की दृष्टि में, मर यह मित्र, सत्प्राण, श्रमान्तर जीर सदा कृत्तयनिष्ठ। अपन आपका दृष्टि म, वह मित्रभारी, सहृदय वार प्रगर बुद्धि थे। दूकुर की उन्नति म एकदम उपासीन। उनर गुणों असुणा की चचा में सरश श्राग। अपनी प्रशसा न लिख अचन्त ध्यय।

उनर मुँ म जय तर उनकी प्रशसा मुत्र मुननी पढती थी। म उनकी धार्थी राजा म गार हाता जाग वह समझत कि मरा जान-बधन हा रण है।

आप सदाचार थे, अपनी विरगता म। मानसिक व्यभिचार आप की भावनाओं में विराया हुआ मर दीपना था। मैरुण व्यभिचारिया का लया जाग्या करत जय वह अपन सत्प्राण की महिमा का गगान मर सामन करत—तद मन ही मन गीज्ञ उठती थी जाग नाथ। पर सामन ता मुझ गार नना पढती थी।—उम समय एसा लगता था मानों किता न ना में म रसगुना उटाकर मुझ मरान न लिख कहा हा। मैं अपनी इस विरगता म, पृथी का अवतार न्ह मानन न लिख तैयार था। पर महाशय का सताप नहीं।

अर्द्धी वार। मर रर म जमा। गृह्य गच म अत्रत मित्रयत्री। लिगान का पेसा गोंप कर एमनगाल्य उनर निकट या महामू। और आरर उपाजन करनगाल्य था अन्यायी।—वह क्या थे, क्या नहीं, यह मर जानत थे, किंतु न नग। आपका मरैव हा वान गार म सत्प्राण, श्रमान्तर और कृत्तयनिष्ठ हान की श्रति रहा।

जय पचन की आयु म आप जिम वार ग्लर रर थे, वह विषय

जाम चबा का था । पर महाशय उठ आर से एकदम बेखर के और अनभिज्ञ !

×

Y

×

सध्या को महाशय के घर पहुँचा, औपचारिक वातालाप में समय गुजर रहा था । मुख्य प्रश्न को न तो वे ही छेद रहे थे और न मैं ही, दोनों ही सतर्क थे । टेबिल पर पड़ी पुस्तक, 'स्वास्थ्य-दपण' का मने उठा लिया ।

सहसा पृछा, 'ओह ! आजकल स्वास्थ्य पर अध्ययन हो रहा है ?'

'तु दुदस्ती हजार न्यामत ! जल्दी नितान है, आप भी पन्थिया ।'

नितान के पृष्ठों को पलटते मने पृछा, 'बच्चे का स्वास्थ्य कैसा है ?'

'बीमार रहता है । कल सुगार एर-सौ तीन था, कोइ देरमाल करने वाला नहीं है । म ऑफिस रहता हूँ, वह पीटे रिल मिलाया करता है । आप जानते ही इ नौकर आखिर नौकर ही होते हैं ।'

'देख रहा हूँ, माभीजी व जाने से आपका जीवन अस्त-व्यस्त हो गया है, रच्चा भी बे-सहारा रह गया है । स्वास्थ्य भी आप का भिगड चला है ।' मने सहानुभूति प्रकट करते कहा ।

'आप ठीक कह रहे हैं । चिंताएँ जरूर हैं, पर स्वास्थ्य पर इसका असर मैं नहीं होने देता । स्वास्थ्य तो ठीक ही है । मैं इस बार निश्चय पर पहुंचना चाहता हूँ । 'निणय कर ही डालना चाहता हूँ । इसी कारण आप को भी कप दिया है ।'

यह कहते महाशय ने पास पड़े आइने को कुतूहलेश उठा लिया । वह वारें कर रहे थे और साथ ही एक छिप, अपना मुसल आइने में देखते भी जाते थे । मैं उनसे आशय को समझ चुका था । वह मुझसे अपने स्वास्थ्य का आदरासन चाहते थे । प्रश्न लगभग सप्त सामने था । और अधिक स्पष्ट करने का साहस अभी वह नटोर नहीं पा रहे थे । मुझसे शायद कुछ सुझाव चाहते थे । मैं बच रहा था । कहा मेरी दिलचस्पी

उठ और आवाज देना न कर ? फिर भी बीच का गन्ना अनात आर प्रान का ? आर मुझ पर मन फरा

'दी, म्याग्ग्य वा जापना टिक है। 'म, मदी गिजा नहर पर हल्लकी है। क्यों नहीं किमी किम महिला का जवा की त्तत म्म व ल्लि म्म ल्लिया छण ।'

'गान चार म्म म्मता हूँ, सैट भी ल्लग हूँ, म्याग्ग्य म्म टिक है। हाँ, गिजा जम्म है। गुग्ग नहा मिल्गी। आगिर नकर नाकर ही है, गिर इन लागों पर गिरवाम भी करना नीन नहीं। आप जानत हो ह गान्गि गिरर छनक म्याग्ग्य की ह या गिररन नौकर डाग ही की गर थी ।' जगध त्तत उट वा ?

मुख्य प्रान की परिधि त्तक हम आ पदूँ व थ। पहर कीत प्ररग कर प्रान त्तत गहा या ता यर। मी गिर उठा।

'आपना यताता है म्म मामू पगन राँ व थ, जत उनका पनी गुग्गी। मन उरुतग म्मग्गया, किमी विधवा म विवाह कर लें। पर गह न मान, आप चारी उग्र गिररत्तर वप ना है। म्याग्ग्य त्तित पर त्तित गिरगा ल गहा है, गटिया पर जा पट ह। काँ त्ततमाँ करगसाल नहीं दे। म्मता ग्गया और म्मग्ग म्म किमी गुलारी है—आर आप ह वग्गहाग ।' गह्य गाय त्तत मन फटा।

'हाय हाय ! यह हाँ है ! काह म्मना नहीं जग्गा ?' आग्ग्य प्रकट करत उन्दोन म्मल्लगी जाति की।

'आर त्तुगी आर त्तित टा० म्मग्ग्य का, थ मामू थ माँ ह। अर हाँ ! आप ता उदें जानत ह। पनी गुग्गी पगन की त्तत म्म। आग्गी म्महत्तर ह। मग्गिय का टगा एक विरगा ना ? आण—! लैगा भी वर गहा हा, वग्गनाम और त्तुग्गित्त। किन्तु आप आप त्तत ही ग्ग ह, गिरर त्तन मन म यर उनकी म्मना कर गहा है। मग्ग ता गान्गि म, यह नहीं कि म्मना ग्गें ।'

विवाही कितनी म्मना करनी है ! आग्ग्य है ! म्म

औरत ने अपनी जिदगी में क्या क्या नहीं किया ! कभी-कभी रराय औरतें भी अत में अच्छी निरल आती हैं ।

आप ठीरु कहते हैं, यह बुलापे की अवस्था ढहुत रराय है ! जब तन कमाते रहिए, बेटे बेटी, पोते पोती, सगे-सम्बन्धी, सन आपने चारों ओर भँडराते रहेंगे । कमाइ बन्द तो कौन आपकी ओर देखता है ! बेटा भी है, उसकी पत्नी भी है, पर मेरे स्वास्थ्य की किसे चिंता है ! दोनों अपने-अपने में मस्त है ! जैसा रूखा रूखा मिलता है, रसा लेता हूँ तुम्हारी भामी जब थां, म वेखतर था ! आप अपने हैं, घर के हैं, इससे इतना सन कहा है, वरना किसी और के आगे तो कष्ट रराय नहा जाता !' ठटी सॉस रॉचते वह उदास हो आए और मोन कुर्सी पर पसर गए ।

प्रश्न को ररने में अर विशेष रिज्वेंशन नहा रहा था । मोन भग करते, मैन कहा

'ढहुत पहले से, आपसे मिलना चाहता था । सन्तोचरश नहीं आ पाया । मित्रता अगर सची है तो बात भी साफ साफ होनी चाहिए । क्यों ठीरु है न ?'

'जरु जरु । सकोच किस बात का । आप मेर भाइ से ज्यादा है ! मेरा बडा विश्वास है आप पर । आप नि सकोच कहें ।' आग्रह ष्वरु वह बोले ।

'आप शायद जानते हों, मेरे ढड़े भाइ साहब की पत्नी का देहान्त दो वर पूव ही हुआ है । भाद साहब सत्तावन के हैं, इस समय । कोई सतति नहीं ! वे जीवन भर कमाते रहे हैं ! खर्चे का प्रश्न नहीं । पास अच्छी पूँजी है । सयुक्त परिवार है और माँ आप इमारे जिदा हैं ! मेरा स्वार्थ, चाहता था कि मेरा लटका इनकी सपति का अधिकारी बने । भाई साहब का भी उस पर अटूट स्नह था ।—

'भामी की मृत्यु के बाद मैंने विवाह का प्रस्ताव रराया । जानता था कि जन तक धाव हरे हैं—भगवान और भक्ति, वैराग्य और प्रिक्रि,

मन्त्र ज्ञान और जीवनानुभव । यह मनचलों का जन्मग्राम है । मैं पचन में भी लिपि पढ़ता रहता हूँ और आप ही लिपि पचाने में ही अपने मनसूत्रों की चिता सजाए बैठे हैं । यह ज्ञान । तुम्हारे का सुधारण का अब भी मोड़ है सुधारण ।

यह कहते, मैं सारे ही मुख्य धर्म को उनके सामने ला पड़ा । ज्ञान, यहाँ तक जान आते उनका शरीर भी दूर हो चुका था ।

बहर पर सरिता में भीगी मुक्कल्लिपि लिपि पढ़ते, 'इसी मुक्कल्लिपि क मुक्कल्लिपि क लिपि ही मन आपका जान किया है, आचार्यनी ! अब यह दीर्घा की निद्रा मुझे रलान्त नहीं हावो । आप कुछ सुधार दीलिपि न ?'

'आप जैसे प्रतिष्ठित पुरुष क लिपि विवाह करना ही श्रेष्ठ रहता । मैं मर पास न प्रस्ताव ह । आप जाते ता उन पर भी गौर कर लें ।'

'हाँ-हाँ ! जताइए, मन भी पर उमाने का निरन्तर कर लिया है ।

मन कथित कहानी गरी । जाग, 'जाग की प्राथमिका है, पी० एच० डी० है, उम्र पैंतीस न है, जाति म वैश्य है । दूसरी एक नम है, अन्त उवन, उम्र यही पैंतीस क आस-पास । जानि ता ज्ञान । दोनों ही आपन प्रस्ताव का मरुत कर सकती हैं । आप मैसा व्यक्ति उन्हे आर जहाँ मिल सकता है ।'

'दोनों का बहुर वैसा है । मनपर पीचम कस ह ! गानगान वैसा है !'

म कुछ उल्लेखन में पना, मेरा यह नाटक ता उनक मन म ममान महिला का गहर निवादन क लिपि था । मन कहा, 'प्राथमिका का गानगान अच्छा है, पीचम अच्छ नहीं, आपस उमका मैच नहीं । नम सुन्दर है, गानगान अच्छा नहीं ।' कहते मैंने अपना पिट उठाना चाहा ।

'म ही एसा कौनसा सुन्दर हूँ । सुप्र ता सुदम्भी बगना है !'

रहकर महाशय न जान अनजान म पास गग आइन का उठा

लिया और लगे अपना चेहरा देगने । महागुप के चेहरे पर स्पष्ट छुरियाँ हैं । कमर झुकी है, दुबल शरीर है—मतलब कि यह सत्र अलामतें, अपने आपको आदने में, बूटा करार देने के लिए पयात है । पर जिस बुनापे को भविष्य की सरस झाँकी मिल गई हो, उसका जवानी के भम म बोराये रहना तो सहज स्वाभाविक है ।

मैंने टोह लेते पृच्छा, 'आपके पास भी तो कुछ प्रस्ताव हाने ?'

बोले, 'हाँ, ह । लटकी का एक भाइ इलेक्ट्रिसिटी बोर्ड का चेयरमैन है । तीन हजार पाता है और भाइ भी ऊँची तनख्वाहा पर ह । रानी है । मैं भी वैश्य हूँ । विशेष अतर नहीं । आज के जमाने में जात पॉत कौन पृच्छता है ? वह एम० ए० है, प्राध्यापिका है, शिमला में । चालीस की है, म भी तो पचास का हूँ । भाइयों का अधिक आम्रह है । वैसे तो अपनी सम्मति दे चुका हूँ, फिर भी जैसी आप राय द, करूँ ।'

मैंने मन ही मन सोचा, बुड्डे का मज बढ गया है । रास्ता उल्टा पफटा है, रास्ता टूट सफता है, बुड्डा टूटनेवाला नहा । फटे जूते और कपड़ पहने, जायज और नाजायज तरीकों से महाशय ने जो सम्रह किया है, लगा, जैसे वह बाध अर टूटना ही चाहता है ।

शिमला ! सरसता और सौन्दय का केन्द्र है ! वहाँ की प्राध्यापिका । उसका ऐसे व्यक्ति से विवाह, जिसने साधन सम्पन होते हुए भी, जीवन को नहा भोगा । बक के लॉकर खुलेंगे, चैफ बुक के पन्ने फटेंगे, तन बधु की क्या हृदय-नाति होगी ? उम्र और वृत्ति में अनवेल । आकाशा और व्यवहार म भिन्नता—इस पर शाति की चाह ! कितनी गठी प्रवचना है प्रभु ।

तमन्नाओं और आकाशाओं की पृति का प्रश्न ?—एक दिन और एक रात का नहीं, जीवन भर का । भूरी सिहनी की तरह, किसी सपन वन के छायादार वृत्र की शीतल छाह मे, वन उपवन की सुगंध में गौराए रहने की उसनी चाह और उत्कठा की पृति का शमन इस जजर काय महाशय से क्या हा सनेगा ? अतृप्ति की अनुभूति उठे

तब महाश्वर की सरसता का क्या हाल होगा ?

कसना में रहा । देगा, पतिद्वय पचात्ताप कर रहे ह । घर उ
रहा है, प्राद्वग म्म मिनों का अट्टन उना हुआ है, दासों हा रहा ह ।
घर क्या है आमाद प्रमाद का एक उमर । रैट म्म पर किसी दूसरे का
अधिकार । हृदय पर किसी दूसरे का साम्राज्य ।

घर का उमा पर गैर, न त्रिण । म महमा जोर चता ।

महाश्वर आत्मन स पुरसत पा, मुझस पा, 'आप मौन क्यों ह ।
कुठ कण्ठि न—अन क्या करना है ?'

मुँह से निकल पना, 'आपका जामनी दय रण था ।'

'क्या ? जामनी ' पर क्या ?'

'यदि विवाह म आपन र्गिनद दर जोर का ती समाज नीच म आ
बुदगा ।'

'आप तीन कहते है । लाग अमी म जग्न लग ह । चारों आर मय
बचा है ।'

'इसी से कृता हैं जद विवाह कर लण्ठि । हना का मय उर
जाएगा । चार आर म आपका मुबारकवाद अलग मिलेगी ।'

रहता म उग आर जाना चाहा ।

पा, 'दगिण । मार प्रत्य आपना करना है । त्रिन्ली बलना है
पारत में ।'

'अच्छा अच्छा ।' रह नैम-सैम मन मयमत ही । उनकी पारत म
म उनका जाना लग रहा था ।



यह अभिशाप !

‘मुख्य मंत्री ने इस्तीफा दे दिया। मुग्ध मंत्री ने ।’ अखबार बेचनेवाला चिल्लाता आगे आ गया।

मैं फुटपाथ पर खड़ा था। दिमाग में राजनीति का तूफान और एक हलचल। अखबार लेने की सार्चूनि हॉन्स दूर जा चुका था। मैं प्रदेश की राजनीति को ले तरह तरह की जटक्लें लगाता आगे बढ़ा। चौराहे पर पाया हॉन्स का झुंड। सब अपने अपने अखबार बेचने की होड़ में। पुरजोर गठे की जुल्दी से वे चील रहे थे।

‘मुख्य मंत्री ने इस्तीफा दे दिया। मुग्ध मंत्री ने इस्तीफा दे दिया।’

जेब से दम का सिक्का निकाला। देपते देपते, नह उल्ला के कइ मासुम हाथ मेरी ओर अखबार लिए आगे बढ़े। दस का सिक्का एक था। इसराय था गारह हाथों का। उनके निश्चल आग्रह से मैं झुका। एक एक प्रति सब ही से खरीदी। वह जाने लगे।

मने कहा, ‘रुको ! अभी और अखबार मुझे खरीदन ह।’ सब ठहर गए।

एक से पूछा, ‘तुम पढ़ते हो ?’

‘हाँ !’

‘किस कथा में ?’

‘पाँचवीं में।’

‘तुम्हारे बाप हैं ?’

‘जी नहीं।’

‘माँ ?’

‘हाँ, पर अभी हैं।’

‘रोन कितना जमा लेते हो ?’

‘सात जान ।’

म रूच गया बदना में । प्रदनात्तर मँहग पड़ । म दुष्टनारा चाहता था । इतने ही में एक दूसरा बालक ‘साक्षादिक हिन्दुस्तान’ आगे आता था ।

‘साहज ग्यारण्डिण, सिर्फ पचास पैस दाम ह ।’

नग पाँव । शरीर पर चिथड़ लटफ रहे थे । म इन्कार न कर सका । पृथ

‘पत्त हा ?’

‘हाँ सा’र । उग म ।’

‘नाप है ?’

‘नहीं सा’र ।’

‘कय स नहीं ?’

‘सा’र टीक नहीं पता । मुना है उ महिन का था तभी चल उस रे ।’

पैरों स जमीन गिसकी । बालक राष्ट्र का, जीग अगहाय । दग की यत् धराहर जीग सरउण नदाम्द ।

पृथ, ‘हुठ जाग नाम करत हा ?’

‘पत्ता हूँ ।’ चर स उमन मुद्रका उत्तर पकडा दिया ।

नाटक का जगार रूच का उतमान सजनीति पर एक गहरा प्रगर था । जान जनजान नर यथा न रुह ग्ग था । मच कटना ही हाता है । नात मुझ भा कृपा लगा थी । आत्मा का पैस किसी न शकझार दिया था । म जगमाद म भर गया । अपन का पैस-तैस सभालने उन सवस मन पृथ

‘तुम मय पनाग ?’

‘हा-हा-हाँ ।’ मया का एक हा जगार था ।

‘पत्कर क्या जगार ?’

कुठ चुप रहे । कुठ बोले ।

एक बोला, 'अपना राज बनाऊँगा । अपना राज ।'

'अपना राज बनाओगे !' गभीरता से मैंने प्रश्न किया, 'पर किसका राज्य ?'

'पिना घरवालों का राज ।' यह कहता वह बाल समुदाय, हँसी का कड़कड़ा मारता त्रिगर गया । और फिर वही आवाज, 'मुख्य मंत्री का इस्तीफा । मुख्य मंत्री का ।'

गालफ विगरे । चितन का कच्चा धागा वह मेरे लिए छोड़ गए । मैं उनसे भविष्य को, उनकी कल्पनाओं के अनुरूप ही उस धागे को ले बुनता रहा । समाज में पनप रही जसमानता का गीमत्स चित्रण आँखों के आगे चित्रित हो आया । ये बालक ई राष्ट्र के । और वह भा राष्ट्र के ही हैं जो वैभव के अरमानों में पलते हैं । इधर हैं जो अलवार बेच, घूट पालिश कर, अपना पेट पालते हैं । उधर हैं वह जो 'ममी' और 'पापा' के सुरभित स्नेह में झुलते हैं । इधर हैं वे जिन्हें भोजन नसीब नहीं होता । उधर वे हैं जो राने की मनुहार को दुहराते हैं । इनका और उनका निवास स्थल एक है और यह है हमारा यह राष्ट्र ! राष्ट्र किसका ? उस पर अधिहार किसका ?

प्रश्न की गुत्थी पर विचार में था कि अनेक कठों से निरलता वेदना का स्वर सुनाद दिया ।

'अरे । अरे । बेचारा कुचल गया ।'

मैं दौड़ पहुँचा । अरे यह तो वही मारुम था जिससे मैंने अभी पूछ ताठ की थी !

'पाँचवीं कक्षा । माँ है, बाप नहीं । घर है, खुराक नहा ।'

गालफ का शरीर ड्रक के हिल से बुरी तरह कुचला जा चुका था । हाथ की मुट्ठी ढँधी थी और उसमें जम्डा था अग्रगार । सुर्ग थी 'खुराक चाहिए, गालें नहीं ।'

चारों ओर जन-समूह । पुलिस । हमददी और वेदना ।—पर सर

मौत के बाद ।

दृश्य को न देख सना । लीट जाया । एक बेचना और कसक लिए ।—'खुश रह चादिए । रातें नहा ।' यह नहें देने वालों की जागत नहीं है । यह जागत है सत्य की । यह असमानता राष्ट्र का अभिजाप है । किमते उिया है कि आज सन शक्तिता के अगार पर अन्तर हा अन्तर नान्ति पापित हा गरी है । मैं भी रुभी गरीय था । एक शापटी का लडका । पर आज । मत पृथो । मत पृथो—बस !

X

X

X

उसी तिन सध्या का एक तात्तम मूझे जाना पया था । उपा मान था । नाना मिशन थे, फल थे, फल थे । उहों की भीट थी और था अपुव स्वागत । तागत था और खुशामद !

कानू जाग तागत, रसगुत्त चार इमगदी, सव और जगू सव जैस मर कान म कुन कुना स थे ।—

'तू राष्ट्र का भविष्य ग्या ग्या है । वह भविष्य जा आग उगलेगा । आर जाग, लिसम भम होंग तुझ जैस अनेकों ।'

राजनीति और दोस्ती

राजनीति !

क्या कहूँ इसे ?—हठीली, मानिनी, चूड़ी, मोहमयी ! नहीं, सबसे उपयुक्त नाम इसे लिए मन म आता है—उलनामयी ।

इसने घेरे म जानेवाले इस विरोधता मे भला कैसे आचूते रह सकते हैं ।—भावनाओं से ओत प्रोत, लेकिन रिक्त ! यह बात नहीं कि ये लोग बुद्धि सूना सं रहित होते हैं । बुद्धि की प्रसरता उनम आप पायेंगे । राजनीति के कुछ मरे दोस्त पड़ अच्छे विचारक और लेखक भी हैं । पर लगता है जैसे जिन्दगी क मम को ये रवा पैटे है ।

इनकी भाव भगिमाएँ रङ्ग बदलती रहती ह । क्षण में क्रोध, क्षण म मुस्कराहट ! क्षण म प्रीति तो क्षण म द्वेष ! अभी उदासी है, तो दूसरे ही क्षण चेहरे पर गुलारी रौनक !—दिन म कितने चोले ये बदलते हैं, कितने मुसौट्टे ये लगाते ह, कितनी ताता की चादनी इनकी जिह्वा से शरती है, कितनी तरह के आँसू इनकी आँसों में तैरते हैं—इनका हिसाब बेहिसाब है !

चेहर की रेखाआ को विभिन्न आकृतियाँ देना, राणी म उतार चलाव लाना, भावनाआ से खिलवाह करना, वचन देना और तोड़ना—इनम भला इनकी क्षमता और कौन कर सकता है ! दोनों हाथों से गेंद उछलना इन खपूनी जाता है । समय पडने पर अपने ओजपूर्ण भाषण से ये जनता को मुग्न भी करते ह ।—पर राजीगर !

देशकाल के अनुरूप अपने का ढालने म इन लोगो गजब का कमाल हासिल है ! वक्त पड़ तो सूट बूट ! ऊँची सभा हा तो चूड़ीदार पजामा, अचरन और टेनी टोपी ! कहीं मुशायरा हो तो चुनटदार-जाली का पुता और जाकट !

गहन व पर्व शक्ति म न शक्ति की गह गह । ता दूसर शक्ति
म पुगनी शक्ति की भुरि भुरि प्रथमा । उभी अत्रत भाषा का
अनगर प्रयाग । भाष्य यह कि इनके व्यक्तित्व का गह अपन म
अच्छी गार्मी पाल गिण हाता है ।

X / /

रात अभी कुछ दिन पर्व सा ही है । मर माथ एक दिन वा ही
अप्रशान्त तु गह उरना गग थी । म हतनुद्धि हा आता था । कुछ
गिगा नग गता था । चाय आर गन्ध ही गन्ध । जमीन उम गू
हन्ती ल गही थी । मित्र मन्त्री म समाचार का फल्य टर नग गी ।

मान आर उगर्भन, मान और अस्त उरत म गग था । मगसा
क्षयन एक मित्र गण, गग आतुरता म अरना गहों म उरान मुय
उरड गिया । गग गगकर उगी म गिपट गण । चूस नाम उसा मुँ
रनात, चर पर उरग-उरग उगत और उरान, नम गी कर गी
उरत अर हाटा का उरान गग

'गग गग' उर सा हा गया ? आप पर उर भुरग्य गग ।
उर उर म उर पर उरना उरन पटल, उर उरकिर्य मगन की मुग
म अरन उर गिगन गग । मन उर मोग गग किया । उर उरी
नग म उरना गग मगन हट । गग, गीग एक उर मगरी थी ।

उर मानाउर उरान और उरग की शिथि म भी उनर प्रगान
का अरगिग मुगम गिग नग मुदी था । गीगों का उर अरग म उर
पाउ उर ग, माना उरन आमुगों का गहन का भगीग्य प्रयाग
उर उर हा ।

उरिन उर क्या ? मित्र की भाग मुग म उरगण उर गग
देसा ? गग कि उरग, गगन म मरी महाग्य तगरीग ग गे ह ।
गगन ही मर ममग में आ गया । प्रयागनिद्ध उरना का उर हग,
उर मित्रर एक उर उर म उर उर मुगम अग हा गण । माना किमी
पाग उर उर म उरनेम उर उरग पाया हा । उर उर उर मन्त्री

के पास पहुँचे, जुहार कर दौत निज़ाले ।

काश, पास कैमरा होता । अनुनय विनय की विचित्र भाव भगिमाएँ । एक से एक ग़रब । मैं टुली, अपनी ही असहनीय वेदना से पीड़ित । जट ग़ना, ठिठका, भाचका सा, उननी इन कलानाजियों को देखता रह गया । हाड मॉस की इस उधम वेदना ओर स्वार्थी विनय से मैं भवसत्र हाँ आया ।

× × ×

कठोर कतय सामने थे । उहीं ने दृश्यों पर, उसी सध्या, थर पैरों, मनीजी के बंगले पर मैं जा पहुँचा था । मेरी यथा, कतय की कसौटी पर मूर रुदन कर रही थी । मशीन की मॉति हर काय सम्पन्न हो रहा था । काश ! कोइ होता जो कुछ धर्गों के लिए दम आडम्बरी राजनीति से मुझे ग़ाहर रॉच लाता और मैं चीख रो पाता ! पर किसे इतनी पुसत थी और किसे थी सच्ची सहानुभूति ! जानता था यह सत्र यथ का मेरा मानसिक प्रलाप है ।

देखता क्या हूँ, मुनह मिठे मित्रवर वहाँ भी मोनू ह । मुझे देखते ही उननी आकृति दया म टून आद । मुझे लगा, जैसे उननी दृष्टि म मैं इस समय ससार का सत्रसं जभागा, अन्विचन प्राणी हूँ । वह मेरी जोर लालायित ऐमे लपने, मारनों कोइ प्रिय वस्तु र्गो जाने के ग़ाद फिर से उन्हें मिली हो ।

फिर वही दौर । मुनह न नाटर की पुनरावृत्ति । क्या गजब की ताकत होती है इन लागा म । थोडी देर ने लिए ही सही, यह अच्छे ग़ासे नसान को हिपनोटाइज कर दते हैं । उसनी हमदर्दी लेने ओर अपनी लुगने म सोलह आने ग़र उतरते ह । एक ग़ार तो लगा कि जैसे मेरी घनीभूत पीण का ग़ोध अत्र टूटा और ग़हा । पर क्षण ग़ाद ही में रूँभाल आया । ग़धुनर चाहत थे मैं उनकी सूग्नी लाल आँखें पाँछूँ । सानवना दूँ और लूँ । अपने गम का असगी भागीदार मान, मित्र समुदाय का उइ रिरमौर घापित करूँ वरूँ ।

म पादक शुभ्र और मान, उदर गमा गला गला । गौरवा गला,
गार क्या है गोर शुभ्र क्या ? मानवा की परिधि म निराग विग कति
म न प्रशंसित करे ।

मर वर दुखत मान और दुख म बाधित गतारण म अनरा तम
युग न रग ग । अन म ही भिन्नर का लर नर मत्री खान नीग ।
मारी मगत कि । । मरी रत्ना और गलाय का गारण ला अपन उदर
उदान दा रगा था, म पर हृदय म गता, रर ताद मथा महान्य
क लुठ । अन अनर नर मरी महान्य वा प्रगता का गथर उरन
म मगत हा रर । अन का व गनकी चरग, वा मर गगत रिय म,
रही नर प्रगता क नर गगत रगा में हरा दुभ्रा था ।

म श्राहा । गरी विचाग का गि हृदय ककर म ग रग ।
कहरग म म चौरा । भिन्नर, मथा महान्य क गय हृदय विचारी क
गार म चाप गन कर रर नीगत थ । समुदर की अनकी गतों नर
ककर म हरा न मय गकरग । इनका गारर गान गारर मी
नही गारा था । म अन अनर गतालय नर ककरा का रगता
न कर गदा नर गार श्रावा ।

भिन्नर क पर में अथाभाय है । विग नर नमानगरी का गरी
ककर, अनना गता की गपट हगर पर, आधी क तिनक की भाउ उर
अजीव विनरी प्र मित्र भाव म, हृदय मार नहा नर ह । गजनीति क
मय पर प्रतिग क अनुरूप स्थान का अभाय है, विग न अपन प्रति ग
कादनी अन्याय उठाकर, मय का मगमानव की भूमि पर प्रशंसित कर
ल्ल ह । यों मय का उ, अभावों की प्रति न क्या आगानी म क
न ह ।

उग प्रम माहव्यत्र का प्रन है, रग भी हृदय का हृदय पग करन
म नरी चृष्टा । विनरी ही नर गृ, लायरी क नायरी का माउ कर
रुन ह । प्रम का भू अन पर गग गुरी उग हारी हावा दे कि ररुन

गदगद करके बोलते भी दरे गये हैं।

राजनीति में भी अधुनर निद्रामित्र और 'दुःसा' का चरित्र चित्रण करने में सफल रहे हैं। जनता के मध्य अधुनगी भाषण देने में आप माहिर हैं। भाषण होता है, प्रभाव शून्य। पर भाषा की क्लिष्टता से भर पूर। कल सस्थाओं के आप व्यवस्थापक हैं, जिनकी नीचा के पत्थर आपने रून पसीने के प्लास्टर से चिने गये हैं। आपकी कृपादृष्टि इन सस्थाओं से दृष्टी नष्ट कि वे धूल धूसरित हुए नहीं।—यह है हमारे मित्रवर की मान्यताएँ।

भाषण का आपको चम्का है। मनुहार से पगा यौता मिला तो पचास का समूह ही पाँच हजार का मजमा समझ, दिलो जिगर सब निजाल कर गये दगे। अगर ऐसा नहीं हुआ तो निजाल जन-समूह के बीच सभी की दुगति करने और अपने साथ हुए अधुनहार की चुनौती देने में भी हजरत नहीं चूकेंगे।

मित्रों की व्यथा आपने मन का आलोडित करती रहती है। दद हाथों में लिए आप फिरते हैं। सतत परिवार के आगे रोना, 'जङ्गल में राना' है, आपने निकट। व्यथा का घर में प्रदग्गन। घूरे पर लाल प्रियेरेना है।—अगरार के सथादर और फोगेप्रापस अगर मौजूद है तब की रात आप छोड़िए। तब हमारे यह मित्रवर रो रा अपना बुरा हाल कर लेंगे। रोना ररुना हमारे मित्र को आता है, एकात में नहीं, एलानिया आयोजित शोफ-सभाओं में।

मित्रवर के उड़े भाद की मृत्यु। भाद ग्याति प्राप्त सामाजिक कायकता। घर में चुनी। मच पर आप ऐसे निलस निलस रोए कि कुड न पृष्ठिये। शोफ सभाओं में हजरत उडी शाति से, अपने नाम की पुकार की प्रतीजा में रहते हैं। मेरा समझ में तो मित्रवर अपने पिता की मृत्यु पर भी गायद ही स्वाभाविक रदन से निहल हुए होंगे।

×

×

×

यह मेरे हमदद मित्र। जधेडावस्था पार कर अब अधुनगी की ओर

बढ़ गये हैं। फिर भी मनुष्य का भ्रम म है। उसी स्थिति का दृश्य, शूद्राश्रम का मनुष्य-सुमान दृश्या का मकल है—मित्र मय साक्षात् अत्र मित्र हाथ और परिवार म भी मय य ही साक्षात् ।
 * * * गिद दृश्य वार ३ हागा ।

अंग का प्रकाश जय गायर हागा, गीत की गति काफूर हागी, मन्त्र का मनुष्य जगद्वार हागा, तर अक्षर, अपनी मन्त्रिया पर य एत हाग । जोर का लग जय तर उम दिलगया मय । शू म, ३ दूर ग हा उरती कुशल मम पृष्ठ जय तात गति मन्त्रिया का पूरा परम ।

भगवान् जरे, कुटुम्ब म गायर मय प्रसार का मगल ३, वाइ मय गरी !—मय तो दास मय, दासा य मों गाय मय, गी मय, भाइ मय । पर सुता ३ यर उरक यहा का मय !

सुता म गिती ३ दुजाँ मगू ! पर यद ३ गिती है ! उगा हागा तर क्या गति हागा ३ मय मित्रर का ?—उरती कयता तर मगति करती है !—यद मय हागा उरक मगान का । गीत गतिगिती मय हागा । प्रकिया गिती का प्रम हागी ! दी ३ मय गिती मयार्थ हमय, तर योगा दूर हीग ।

मित्र की मयता गी जयनी है । भावता मय भाषा । भाषा का गत, पर भाव मय ! भाव हा तर, जय दूर का गत अपना गत हा, मय का मय जयता मय हा !—पर मित्रर मय गत मय गिती ! जापन मय गिती मय का अपनी गीत का मयत गी मयता ।

X

X

/

एक जय मित्रर का अनायास ही ग । सुता म गिती एक कुत्रिया पर दया जा ग । गायर मय मय मय मय । सुता महीना गद हा गी क एक सुत का भी मयता, उहा पर जमाइ मय लिया ।

यह कुटुम्ब दयति ! पर की गामा ! मयता मय मयता म गी

कृपापात्रों से भी अधिक उनकी देवरेल, मान-सम्मान, स्नेह और मोहकृत ।

घर के आँगन में जब कुकुर जोड़े का प्रेमालाप होता, तब मित्रवर को उनमें शकुन्तला और दुष्यन्त का मिलन दीगता ! उनके रोमास की मीठा और किल्लाला में वह आत्मनिमोर हो उठते ।

कुतिया, अपने प्रेमी पति से उदासीन हा, जब कभी घर से भाग निकलती थी । तीन चार दिन बाढ़ लहूँहान हो वह लौट आती । मित्र तब उसे ताड़ना देते और प्रणसा करते ! मिलने आनेवालों व समक्ष वह सविस्तार कुतिया का उल्लेख करते ! नोजमानों को लक्ष्य कर वह कहते कि उनकी समुचित विचार धारा से तो उनकी कुतिया कहीं अधिक प्रगतिवादी है । कुतिया ने चरित्र से उनके दानशास्त्र को ओर उनकी मान्यताओं को रत मिलता था !

आरिष परार हुद कुतिया कुशल क्षेम से तो घर लौटती नहीं थी । अपने घात्र लिए वह लोटती । उसकी मरहम पट्टी फी जाती थी और साथ ही उसके साहस की सराहना ! महिलाओं ने समझ भी मित्रवर अपनी दस कुतिया के साहस, शौर्य एवं स्वच्छन्दता का उदाहरण प्रस्तुत करने में चून नहा करते थे—समाज में फितनी ऐसी महिलाएँ हांगी जो इतना मन्त्र कर तनहा गुण्डा के गिरोह से दुटमारा पा लौट सन ? गरज कि मित्रवर के घर का कोना कोना इस मुन्नर दम्पति से आलोकित रहता था ।

कुतिया का देहावसान हुआ । मेरे पाम दास्तान पहुँचती रही । गयनाय ओर कविताआ का रचनाएँ हुई । मित्रवर आफिस न जा सन ! अनमने मे घर न कोने में बैठे रह गए ! गयन पैली ! अधीनस्थ कर्मचारी और खुरमदारा की मातमपुरसी के लिए भीड़ लगी !

×

×

×

मेरी माँ की मौत ! दादकम कर में लोटा था । घर पर सनेदना प्रकट करने आए आगन्तुकों से मैं निवृत्त रहा था ! मित्रवर ना फोन आया ।

'मुता, आपन ! लारी (जुलिया) मर गई ! मजूर हा गया जायायनी !'

'आपद इगी कारण मा फ टाह कम म आप गर्भमन्ति त हा सर ।' मां कहा

'हाँ ! जायायजी ! घर गुना हा गया है । मारका (जुला) अस्त व्यस्त है । घर फ कान-कान का टूट रहा है । उल्ला फट जीर बटना दर्शी नही जाती ।'

'भाद जान ! मरी भी सरल्ला मारार । मां ना मग हागा ता म म्यय आता !'

X

X

X

यह है मर हमल्ल ! मर भित !—अनका म म एव

भूख की ज्वाला

अकाल ! मरुस्थल व इस भाग में हर तीसरे साल, वर्षा के अभाव में, अकाल की छाया मँडराती रहती है। अब के तो सारा प्रात ही अकाल भ्रम था। गाँव व गाँव ग्याली हो रहे थे, लोग अपने-अपने मवेशियों को ले पत्तोसी प्रान्तों की ओर मुड़ पड़े थे। जिनके पास मरेसी नहीं थे, वह रोजी-रोटी की रोज में शहरों की ओर चल पड़े।—लादूराम और हुक्माराम ऐसे ही सतापितों में से थे।

आश्रयहीना का शहरों में कोई स्थान है तो गद्दी बस्तियाँ। घास घूस, टाट और टिन के जोड़ तोड़ से बने शोपड़े ! पास ही शहर की गदगी का रहाण लिया जाता, गदा नाला ! नगर के गटरों की निवेणी ! वहाँ से आनाद यह प्रस्तियाँ ! सैकड़ों को आसरा देनेवाली यह प्रस्तियाँ ! पर नगरपालिका के रजिस्ट्रियों में इनका नामोनिर्णो नहा।—

अनधिकृत जमीन पर अनधिकृत रूप से झुपी बना कर रहनेवाला, पानून की दृष्टि में मनुष्य नहा ! प्रशासन की दृष्टि में उसका कोई अस्तित्व नहीं !—हर वर्ष अनेका नए शोपड़े यहाँ बनते और उजड़ते। पर, बस्ती का स्वरूप जो सदियों से चन्ता आया है वही रहता—न सुधरता और न निगडता ही। नूफानों और शहावतों से अनेका नगर यह बस्तियाँ उजड़ी हैं। निम्नी की सडानुभूति नहा ! प्रशासन पर गहायता का कोई दायित्व नहीं !—अनेका नगर बुल लोकरों के क्रम आक्रमण से यह बस्तियाँ उजड़ी हैं लेकिन फिर देखते ही देखते यह आनाद हो आइ ह !

ऐसी ही एक प्रस्ती में हुक्माराम और लादूराम के परिवारों ने शरण ली। पहले दिन प्रस्ती के निवासियों में कुछ हडगडाहट हुद दूसरे दिन कानाफूली और कुछ आपत्ति, तीसरे दिन थोड़ी जान-पहचान और

सम्पत् । इस प्रकार दोनों भाय्यों ने आग-पाग ही, थाला गिरफ्त कर
टेग डाल और अपना अपना झुपा तैयार किया ।

रम्ली का अधिकांश जन-संग्रह दिन में गली-गली की तरंग में,
गुहर के मित्र-मित्र कान में गिरफ्त जाती, तब एक बार यहाँ नग-पन्ना,
गन्गी में सन-रन्वा की चहचहाट सुन पत्ती ता दूसरी आग-शमिया
और वृद्ध महिलाओं का चीन्कार !—दिन में यहाँ का यही जीवन है,
रात्रि अनर्थ यहाँ की प्राण-दान शक्ति है । जल्द पर उम्माद भरे गीत
और भजन ! गुहर की मन्दी में कहा नाच-झोंक ता यहाँ नाच !

X

X

X

हुक्माराज और शम्भूराज के परिवार का आज, इस रम्ली में रहते
पन्द्रह दिन होने आए थे । दोनों को कपड़े की मिल में मन्थरी मिल गई
थी, और मन्थूरा स कुछ जान-सहचान भी गयी थी, मन्थूरा और एक
दूसरे के यहाँ आना-जाना भी शुरू हो गया था । जीवन कुछ व्यस्त
सा रह निकलता था ।

रात्री ता मिली, पर गली के दोनों भाय्यों का टीका से न नसीब हा
सजा, बल्कि स धान-सर्पिल कर, उस-सैम यह अब तक निगाह-कर्म रह था ।
सँभूराज और उस पर-बन्द न-जन्मी कर्म ता-नी थी । एक-दूसरे या
ता वह था रागन-काट की आग ! शिक्कतों के राद-गगन-राद-पना,
तो भाय्यों के परिवार के छिप-ता रागन-काट !—शयन में एक-एक का
रागन ! गान-गा-चार-चार ! शराय भी बस-हाय हुआ !

साम्राज का अमान ! चार-आर-अका ! उस पर ता अनाज
था यह दना लिया-सना-सारा ने !—सुर-प्रता स अनाज आया,
कन्द्रीय प्रयत्नों से अमरिक्तन गये मिले ।—गगनिग-द्वारा उस-विराग
का-दरना हुआ ।

साम्राज की सम-सा पन्ना हा कान-कर्म सम-सा थी ! शिक्कतों की सम-
सा उससे और जटिल निकली । पन्ना ता रागन-काट-पना सुन्दर,

बन भी जाए तो दुकान से राशन प्राप्त करना दुर्लभ !—दुकान खुलने के घण्टे पहले से ही लरी-लरी बतारें, बढ़ होने तक भी वह ज्या-की ल्यों !—आदमी का पूरा दिन जाप से अलग, उस पर भी राशन मिल ही जाए, इसका काइ भरासा नहीं !

यही हाल हुआ दोनों भाइयों की पत्नियों का। भाइ दिव की मजूरी पर जाते पीछे राशन लाने की जिम्मेदारी होती केशर और देवु की। केशर हुकमाराम की स्त्री थी, तो लालूराम की पत्नी का नाम था देवु। आज तीसरा दिन था उन लोगों को राशन की क्यू में राइ होते, जैसे-जैसे वह दुकान तक पहुँचती भी थी ता भीड़ का एक धक्का फिर उइ पीछे ला पत्रता था !—

आज सुबह नौ रने से ही वह दाना क्यू में आन जुगी थीं। दो घंटे के बाद वह दुकान के नजदीक पहुँची कि क्षणभंग हो गया। सटा गला अनाज, रुपये की कीमत में चार आने का नाज मिलते देग, भीड़ उक्ते जित हो गई थी। क्यू टूटा। दरवाजा टूटा। नाज की बोरियाँ सड़क पर गिरा और लूट मची। 'सरकार मुदासाद' के नार लगे। पुलिस आइ। लाठी चार्ज हुआ। भगदड़ मची। रक्के और औरतें कुचले गए। केशर और देवु ने भी भाग अपनी जान रचाइ।

आज फाफाकशी का दिन था। न देवु के चूहे में आग जली और न केशर का झूँपी में ही धुआँ नजर आया। लालू और हुकमा ने, मजूरी से लौटने पर रक्कों को निलनिलाते और नीरियों को पाँव पसारते जमीन पर पट पाया। दोनों भाइयों ने मसले को समझा और मौन रहे। स्त्रियाँ भी चुप रहा। अपनी आर से बात को छे ना और बढाना वह नहीं चाहती थी। सुना था राशन की कुठ नद दुकान और खुल रही हैं। आया थी कि कल अनाज जरूर मिल जायेगा। सर उस भुलाव में रात काट डालना चाहत थे, एक दिन की भून से वे मरनेवाले नहा थे। चर्नी जा खुराक की जगह जलती है, आदमी का रतनी आसानी से मरने भी तो नहीं देती !

‘वहा कुएँ म दकेल दा, इस दुग से मौत तो अन्ही ।’

×

×

×

धैय की सीमा होती है, हुक्माराम भूरा रहा, पत्नी और लडल यधों को भूरा स तडपते देगजर भी उसने हिम्मत नहीं छोडी, पर इस टेस को वह न सह पाया । धैय और विवेक दोनों अस्त हो जाए । मस्तिष्क का सतुल्यन रिगडा, वह मौन, निस्तब्ध ग्यडा रह गया मानों जीती लाश हो ।

यह इस अँरियारे का पार रगन का रास्ता हँल रहा था । रास्ता कैसा ? भूरा प्यास को तुसान का नहीं, रल्लि इसरी ज्वाला स सदा सदा स लिष्ट छुटकारा पा लेन ना । जीवन के प्रति अविश्वास आर प्राणों के प्रति वैराग्य उसर चिन्तन का तूपान था । उसका मस्तिष्क ‘विद्युनियस’ की तरह एक ही पिचार का लारा उगल रहा था—जीवन अल्प हो या दीन, है तो वह नागवान् ही ।—शरीर नागवान् है आर मृत्यु है धुन सत्य ।—

हुक्माराम का विवेक शून्य में लोप हुआ, पिचार तनु टूटे, दृष्टि आझल हुइ । पीलदी निणय—मृत्यु शारत और उसका आलिंगन ही विपाद मुक्त ।

×

×

×

निणय ने हुक्माराम का इइ सत्म क्रिया, प्रसन्नता का आभास चेहरे पर लाते, वह पत्नी से राला, ‘क्या घरराती है री ? म सय प्रसन्न कर आया हँ । मालिक ने सय प्रसन्न कर दिया है मरिष्य में अर काइ तकलीफ नहा होगी । रचा को जगा और जल्दी रर, कुठ दूरी पर जाना है । सयना भर पेट राना मिलेगा ।’—

केसर प्रसन्न हो उठी, मानों सुपती फसल पर रपा की पीछार हुइ हो । बच्चा को जगाया, एक को क र पर, दूसर को कोर में, तीसर की अगुली पन्ड वह हुक्माराम क साथ हा ली ।

सडना और गलिया को पार ररते यह रड चले । हुक्माराम का

‘कहाँ कुँएँ में दबेले दो, इस दुख से मौत तो अच्छी ।’

×

×

×

धैय की सीमा होती है, हुकमाराम भूखा रहा, पत्नी और लड़के बच्चों को भूख से तडपते देखकर भी उसने हिम्मत नहीं छोड़ी, पर इस टेस को वह न सह पाया। धैय और विवेक दोनों अस्त हो आए। मस्तिष्क का सतुलन रिगडा, वह मौन, निस्तब्ध सदा रह गया मानों जीती लाश हो।

वह इस अधियारे को पार करने का रास्ता ढूँढ रहा था। रास्ता कैसा? भूख प्यास का उझाने का नहीं, यन्त्रिक इसका प्यास से सदा सदा के लिए छुटकारा पा लेने का। जीवन के प्रति जविश्वास और प्राणा के प्रति वैराग्य उसका चितन का तूफान था। उसका मस्तिष्क ‘विस्मयित’ की तरह एक ही विचार का लावा उगल रहा था—जीवन अल्प हो या दीर्घ, है तो वह नाशवान् ही।—शरीर नाशवान् है और मृत्यु है ध्रुव सत्य।—

हुकमाराम का विवेक शून्य में लोप हुआ, विचार तनु टूटे, दृष्टि ओसल हुई। फालादी निणय—मृत्यु शासनत और उसका आलिंगन ही विपाद मुक्त !

×

×

×

निर्णय ने हुकमाराम का द्रव सत्त्व किया, प्रसन्नता का आभास चेहरे पर लाते, वह पत्नी से बोला, ‘क्या घरराती है री? मैं सब प्रबन्ध कर आया हूँ। मालिन ने सब प्रबन्ध कर दिया है, भविष्य में अब कोई तकलीफ नहा हागी। बच्चा को जगा और जल्दी कर, कुछ दूरी पर जाना है। सबको भर पेट खाना मिलेगा।’—

धेसर प्रसन्न हा उठी, मानों मृत्यु की फसल पर खपा की गीछार हुई हो। बच्चा को जगाया, एक को कंधे पर, दूसरे को कोख में, तीसरे की अगुली पकड़ वह हुकमाराम के साथ हा ली।

सडका और गलिगा को पार करते यह सत् चले। हुकमाराम का

छार का मत था, वा अधकार और आतम मंत्र म टन म वसर व
 लिय यह अगत था, फिर भी वह उग्र लिय मंग था । उग्रम उग्र
 प्रति उग्रम म और उग्रम ।

हुंमारम व कर्म म लक्षणम थी और विराटा, ओर उगी
 यह पर वसर इ विराग व माय कर्म वदा रही थी—पीरन की
 आत्माओं म लक्षण, आत्माओं म आत्मा । गुणा एक म,
 मान्यताएँ विभिन्न । अत एव था—गत अगत म उग्रम ।

X

X

X

आध एक एक की चाल वही व रात हुंमारम का यह परिवार
 एक हारी पहाड़ी की तलहटी म पला—एक आग्रह म धिया मंगान
 उग्र का मन्त्रि म । पाम ही एक हुंम था—माय, पानी म लक्षण
 मता । हुंम व चाय और मन्त्रिया था, विम मन्त्री उग्र पानी
 की मक । हुंम का वरिष जल मंगान् शकर की वृत्त व काम
 म आता म ।

पानी और वृत्त का कुंम म उग्र म म, मानन वगन का
 थाथा आत्मान उग्र यह मन्त्रि की आर चला । हुंमारम जानता
 था कि यह उग्र उग्र-म गृह्य का अन्तिम क्षण है ! पर माना यह
 काट का हा आया था—मन्दन और इन्द्र मन्त्र ! पानी-वृत्त की
 ममता माह म मुह और मू । पीडा म रति आर परिस्थिति म बन्ता !
 जीवन की उमरी गति विधि अधकार म लन थी । मन्त्रि अपना मन्त्र
 उग्र सामन मन्त्र था—अन्त्र अधकार आर निर्माता का मन्त्र,
 विम उमना विलय अर अन्त्र था ।

मन्त्री दर रात यह लाया । कहा, 'चला, माना मन्त्र पायगा,
 जगह देग आया है, मन्त्रि म मंगान् शकर का प्रसाद है । मन्त्रि
 आज मरका यह मज्जन कर रहे है । आभा, पदल हाय-पाव था ल,
 फिर मन्त्र चलेग ।'

यह कह, उमने वसर और वृत्त का कुंम म उग्रन का मन्त्र

क्रिया । कुण्ड लगभग पचास फीट गहरा था, सब सीढियों पर सड़के एक साथ ही हाथ-पाँव धो रहे थे । हुक्मराम ने पत्नी और बच्चों को जोर से धक्का दिया और फिर स्वयं भी उनसे साथ कुण्ड में कूद पड़ा । दुख-दर्दों से दूर जा उतरने को ।

×

×

×

प्रातः काल सूर्य उदय हुआ । पटे पुजारिया ने एक पूरे लामारिस गानदान की लामा का पाना में तैरते पाया । नौन जान पाया कि इस वैष्णव-सम्पन्न मन्दिर तले किस अभाग्य परिवार ने अपनी भूरत की ज्वाल इस पवित्र कुण्ड में शत की थी ।

उधर लाश तैर रही थी और उधर भगवान् शङ्कर का शुद्धि-संस्कार हवन और मन्त्रोच्चारण के साथ हो रहा था । हवन कुण्ड में मनों घृत का हाम । पापाण मूर्ति की शुद्धि में दूध, दही, घी, शहद आदि के पञ्जामृत से स्नान । ब्रह्म भोजन में हजारों का व्यय ।

काश ! कुछ अन्न के दाने एक दिन पूर्व, इस परिवार का भी मिला पाते ।

अज्ञान और दक्षिणा

यह मयानन्द स्थान भरकर था। रागन और गुना, अनन्तन और उन्नत हुआ—किसी दिन भी आया। बीमल और कुम्भित—किंतु पवित्र। सरासी म आया और विनाश म गतिशील।

यह रहस्या का रहस्य। जा चल कर यहाँ गया, पर ता लीन और ला आया क म पर, यह म भग पर ही प्रगात् निद्रा म लान हुआ। नन्दता का यहाँ जान। चतन अचतन का यहाँ परिचान। जीवन और मृत्यु का यहाँ पहलम। प्रवचना और अन्तक का मन्वादन। पाप और पुण्य, मय और अमन्य का यहाँ परिमातन।

जीवन का यहाँ बोद्धिक स्थान। चतना म गा शक्तक का यहाँ सा रना रन्त। यहाँ का आता नती, पर मरता आना एक पुर मर। यह है न स्थान, जहाँ जीवन का जल, ममता और माह, अन्न विराम में मान है। दुःखिभाशा, दुःख और व्यवस्था का यहाँ मात स्थान। माय हा अन्तों पीनशा और लो का यह लाम मय।

एक दिन किसी अपन का ग्राहक म भी यहा आया था। अनमना मा एक और वेग था। पास हा था अशियता का लर पुना हा रती थी। हरिद्वार क लिप उनका प्रथान हाता था। मन्नामा की शक्ति क लिप, विप्र प्रथान, शब्दादि क्रिया कम लिप का म थ।

म विभीषिका क मर एक और आत्मी, लिपि और लम्प्य। अनन्तना-मा, कमकाट की सिद्धि में अमन, लिपि लिपि। म उमरी और विरगता म लय रगा था। जायु म अरन्, दुःख हाट का गगर, गाँ और विरुत चहगा, क्लाट पर माग गिर तिलक, बुद्धि गुण्य, पर म्बुद नान-मा। यह कमकाट का अशियता था। महाजालय मन्गान

का । भगवान् शकर का वह गण । मरघट का वह दब । कमकाण्ड से निवृत्त हो, वह भोजन के आसन पर बैठा । जजमान ने पत्तल और दोने सामने रखे, पानी छिड़कर उसने उह पत्रि एव शुद्ध किया ।

मैंने भोजन परोसना शुरू किया । पिड कं लिए उने चावल, पूरी मिठाइ, सन्जी आदि को परोसते, मेरे हाथ पत्तल पर टिफ़ रहे थे और उठ रहे थे । हाथा की गतिविधि न साथ साथ, उसकी कौये जैसी आँगें भी उठती था और गिरती थीं । धुधा की आतुरता से वह बेचैन था ।

परासकारी समाप्त होने पर उसने दाहिने हाथ में चावलों का टुकड़ा लेकर मुझसे पूछा, 'आर भी कुठ है जजमान ?'

मैंने कहा, 'बस महाराज ! भोजन ग्रहण करें ।'

'यजनों का उसने एक बार आतुरता से आँका । फिर क्या था । सब वस्तुआ का एक साथ जमान आर उनका निगलन !—चावल का पिड, उसमें कचोरी पुरी का जमाव, फिर दही का पुट । उँट की तरह वह जुगाली करना लगता था । वैसा बेतबर था, वह उस स्थान की त्रिपमटा से । कितना जद्धूता था वह मृत्यु कं दाह से । मानों उसको छोड शेष सब मरनेगले थे । वह तो धरा पर शाश्वत था और उमना यवसाय भी अमिट । मुँद उस भूमि पर सदा आते रहेंगे आर उसका यह धधा भी परम्परागत रीति में चलता ही रहेगा । लगता था, शुद्धता अशुद्धता, पत्रिता अपत्रिता, हित अहित के भाव, उसकी चेतना में मर चुके थे । एक अनोसी मिट्टि—यवनाय क माह और विवेक की कुण्डा से जमी !

उसकी पत्तल साफ थी, वह जुगाली कर रहा था । 'हरि ओउम्' बालकर उसने वृत्ति की शकार ली फिर एक लीग पानी पिया । हाथ धाए, गीले हाथा से मुँह और आँखों को मलते, उह रोला

'धनवान् ! पुत्रवान् ॥ आरोग्यवान् हो !'

आशीय देकर, दक्षिणा प्राप्त करने की व्यग्रता उसमें दिखाने दी । मैं उसने रग-दग से आकर्षित होकर, उसके पास तिसका । जजमान

का नाम रेगनर, २० प्रश्न हुआ। हाँ पर मुस्कान लाता, सहृदयता से रेगता, महानुभूति की ठीकी उससे आ रहा था, 'गजूजी' व ता आपका कथा पर चक्कर मुग्धा हा गण भाग्यशाली भी ५, शास्त्रानुसार त्रिधा-कर्म भी हा गया। उस तमान म क्रिसका यह मय नसीब हाता है, गजूजी।'

उत्तर में कहता ता क्या 'मृत्यु तिमका हुआ थी व आयु म अरुथ, जन्म पीठ परिवार का जन्म जन्म और गुताप म डाढ़ गण थ। जार य मन्त्रालय म जन्म जन्म मात व सम्पत्त म गुताप की भावना चाहता था।

मं अपनी व्यथा बतल करता ता निश्चय ही उसका निराशा हाती। म मान रहा, पर उसका विरुद्ध जीवन का प्रश्न मरे मतिष्क म बनलाना रहा।

अधीर हा, मन उसका प्रश्न, 'प्रश्नगत यह आपका रात दिन का धर्म है। काफी जामनी हा जाती हागी। तिनगत व्यस्त और परमान रहना पन्ता हागा ?'

शुक्लकर यह बाला, 'क्या कहा ? म व्यस्त रहता हूँ। मरतय कि मर पाम जन्त पैसा है। म माहय ! जानि व चालीस घर *। मम्मिल्लि व्यरगाय *। मरक जामर रंधे ट। मर भी साह म कबल आट तिन का आसग है।'

'लेकिन जन् आट तिन म भी ता हजार आट सा कमा लते हाग ?'

'गजूजी ! चार तिन गून निकल है। आज का तिन हाथ आया है। परसा तान चार का पाह कम हुआ था, उससे आज थोडा काम मिला है। बजार का धर्म है गजूजी ! जाल्मा भी मरती है और पैसा भी नग मिला। राप टाटा का धर्म, चल्ता है जितना चलता हूँ।'

उत्साहीनता म अपनी भावना व्यक्त कर, उसने त्रिणा व प्रश्न का फिर मन्त्र करना चाहा।

मन कहा, 'आपका चार तिन गून निकलने का पन्ता हुआ है।

अगर दो-तीन शय भी उन दिनों आ गए होते तो सौ-दो-सौ तो आप क्या ही लेते। भगवान् भी कितना दुष्ट है। देखिए न ! चार दिन की आपकी रोजी पर लात मार दी।'

मेरे 'यग को उमने पकड़ लिया, वह चाना, सट्टमा, अपमानित-सा, वह बोला, 'साहब ! आपका मतलब है कि मैं पापी हूँ ! ज्यादा लग जाता तो मुझको खुशी होती। बाबूजी ! इतना खराब आदमी नहा हूँ। ध-धा टै, इससे नैठा हूँ, मुझे भी मरना है। फिर भला क्यों किसी का अनिष्ट चाहने लगा। गैर ! आपने तो मुझे पिताच मान ही लिया।'

मेरी रात से उसे कष्ट हुआ ! होना स्वाभाविक था। जागिर वह गृहस्थ था, पत्नी हागी, बच्चे भी होंगे।

मैंने नम्रता से कहा, 'महाराज ! मेरी रात से आपको दुःख हुआ, धमा करना। ससार में गृहस्थी का भार बुरा है। संभल कर चलना होता है। आपके भी गाल-बच्चे होंगे ?'

'हाँ साहब ! दो लड़कियाँ और दो लड़के।'

'लड़के पढ़ते ह या नौकरी पर ?'

'एक ग्री० ए० में पढ़ रहा है जमान है। शादी कर दी है। दूसरा अभी छोटा है। लड़कियाँ भी पढ़ रही ह। भगवान् निराहता है बाबूजी। जमाना खोटा है, धम डम से लगा की आस्था उठती जा रही है।'

उसे दूसरे जजमानों के पाम पहुँचने की जन्दी थी। मैंने दो रुपए दक्षिणा में दिए और प्रणाम किया।

रुपए तो उसने ले लिए, सन्तोष उसे न था। निराशा से मेरी ओर देखता, वह बोला, 'साहब ! आशा तो बहुत थी। उद जजमान। बड़ा घर। बड़ा ओहदा।—फिर इतना कम ? जैसी आपकी मर्जी।'

एक रुपया और दिया उसे मताप नहीं था। मेरी आर आशा से वह देखता रहा, गला फुट नहा। मैंने दो रुपए और दिए। अब उसका पास पांच रुपए पहुँच गए थे। लेकिन वह तो अब भी असंतुष्ट था। वह ता जाने के प्रजाय और जमकर नैठ गया। और लगा मेरी आर 'यग्रता से देखने।

का काम करके, वह प्रगति हुआ। हाथ पर मुस्कान लगी, सहृदयता से लगी, गताभूति की सेना जगमगती वह राती, 'शबूली'। उता आपक कथा पर उत्तर चुली हा गण, भाग्यशाली भी थे, शाय्यातुगार विद्या-कर्म भी हा गया। 'मग जमान म । हगरी यह घर नगीर हाजा है, शबूली'।

उत्तर म रहता ना करा । मृत्यु विगरी हु थी उ आयु म अधक थे, स्तन पीउ परिवार की तन जगमगार गताप म हाड गा थे । नगर यह महाप्रादण महगम जगरी गाउ क मध्य उ म गन्ताप की भागता चाहता था ।

म जगरी यथा जग जगता जा विगत हा जगता निरागा हागी । म मान गता, पर जग विहित जीवन का प्रग मर मतिग म उल्लसता गता ।

अधीर हा, मन जग हुगा, 'महागत यह आपका रात नि का धगम है । काफी समझनी हा जाती हागी । नि-रात व्यस्त जग परमान रहना पता हागा' ।

शुभकर यह राती, 'महा रहा ? म उत रहता है । मन जग दि मर काम उता गता है । उ माहर' जति क जालीग घर है । ममिन्वि व्यरगाय है । गरक तामर ध है । मरा भी गा म क रल जात नि का जगम' ।

'जिन न जात नि म भी ता हगार हाड गा कमा उत हाग' ।

'शबूली' बार नि मुन विगत है । तात का नि हाथ आपा है । परमा तन चार ता हाड कम हुआ था, जगम जात याटा काम मिला है । वजार का धगम है शबूली । जामा भी मरती है और देगा भी नम मितता । आप जग का धगम, चल्ता है विजना चरता है ।'

जगमीना म अपनी भावना ध्यन कर, जगम जगिता क प्रगन का निर मता करना चाहता ।

मन कहा, 'आपक चार नि मुन निरल्ले का उता हुग है ।

अगर दो-तीन शव भी उन दिनों आ गए होते तो सौ-दो-सौ तो आप कमा ही लेते । भगवान् भी कितना दुःख है । देखिए न ! चार दिन की आपकी रोजी पर लात मार दी ।'

मेरे व्यग को उमने पकड़ लिया, वह चौंका, सहमा, अपमानित-सा, बह बोला, 'साहन ! आपका मतलब है कि मैं पापी हूँ । ज्यादा लाश आता तो मुझको खुशी होती । गबूजी ! इतना सारा आदमी नहीं हूँ । धन्धा है, इसमें बैठे हूँ मुझे भी मरना है । फिर भला क्यों किसी का अनिष्ट चाहने लगा । रैर ! आपने तो मुझे पिशाच मान ही लिया ।'

मेरी बात से उसे कण हुआ ! होना स्वभाविक था । आखिर वह गृहस्थ था, पत्नी होगी, बच्चे भी होंगे ।

मैंने नम्रता से कहा, 'महाराज ! मेरी बात से आपको दुःख हुआ, धमा करना । संसार में गृहस्थी का भार बुरा है । संभल कर चलना होता है । आपने भी गाल-बच्चे हाने ?'

'हाँ साहन ! दो लड़कियों और दो लड़के ।'

'लड़के पलते हैं या नीकरी पर ?'

'एक गी० ए० म पढ़ रहा है, जवान है । शादी कर दी है । दूसरा अभी छोटा है । लड़कियों भी पढ़ रही हैं । भगवान् निराहता है गबूजी । जमाना खोटा है, धम डम से लोग की आस्था उठती जा रही है ।'

उसे दूसरे जजमाना के पास पहुँचने की जल्दी थी । मैंने दो रुपए दण्डिणा में दिए और प्रणाम किया ।

रुपए तो उसने ले लिए सन्तोष उसे न था । निरपेक्ष से मेरी आर दंगता, बह बोला, 'साहन ! आशा तो बहुत थी । गड अजमान ! गडा घर । गडा ओहदा ।—फिर इतना कम ? जैसी आपकी मर्जी ।'

एक रुपया और दिया उसे सतोष नहीं था । मेरी जार आग से वह देखता रहा, बोला कुछ नहा । मैंने दो रुपए और दिए । अब उसका पास पाँच रुपए पहुँच गए थे । लेकिन वह तो अब भी असंतुष्ट था । वह तो जाने के बजाय और जमरर बैठ गया । और लगा मरा आर व्यग्रता से देखने ।

म भी उतासीनता सिमाने के लिए दूसरे कामों में व्यस्त हो गया।

मुझे अन्यमनस्य था, सम्पादित करता था, 'साहस! वीर इस अवशिष्ट भूमि पर भावन करता है और फल यहाँ का निरूप ताने का चाहता है? फिर आप मुझका ।'

बीच में ही उतासी बात का वास्तविक मन कहा, 'साहस! ताने सिमाना ता भाव मक्ति में ली जाती है। इसमें उत्साही नहीं होती फिर भी आपका भावन नहीं करना चाहता। यह शीतल का रूप और। अब ता आप प्रयत्न न ।'

उतासा था, यह महान् शीतल पत्नीम रूपों की आशा व्यक्त करता था। जो कुछ अब तक उतासा पास पहुँचा था, वह ता उतासी में रहता थी सिमाना नहीं। सरज कि वह महान् मनुष्य नहीं हो सका। कुछ मित जान की प्रतीति में, हाथ रखा, उतासा ही रहा।

म अब उतासा सीत आया था। श्रद्धालुकार सिमाना म उतासा भर कर पुरा था। उतासा स्तनी हुआ नहीं करनी थी।

मन उतासा 'यत्नार म सिद्ध कर कहा, 'साहस! अरसी बार ममा कर ता। ता उचित था, भावना में भेद किया। जागे अपनी मृत्यु म पुर म आन वसुधैतनाम म लिए जाऊँगा कि मर ताह-कम के समय आपका अस्मिन् अस्मिन् ता ली जाण ।'

म सांग क्या, नैम रिप उतासा मता। सा सिद्धुता के एक नैम उतासा एक साथ लग। यह सिद्ध उतासा मग और सागर नहीं म ताका, वह साला, 'साहस! आपका शीतलु करे। एता अनुम आप क्या साल है। मुन सिमाना नहीं च दिण। आपका मग हा।' यह कह वह उतासा नार चर दिया।

निश्चय हा कर म राना हुआ ता क्या दग्गु ह, वह महाबाह्य, चिन्ता के पास, भावन के आसन पर निर सिद्धमान थ। यहाँ म भी सिमाना की उतासा थी।

मेरे हमदर्द

काश म साधारण आदमी होता ।

मेरा भाइ, अस्पताल के कमरे में हृदय-रोग से ग्रसित !—टाककर कभी हालत म सुधार उतलाते तो कभी खतरे का सक्त दते थे ।

मैं परेशान ! मानसिक सतुलन मेरा असतुलित । फिर भी मैं अपने इस कष्ट और व्यथा का स्वयं ही पीना जौर सहना चाहता था । किसी को इसका मागीदार मैं नहा बनाना चाहता था । मैं तनहा चाहता था । पर तजहाइ मुझ मन्त्री के नसीब में कहां !

मैं भी मराज हो आया था—चलता फिरता । वेदना से दग्ध एव आगन्तुकों की थोथी हमदर्दी से परेशान ! हमदर्दी की कमी नर्हा । इस उच्च पद की यह महिमा है । निन हूँडे, निन चाहे, वह आ भेंडराते हैं—यस, जरा ज्ञान भर हो जाए आपने कष्ट का उहे । ओर इस पर मेरा भाइ भीमार और हॉस्पिटल म ।—ऐसा मौना ! और चूर जाँय तुनियाबी हमदर्त !

म भाइ की भीमारी से कम परेशान न था और तिस पर इन थोथी हमदर्दिया से मानसिक सताप और तनाव और उन्ते थे—पर क्या करता ? म एक उडा आदमी था ।

अनेकों आते, आर उनर निरथर प्रश्नों के उत्तर देने हाते मुझे । अन्दर ही अन्दर मुझे गीज आती पर बाहर से उनरी सहानुभूति के लिए धन्यवाद देता आर कष्ट के लिए आभार प्रकट करता था—एक मुस्कान के साथ हँसी दिल्लीगी भी कर लेता था । लोग कहते मुने जात, “क्या खुशानुमाँ आदमी है । आपत म भी देगो, जिंदादिली है !”

म भाइ के पास बैठ अपने स्नेह की तुष्णा को वृत करना चाहता

म भी उत्तमीनता दिखाने के लिए दूसरे कामों में व्यस्त हो गया।

मुझे अन्यमनस्क था, सम्पादित करता था, 'माह'। कौन उस अवधि में भी पर भावना करता है और जान वहाँ का निरूप दान क्या चाहता है? फिर आप मुझका ।"

शिव में ही उसकी बात का तात्पर्य मने कहा, 'परिचित'। जान परिचितता भाव भाव में दी जाती है। उसमें चरित्रकी नहीं होती फिर भी आपका भावना नहीं करना चाहता। यह लीजिए कि क्या और। अतः आप प्रसन्न हैं न।"

लगता था, वह मुझसे 'सिद्धि'संख्या की आशा लगाए रहा था। जो कुछ अब तक उससे पास पहुँचा था, वह तो उसकी महानता थी परिचित नहीं। परन्तु कि वह मुझसे मन्त्रु नग हो सका। कुछ मिल जाने का प्रतीति म, हाथ लगाए, रंग हो रहा।

मैं अब उससे स्वयं आना था। श्रद्धालुकार परिचितता में उसका भट्ट कर चुका था। उसका प्रतिनी हुनत नहीं करनी थी।

मन उससे 'वन्दन'सं चिन्तक कहा, 'मन्त्राण'। अन्तही बार क्या कर रहा। जो परिचित था, भावना में भेद किया। आगे अपनी मृत्यु में पूरे म अन्त वर्षीयतनामें में लिख जाऊँगा कि मर जाह-कम के समय आपका अधिक-सं अधिक परिचितता की जाए।"

में जाना क्या, वेस विषय उगरे गया। सा विद्युत्-जों के एक पैस उस एक साथ लग। वह सिंह उगरे मरा और कातर ननों में ताकत, वह वाला, 'मगवान् आपका गयायु करें। एसा अणुम आप क्यों जान ह। मुच परिचितता नहीं चदिण। आपका मन्त्र हा।' यह कह कर उगरे जा रहे चर दिना।

निश्चित हा लय में गाना हुआ तो क्या देखता हूँ, वह महावाह्य, चिन्तकों के पास, मान्य के धामन पर फिर विद्यमान था। वहाँ से भी दक्षिण की ओर जा रही।

मेरे हमदर्द

काश में साधारण आदमी होता ।

मेरा भाइ, अस्पताल के कमरे में हृदय-रोग से ग्रसित ।—डाक्टर कभी हालत में सुधार प्रत्याशते तो कभी गतरे का सन्त देते थे ।

मैं परेशान ! मानसिक सतुलन मेरा असतुलित । फिर भी मैं अपने इस कष्ट और व्यथा का स्वयं ही पीना और सहना चाहता था । किसी का इसका भागीदार मैं नहीं बनाना चाहता था । मैं तनहाइ चाहता था । पर तनहाइ मुझ मन्त्री ने नसीब में कहाँ !

मैं भी मरीज हो आया था—चलता फिरता । वेदना से दग्ध एवं आगन्तुकों की थापी हमदर्दों से परेशान ! हमदर्दों की कमी नहीं । इस उच्च पद की यह महिमा है । दिन होंगे, दिन चाहे, वह आ मँटायते हैं—बस, जरा जान भर हो जाए आपने कष्ट का उहँ ! और इस पर मेरा भाइ गीमार और हॉस्पिटल में ।—ऐसा माका ! और चूँ जाएँ ये टुनियारी हमदर्द !

मैं भाइ की गीमारी से कम परेशान न था और तिस पर इन धोधी हमदर्दियों से मानसिक मताप और तनाव और उदते थे—पर क्या करता ! मैं एक बड़ा आदमी था ।

अनेकों आते, और उनका निरर्थक प्रश्न व उत्तर दिन होते मुझ ! अन्दर ही अन्दर मुझ गीज आती पर बाहर से उनकी सटानुभूति न लिए धन्यवाद देता और कष्ट के लिए आभार प्रकट करता था—एक मुस्कान के साथ हँसी दिस्लगी भी कर लेता था ! लोग कहते मुने जाते, “क्या सुदानुमों आदमी है । आफत में भी देगो, निदादिली है !”

मैं भाइ के पास बैठ अपने स्नेह की तुष्णा को तृप्त करना चाहता

एक श्रद्धांजलि ।

म तय मात पर कविता पर रहा है । तू न मायम करों म यहाँ
 थाया ' क्यों तय जम हुआ ? कहा तू भ्रष्टा रहा ' आर क्यों आज
 अचानक ही मात पर मर में तू आन फसा ' तू ' जिसे कमी जीवन
 में प्रति नही मिली, चैन नया नर्माय हुआ ' म आन तर शय ही
 माथी में तय आत्मा की गान्ति क लिपि हुआँ माग रहा है । तू मात
 का पाप । आनामन क चर म तया भक्ति हा । म तर यय का
 श्रद्धांजलि कर तरि मृत्युति की कामना में गीता पाठ कर रहा है ।

तू यय तक जीवित रहा, तय आर मय पर मृत्यु तुझ रागी न
 सका । न समय ही । भात में तुझ गति मिली और जीवन में दुःखार '
 तर यय का मिथी मयानुभाव तर प्राणों का मिथी अस्तना ।

तू भूया-व्यासा, नगा, अणक, गय और मय अपनी आर्षी म
 अणाल नगर क चायन का तीथभारा का निकटा था । न गीम का
 गण किना तून आर न गम का ' तय कारा यय इस चायड तक
 ही रंग सका । तय यय आन वदसी क करन में लिपय, अपनी आयात
 पुनिसा गाल का मुना रहा है । यनी आर यय टुन ययत आर
 मि नतात है । मयि म आन आर मयि का हात इत्यान तय
 अभिनयन करन है ।

ना लान किम योगन गण में तू जमा ' और ना यन कितना
 निमम अस्तनाओं क तार में म तू मुचय ' और अन्त म हाय यय
 म चायड का अदन जीवन म गत तून मुनाया । 'म चौग' का
 अना यय भेय कर, क्या तू अममानता का गुण में मिथी गायत
 का मरन यता चाहता है ।

तू जीते जी इस जीवन का सम्मान न ले सफा, ना सहानुभूति ही ! आज तू अनन्त निद्रा में इस चौपट्टे पर पड़ा है—बख्तरिहीन, जनरित ! तेरा शव पुलिस के सरभण म है । राज्य की सम्पत्ति ! राज्य का सम्मान आज तरे चरणों म ॥

तू जिन्दा, समाज मे लड न सफा । अर मरकर तू जूझना चाहता है । देख तरे शव के पास रगे हैं—फल, दूध और भिटाइ । लगता है तू जागने वाला है । समाज का तेरी मृत्यु पर अर तर विश्वास नहा ।

दर ! आज यह तिलकधारी तरे शव को देख कितना दयाद्र हो जाया है । मत्रोच्चारण कर रहा है । राहगीर सहानुभूति म 'राम नाम' ले रहे हैं । रिभेन्न धमापलम्बी तुझे अपना-अपना पिदवास देने म व्यस्त हैं । जो तुझ जिन्दा देखना नहीं चाहते थे, आज यही तेरी सेवा क लिए तत्पर हैं । तुझ कथा देना चाहते हैं ।

तू उठना चाहता है ! तो उठ ॥ अर देख अपनी दुदशा को और हो सजग । अर गलती न होगी । तेरे साथ भेदमान न होगा । तुझ सहानुभूति मिलेगी ॥

एक बार उठ । और देख तरी मात न मुल्क म चेतना भर दी है । राष्ट्र ने समाजवाद अपनाया है ।

उठ और देख ! समाज सेरी तेरी लाश को धरे रर हैं । इधर हिन्दू ह तो उधर मुसलमान । दोना ही तरी अत्येष्टि की होट म हैं । तू 'राम' कह दे तो हिन्दू तुझे स्वग देगा । 'रहीम' बोल दे ता मुसलमान तुझे जनत दिलायगे । तू न बाला ! ता अजाम होगा मजहरी तनाय और मारफाट । लान और लाश ॥

तू तो परिचित है इस देश से । यहाँ के दया धर्म स । जिन्दा यहाँ ठोकर खाता है और मौत पर उसफा यहाँ सम्मान हाता है । अर दया धर्म के देश में जीवन का मूल्य नहीं । तू अभी रामोश पडा रह । जीवित लाशों के इस विशाल राष्ट्र म जीवन का अन्त ही अध्यात्म याद है ।

था। पर नहीं। मे एक आत्मी था। मे चाहन वाला थी, मे हम्पन
की कमी नहीं थी। एकाउ में पैर पाता तो रंग।

रात्रि न शान प्रदय म कभी-कभी म मारा करता, 'गार का
जात्मी हा म मंग था। गरम अपन घर म, सिगना हा अच्छा था।
म आरों की निर्वाह हम्पन म, एक ला मित्रा म ग्नेट की गभीरता
हा मनी थी। यह जीवन मरा क्या गिनाउड उन पर गट गया है।
जा कुठ मरा अपना था, उसका भी उम म गता जा ग्हा है—'

मरा एक मरा था। समाज का न था। पर सामाजिक हम्पनी,
मरी सिगना उन पर रू ग्नी थी। म व्यक्त था अपन चाहन वाला
का हम्पनी क मारात जीर मकार म। गहर मरा उम्पना, गहर
मरा प'।

मरा एक हम्पनी 'रू कलाकार'। गगानुभूति की साउग न गद
उह मुक्त एक जार ल जात, जीर म सिगना जाता जार मुनता उनर
मराथो का। सिमी का पदवृद्धि चादिण ता काद अपना गन्मर चाहता
है। डिमी का नाकरी चादिण ता सिमी का सिगना। जगामन म
कुठ रहल, ता गुरु हाता उनरा अपन प्रता का एक एक लम्बा
विगण। मैं थकता।

म बीमार का भाइ। काथ पर नहीं सकता था। जगिण हा नहीं
सकता था। गगानुभूति क प्रति आमार टन की परम्परा का आजात
पहुँचा नहीं सकता था। म वैम ग्ल म न रग था एक आ वासन
ता, क्योंकि टन हात थ। म अपन मन हाता, इमम उनम म
काग रता।

मरा न की दग्गव न लिण कर है। पर दग्गता कम उर इन
हम्पनी न आन आर लान क लिण ही है। उह गार का मरेत ता।
मे बढा आदमी था। मरी मयादा का मय्याजन था मरी महदयता।
उसक हात प्रदयन का मला म कैथ राउ सकता था।

इन हम्पनी म परमान हा, आगिर मन भाउ का डाकरो क

हाथों में सँपा । डाक्टर की मेरे साथ हमदर्दी थी । क्या न होती !
 मैं एक बड़ा आदमी था । एवज में उनके परिश्रम के गीत गाता ।
 दाद देता ! अपनी और बीमार की कुशल मैं इमी में देखता ।

काश ! मैं साधारण आदमा हाता । स्नेह और सहानुभूति—जो
 पाता, सब अपने असली रूप में पाता ।



के बीच विवाह होते ही हूँ। यष्णव और दार्त्तो व धीप भी सर्वत्र विवाह होते हैं। इस में कोई किसी की उपासना में बाधा नहीं डालता। धर्म जिस की भक्ति, यही उपासना की इजाजत होगी। तादातन के रस्मरिवाज जैसे चलने बाये है यसे चलेंगे। अथवा उा में धीरे धीरे परिवर्तता भी होंगे। जहाँ प्रेम है, आरामो यता ह, परस्पर आदर ह यहाँ उदारता रफती ही है। एक-दूसरे को संभालन की युक्ति हाती ही चाहिए। सवाल या तो उपासना का होगा या तान-पान का। हिन्दुओ के अदर इस का जो इलाज होगा वही आतर धर्मीय विवाहों व धीप भी होगा। मं देरता है कि कई तानदानों में षद लोग दाकाहारी और कई लोग मांसाहारी होते हैं। ऐसा भेद होते हुए भी तानदान में झगडा पैदा नहीं होता। एक-दूसरे का भावना को और वमजोरी को संभालन की तयारी होनी ही चाहिए। और ऐसी तयारी पाया भी जाता ह। चर्चा में जो बात कठिन सी मालूम होती ह, व्यवहार में उतनी कठिन नही मालूम होती। अत मेरे जसे दाकाहारी लोग मासाहारियों का बहिष्कार न करें, उन को निंदा न करें, उन को पापी न कहें अपने को श्रेष्ठ न समझें और इतनी मर्यादा संभाल कर दाकाहार की सुदरता का प्रचार करते जायें तो मुझे विश्वास है कि भारत में जा आज ह उस से दाका हार का प्रचार अधिक होगा। आज परस्पर बहिष्कार होते हुए भी मासाहार का प्रचलन बढ़ रहा ह। दाकाहारियों को प्रचार का मौका ही नही मिलता। वे अपने मन में अपनी श्रेष्ठता का अभिमान रख सकते हैं और कलियुग की बलि हारी कह कर अपनी लाचारी का समथन भी कर सकते ह।

अब सवाल आता ह भिन्नधर्मों मां बाप के सतानों के धम का। यह सवाल इतना कठिन नही ह। हम लोग अपनी आश्रम को प्रायना में सब धर्मों की प्रायनाएँ सूक्ष्मरूप में सही एक साथ चलाते ह। हम आश्रमवासी अपन को एक तरह से सबधर्मों मानते ह क्योंकि हमारे मन में सब धर्मों क प्रति एक-सा आदर ह। म लोगो से कहता हूँ कि जम स म हिंदू हूँ। हिंदू धम को न म ने छोडा ह, न छोडने की जरूरत महसूस करता हूँ। तो भी म अपने ढग का बौद्ध भी हूँ, ईसाई भी हूँ और मुसलमान भी हूँ। नास्तिका की जमातो में भी शरीक होते मुझे कठिनाई नही ह। मेरे पास किसी भी किस्म की चोरी नही ह। अपनी भूमिका साफ कर के सब के साथ घुलमिल जाते मुझ तनिक भी कठिनाई नही ह।

धर के बच्चे को सब धर्मों की जानकारी देनी चाहिए। हरएक धम की खूबी बतानी चाहिए। तामो अथवा मर्यादा जसा भी हम मानें सहानुभूति व साथ वह भी बतानी चाहिए। फिर तो बच्चे हृदय से उदार बनेंग। सब धर्मों

के प्रति उन में एक-सा आदर रहेगा और धर्म भेद के कारण सामाजिक जीवन कुण्ठित नहीं होगा ।

हिन्दू धर्म के लिए यह कोई नवीन अथवा कठिन बात नहीं है । हमारे असंख्य अवतार हुए ह, आगे भी हो सकते हैं । सब धर्म-ग्रन्थ हमारे लिए आदर-णीय ह । किसी समय हमारे धर्म में—यज्ञ में गौ की, घोड़े की और बकरे आदि की बलि चढ़ायी जाती थी । शाकाहारी लोग उसे बरदाश्त करते थे । इसी हिन्दू वृत्ति को व्यापक बना कर भारत में बसे हुए सब धर्मों को विराट् धर्म की शान्ताएँ मान कर हम सब के साथ मैत्री स्थापित कर सकते हैं । भारत का यह मिशन ह और उस के फलीभूत होने का अनुकूल समय ह । हम या तो सबधर्म समन्वय की तयारी करते जायें या बुरा धर्म कलह में फँस कर आत्महत्या की तयारी करें । बुरा कलह के लिए हमारी संस्कृति का शब्द ह, शुष्क विग्रह । शुष्क विग्रह का अर्थ होता है, बेमतलब का, नीरस और कोरा षगडा । उसे चलाने में न कोई लाभ ह, न हित । उस में दिलचस्पी नहीं होनी चाहिए ।

(१ मार्च १९६६)

विवाह-संस्था और धर्म-संस्कृति

विवाह की प्रथा और उस के नियम दुनिया के सब देशों में, धर्मों में और छोटे बड़े समाजों में पाये जाते हैं । ऐसे नियमों का इतिहास बड़ा मनोरंजक और बोधप्रद होता ही ह । कभी-कभी विवाह के नियम और रस्म रिवाज विचित्र और आश्चर्यकारक होते हैं । लेकिन विवाह के नियम भले बुरे कैस भी हो उन का पालन करने में हर एक समाज बहुत ही रूढ़िप्रस्त और आग्रही होता ह । अभी अभी इंग्लैंड के एक राजा को रूढ़ि विरुद्ध मनमाना विवाह करने के कारण अपनी राजगद्दी खोनी पड़ी ।

विवाह में अनेक दृष्टियाँ रखी जाती हैं । उन में सामाजिक छोटे-बड़े के भेद का खयाल बड़ा महत्त्व रखता ह । हिन्दुओं की स्मृतियों में वर्णान्तर विवाह मान्य थे ही । लेकिन उन दिनों माना गया था कि सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण हैं । बाद में आते हैं क्षत्रिय । उन क बाद अनेकानेक वैश्य जातियाँ थीं । और शूद्र तो सब से नीचे थे । उस के नीचे जो चाण्डाल और पतित थे वे तो समाज बाह्य थे । उच्च नीच भेद की ऐसी समाज-व्यवस्था जब तक सारा समाज स्वीकार करता ह

तब तब ही घट सकता है। अगर किसी व्यक्ति, साम्राज्य या जाति ने ऐसा व्यवस्था माना तो इनकार दिया तो समाज क्या कर सकता है? अथवा मैं समाज-व्यवस्था को तोड़ने वाले का करल भी हो सकता है। भारत का समाज इतना अग्रस्थानी या जगली नहीं था। हम लोग समाजद्रोही व्यक्ति का अपना पक्ष का महिष्वार कर के ही स तोप मानते थे।

ब्राह्मण से ले कर दूध तक चार वर्गों के समाज में जब उच्च-नीच भेद समाज-माय या तब नियम था कि ब्राह्मण चार वर्गों में से किसी भी वर्ग की कन्या के साथ विवाह कर सकता था। क्षत्रिय के लिए ब्राह्मण को छोड़ कर बाकी के तीन वर्गों की कन्या से शादी करने का अधिकार था। वश्य को ब्राह्मण और क्षत्रिय छोड़ कर बाकी के वर्गों की जातियों में विवाह करने की इजाजत थी। दूध की शादी दूधो के अन्दर ही हो सकती थी। ऐसी व्यवस्था को अनुलोम विवाह पद्धति कहते थे। निचले वर्ग या जाति के पुरुष का ऊपर के वर्ग या जाति की लड़की के साथ विवाह हुआ तो उसे प्रतिलोम कहते थे। समाज को ऐसे विवाह माय नहीं थे। तो भी जबल अगर ऐसे विवाह हुए तो उन्हें तोड़ने की बात कोई करत नहीं थे। ऐसे प्रतिलोम विवाह की प्रजा की सामाजिक स्थिति बहुत हलकी गिनी जाती थी।

अमेरिका में गोरे और काले दोनों वर्गों की प्रजा रहती है। इस में अगर गोरे पुरुष के साथ काली स्त्री का सम्बन्ध हुआ तो काली को उस में ऐतराज नहीं था। लेकिन गोरे लोग ऐसे सम्बन्ध की प्रजा को काले समाज में ही ढकल देते हैं, फिर उस प्रजा की चमड़ी चाहे जितनी सफेद क्यों न हो। यह हुई अनुलोम विवाह की बात। निग्रो मद और मारी औरत के सम्बन्ध का अमेरिकी प्रजा सहन ही नहीं करती। ऐसे मद को सामाजिक दण्ड से मार डालन का रिवाज था जिस का नाम है लिचिंग। अमेरिका में प्रतिलोम प्रजा शायद ही कही देखने को मिलेगी।

भारत में अनुलोम विवाह बहुत हुए। स्मृतिकारों ने उन की तरह तरह की जातियाँ मुकरर कर दी। उस का विस्तार स्मृतियों में पाया जाता है। इन असह्य जातियों में उच्च-नीच व्यवस्था भी मुकरर की गयी।

लेकिन निचली जातियों में स्वाभिमान जाग्रत हुआ तब अनुलोम प्रतिलोम दोनों तरह की शादियाँ समाज में अमाय हो गयी और सकडो जाति वाले हिन्दू समाज में रोटी-पवहार और बेटी-व्यवहार बड बडे हो गये। उच्च-नीच भाव को पाप जब समाज में घुसता है तब मानवता ही शायब होती है। समाज अधा बनता है और सामाजिक आत्मीयता और विशाल दडता खा बठता है।

आहारशुद्धि और बीजशुद्धि का अभिमान ले कर ऊँची जातियां ने अपना अधिकार चलाया। और बाकी की जातियों को सस्कारलोप के नाम से हीन, तुच्छ और दलित बनाया। लेकिन ऐसी दयनीय और वृष्ट की हालत में रहने की लोग क्योंकर तैयार हो जाय ? मुसलमान और ईसाई राज्यकर्ताओं के अत्याय और अत्याचार का समथन हम करना नहीं चाहते। लेकिन इस बात से इनकार हम नहीं कर सकते कि हिंदू समाज में इज्जत से और आराम से रहना मुश्किल है ऐसा देख कर, कई जातियाँ, धर्मांतर कर गयी। तो भी हिन्दू समाज ने उच्च नीच का भेद आज तक नहीं छोड़ा है। मानवमात्र की समानता भारतीय अध्यात्मशास्त्र स्वीकार करता है लेकिन समानता का अमल करने का आग्रह उस ने दिखाया नहीं। सत्तो ने असमानता का सौम्य ढग से विरोध किया लेकिन समानता का सामाजिक आन्दोलन उन की ओर से नहीं हुआ।

स्वराज्य का नाम ले कर गांधीजी ने समानता का प्रचार खूब जोरो से किया। आज भारत का राजनीतिक मानस समानता का स्वीकार करता है। आध्यात्मिक मानस समानता का समथन करता है किन्तु सामाजिक मानस पुराने पाप को छोड़ने की तयार नहीं है। अधिकांश जनता मानती है कि छोटे-बड़े का भाव और भेद हिंदू धर्म का प्राण है। रुढ़िवादी सनातनी विद्वान इस भाव की ओर जाति भेद को वैज्ञानिक मानते हैं। वैज्ञानिक परिभाषा का प्रयोग कर क इस भाव का समथन करते हैं। हिंदू सगठनवादी लोग हिंदू एकता की बात तो करते हैं किन्तु मानवमात्र की एकता का प्रचार बहुत कम करते हैं। खान-पान के नियम ढीले होने के कारण और सामाजिक आर्थिक व्यवहार में क्रांति होने के कारण जाति भेद का कोई अर्थ नहीं रहा है। तो भी शादी ब्याह में और अपने पराये के भेद में जाति भेद भजवूत ही रहा है। और यह दोष जितना हिंदुओं में है उतना ही मुसलमान और ईसाइयों में पाया जाता है। मुस्लिम, ईसाई पारसा, यहूदी प्रत्येक स्वयंपूर्ण अलग अलग जातियाँ ही हैं। जाति भेद के भले बुरे सब लक्षण इन में पाये जाते हैं।

शुरू शुरू में सुधारकों के आन्दोलन के कारण आन्तरजातीय विवाह हुए। इन में ज्यादा अनुलोम थे प्रतिलोम कम थे। अब प्रतिलोम विवाह भी होने लगे हैं।

धर्मांतर विवाह बहुत ही कम होते हैं। इन के भी अंदर उच्च-नीच भेद कसा काम करता है यह देखने लायक है।

मुसलमानों के राज्यकाळ में कई क्षत्रियां ने मुसलमानों के राज घराने में अपनी लड़कियों की शादी की। उन की राजनीतिक तरक्की हुई होगी। लेकिन

ऐसे विवाहों से समाज को बचाने के लिए हिन्दू नेताओं ने धर्मांतर विवाहों को निन्दा की। और धर्मांतर विवाहों को प्रतिलोम घोषित किया।

अब जब भारत में स्वराज्य हुआ है और हिन्दू लोग धर्मान्तर विवाह की निन्दा नहीं करते। तब कई मुसलमान और ईसाई डरने लगे हैं। वे कहते हैं कि हर एक धर्मान्तर विवाह के साथ हिन्दू समाज एक हिन्दू परिवार का पहले खोता था। क्योंकि धर्मांतर विवाह होते ही हिन्दू समाज ऐसे दम्पति को अपने समाज से बाहर फेंक देता था। अब ऐसा नहीं हो रहा है। हिन्दू मुसलमान अथवा हिन्दू ईसाई शादी हो कर भी दम्पति हिन्दू रह सकते हैं। इस लिए मिश्रविवाहों से अब हिन्दू कम डरते हैं। मुसलमान और ईसाई थोड़े थोड़े डरने लग रहे हैं। स्पष्ट है कि बोजशुद्धि का सवाल अब नहीं रहा। अपना श्रेष्ठता का (यानी अनुलोम प्रतिलोम भेद का) और समाज संस्था घटने बटने का ही सवाल मुख्य हो गया।

समन्वयवादी दृष्टि ऐसी हालत में निराग्रही रहती है। समन्वय कहता है कि मिश्र विवाह से धर्मांतर का आप्रह्न नहीं होना चाहिए। पति और पत्नी चाहे अपने-अपने धर्म में रहें इस का विरोध नहीं होना चाहिए। और बच्चों के धर्म को तो उनके बड़े बनने पर उन्हीं पर छोड़ देना चाहिए। (और आज कल के बच्चे तो कहेंगे हमें तो सब धर्म प्यारे लगते हैं और आप्रह्न किसी का नहीं। भलाई का छोड़ना नहीं। प्रगतिशील समाज को नाराज करना नहीं, ऐसे ढंग से हम रहेंगे। हम अपने को सब धर्म के प्रेमी मानते हैं इससे ज्यादा सोचने की जरूरत नहीं है।)

हमने देखा कि अफ्रिका में युरोपियन लोग अपने को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। भारतीय हिन्दू अफ्रिकन लोगों से बेटी-व्यवहार तो बया रोटी-व्यवहार भी पसन्द नहीं करते थे। बाद में युरोपियन लोगों की देखा देखा हमारे लोग अफ्रिकनों से घर पर रसोई बनवाने लगे और वे लोग भारतीय भोजन बनाने में अत्यन्त कुशल साबित हुए। बच्चों की संभाल भी अच्छी तरह कर लेते हैं। बाद भारतीय मर्दों ने अफ्रिकन स्त्रियों से सम्बन्ध रखा लेकिन शादियाँ बनाने के लिए तयार नहीं हुए।

जिस तरह अमेरिका में नीग्रो स्त्रियों के साथ गोरे लोग ग्राही के बिना केवल दारौरीक सम्बन्ध रखें तो भी नीग्रो लोग नाराज नहीं होते थे। वसा ही भारतीय लोगों के बारे में अफ्रिका में था। वहाँ की एक सभा में बाद अफ्रिकन लोगों ने मुझ से पूछा भी कि आप लोग इस तरह सम्बन्ध रखते हैं तब स्वयंज्य शौचते बहुर अपनी इस मिश्र प्रजा को अपनाकर स्वयंज्य क्यों नहीं ले जाते ?

मैंने जो जवाब दिया उस में उन्हें सन्तोष हुआ लेकिन उस का जिक्र यहां नहीं करूंगा ।

अब अनेक दश घंटे धीरे स्वतंत्र होने लगे हैं । अब उन लोगों का स्वमान जागृत हुआ है और स्वायत्त भी । अब वे कहने लगे हैं कि एशियन लोग हमारे यहाँ शादी सम्बन्ध करें हमें पसन्द नहीं है । ऐसी शादियाँ हम स्वीकार नहीं करेंगे । शादी करके अफ्रिकन नागरिकता देने वालों को कोई खास सहूलियत नहीं मिलेगी इत्यादि ।

अमेरिका में जब अफ्रिकन गलामों को मुक्ति युद्ध के बाद स्वतंत्रता मिल गयी तब उन्होंने पुरानी गुलामी याद करके गोरा के लिए खेती करना अस्वीकार किया । गोरे स्वयं खेती वहाँ तक करें ? उन लोगों ने भारत की अंगरेज सरकार से मदद लेकर भारत में मजदूर लोग खेती के लिए भेजवाये । उन की हालत गुलामी की जैसी ही रही । इन अद्ध गुलामों को हम गिरमिटिया कहते थे । इन में से अधिकतर लोग दबी हुई हिन्दूजाति के थे । हिन्दू नेता अपने दंग के लोगों को इस तरह गिरमिटिया के तौर पर विदेश भेजने को तयार हुए । इसलिए हिन्दू-धर्म और संस्कृति के बारे में अफ्रिका और अमेरिका के काले लोग में (और गोरे लोगों में भी) बहुत तुच्छता का खयाल घर कर बैठा है ।

हम ने देखा कि अमेरिका में भारतीय लोग अपने अनाथ बच्चों का पालन स्वयं न कर उन्हें ईसाइयों के सुपद करते हैं । जिन लोगों के मन में ईसाई धर्म के प्रति आदर नहीं है वैसे हिन्दू लोग अपने समाज के अनाथ बच्चों को ईसाइयों के सुपुत्र करते हैं यह सुन कर मैंने उन के लिए जो लज्जा का अनुभव किया वह कभी भूल नहीं सकता ।

(यहां एक बात भ्रम ही अपवाद रूप हो लिखे बिना रहा नहीं जाता । बहुत वर्षों की पुरानी बात है । दक्षिण भारत के एक बहुत विद्वान् धर्मन ब्राह्मण सज्जन धनानिकता की बातें करते थे । मैंने उन से जब जिक्र किया कि भारत के पिछड़े हुए हिन्दू हम से ऊब कर ईसाई धर्म स्वीकार करते हैं तब अपनी वैधानिकता सिद्ध करते वे बोले अच्छा ही होता है । हमारे समाज का इतना कचरा कम होता है । भ्रमे ही ईसाई लोग ऐसा कचरा जुटा लें । उन की वैधानिक दृष्टि स्वराज्य का चिन्तन करने को तयार नहीं थी ।)

शादियों के बारे में हमारे लोगों के आदम समय समय पर बदले हैं सही । लेकिन उस जमाने की कट्टरता उन्होंने नहीं छोड़ी । विवाह शादी एक ऐसी जबरदस्त सस्या है जिस के सामने सब धर्मों को झुकना पना है । और सब धर्मों ने इस सस्या से धार्मिक और अधार्मिक लाभ उठाया है । केवल हिन्दुओं ने लाभ

उठाने का सच्चा रास्ता क्या है इस का चिन्ता न करते हुए गच्छा लाम गीने का ही रास्ता हमें पसन्द किया है। जो हो सादियों का सवाल तभी हूँ होगा जब हम सब तमों के प्रति और सब सस्त्रियों के प्रति (विवृतियों की बात हम नहीं करते) एन भी समान इच्छत की नजर रखें और धम और शादी का सम्यग् बनाये रखने का आग्रह छोड़ दें।

जब हम लोग आहारगुडि और बीजगुडि के नाम रोगी-बेटी ध्ववहार में पट्टर ध और दूसरे लोगों को दूर रखते थे तब ऐसी कट्टरता न रखने वाला की उदारता की बदर होती थी। अब जब दुनिया के सब देग के च- लोग रोटो बेटी ध्ववहार में निराग्रहो बनन जा रह है। हरेक देग के कट्टर लोग बगी ध्ववहार क धारे में नागज हो रहे हैं, लेकिन जमाना उन के साथ नहीं ह।

हिन्दू लोगो का एक ही नियम है जान बूझ कर और मोच विचार कर किसी भी सुधार को स्वीकार नहीं करना। परिस्थितिवश जो भी भले बुरे परिवर्तन समाज में आ जाते हैं उन को प्रथम प्रथम महन करना बा- में उन का समथन करना और अपनी इस जडता और अज्ञुद्धि का समथन करन के लिए कलि प्रभाव की दलील आगे करना। जडता (इनगिया) भी तो एक जीवन धम ह। चिंतय का लगण उस में न हो। उन्नति के लिए भन्ने ही बह पोपक न हा, लेकिन प्रति छित अप्रतिछित जीवन जोने की जिन की तयारी ह वे तो जडता धम के बग हो कर ही चलेंगे। ऐस समाज को धार्मिक या सामाजिक नेतार्जा की आवश्यकता भी बहुत कम होती ह। हर एक आदमी अपना अपना नेता ह ही। पुराना समाजविज्ञान भन्ने ही कहै— सर्वे यत्र विनेतार राष्ट्र तत नाशम आप्नुयात।”

अब जिद और दुरभिमान छोड कर धमरुद्धि की बात भी पर रख कर विवाह सरया के बार में हम लोगो का मानव कल्याण की दष्टि स अध्ययनपूर्वक सोचना ही चाहिए।

(१५ नवम्बर १९६१)

गोदान की तरह क्यादान

प्रदानमपि क्याया पशुवन को नूम यत ?^१

हिन्दू सस्त्रुति में एसी च-द मा यताएँ ह जिन के प्रति लोगो में श्रद्धा आदर

१ भगवान् श्री कृष्ण करते हैं— जैसे पशु का दान किया जाता है वैसे क्याया का दान करने का रिवाज का अपना अनुमति अथवा अनुमोदन कौन देगा।

अत्यन्त होते हुए भी दोषपूर्ण होने के कारण उन का त्याग ही करना चाहिए । हिंदू जाति के सामाजिक आदर्श में आवश्यक सुधार किये बिना सामाजिक मानस की कमजोरियाँ दूर नहीं हो सकेंगी । ऐसे दोषों का थोड़ा बहुत वर्णन यहाँ करने का विचार है । इन में एक अत्यन्त लोकप्रिय और धर्ममाय विधि है, कन्यादान की ।

हिंदू समाज कन्यादान का खास बड़ा पुण्य मानता है । रिवाज के अनुसार पिता कन्या को लेकर भावी दामाद से कहता है, कि मैंने इस कन्या का आज तक पालन पोषण किया । अब गृहस्थाश्रम चलाने के लिए आप को इस कन्या का दान करता हूँ । इस दान को स्वीकार कर के मुझ पर अनुग्रह कीजिए ।

कल्पना ऐसी है कि लड़की का मालिक है पिता । अपनी चीज का दान वह चाहे जिस को कर सकता है । इसीलिए तो पुराने रिवाज के अनुसार पिता अपना कन्या को किसी बूढ़े को भी दे सकता था । और जिस को एक शादी हुई है और घर में जिस की पत्नी और बाल-बच्चे हैं ऐसे आदमी को भी पिता अपनी कन्या दे सकता था । कन्या को सम्मति लेने का सवाल था ही नहीं । कन्या तो गरीब गाय, गले में डोरी बाँध कर जिसे सौंप दी उस के घर में चली जाये ।

एक तरफ वेदमंत्र कन्या को आशीर्वाद देते हैं कि पति के घर पर सम्राज्ञी (रानी) बन कर सास और स्वसुर पर राज्य करो । 'सम्राज्ञी स्वसुरे भव सम्राज्ञी स्वश्रवा भव ।' मनु महाराज कहते हैं, 'यत्र नायस्तु पूज्यते रमन्ते तत्र देवता । जहाँ स्त्रियों को इरजत होती है उसी घर में लक्ष्मी, सरस्वती आदि देवी देवता प्रसन्नता से रहते हैं । वहाँ यह भी कहा गया है—

‘पिता रक्षति वीमारे भर्ता रक्षति यौवने ।

रक्षति स्थविरं पुत्रा न स्त्री स्वात्ममहति ॥’

वचन में लड़की की रक्षा पिता करते हैं । शादी होने पर पति रक्षक बनते हैं और बुढ़ापे में उस का अपने बच्चे के अधीन रहना पड़ता है । स्त्री के लिए आज्ञादी नहीं है । न स्त्री स्वात्ममहति । यह सारी गड़बड़ी दूर करनी चाहिए और स्त्री-पुरुष की समानता मजूर करनी चाहिए । जो भी धार्मिक विधि स्त्री के समान अधिकार में बाधक हो उसे हटाना चाहिए ।

हमारे समाज में विवाह विधि का विधान गृह्य-सूत्रों में और स्मृतियों में पाया जाता है । इन के अलावा हरक समाज में अपने खास भले-बुरे रस्म रिवाज होते हैं । कन्या का विवाह माता पिता के लिए चिन्ता का विषय होता है । खर्चा अनहद होना है । तरह-तरह के बाल्या और आपत्तियोग्य रिवाज भी प्रचलित हैं । ऐसे सारे जगल को दूर कर के शुद्ध धार्मिक विवाह विधि तयार

परों का काम गाँधीजी ने मुझे सौंपा। मैं ने महाराष्ट्र के चाई (गाँव) के एक उत्तम चरित्रवात् विद्वान् संस्कृत पण्डित नारायण गाँधी मराठे की मन्त्र ली। देश में प्रचलित विवाह विधि की पुस्तकें मँगवा ली और एक गाँस्रमाय विधि तयार की। आश्रम के अतिवासी श्री विनोयभाय नारायण गाँधी के पास ही संस्कृत सीखे थे। उन से भी मशवरा कर के विवाह विधि निश्चित कर के गाँधी जी को सौंप दी।

कन्यादान की बात मुझे पसन्द नहीं थी। इसीलिए मैं ने गाँधी में भी इस का कोई विकल्प ही या नहीं ढूँढना शुरू किया। एसा विकल्प मुझे मिला, जिसे 'समाश्रय विधि' कहते हैं। इस विधि में पिता कन्या का दान नहीं करता किन्तु विवाह के लिए पिता की अनुज्ञा लेना जरूरी माना है।

इस समाश्रय विधि में शादी करने का इच्छुक युवक कन्या के पिता के पास जाकर कहता है—घम अथ, काम इम त्रिविध पुरपाय की सिद्धि के लिए मैं गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना चाहता हूँ। घम, जय काम की प्राप्ति मैं आप की कन्या का सहारा (समाश्रय) लेने की मेरी इच्छा है।

पिता भावी दामाद की योग्यता की जाँच-पड़ताल करके दामाद की अनुज्ञा देने के पहले कहता है कि घम, जय और काम के सेवा में इसी के साथ निष्ठा रखने का वचन दे दो और कहो कि इस में कन्या का नहीं ठगूँगा इस का द्रोह नहीं करूँगा, अतिचार नहीं करूँगा, बेवफा नहीं बनूँगा।

दामाद अपनी जिम्मेवारी पहचान कर तीन दफे वचन देता है नातिचरामि, नातिचरामि, नातिचरामि। तब पिता दामाद को कन्या का पाणि ग्रहण करने की, जीवन साथी के तौर पर स्वाकार करने की अनुज्ञा (इजाजत) देता है।

कन्यादान और समाश्रय दानों प्रकार की विधि लिख कर मैं ने महात्माजी को दे दी और कहा, कि मुझे तो कन्यादान का यह तरीका भाव नहीं है। समाश्रय विधि अच्छी है।'

गाँधीजी ने दोनों विधियों का रख कर (और दानों का एक ओर रख कर) अपना ही एक विधि हिंदी में लिख कर तयार की जो गाँधीजी की किताब में दी गयी है।

उस में गाँधीजी हम से भा एक कदम आगे बढ़े हुए पाय जायेंगे।

गाँधीजी की विधि में कन्या का माँ बाप को चाई स्थान ही नहीं। एक अच्छा पुरोहित घर और कन्या की विवाह सम्बन्ध का महत्त्व और उस की पवित्रता समझाता है और दानों से एक साथ प्रतिज्ञा करवाता है। इस में पति-पत्नी की समानता का स्वीकार दोनों ओर से किया जाता है।

वर और कन्या दोनों की प्रतिज्ञा सुनने के बाद पुरोहित उपस्थित समाज के सामने घोषित करता है कि इन दोनों को विवाह के बंधन में बांध देता हूँ। तब समाज के प्रतिनिधि—उपस्थित सज्जन इस विवाह को अपनी मायता देते हैं।

अब हमारी सिफारिश है कि कन्यादान का रिवाज छोड़ कर लोग विवाह के समय या तो समाश्रय विधि से विवाह करावें, अथवा महात्मा प्रणीत विवाह विधि को माय करें।

गांधीजी की विधि में नीचे की बातें स्पष्ट रूप से आती हैं।

पति पत्नी स्वस्थ चित्त होकर समाज धर्म का स्वीकार कर समझ लें कि गृहस्थाश्रम केवल विषय सुख के लिए और भोग के लिए नहीं है। पति पत्नी धर्मभाव से त्यागभाव से और सेवाभाव से उस में प्रवेश करें। दोनों एक दूसरे के सेवाकाय में विक्षेप न डालें। लेकिन एक दूसरे की मदद करें। एक-दूसरे के प्रति मन वचन, कम से निष्ठावान रहें। अस्पृश्य माने जाने वाले लोगों के साथ रोटी-बेटी व्यवहार को विहित मानें। स्त्री पुरुष के समान अधिकार का स्वीकार करें। दम्पती (पति पत्नी) के बीच मित्र का सम्बन्ध रहे न कि दास दासी का।

एकपतिव्रत और एकपत्नीव्रत इस में आ ही जाता है। ऊपर जो समाज धर्म का जिक्र आया है उस में समय सफाई, भूमि सेवा जलाशय सेवा, वनस्पति सेवा, गौ सेवा और धार्मिक विद्याध्ययन सप्त पदों के स्थान आ जाते हैं।

यह भी ध्यान में रखने की बात है कि गांधीजी की विवाह विधि में जातिभेद, वर्णभेद और धर्मभेद बीच में नहीं आते।

हिंदू धर्म की यह भूमिका नहीं है कि हमारा धर्म ही सच्चा है और बाकी के गलत हैं। सब धर्मों के प्रति सदभाव रख कर हिंदू धर्म ने सब धर्मों का एक विश्व कुटुम्ब माना है। इसलिए दशनभेद, धर्मभेद, पायभेद आदी को नहीं रोक्ते। शादी करने वाले स्त्री-पुरुष इतना जरूर देख लें कि एक दूसरे का रहन सहन, धन कमाने का, और जीवन का आदम परस्पर अनुकूल है या नहीं।

(१ फरवरी १९६६)



स्त्री-जीवन और क्रान्ति

भविष्य काल उन का है

परिस्थिति को बठार परोक्षा में स निकला हुआ एक बग हमारे बाच रहता ह । आज लोग उसे 'अबला' के नाम से पहचानते ह । लेकिन एक समय एसा जहर आने वाला ह, जब ससार को यह मटसूस हुए बिना नही रहेगा कि आज की अबला भविष्यकाल की शक्तिस्वरूपिणी ह । उस ने आज तक बहुत कुछ तकलीफें सह कर सहानुभूति पाया ह । जीवन-कलह से कुछ हद तक मुक्त रह कर उस ने कोमल भावनाओं का विकास कर लिया ह । नम्र बन कर साम्राज्य भोगन को' कया उस को साध्य हुई ह । भविष्य काल जहर उसी का है ।

किन्तु स्त्रियो की तपस्वर्या अभी अपूण ह । उन की दृष्टि सकुचित ह । प्रेम सम्बन्ध का धोत्र भी सकुचित ह । कुछ हद तक जीवन परापीन और अति सहन की बजह स उन की वृत्तियाँ कुछ विकृत भी हुई ह । इस हकीकत को आर हमें आँखें नही मँदना ह । माता की हसियत से उन का स्थान शिक्षिकाओ के समान ह । लेकिन इस स्थान में वे अभी तक अधिक चमकती हुई नही दिखाई दे रही है । भगिनी की हसियत से पुरुषो में कोमल तेजस्विता और पवित्र पिष्टा पैदा करने का काम उहान अब तक हाथ में नही लिया ह । स्त्री की हसियत से सहर्षाणिओ के स्थान पर वे अभी तक विराजमान नही हुई ह । और कया की हसियत से उन के द्वारा परम मंगला चित्तिस्वरूपिणी आदिशक्ति का भा दशन हमें नही हो रहा ह ।

यह सब करन के लिए उन्हें नया दीक्षा लेनी चाहिए । वह खुद दीक्षा ले और ससार को गीतल त्याग का उत्साहयुक्त आत्मबलितान का पाठ दें । भविष्य काल उन का ही ह ।

(दिसम्बर १९१३)

स्त्री का स्थान

हिंदू कानून में परिवर्तन हो रहा है। इस में ज्यादातर कोई नया परिवर्तन नहीं है। हिंदू कानून में समय समय पर जो परिवर्तन हो चुका है उसी की एक सुलभ सहिष्णु बनाने के लिए हिंदू कोड बिल बनाया गया है। एकपत्नीव्रत और एक पतिव्रत का सुधार महत्त्वपूर्ण है। जो समाज के नेताओं की तरफ से करीब सौ वर्ष हुए पुरस्कृत होता आया है। हिंदू कुटुम्ब में पुत्र और पुत्री दोनों के अधिकार समान हों, यह भी उल्लेखनीय सुधार है।

जब कभी ऐसे सुधार की बात आती है तब ऋद्धिवादी होहल्ला मचाते हैं कि हिंदू धर्म और हिंदू संस्कृति पर कृठाराधात हो रहा है। सुधारवादी लोग इस का जवाब तो देते हैं लेकिन डर है कि दोनों पक्ष के लोग समाज धारणा के मूलभूत सिद्धांत क्या हैं और क्या होने चाहिए इस का आमूलाग्र विचार नहीं करते।

कुटुम्ब और समाज में स्त्री का स्थान क्या हो—यह सवाल केवल हिंदुओं के लिए नहीं केवल भारतवासियों के लिए नहीं कि तु समस्त मानवजाति के अतम जितने भी भिन्न भिन्न समाज हैं उन सब के लिए अत्यंत महत्त्व का है।

स्त्री पुरुष मिल कर के कुटुम्ब होता है। उन के सहयोग से ही प्रजाउत्पत्ति होती है। वृक्षों की मूल से केवल नौ महीने की गर्भगत परवरिश ही नहीं, केवल दूध का आहार ही नहीं किन्तु जीवन के अत्यंत महत्त्व के संस्कार भी मिलते हैं। सत्तान उत्पत्ति से लेकर समाज धारणा तक सब प्रवृत्तियों में स्त्री का हिस्सा पुरुषों से तनिक भी कम नहीं है अधिक ही होगा। ऐसा होते हुए भी व्यवहार ने कानून ने धर्मशास्त्र ने और मोक्ष शास्त्र ने भी स्त्रीजाति का स्थान गौण बनाया था। फलतः स्त्रीजाति को हर तरह के अत्याय और कठिनाइयाँ सहन करनी पडी हैं और स्त्रीजाति की ऐसी दुःस्थिति के कारण मानव जाति के हर एक समाज को भी नुकसान पहुँचा है। इस लिए कुटुम्ब में और समाज में स्त्रियों का स्थान और अधिकार कसा होना चाहिए इस बार में अब नये सिरे से सोचने का अवसर आया है।

वेदा न कहना है कि स्त्री पुरुष दोनों के हृदय में एक ही आत्मा का वास है। आत्मिक दृष्टि से देखा जाये तो दोनों में तनिक भी भेद नहीं है।

एन्य की दृष्टि में—माताओं की उत्कृष्टता की दृष्टि में ऐसा जाये तो स्त्रियों का विकास पुण्यों की ओर अभिजात हुआ है।

मातृ-वत्सल्य के विनाश का दृष्टि में मोता के साथ हम तुलना नहीं कर सकते। इस विषय में अत्यन्त दृष्टि में मातृ-पिता की मोता ही स्त्री-जाति का कम मिला है। लेकिन जय-जय कुछ मोता मिला है तब ही जाति ने समाहृत की दृष्टि ही प्रमाण रगी है।

भारत का पिता की वय का इतिहास हम देखें तो जातिवाद और सम्पत्तिवाद का उदर स्थिति में कम पाया गया है। कुछ भा हो हमारे राष्ट्र न अब निराश्रित है कि स्त्री और पुण्य का दरजा हर मान में समान होना चाहिए।

पितृ सम्पत्ति का कुछ हिस्सा अगर लड़की से जायगी तो हर एक बहू अपने पिता का कुछ हिस्सा अपने पति के यहाँ भी ले आयेगी।

स्त्रियों के लिए पर दो विशेष भार हैं—गर्भधारण का और बच्चों की गारीरिष मातृ-पिता और आध्यात्मिक परिवर्तन के लिए घर चलाने का। गृहस्थाश्रम का आधार ही पुण्य की अपेक्षा स्त्री पर अधिक है।

अगर धर्म विभाग का तत्त्व माना जाये तो समाने का सर्वाधिकार मले हा पुरुष अपने हाथ में रने कि तु घर की सम्पत्ति को सभालने का और गृहस्थाश्रम के आदर्शों के अनुसार कौटुम्बिक सम्पत्ति को व्यय करने का अधिकार स्त्रियों का होना चाहिए।

अगर लड़कियाँ की शिक्षा का प्रबंध अलग करने की सोचा जाये तो लड़कियों के अभ्यास क्रम में हिमाश्रित लिपि का और दार्शनिक अज्ञान-पत्रक (बजट) बनाने का विषय उस में उल्लेख होना चाहिए। कुटुम्ब व्यवस्था सुदूर ढग से चलाने का शास्त्र केवल मोता की दृष्टि से नहीं लेकिन कुटुम्ब के और समाज के विकास की दृष्टि से सिखाया चाहिए।

समाज रचना के मूलभूत सिद्धान्त और राज्यतंत्र के बुनियादी सिद्धान्त भी लड़कियों की आश्रयक रूप से पढ़ाना चाहिए। यन्त्रित तथा सामाजिक मानस शास्त्र भी स्त्री शिक्षा का एक आवश्यक अंग हो।

बच्चों की परिवर्तन के साथ आरोग्य शास्त्र भी लड़कियों के शिक्षा-क्रम में रहना चाहिए।

इस बताया जाता है कि अगर स्त्रियों की पुण्या के समान पूरी पूरी शिक्षा दी जाये उन्हें पैतृ सम्पत्ति का समान अधिकार मिल जाये और साथ साथ विवाह विच्छेद और पुनर्विवाह का रास्ता आसान किया जाये तो विवाह संस्था

ढोली हो जायेगी, सामाजिक सदगुणा का अच्छा विकास नहीं होगा और सभृति खतरे में पड जायेगी ।

यह डर ध्यय ह । मनुष्य स्वभाव में जो अच्छे तत्व दढमूल हैं उन के प्रति जिन के मन में नास्तिकता है वे ही ऐसा डर मन म ला सकते ह ।

पूण स्वातन्त्र्य के साथ जो सदगुण निभ सङ्गने ह वे ही सच्चे सदगुण हैं । जबरदस्ती लादे हुए सदगुण मनुष्य के विकास में मदद नहीं कर सकते ।

मानव जाति ने आज तक जो सांस्कृतिक विकास क्रिया ह वह स्वतन्त्रता के वायुमण्डल में ही क्रिया ह ।

इस लिए समाज में स्त्रियो का अधिकार पुरुषो म तनिक भी कम नहीं होना चाहिए । अगर भेद करना ही है तो स्त्रियो को हम कुछ ज्यादा अधिकार दे सकते ह क्योंकि मानवता का दोह पुरुषा की अपना स्त्रियो ने कम किया है ।

स्त्रियो की जो कमजोरियाँ बतायी जाती ह वे सही भी हों तब भी विकास के लिए पूरा अवकाश मिलते ही वे आसानो से दूर हो जायेंगी । स्त्रियो के जो दोष या कमजोरियाँ बतायी जाती हैं उन में स एक भी स्वभावगत नहीं है । परिस्थिति के कारण ही वे दोष आते हैं । और ऐसे दोष वसी परिस्थितियों में पुरुषो में कम नहीं आते ।

(दिसम्बर १९१६)

स्त्री जाति का पिछडापन

भारत सरकार ने एक कमिशन नियुक्त कर के उसे आदेश दिया कि हरिजन (अछूत) और गिरिजन (पहाडी और दूसरे आदिवासी) के अलावा दूसरी कौन कौन सी जातियाँ या बग शिक्षा की दृष्टि से और सामाजिक हसियत से पिछडी हुई मानी जायें । उस का कुछ मानदण्ड बनाया जाये और ऐसी जातियो की और बर्गों की एक फेहरिस्त बनायी जाये । इस कमिशन की नियुक्ति के पहले भिन्न भिन्न राज्यों की सरकारो की मदद स भारत सरकार ने अपनी एक कामचलाऊ फेहरिस्त प्रकाशित की ही थी और उस के मुताबिक उन जातियो को मदद देना शुरू भी किया था जो आज भी चालू ह । यह फेहरिस्त जाति के आधार पर बनायी हुई ह । स्वाभाविक था कि कमिशन ने अपनी फेहरिस्त भी जाति के आधार पर बनायी ।

लेकिन भारत सरकार को और बहिष्त की जातिभेद मिटाना है। इस लिए भारत सरकार ने पाहा था कि कमिशन अपनी फेहरिस्त जाति के आधार पर न बनाय। आर्थिक आधार पर फेहरिस्त न बनाने का भी दुरु से आशय था। जसा हो सता कमिशन ने अपनी रिपोर्ट दे दो। और फेहरिस्त भी बाहर ले दो। फेहरिस्त में अना जातियों के नाम दिये ह। लेकिन उन में स्त्रीजाति का सुमार नहीं किया ह। गिफ अपनी रिपोर्ट में कमिशन न कहा ह कि स्त्री जाति का पिछडो हुई समय पर उसे इस तरह मदद और प्रोत्साहा देना चाहिए।

कमिशन के अध्यक्ष की हमियत से मन कुछ गुणाव वेग किये है और पिछडे और न पिछड की पहचान के लिए कुछ सिद्धांत बनाय है। उस में भी मैने बताया ह कि नारी जाति को पिछडा वग समझना चाहिए और उन में से जिन की माली हालत खराब ह उन्हें खास मदद देनी चाहिए।

भारत सरकार न इस बात पर आश्चय प्रकट किया ह कि हम ने स्त्रीजाति को पिछडे वग में सुमार किया ह। यह तो ठीक लेकिन मेर परिचय की दो महिलाओं ने, जो मेर लिए लड़की के समान है मेरे पास शिक्षायन की ह कि 'बाकासाहब आपने हम लोगों को पिछडे वग में सुमार किया। लोगों में हमारी हसी होती ह।' एक न कहा कि, अच्छा पिछड वग में सुमार होकर हमें कोई अच्छी मदद मिठे तो गनीमत।'

इस तरह जब स्त्री जाति की ओर सही आश्चय प्रकट हो रहा ह तब मुझे अपनी दृष्टि दग के सामने फिर से रखनी चाहिए।

जब मैं स्त्रीजाति का विचार करता हूँ तब ओरो की तरह मेर मन में केवल मध्यम वग की मिलाएँ नहीं आती जिन की माली हालत अच्छी ह। जो कुछ पढी लिखी भी ह। अपने बच्चों को अच्छे सस्कार देती ह। बड़ी गृही से अपने अपने घर चलाती ह और समाओ को शोभा बढाती ह। ऐसा की सख्या ह कितनी? और क्या इस छोटे से वग में भी कुछ न कुछ पिछडापन नहीं ह? पार्लियामेंट में ही देखिए। जहाँ प्रजा के सात आठ सौ नुमाइदे बठते ह वहाँ स्त्रियों की सख्या कितनी ह? एक सख्या के अनुपात से देना जाय तो स्त्रिया की सख्या कम से कम आधी होनी ही चाहिए। आज उन की सरया फौसदी दस की भी नहीं ह। जिस तरह हरिजन गिरिजन और कुछ अल्पसंख्यक वग की खास चिन्ता रख कर उन्हें पार्लिय मेंट में स्थान दिया जाता ह उसी तरह अब की बार काँग्रेस न निश्चय किया ह कि अगले चुनाव में जहाँ तक हो सके स्त्रिया को अधिक स्थान दिये जायें। श्री जवाहरलालजी ने जब इस बात की ताईद की तब हसते हुए उन्होंने कहा कि शुरू शुरू में स्त्री सदस्याएँ षगडा करेंगी

त्रिगड बठेंगी। वह सब हम बरदाश्त करना होगा। आगे जाकर परिस्थिति मूघर जायेगी।

इस से यही साबित होता है कि उच्चवर्गीय पढी हुई स्त्रियां भी चन्द बातों में पिछडी हुई ही हैं।

हरिजनो को पिछडी हुई जाति कहते वकत हम जानते हैं कि उन की जाति में भी बडे बडे सात हुए हैं और आज डा० अम्बेडकर और जगजीवनराम जैसे राष्ट्रता उस जाति में हैं। मूढो भर लागो की प्रगति पर से हम किसी जाति को उन्नत जाति नहीं कह सकते।

भारत की जनगणना की पचास साल की रिपोर्टें देख लीजिए और शिक्षा का प्रमाण पुरुषों में कितना है और स्त्रियों में कितना है इस देख लीजिए। घर चलाना, मजदूरी करना, बोभाग की सेवा करना और गाना-बजाना इतनी बातों में स्त्रियां पुरुषों की बराबरी कर सकती हैं। लेकिन इस में भी स्त्री जाति अगर पिछडी हुई नहीं हाती तो समान काम के लिए उन्हें पुरुषों से कम स्वीकृति क्यों मिलती है? घर के कर्ता पुरुष के मर जाने पर उस की विधवा की और घर की दूसरी स्त्रियों की हालत कसी होती है इस का खयाल अगर किया जाये तो स्त्रिया का पिछडापन सिद्ध करने के लिए दूसरा सबूत नहीं देना पडेगा।

जिन जातियों का पिछडापन सब लोगों ने मान्य किया है उन की स्त्रियां पिछडी हुई हैं ही। लेकिन जा जातियां पिछडी हुई नहीं हैं उन में भी स्त्रियों की हालत स्त्री होने के कारण ही बहुत बुरी हाती है।

दद की बात यह है कि उच्च वर्ग की स्त्रियां जब स्त्रिया का बात सोचती हैं तब अपने वर्ग के बाहर की स्त्रियों का सोचती ही नहीं।

कुदरत ने ही जिन को अलग जाति बनाया उन का एक जाति हाना स्वयं सिद्ध है। अगर सारी स्त्रीजाति का एकजाति होना हम मजूर करें तो हम कैसे कह सकते हैं कि यह जाति पिछडी हुई नहीं है?

संस्कृत नाटकों में देखिए। राजा ब्राह्मण, क्षत्रिय व य आदि सब संस्कारो लोग संस्कृत में बोलते हैं। दूत, घोवर, शिकारी आदि पिछडा हुई जातियां और स्त्रीजाति प्राकृत में बोलती हैं। फिर वह सीता या गकुन्दला हैं क्यों न ही।

वदों में और उपनिषद् काल में स्त्रियां पिछडी हुई नहीं थीं। वे संस्कृत में ही बोलती थीं।

वेदकाल में स्त्रिया का उपनयन होता था। बाद में वह बन्द हो गया। उन का लिखना पढ़ना भी रुक गया। धर्म विधि करने का उन का अधिकार भी नहीं रहा। मनु न तो जाहिर ही कर लिया—न स्त्री स्वातन्त्र्यमहति स्त्री की

बालक गौतम का पालन पोषण किया। बाद में जब बुद्ध भगवान धम्म का उपदेश दते देश में घूमने लगे और हजारों नवयुवक—राजपुत्र से लेकर नाई तक—उन से दीक्षा लेकर निर्वाण की साधना करने लगे, तब वही पवित्र हेतु मन में रख कर कई राजकन्याओं के साथ बुद्ध भगवान की भौसी महा प्रजापति उन के पास दीक्षा माँगने आयी। तथागत बुद्ध भगवान् ने स्त्रियों को दीक्षा देने से इनकार किया। उन्होंने बार बार याचना की लेकिन परम-कारुणिक धम्मराज बुद्ध का चित्त पसोजा नहीं। तब बुद्ध भगवान के प्रिय शिष्य आनन्द ने वही प्रार्थना फिर से की। सफलता न मिली। तब आनन्द ने पूछा, क्या, तथागत की राय में स्त्रियों के लिए मोक्ष नहीं है? वे निर्वाण की अधिकारिणी नहीं हैं? बुद्ध भगवान् को कहना पड़ा, 'ऐसा तो नहीं है। उन को भी पूरा अधिकार है। तुम्हारा इतना आग्रह है तो, चलो मैं इन को दीक्षा देता हूँ। लेकिन याद रखो, कि मेरा धम्म अगर हजार बरस टिकता तो स्त्रियों को भिक्षुसभ में स्थान देने से वह पाच सौ बरस ही टिकेगा। मैं उन्हें सभ में तो लेता हूँ लेकिन उन के लिए कड़े नियम बनाऊँगा। और सभ में ज्येष्ठ से ज्येष्ठ भिक्षुओं का स्थान नये से नये कच्चे पुरुष भिक्षु से भी नीचा रहेगा।' बुद्ध भगवान ने इस तरह स्त्रियों को सभ में लिया। कई भिक्षुणियों की कीर्ति आज तक हम सुनते हैं। निर्वाणप्राप्ति के बाद उन के मुँह से जो धर्मोद्गार निकले वे घेरोगाथा में ग्रथित हैं। लेकिन आज सिलोन आदि देशों में भिक्षुणीसभ नहीं हैं।

स्त्री जाति के प्रति इन धर्मात्माओं का इतना हीनभाव क्यों? कोई कहता है कि स्त्री जाति के स्वभाव में मोक्ष का माहा नहीं है।

पुराने लोगों की बात छोड़ दीजिए। वे दे मातरम का गीत बनाने वाले बाबू बकिमचन्द्र तो आधुनिक बंगाली साहित्य के एक शिरोमणि। उन के किसी उपन्यास में आता है—मामूली 'यवहारधम्म के पालन में स्त्री पुरुष की सहधम्म चारिणी है वा सही कि तु सर्वोच्च धम्म, मोक्षधम्म में वह विघ्नरूप ही है।' तो क्या स्त्री सचमुच निम्नकाटि का प्राणी है जो थोड़े अपवादों को छोड़ दें तो सर्वोच्च आदर्श तक उठ नहीं सकता?

कई बुजुर्ग कहते हैं कि 'स्त्री दक्षिण्य के इन दिनों में साफ-साफ कहना आसान नहीं है लेकिन अनुभव तो कहता है कि दुनिया में कहीं भी देखें, स्त्री स्वभाव में दुनियादारी ही विशेष है। स्त्री अपने कौटुम्बिक क्षेत्र के बाहर देख नहीं सकती। दुनिया के उन्नत अथवा नत किसी भी समाज को ओर देखिए, बुद्धिमत्ता और नेतृत्व पुरुषों का ही है।'

मैं ने इस जवाब पर खूब सोचा। उन की बात कुछ हद तक सही है, किन्तु

दिल मानने को तयार नहीं होता कि पुरुषों को अपेक्षा स्त्रियों की योग्यता निसंगत कुछ कम है। हम ने देखा कि कुदरत ने स्त्री जाति को माता की पदवी दी है, बच्चों को जन्म देने का और उन की परवरिश करने का भार उस पर रखा है और इसीलिए कई सर्वोच्च सदगुण स्त्रियों के लिए सहज है। मनुष्य का छोड़ कर बाकी के प्राणियों में बच्चों की रक्षा के लिए लड़ने का, जुनून (जोश) भी मादा में अधिक है।

लेकिन मनुष्य रहा बुद्धिमान प्राणी। उस की सामाजिकता विशेष ढंग की रही। माता ने देखा कि अपने बच्चों को, और प्राणियों की तरह केवल माता से सस्कार मिलें इतना पर्याप्त नहीं है। बच्चा को पिता का सहवास भी काफी समय तक जरूरी है। माता ने बच्चा के हित पुरुषों की खुशामद कर के उन्हें अपने साथ रखा और परिवार बना कर उस में अपने लिए गौण स्थान मजूर किया। स्त्री ने अपने इस मातृत्व के कारण ही पुरुष को प्रधान स्थान दिया।

प्राचीनकाल का इतिहास देखते मालूम होता है कि किसी समय दुनिया में कहीं कहीं स्त्री प्रधान समाज व्यवस्था भी थी। बच्चे माता के नाम से पहचान जाते थे। स्त्रियाँ राज्य भी करती थीं। और युद्ध में लड़ती भी थीं। लेकिन स्त्रीप्रधान समाजव्यवस्था टिक न सकी। बच्चा की परवरिश का अपना मातृत्व संभालने के लिए स्त्री ने बहुत कुछ त्याग किया। उस के साथ समाज का नेतृत्व पुरुषों को दे कर वह अनुयायी बनने को भी तयार हुई।

स्त्रियों ने समाज का नेतृत्व छोड़ा उस के साथ युद्ध करने की बबरता भी छोड़ दी। नया पीढ़ी का जन्म देनेवाली और अपने सीने का दूध पिलाने वाली स्त्री मनुष्य की हत्या करने के लिए तयार कैसे हो सके ?

पुरुष ने स्त्री को आश्रित बनाया। घर के बाहर के क्षेत्र से उसे वंचित रखा। सर्वाङ्गीण विकास का मौका ही उसे न रहने दिया। हजारों बरस तक यह व्यवस्था चली। और अब पुरुष स्त्री से बहता है कि तुम्हारी योग्यता ही कम है। कुदरत ने ही तुम का पुरुष की आश्रित बनाया है। मनु भगवान् कहते हैं कुमारी अवस्था में स्त्री का रणा उस का पिता करता है। गाँदा के बाद पति और वृद्धावस्था में उस का लड़का अपनी माँ को सम्भालता है। इसलिए न स्त्री शासकत्वमहति स्था की स्वतंत्रता का अधिकार है नहीं।

विश्वास भी आत्मों को अगर दीर्घकाल तक पराश्रित परावलम्बी और गुलाम बना कर रखा तो एसी कृत्रिम स्थिति के कारण और प्रतिबन्ध परिस्थिति में यथावश्यक बचन के लिए उभे मन्त्रियों और अन्य जैसे साधना का उपयोग करना ही पड़ता है। धनमत्त और अधिकारमत्त असामाजिक वृत्ति के मनुष्य के

हाथ के नीचे जिसे लाचारी से रहना ही पड़ता है वह निष्ठा से नौकरी करते हुए भी कभी कभी मालिक को ठगेगा ही। पकड़े जाने पर झूठ भी बोलेगा। साहस और कठोरता उस में आये बिना नहीं रहगी। गुलाम को अगर जोना है तो इन बतियों का सटारा लेना ही पड़ता है। (मराठी भाषा में गुलाम शब्द का एक अर्थ होता है होशियार चालाक, धूर्त और लुच्चा। ऐसे गुण वाले अपन लडके का क़दर करन के लिए कभी कभी पिता बहता है अजी। मेरे लडके को बुद्ध न समझिए। ऐसा गुलाम है कि आप को भी बनायेगा।")

स्त्रियों को पराधान रत्न के बाद समाज न स्त्रिया के दुगुणा की फेहरिस्त देने वाला एक श्लोक बनाया—

“अनृत साहम माया मुखत्वमतिलोभता ।

असौघ निदयत्व च स्त्राणा दोषा स्वभावजा ॥”

स्त्रीजाति के प्रति अत्याय कर के उन्हें जिस स्थिति में रखा और ऐसी स्थिति के कारण, उन में जो दोष आ गये उस का सच्चा कारण न हूँकते हुए 'स्त्रिया के वे स्वभावगत दोष हैं' ऐसा पुरुषस्वभाव ने निणय किया। बलिहारी है उन की तक्शक्ति की।

एक अत्याय की स्थिति सदा के लिए टिक नहीं सकती। एक स्वतंत्र जाति दूसरी स्वतंत्र जाति के प्रति अत्याय कर सकती है। किंतु स्त्री और पुरुष परस्पर पूरक हैं। उन का एक दूसरे के बिना चल नहीं सकता। स्त्रियों को दु स्थिति का फल पुरुष को भी भुगतना पड़ता है और समाज को पन्थाघात (रकबा) मार जाता है। पुरुष न अपने स्वाथ के लिए ही स्त्री को शिक्षा देना शुरू किया। अपना काम में उस को सहायता लेने में लाम देखा। प्रेम के कारण ही या काम के कारण ही वह स्त्रा का पूजक बना। और पुरुष कबे भूल सकता है कि एक स्त्री के पेट में ही उस को जन्म लेना पड़ता है ? मातृभक्ति मनुष्य के लिए सहज है। स्त्री की आत्मसमर्पणयुक्त सेवा देख कर अ वे पुरुष के मन में भा स्त्री के प्रति आदर पैदा होता है।

और अब तो स्त्री स्वातंत्र्य का जमाना ही आ गया। स्त्रियों को अब बाकायदा शिक्षा मिलन लगी है। घर ससार चलाते उन के अधिकार समान होन लगे हैं। राज्य-यवस्था में स्त्रियों को वोट देने का अधिकार भी मिला है। श्रमजीवी वर्गों में स्त्रा भी मेहनत मजदूरा कर के कमाता है। इसलिए वह पुरुषा की आश्रित नहीं है। सामाजिक जीवन में बड़ा ही परिवर्तन हो रहा है। समाज कल्याण के वायक्रम स्त्रिया के हाथ में आ रहे हैं। पहले-पहले स्त्रियों ने

परिचारिका—नस का वाम सीमा । अब व डॉक्टर बनने लगी ह । शिक्षा, अध्यापिका और लेखिका बन कर समाजहित के चिंतन में अपना हिस्सा ले रही ह । राजकाज में स्त्रिया की योग्यता पुरुषों से कम साबित नहीं हुई ह ।

और ब्रह्मविद्या में तो जब तक मन्त्री और गार्गी वाचस्पनी के नाम कायम रहेंगे । स्त्री जाति की योग्यता सिद्ध रही हो है । पश्चिम में महिमा अब स्वतंत्र रूप से अनवरत रूप में काम कर रही ह । पिछड़े हुए मुसलमान समाज में भी स्त्रिया अब स्वतंत्र रूप से साव रही ह ।

अब स्त्रियों की पुरुषों के पीछे-पीछे चलने की अपनी आदत छोड़ कर स्वतंत्र रीति से साधने का और प्रवृत्तियाँ चलाने का प्रारम्भ करना चाहिए । जन समाज में साध्वियाँ कुछ जाग्रत हुई ह लेकिन अभी भी वह समाज रुढ़िप्रस्त ह । स्त्री जाति जब अपना मानसिक परावलम्बन छोड़ देगी और स्वतंत्रता के उत्तरदायित्व के अनुसार जीवनपरिवर्तन करेगी तब मनुष्य जाति का नतत्व उद्योग के हाथ में आयेगा । क्योंकि इतिहासकाल में पुरुषों के कई दोषों से वे मुक्त रही हैं और कई गुणों का इन में विशेष उत्कृष्ट पाया जाता है । समन्वयवृत्ति और मन्त्री भावना उन के लिए सुलभ ह ।

शुद्ध ब्रह्मचर्य के पालन के साथ सेवा के क्षेत्र में पुरुष और स्त्रियाँ समान भाव से परस्पर आदर रखते हुए सेवाकाय करने लगेंगे, तब ही ब्रह्मविद्या के पास सामाजिक मोक्ष का इलाज आयेगा और ब्रह्मविद्या की पवित्रता एकाग्रता दूर होगी ।

इस प्रयोग में खतरा अवश्य ह लेकिन खतरे से डरना और प्रयोग ही न करना कापुरुष का लक्षण ह ।

और आज जसी समाज की स्थिति ह और कौटुम्बिक जीवन जसा चल रहा ह उस में खतरे का डर कम ह ? आदत पडन के कारण मनुष्य उन से घबराता नहीं । शुद्ध प्रयोग हिम्मत से चलाने से ही समाज सुधर जाता ह और संस्कृति आगे बढ़ती ह । आखिरकार मन्त्रीभावना ह कल्याणकारी । उस पर विश्वास रखना यही ह—सच्ची आस्तिकता ।

(१५ जून १९६४)

चाहिए अनुभवमूलक समाज विज्ञान

मेरी यात्रा स्वयं में हो या विदेश में मैं सेवा सस्थाओं को हूँ-हूँ कर खोजता हूँ स्वयं पा कर देखता हूँ या व मुझे बुलाती ह। इसी तरह सन '६६ के फरवरी के अंत में मैं सौराष्ट्र के जामनगर में वहाँ का 'कस्तूरबा स्त्री विकास गृह' देखने गया था। यह सस्था स्त्रीजाति की उत्तम सेवा करती ह। पतिता, त्यक्त और उपेक्षित स्त्रियों के लिए गुजरात में कई अच्छी अच्छी सस्थाएँ काम करती हैं। त्यक्तों के साथ त्यक्त-पतिताओं को भी गुमार करना चाहिए। पति ने जिस का त्याग किया ह सो तो दुर्लभ ही किंतु पति के दुराचार के कारण जिस तजस्विनी पत्नी ने स्वच्छा से अपना लान्कार हो कर स्वच्छा से पति का त्याग किया उस की हालत भी हमारे समाज में बहुत दफे लयनीय बनती है। इस तरह जिन स्त्रियों को (यानी मानव जाति की माताओं को भगिनियाँ को और पुत्रियों को) समाज ने निराशा के गत में ढकेल दिया उन के लिए ईमानदारी से जीने का और आशा का रास्ता दिखाने वाली ये सस्थाएँ भगवान का ही काम करती ह।

असहाय निराग और हताग स्त्रियों को आश्रय दे कर उन्हें शिक्षा देना ईमानदारी से आजीविका प्राप्त कर सके ऐसा कोई उद्योग सिखाना और अगर समाज उन्हें वापस लेने को तयार हो तो इन को गृहस्थाश्रम में फिर से स्थापित करना यही मुख्य प्रवृत्ति इन सस्थाओं की होती ह।

जामनगर के स्त्री विकास गृह को दखन के बाद सस्था के सस्थापक, सचालक और कार्यकर्ताओं से मैं ने स्त्री समस्या पर काफी विचार विनिमय किया। और उसी सत्रसिले में विनासगृह की मुख्य सचालिका श्रीमती मञ्जुलाबेन के पत्र के जवाब में अपना विचार लिख भेजे। उसी पत्र का हिंदी अनुवाद यहाँ देता हूँ।

' इस में कोई शक नहीं कि मनुष्य जाति के समस्त इतिहास में सब ने महत्त्व का विषय ह स्त्री-गृह सम्बन्ध का। इस सम्बन्ध पर ही तो समाज की रचना निर्भर ह। अनेक देश के अनेक वंश के और अनेक जमाने के लोगो ने इस विषय में अनवानेक प्रयोग किये ह। विवाह सस्था का इतिहास देने वाले कई ग्रन्थ मिलते हैं। हमारी स्मृतियों में, पुराणा में और लोकगीता में स्त्री

पुत्र सम्बन्ध की जाती थी। यहाँ पावो जाते हैं। स्त्री पुत्र सम्बन्ध परम्परा जन्म
 कर और बसवागारो का दम तिम मनुष्य म मम और अध्यात्म का मन्त्र ला
 है। दमो उद्देश्य से जन्मक समाज न जातू भी बाग ह।

मानव जाति। इस तरह के जो प्रयोग विषय उत में म कई प्रयोग म म
 और गुम परिणामो साक्ष्य हण है। उत न द्वारा समाज को जन्मि हा हई ह।
 कुम्भ-परिवार और सामाजिक जीवत का आधार हो स्त्री पुत्र सम्बन्ध की
 स्वच्छता और गुणरता पर है। इस आश्रम को ध्यान में रणा ह म क मही
 सजते कि स्त्री-गुणों का प्रेम सम्बन्ध गृहस्थाश्रम बन्धन का परिवार और
 समाज तथा इन मुख्य बातों में और शत्रो म मनुष्य को सन्तोषजनक हण हासिल
 हुआ है। सब धर्मो न दास्य-धर्म सब दम को लोचनपाएँ और उत-यास स्त्री
 पुरुष विषयक सवाल को चर्चा करने आय ह। एसी चर्चा को पढ़ कर हम
 अनुभव करत ह कि इन सवालो को जिननी गहराई है। इस एक मुख्य सवाल न
 साय व्यक्तिगत तथा सामाजिक समस्त जीवत प्रगुण होना आया है। कुल
 मिला कर अनुभव कहता है 'इत अगम्य प्रयोगो न परिणाम स्वयं पुरुषों की
 अपेक्षा स्त्री जाति को ही अधिक गहन करना पडा है।' लेकिन दुग के साय
 कहता पडता ह कि इस सवाल को लेकर पुरुष धर्म ने जितना चिन्तन किया ह
 उतना स्त्री-धर्म ने किया हो एसा नहीं दीगता। स्त्री जाति ने सहा बहुत कुछ
 किया लेकिन हल ढढा नहीं न बराबर।

अब चिन्तन का उत्तरदायित्व पुरुषों पर न छोडते हुए स्त्रिया को अपनतद
 स्वतंत्र विचार करने के लिए तयार होना चाहिए। इतना ही नहीं अपन अनुभव
 के बल पर अपनी स्वतंत्र-दृष्टि से सामाजिक प्रयोग करने की भी तयारी दिगानी
 चाहिए। म मानने की तयार नहीं कि स्त्री जाति में इतनी हिम्मत नहीं ह।
 सवाल केवल उस हिम्मत को जगाने का ह।

सब देगो के और सब ससृष्टियो के समाजों ने (यान स्त्री पुष्ट्या न)
 विवाह के अनक, तरह तरह के आदग आञ्जमा कर देस। इन आदशो का
 पालन करते दोनो तरह से जो स्वलन हण उन के बयान भी काफी मिलते हैं।
 इन स्वलनो से मनुष्य स्वभाव का अनुमान कर के और परिस्थितियो का पहचान
 कर के आदशों में जरूरी परिवतन और सुधार करना चाहिए। आदग अगर
 कृत्रिम ह मनुष्य स्वभाव क विरुद्ध ह तो उन को बदलना चाहिए। और आश्रम
 अगर हृद स ब्यादा बड ह तो उन्हें सौम्य बनाना चाहिए।

बद पूर्व-शालीन रस्म रियाजो से ले कर आज तक हम स्त्री पुत्र सम्बन्ध के
 आदशों म कमीवेश परिवतन करत ही आये ह। इस का सारा इतिहास प्रयत्न

पूर्वक टेंद कर भविष्यकाल के लिए पोषक हो सके ऐसे जीवन निष्ठ आदर्श का विस्तृत नम डग से चिंतन और प्रचार करना चाहिए ।

धर्म और ससृष्टि के आदर्श और उन का रहस्य समझने के लिए और ढेंढने के लिए भूतकाल की तरफ जाना, चाहे जितना स्वाभाविक क्यों न हो सो भी वह गलत रास्ता है । इतना तो समझना ही चाहिए । भूतकाल जीने लायक न रहा इसी लिए तो वह चला गया । उसे सजीवन करने की कोशिशें हम क्या करें ? भूतकाल के प्रति और अपने पुरानों के प्रति आदर रहना योग्य है लेकिन हम उन के दास क्यों बनें ? भूतकाल के प्रति अति आदर रखना और वर्तमान काल का तुच्छ समझना जीवन के प्रति और उस क भविष्यकाल के प्रति द्राह है । भूतकाल अगर पवित्र है तो भविष्यकाल पवित्रतर है । क्योंकि वह भी ईश्वर का आशीर्वाद अवतार ही है । भूतकाल का ध्यान अगर प्राणघातक साबित हुआ तो एस ब उनों से मुक्त होना ही हमारा वाग्य है ।

मेरे कथन में पश्चिम का अनुकरण करने का तनिर्क भी सिफारिश नहीं है । पश्चिम के अनुभव से और उन का हिम्मत से हम जरूर लाभ उठावेंगे । पश्चिम व लोग भी ईश्वर के ही बालक हैं और हमारे सग सम्बन्धी हैं इम को तो जरूर स्वीकार करेंगे । लेकिन हम अपनी परिस्थिति और अपने पुरुषार्थ को नजर के सामन रख कर स्वतंत्र चिन्तन करेंगे । और उसा में से नयी-नयी योजना बना कर उस के अनुसार प्रथम मर्यादित क्षेत्र में प्रयोग कर देंगे । इस तरह के मर्यादित अनुभव के बल पर हिम्मत बढने पर व्यापक पैमान पर प्रयोग कर सकेंगे ।

मेरा अभिप्राय है कि विकासगृहों की ओर स ऐसे नये सामाजिक प्रयोग आजमाने का प्रारम्भ करना चाहिए । समाज ने जिन्हें छोड दिया, बहिष्कार कर के फेंक दिया, ऐसे व्यक्तियों को लेकर जब हम प्रयोग करते हैं तब समाज अपनी पुरानी रुढियाँ लेकर विरोध क्यों करे ? समाज जब किसी व्यक्ति को दोषी कह कर फेंक देता है तब उस व्यक्ति की प्रतिष्ठा तो टूटती ही है लेकिन समाज को इस बात को भी स्वीकार करना चाहिए कि समाज को सूत्र का भी दिवाला निकल गया है ।

समाज को चाहिए कि अपनी हार कबूल कर के वह नम्रता धारण करे और सुधारक लोगो को पुरान चोले में से, पुरानी लकीर में से बाहर निकलने की स्वतंत्रता दे दें ।

शरारती, सूफानो अथवा विकलाग बच्चा को लेकर आधुनिक शिक्षा-शास्त्रियो न शिक्षा के नये नये प्रयोग आजमा कर देखे । फलत शिक्षा शास्त्र में, पढाई

चाहिए अनुभवमूलक समाज विज्ञान

और सघाई की बला में अद्भुत प्रगति हुई है। उही के रास्ते जा कर स्त्री विकासगृहा को भी चाहिए कि वे हिम्मत पूवक नये नये प्रयोग कर दखें और विलकुल नये ढंग का समाज शास्त्र तैयार करें।

पुस्त दर पुस्त, दीघ काल तक सतत सहन करन के बाद क्या स्त्री जाति नयी हिम्मत आजमावे के लिए तयार नही होगी ?

दुर्द्वेषी स्त्रियों को आश्रय देना ईमानदारी से आजीविका प्राप्त कर सकें ऐसा उद्योग सिखाना अच्छी बात है, लेकिन यह तो केवल दुःख निवारण का काम हुआ। मुख्य काम तो समाजो के जिन दोषो के कारण अथवा जीवन विरोधी गलत आदशों के कारण ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है उस का ही इलाज ढढना चाहिए।

पति की मृत्यु के बाद उस की पत्नी का पति के शव के साथ अपने को जलाने का एक रिवाज था। इस के कारण क्या क्या सामाजिक अनर्थ खडे हुए उस के वणन वगाल के इतिहास में हमें मिलते हैं। वहाँ क सामाजिक नेताओ न सती हान की इस प्रथा को बन्द करवाया। उस के लिए अंगरेज सरकार की मदद भी ली। उस के बाद ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जैसे साधु पुरुषो ने विधवा विवाह का रास्ता प्रशस्त किया। हमारे जमाने में अब आ तरजातीय विवाह भी होन लगे हैं। अब ऐस विवाहो का विरोध कोई नही करता।

तो क्या स्त्री जाति के सामाजिक दुःखा को और अयाया को दूर करन के लिए सिर्फ ये दो ही सुधार आवश्यक थे ? जागनगर के कस्तूरबा विकासगृह को सेवा करने का दस साल का अनुभव है। इन दस वर्षों क अन्दर असंख्य अबलाओ की कठिनाई का परिचय उसे हुआ है। संस्था क सचालको ने परिस्थिति का गहरा अध्ययन भी किया होगा। तो क्या उन के पास सुधार के नये नये सुझाव नही है ? तार्त्विक चिंतन करन वाले और विशेष का अनुभव पढ़न वाले लोग कुछ न कुछ सुधार अवश्य सूचित कर सकेंगे। कि तु दस दस बीस बीस वष जिन लोगो न इस क्षेत्र में स्त्री जाति की सेवा करने का अनुभव लिया है उन को चाहिए कि वे पुराने आत्म के बोझ के नीचे न दब कर नया रास्ता ढढ निकालें।

जातिबहुल हमारे देश में हर एक जाति के आत्म अलग है। ऐसी हालत में सुधारको की नया जाति बना कर या मान कर भी हम प्रयोग कर सकते हैं। आग जा कर इस का लाभ सारे समाज को मिलेगा।

मेरे उस मूल खत में मैं न इधर उधर परिवर्तन किया है। लेकिन उस खत को यहाँ इस लिए द रहा है कि सवाल सार दश का है। केवल उच्चवर्णीय हिंदुओं का नही। हिंदू, मुस्लिम, ईसाई आदि सब का सवाल है।

बसो-अभी स्व० डॉ० राममनाहर लोहिया व एक लेख का मराठी अनुवाद पढ़ा था । उन्होंने लोक कल्याण की दृष्टि से हिम्मत भरे कुछ सुझाव देना के सामने रखे हैं । उन के सुझाव कोई माने या न मान, उन की हिम्मत धारण कर के सामाजिक सवालों का हल तो जरूर ढूँढ़ना चाहिए ।

(१६ नवम्बर १९६७)

■

अस्पृश्यता का हडक

अस्पृश्यता निवारण का धार्मिक पहलू

किसा एक सनातनी जवान मित्र ने मुझ से पूछा— काकासाहब जब देखें, आप अस्पृश्यता निवारण की ही बात करते ह। आप जानते ह कि हम हरिजनो को छूते है। सभा में और ट्रेन में एक साथ बठते है। कोई हरिजन हमारे घर पर मिलने आता ह तो उमे साथ बिठा कर हम खाते भी ह। पक्ति भेद को हम न छोड दिया। अब क्यादा क्या करने को रहता ह? आप कब वहेंगे कि भारत से अस्पृश्यता अब दूर हो गया ह?”

मने कहा कि आप छुआछूत में विश्वास नही करते है यह अच्छी बात ह। लेकिन गाव में जाकर जरा देखिए अस्पृश्यता निवारक कानून के पास होने पर भी वहाँ हरिजनों की क्या हालत ह। उन को कसे दूर रखा जाता ह। पान के पानी के लिए भी उन्हें भिक्षा मागनी पडती ह। आप स्वयं छुआछूत छोड दें इतना काफी नही ह। इस पुगने पाप को देश में से हटान के लिए आप का जेद्दा चलानी चाहिए। यह हुआ सीधा जवाब। लेकिन आप पूछत है कि हम कब मानें कि अस्पृश्यता हिन्दू समाज में से दूर हो गयी ह? भविष्य की बात में भविष्य पर हो छाडना पसन्द करता हूँ। लेकिन जब आप मुँह में उँगली डाल कर मुन स जवाब निकलवाना ही चाहते ह तब सुनिए मरा जवाब—

‘जब कोई सस्कृतन चारिषवान धमनिष्ठ हरिजन गकराचाय की गद्दी पर बँठ सकगा और मैं और आप उस साष्टांग दण्डवत प्रणाम करेंग तब मैं कहूगा कि अब छुआछूत सचमुच दूर हा गयी। सनातनी दृष्टि से सोचनवाल लागो क लिए हा मेरा यह जवाब ह। इस का यह अय हरिजज नही ह कि म अय किसा हरिजन को गकराचाय की गद्दी पर बठा हुआ दखना चाहता हूँ। मनुष्य हान क नाते और प्रतिकूल परिस्थिति में भी हिन्दूधम क प्रति निष्ठा रखने के कारण मेरी व्याख्या क हरिजन का यह अधिकार अवश्य ह। लेकिन गकराचाय की गद्दी आज एक वाग्प्रसूत सनातनी सम्था ह। श्री आद्य गकराचाय क प्रति मर मन में अग्राम पूय भाव ह। श्री गकराचाय न ही इस युग में हिन्दूधम का

सर्वोच्च सेवा की। उन के उत्तराधिकारियों में भी अनेक योग्य पुरुष हुए ह। लेकिन आज उस सस्या में क्या रहा ह? सनातन धर्म की रक्षा का भार आज के शक्राचार्य उठा नहीं सकते। सनातनी समाज का नतत्व भी उन के पास रहा नहीं दोख पड़ता। सनातन धर्म में सुधार कर के उस में चतय लाने का काम तो और लोग कर रहे ह। शक्राचार्यों के चंद मठों की जो हालत में न सुनी ह उसे सोचते ग्लानि ही होती है। ऐसी हालत में किसी भल हरिजन को शक्राचार्य की गद्दी पर बैठने का आमन्त्रण मिल जाय ता उस को स्वीकार करने की सलाह शायद में उसे नहीं दे सकूंगा। उस सस्या में जब वह प्राण नहीं देखता है जिस के जरिये धर्मपरायण जनता को कुछ ठास सवा हो सके।”

अब स्यात पर मैं न कहा ही ह कि अनुलौम प्रतिलोम का कृत्रिम भेद भूल कर जब अनेक ब्राह्मण लड़कियां क विवाह योग्य और अनुसूच्य हरिजन लड़कों के साथ हाने और सनातनी समाज उा का अभिन दन करगा तब म कहूंगा कि अब अस्पश्यता दूर हो गयी ह।

मनुष्य जब विवाह करता ह तब धर्म सुधार क हतु स नहीं करता। लोग विवाह बद्ध होते ह प्रेम क कारण और सफल सहजीवन क लिए। अगर कोई ब्राह्मण लड़की हरिजन लड़के क साथ शादी करती ह तब तना तो वह जरूर देखेगी कि 'रहना, करनी और विचारसरणी को दष्टि से वह लड़का उस क अनुकूल ह। हम इतना ही माग सकते ह कि जाति या वण के कारण सवण और हरिजनो क बीच शादी का प्रतिबध न हो। ऐसे विवाह होते रहें और सनातनी समाज उस का अभिन दन करे।

मंदिर प्रवेश के बारे में भी यही बात ह। मध्यकाल में जिस थड्डा भक्ति से लोग दवगन के लिए मंदिर में जान थे वह थड्डा भक्ति अब नहीं दोख पड़ती। सो भी हम हरिजनों के मंदिर प्रवेश का आ दोलन चलात रहे। अपेक्षा हरगिज यह नहीं थी कि मंदिर प्रवेश का अविचार मिलते ही हरिजन बड़ी तादाद में मंदिर दशन या पूजा के लिए जान लगेगे। (हाँ मद्रास की ओर मन्गु शहर के पास एक मंदिर का इतिहास जानता हूँ जहाँ मंदिर के यव स्थापको ने अपना मंदिर हरिजनों के लिए खोल दिया इस स गुस्से म आ कर ब्राह्मणों न उस मंदिर का बहिष्कार किया। मंिर की आमदनी घटी। ध्यव स्थापक चि ता में पन् लेकिन ध शरण नहीं गये। जब ब्राह्मणतरो का इस हालत का पता चला तब उहान लसूसन उमी मंदिर म जाना और यहाँ दक्षिणा देना गुरु किया। ततोजा यह हुआ कि मंदिर पर जो दरसों का ब्रज था वह अदा हो गया और मंदिर का जीर्णोद्धार भी आसाना स हो सका।)

आज हम सबको को इनका हो कह सकते हैं कि अगर किसी भी कारण मन्दिर जाने को दिला हुआ तो किसी हरिजन को अपने साथ लते जाइए। जसा पुराना नियम था कि मन्दिर में रिक्त हस्त (गाली हाथ) नहीं जाना चाहिए। फल-फूल मिठाई कुछ न कुछ ले ही जाना चाहिए। इसी तरह हम नया नियम कर सकते हैं कि हरिजन का हाथ अपने हाथ में लिये बिना मन्दिर में जाने से देवद्वान का पुण्य नहीं मिलता और भगवान् की कृपा नहीं होती।

देवद्वान और मूर्ति-पूजा का रिवाज पुराना है। उस बढ़ावा देना मन्दिर-प्रवेश का उद्देश्य नहीं हो सकता। मन्दिर भी एक पुरानी सनातनी सस्या है। उस में नया धर्म हम जरूर डाल सकते हैं। मन्दिरों के द्वारा हम सामाजिक संगठन, आचार-यवहार की शुद्धि, सत्कार प्रचार शिक्षा का विस्तार और बहु-विध आर्थिक सहयोग आदि अनेक प्रवृत्तियाँ चला सकते हैं। लेकिन वह एक स्वतन्त्र प्रवृत्ति होगी।

मन्दिरों में भगवान् की पूजा-अचना, पुराण श्रवण हरिकीर्तन उत्सव त्योहार, श्राद्ध महालय तीर्थ यात्रा उपनयन शास्त्राम्यास शादी-ब्याह सयासग्रहण, दान प्रतिग्रह य सब हैं सनातनी जीवन के प्रधान धार्मिक पहलू। हमें जागरूक होकर देखना चाहिए कि इन में कहीं भी अस्पश्यता या उच्च-नीच भेद आने या रहन न पावे।

(फरवरी १९५७)

हिन्दू समाज को चुनौती

डॉ० अम्बेडकर भारत की एक भाँय विभूति थे। जब भीमराव अम्बेडकर का स्मरण करता हूँ तब मुझे महाभारत के कुन्तीपुत्र कण की याद आती है। ' दयायत्त कुले जन्म मदायत्त तु पौत्र्यम '। यह था कण का वचन। समाज जिसे हीन कहता है ऐसे कुल में जन्म होने से मनुष्य को क्या क्या भुगतना पड़ता है और उस से उस के स्वभाव में चिन् और कड़वाहट कितनी गहराई तक पहुँच जाती है इस का पूरा खयाल जिस तरह कण के जीवन से पाया जाता है वसा ही डॉ० अम्बेडकर के जीवन से भी पाया जाता है। श्री सयात्रीराव गायकवाड ने उन्हें गिण्यवृत्ति की विदेश भेजा अपने राज्य में नौकरी दी। महात्मा गांधी ने उन्हें भारत के सर्वोच्च मन्त्रिमण्डल में स्थान दिलाया। भारतीय जनता ने उन्हें

भारत का विधान—मानो भारत का भाग्य लेख बनाने का काम सौंपा। जिस हिन्दू कानून नै दग में अस्पृश्यता चलायी थी उस का सुधार करन का काम भारत भाग्य विधाता न डॉ० अम्बेडकर के हाथ में सौंपा और समस्त हिन्दू समाज ने उन के इन सब सुधारों को सहप स्वीकार किया। अस्पृश्यता निवारण के कानून के खिलाफ करोड़ों के हिन्दू समाज में से एक भी आवाज नहीं उठी।

इतना सब हुआ। लेकिन डॉ० अम्बेडकर के हृदय में घुसी हुई चिड और कटुता का निमूलन नहीं हुआ।

हिन्दू समाज के बारे में जब उन के मन में निरागा पैदा हुई, तब उन्होंने धर्मांतर करने का बात गुरू की। यह बात बरसों तक चली। उन्होंने हिन्दू समाज को काफी समय दिया। हिन्दू समाज ने आश्चर्यकारक प्रगति भी की। लेकिन डॉ० अम्बेडकर के लिए वह पर्याप्त न थी।

मैं ने सनातनी वृत्ति और सनातनी समाज का वणन करते एक व्याख्या बनायी है उस का यहा स्मरण होता ह।

सनातन समाज वह समाज है जो दूसरे किसी भी समाज क मुकाबले में कम प्रगति नहीं करता। लेकिन काल भगवान् उसे जिस मजिल तक पहुँचने को कहने हैं उस से एक मजिल पीछे रहना—यह ह उस का उमूल। फलत सब तरह की प्रगति करते हुए भी काल भगवान् के प्रसाद से वह हमेशा वचित रहता है। 'करने का सब कुछ किया, लेकिन उस का फल कुछ भी पाया नहीं' ऐसा कहने का उस के भाग्य में बदा हुआ ह।

डॉ० अम्बेडकर ने धर्मांतर करने के लिए पहले सिख धम को पसंद किया। इस का एक अच्छा फल यह हुआ कि सिख समाज ने अपनी रूढि को कुछ हद तक तोड कर अपने धमग्रन्थ नागरी म भी छापने का साहस किया।

दीर्घकाल तक सोचने मोचने डॉ० अम्बेडकर ने धर्मान्तर के लिए आखिर बौद्ध धम पसंद किया। यह भी मेरी दष्टि से अच्छा ही हुआ।

हिन्दू धम की मेरी कल्पना के अनुसार सिख धम और बौद्ध धम दोनों हिन्दू धम के बाहर ह ही नहीं। कोई द्रववादी अद्वैतवादी बन जाये कोई शाक्त शिव का उपासक बन जाये या वैष्णवधर्मो बन जाये तो उसे हम धर्मांतर नहीं कहते। जब कोई सनातनी आयासमाजी बनता ह या कोई बगाली अपनी हिन्दुवानी छोड कर ब्राह्मी बनता ह तब उसे मैं धर्मान्तर कहने के लिए तयार नहीं हूँ। हमार पुरखा कहते आये है कि 'घो घाली में गिरे या कटोरे में पेट में ही जाने वाला ह'।

हिन्दू समाज को चुनौती

हिंदू-मानस ने बुद्ध भगवान् की नगीहन आत्मतात् की इतना ही नहीं—
प्रत्यय बुद्ध भगवान् को विष्णु का अवतार—और वह भी चालू अवतार—
बना दिया ।

(जिन दिनों नौ, दस या चौबीस अवतारों की कल्पना चली तब वैष्णव धर्म का मोलवाला अधिक था । इस लिए बुद्ध भगवान् को विष्णु का अवतार बनाया गया । अगर सटस्य दृष्टि से देखा होता तो गौतमबुद्ध की जीवनदृष्टि का स्याल करते उन्हें शिवजी का ही अवतार बनाया होता ।)

म नहीं मानता कि बौद्ध धर्म आत्मा का या परमात्मा का इनकार करता है । भगवान् बुद्ध का इतना ही कहना था कि हम आत्मा और ईश्वर की झगड़ में क्यों पड़ें ? हमारा सरोकार तो जीवन से है । जीवन दुःख से भरा हुआ है । दुःख का स्वरूप पहचान कर उस का जडमूल से नाग करना—यही हमारा परम कतव्य है । जिस रास्ते से दुःख का आत्यंतिक नाश होता है वह है अष्टांगिक मार्ग, वही है धम्म ।

‘इस धम्म के रास्ते जाने के लिए अय मानव, तुम अपने को ही अपनी मसाल बना दो’ । ‘आत्मदोषो भव’ । धम्म के रास्ते जाते सब पाप कर्मों को छोड़ दो । फुगल कर्मों का अनुशीलन करो । अपने चित्त को क्रावू में ला कर अहंकार का नाग करो । और निर्वाण—परमा शांति को प्राप्त करने की तैयारी करो ।

यह धम्म सब-कल्याणकारी है । जो कोई इस धम्म का स्वीकार करगा उस का भला ही होगा । इस धम्म के साथ किसी का खगडा नहीं हो सकता ।

जिस विड और कटुता का डॉ० अम्बेडकर ने अपने हृदय में सग्रह किया था उस छोडे बिना निर्वाण—परमा शांति निद नही हो सकती । हो सकता है कि बौद्ध धर्म का स्वीकार करन पर डॉ० अम्बेडकर को वह शांति मिली होगी और उस शांति के साथ ही उन का जीवन समाप्त हुआ होगा ।

डॉ० अम्बेडकर के साथ जिन लोगो न बौद्ध धर्म का स्वीकार किया, और आवंदा भी जो लोग उस सम्प्रदाय में शरीक हाने, उन को चाहिए कि वे अपन साथ बौद्ध समाज में अस्पश्यता ले न जायें ।

लोकसख्या की दृष्टि से देखते दुनिया में बौद्ध धर्म का स्थान शायद सवप्रथम होगा । पूव में और पश्चिम में ऐसे कई लोग है जिन्होंने बाजायण बौद्ध धर्म की दीया तो नहीं ली है किंतु बुद्ध भगवान के उपदेश का और जीवनदृष्टि का हृदय से स्वीकार किया है । भारत के बरोडा लोग यदि युगावतार बुद्ध भगवान के उपदेश को ग्रहण करेंगे तो उन का कल्याण ही होगा ।

अद्वैत वेदान्त भी कहता है कि जिसे जीवात्मा कहते हैं वह तो माया ही है। अगर कोई सत्य है तो विश्वव्यापी सनातन सत्य ही है। वही है नारायण और वही है परब्रह्म। सब से व्यापक, बृहत् और बृहत्तम जो है उसी को ब्रह्म कहते हैं परब्रह्म कहते हैं। उस के साथ एकरूप होने के लिए सयम और उपशम की साधना करनी चाहिए ताकि हृदय में विश्वात्मक्य भाव का उदय हो। डॉ० अम्बेडकर के पुरोधारियों और तेजस्वी जीवन से हिंदू समाज को सबक सीखना चाहिए। डॉ० अम्बेडकर हिंदू समाज के लिए चेतावनी और चुनौती रूप थे।

(दिसम्बर १९५६)

अस्पृश्यता और कानून की शक्ति

‘जब तक कानून नहीं बना, तब तक कुछ होना नहीं। आप अस्पृश्यता निवारण की बातें चाहे जितनी करें मतपरिवर्तन पर चाहे जितना जोर दें—सब बातें हवा में ही रहने वाली हैं। लोगों को पता चलना चाहिए कि किसी को अछूत समझना, उस के साथ अछूत-सा व्यवहार करना कानून की दृष्टि से गुनाह है जिस के लिए बाकायदा सजा हो सकती है। भारत के विधान में इतना लिख देना काफी नहीं है कि ‘अस्पृश्यता रद्द की गयी है और किसी को अछूत समझना विधान के खिलाफ है। अस्पृश्यता अगर विधान के खिलाफ है तो कानून के खिलाफ भी होनी चाहिए और उस के लिए उस की सजा का प्रबंध भी होना चाहिए। अस्पृश्यता किसे कहते हैं, उस का पालन कहाँ कहाँ होता है और उस के लिए कसी कसी सजा होगी, यह सब कानून के अन्दर दज होना चाहिए।’

हरिजना के नेता और हरिजनों के सेवक दोनों इसी तरह से एक लम्बे असें तक कहते आये थे। भारत के बलग अलग हिस्से के करीब सब राज्यों ने अपने अपने ढंग के कानून बना दिये। जिन में मंदिर प्रवेश का जिक्र सब से महत्व का था। आखिरकार इन सब कानूनों को ध्यान में लेकर केन्द्रीय भारत सरकार ने सर्वानुमति से ऐसा एक कानून बनाया जो सब को पसंद आया। सारे देश में एक भी व्यक्ति ने इस कानून का विरोध नहीं किया। सब अखबारों ने और सब के सब सामाजिक नेताओं ने इस कानून का स्वागत किया और देश में सन्तोप का वायुमण्डल पैदा हुआ।

लेकिन यह सन्तोप एक दिन या एक सप्ताह तक ही टिक सका। उस के

बाद देखा गया कि हरिजन नता और प्रधान प्रधान हरिजन-मकन बहन लगे—
 “कानून बनाने से क्या होगा ? लोगो में जब तक हृदय-परिवर्तन नहीं हुआ है ।
 कानून सिर्फ कागज पर ही रहेगा । कानून से कुछ होने वाला नहीं । यदि मैं जा
 कर देखिए कहाँ है कानून का अमल ? न पुलिस कुछ सोचती है न सरकारी
 कर्मचारी, मजिस्ट्रेट या याथाधोश । कोई गरीब शिकायत करने जाता है तो
 उसी की परेशानी होती है और आखिरकार गरीब लोग कहन लगते हैं कि जो
 चल रहा है उसी को बदलित करना बेहतर है क्योंकि उस की आदत हमें है ।
 आप सवणों को छेड़ते हैं और परेशानी हमें भुगतनी पडती है ।”

अथशास्त्र को सवस्व माननवाले आधुनिक सुधारक कहते हैं ‘हरिजनों की
 आर्थिक स्थिति जब तक नहीं सुधरी है अस्पृश्यता दूर होने वाली नहीं ।’ इस
 के खिलाफ धनी और प्रतिष्ठित हरिजन अगुआ कहते हैं— ‘लोग हमें छेड़ते डरते
 हैं सही, लेकिन सवण हमें अपनाते नहीं । और मान लीजिए कि हमारी अस्पृश्यता
 शहरों में दूर हो गयी है हमारे जाति के गरीबों की और गाँव के हरिजनों की
 अस्पृश्यता जब तक नहीं गयी है, हम कैसे मानें कि हमारा उद्धार हो गया ?”

हरिजनो ने धर्मान्तर का नुस्का सदियों से आजमाकर देखा । नतीजा यह हुआ
 कि जिन धर्मों में अस्पृश्यता नहीं थी, उस में वह पहुँच गयी । अस्पृश्यता का
 नाश नहीं हुआ, उलटा विकास ही हुआ । जो हरिजन ईसाई बन वे कहते हैं कि
 हिंदू सवण हमें ईसाई होने पर भी अच्छे समझते हैं । सो तो हम समझ सकते
 हैं । लेकिन जो सवण ईसाई बन वे भी हमें अच्छे ही रखना चाहते हैं । सवण
 ईसाई कभी हरिजन ईसाइयों से शादी करना पसंद नहीं करते । दक्षिण में कुछ
 असें के पहले हरिजन ईसाइयों की गिरजाघर के अन्दर ही आन नहीं देते थे ।
 जब अन्दर आन देने लगे तब भी उन्हें अलग बिठाने लगे । मरने पर भी हमारा
 अछूतपन हमें छोड़ता नहीं । हरिजन ईसाइयों का स्मशान अलग और सवण
 ईसाइयों का अलग ऐसा भेद भी दक्षिण में कहीं कहा पाया जाता है ।

सिक्खों में जातिभेद और अस्पृश्यता दोनों पाये जाते हैं । सो तो हम समझ
 सकते हैं । लेकिन मुसलमानों में भी कहीं कहीं एक ब्रिस्म का जातिभेद है और
 शादियाँ पर रोक मानी जाती है ।

जब से सरकार ने अस्पृश्यता को और पिछनी हुई जातियों को सहूलियतें देना
 शुरू किया है, तब से मुसलमानों में और ईसाइयों में जातिभेद का होना, छोटी
 छोटी जमातों का अलग गिना जाना, उन के समाज स्वीकार करने लगे हैं ।

हरिजनों ने धर्मान्तर का फिर एक नया तरीका आजमाना शुरू किया है ।
 वे शीद होने लगे हैं । बुद्ध भगवान की नसीहत अच्छी ही है । किसी भी नवी

का या पगम्बर की नसीहत बुरी नहीं हो सकती। लेकिन सवाल धर्म सद्दान्ता का या उपदेश का नहीं है। सवाल सामाजिक है। कोई हरिजन जब मुसलमान बनता है तब सार मुसलमान समाज का उसे सहारा मिलता है। जब कोई हरिजन ईसाई बनता है तब उसे उन सब ईसाइयों का सहारा मिलता है जो अछूत नहीं हैं।

अब भारत में ऐसा कौन-सा बड़ा अन अछूत बौद्ध समाज है, जो बौद्ध-हरिजनों को अपना कर सहारा दे सकेगा? हिन्दू समाज बौद्ध हरिजनों को हरिजन माने या न माने? आज का हिन्दू-समाज कहने को तैयार है कि जो बौद्ध हो गये सो अब अछूत या हरिजन नहीं रहे। लेकिन अगर सरकारी सहूलियतों के लोभ से बौद्ध हरिजन कहने लगे कि हमें हरिजन ही समझो और सब सहूलियतें मिलने दो तो सरकार को क्या करना चाहिए? हिन्दू-समाज का क्या कत यह है?

सोचने वाले लोग कहते हैं कि जिस धर्म में अस्पृश्यता नहीं थी उस धर्म में ये लोग अस्पृश्यता दाखिल कर रहे हैं। अस्पृश्यता का नाश नहीं विस्तार हो रहा है जिस का कुछ इलाज सोचना चाहिए।

इस तरह हम ही जिस सवाल को दिन-पर दिन टेढ़ा करते जा रहे हैं इस का इलाज कानून से क्या होगा?

जब अस्पृश्यता निवारण का कानून सर्वानुमति से माय हुआ तब यह माना गया कि समाज ने तो अस्पृश्यता छोड़ दी। अतः अगर अस्पृश्यता का कोई पालन करत है तो इने गिने व्यक्ति ही पालन करत है। कानून उन्हें सजा कर सकता है। लेकिन जब बड़ी-बड़ी तादाद वाली जातियाँ अछूतों को अछूत रखने की कोशिशें करने लगती हैं तब कानून क्या कर सकता है सरकार क्या कर सकती है? और हमारे मिनिस्टर्स भी क्या कर सकते हैं? जिन से वोट पा कर मैं मंत्री बना उन सब के सब लोगों को मैं कैसे दबा सकता हूँ?

अगर मारामारी से कोई सवाल हल करने गये तो तो देश में अराजकता ही पैदा होगी। और जो हालत आज अंतरराष्ट्रीय जगत में चिंता का विषय बनी है, वही देश के अन्दर घर घर में पैदा हो जायेगी। ऐसी परिस्थिति में हमें सोचना चाहिए कि कानून क्या कर सकता है और क्या नहीं कर सकता। हरेक मानवीय इलाज को अपना मर्यादा भा होता है।

जो लोग निघन होते हैं वे मानते हैं और कहते हैं कि हमारे पास धन होता तो हम सब-कुछ कर सकते हैं। जो धनी और बुद्धिमान् हैं वे जानते हैं कि धन की शक्ति परिमित है थोड़ी है। जब भारत पराधीन था और निःशस्त्र किया गया था तब कई देशभक्त कहते थे, कि शस्त्र की ही कमी है शस्त्र मिलते ही हम

भारत को आजाद कर देंगे। जब किंगो के हाथ में दस्त भाया तब वह अंगरेजों का तो कुछ बुरा नहीं कर सका। वह दस्त किंगो भ्रष्टा " को और महारमा गांधी को ही मारने के काम आया। जब हम ने स्वतंत्रता घोषी तब हम नि दस्त नहीं थे। पराधीन होना के बाद ही नि दस्त बिय गये थे, यह हम भूल जाते हैं।

कानून को दानि नर्मादित होना है, यह तो एक बात है ही। लेकिन जब किंगो सामाजिक अत्याय या दाप के गिलाफ़ जानून बिया जाता है तब लोग मानते हैं कि हमारा काम अब पूरा हो गया। अब डिम्मेवारी हमारी नहीं किन्तु धनीय की, पुलिस की, मजिस्ट्रेट की और जेलर की है।

समाज सुधार का काम जो सनाचार-परायण, लोकहित चिन्ता सेवकों का और नेताओं का है, वह काम, कानून बनने ही, से छोट देने है गिणित बनते है और एक तरह से बेपरवा भी बनत ह। और सरकार तो सजा और रोकटोक में ही मानती है। वही एक दस्त उद्य के पास है। उस से काम नहीं चलता, तब कहने लगते ह जो कानून से नहीं होता वह गिणन क द्वारा कर देंगे। सरकार इस क लिए पछा टाच करन को तयार रहती ह। 'तन'वाह द कर लोगों को गाँव गाँव ब्याख्यान दन के लिए भज दोजिए। पाठय-पुस्तकों में अस्पृश्यता निवारण का महत्व समझाने वाले पाठ दाखिल कीजिए। बट बड चित्र खिचवा कर बाजारों में, स्टेशन पर और ऐसे ही सायजनिक स्थानों पर लगवा दोजिए और सकुलर निवाल कर जो सवण युवक हरिजन लडकियो क साथ शादियाँ करते ह उन्हें अच्छी नौकरो देन को सूचना दोजिए। सरकार का काम ऐसा ही होगा। जो लोग समाज शास्त्र समझते हैं वे कहते हैं कि अन्तरजातीय शादियाँ होने से जातियों का उच्च-नीच भाव कम होगा, लेकिन जातियाँ कम नहीं होंगी। मात्र का ही मिसाल लाजिए। शादियाँ एक गोत्र में ही ही नहीं सबती। शादियों का नियम ही ह कि वह आन्तर गोत्र होनी चाहिए। इस से गोत्रों में उच्च नीच भाव नहीं रहा लेकिन गोत्र टिके हुए ह।

कानून किसी को सज्जन नहीं बना सकता और सार के सारे समाज की सलत पहमियों को दोषों को और त्यापक दुराचार को मिटा नहीं सकता। जो काम समाज हितपी सदाचारी, समाज सेवापरायण त्यागियो का ह, वह उही को करना चाहिए। जो लोकमत-परिवर्तन दन के द्वारा हो सकता ह वह केवल शाला शिक्षको के द्वारा, पाठय पुस्तको के द्वारा और ध-घादार प्रचारका के द्वारा नहीं हो सकेगा। तेजस्वी समाज सेवको का काय जोरों से चलान पर कानून उन्हें मदद कर सकता ह शिक्षा का महकमा भी बाद में बहुत कुछ मदद कर सकता है।

छोटे मोटे प्रचारक भी उपदेश दूर-दूर तक पहुँचाने का काम कर सकते हैं, लेकिन असली काम करना है चारित्र्यशील, तैजस्वी समाज सेवकों को ही। सरकार ऐसों को इज्जत कर सकती है, लेकिन उन को अपने हाथ में ल कर उन से काम नहीं ले सकती।

कानून के द्वारा बड़ो या बड़ो सजा करन का मोह छोड़ ही देना चाहिए। बड़ो सजा से समाज हृदय कठोर होता जाता है और जि हैं बड़ो सजा भुगतनी पडती हैं वे सजा के आदी बनते हैं। सजा की धार बूट्टी होती है और वह काम नहीं देती। और जब कानून जटिल बनते हैं तब उन का अमल करना कठिन होता है। घूसखोरी बन्ती है, पक्षपात या दुरुपयोग करने के मौके बढते हैं और सीधा-सादा समाज परेशान होता है।

कानून को सबसेसमय समझने से अथवा सबसेसमय बनाने की कोशिश से समाज में नये-नये दोष पैदा होते हैं।

हमें भूलना नहीं चाहिए कि अस्पृश्यता का शाप किसी समय सामाजिक धार्मिक कानून के हाथ का एक शास्त्र ही था जो आज स्वयं बड़ा शाप-रूप हो बैठा है।

(२६ अक्टूबर १९१७)

अस्पृश्यता निवारण में नया खतरा

अमुक जाति में या वर्ग में जन्म होने के कारण किसी को हीन समझना या अस्पृश्य समझना मानवता का द्रोह है। इसलिए धर्म की परिभाषा में हम उसे अधर्म और पाप कहते हैं। मानवता या सामाजिकता की परिभाषा में उसे हम गुनाह कहते हैं।

एक समय था जब चर्चा बहुत चली कि अस्पृश्यता दूर करने के लिए कानून किया जाय या हृदय-परिवर्तन और मतिपरिवर्तन का सहारा लिया जाय ?

जब तक इस बारे में समाज का मानस जागृत नहीं था, धर्मबुद्धि मलीन थी तब तक कानून बनाना मुश्किल था। विदेशी राज के सहारे हम कानून करने तो गायद समाज पर यह जुल्म हुआ ऐसा ही जनता का अभिप्राय हो जाता। सत्तों ने धर्मपुस्तकों ने और सामाजिक सुधारकों ने लोकमानस का जागृत किया। महारमाजी ने धर्म के साथ राजनीतिक जोर लगाया और सारे राष्ट्र की धर्मबुद्धि जागृत की और अस्पृश्यता दफना दी।

यै देण विभेग के लोगो के अभिमान के भाव समझाना है कि अस्पृश्यता निवारण का कानून हमारी राष्ट्रीय विधा का ममान सर्वाभिमति का पाग किया है। एक भी सम्म्य न विगड मान गही किया। इगता ही नहीं एक भी सम्म्य टटस्थ न रहा। आज द्वा के पछान भागों में, गाग कर के गावों में छय भी अस्पृश्यता का पालन कही नहीं होना है। क्योंकि लोग पुराना ऋद्धि—धम के नाम खलो हुई ऋद्धि आगानी से छोड नहीं सकते। और पञ्च जानियाँ धरती उच्छता के धमड को आगानी से छोड नहीं सकती।

ऐसी हालत में कानून और मतपरिवर्तन दोनों उपायों से अस्पृश्यता के छय अवशेष दूर करन है। जो लोग ह्दयपरिवर्तन के रास्त जाने ह उन को चाहिए कि वे कानून को मञ्ज ले कर गुनाहगार को सजा करने की कोशिश न करें। लेकिन धारो के समाजमवक और सोहनता जहर कानून का सहारा ले कर अनाथों का और पीडितों का रक्षण करें। जिन लोगो को राज खलाना है देण के विधा को जीवित रगना ह उन को तो जागरूक रह कर निभयता से छलूत आदि दबो हुई जातियों या और व्यक्तियों का रक्षण करना ही चाहिए।

जो लोग सरकार के नीकर हे प्रजा का नमक खाने हैं और कानून का पालन करने के लिए बंधे हुए हैं वे तो कानूनभंग को तनिक भी बरदाश्त न करें। वे तो पुराने मतवादियों को कह सकते हैं कि जो कानून आप को पसंद नहीं उसे बदलने की कोशिश जहर करें। लेकिन जब तक कानून कानून है तब तक उसे अमल में लाने के लिए हम बंधे हुए हैं। इस बात में अगर हम ने ढील की तो स्वराज स्वराज नहीं रहेगा।

असल में कानून तो राष्ट्र की 'यायबुद्धि, धमबुद्धि और मानवता को समझ कर उस पर अपनी मुहर लगाता ह। उस मुहर का आदर हरएक को करना ही चाहिए। जिन के मन में कानून के प्रति सवमाय आदर नहीं है विचारपूर्वक और निष्ठापूर्वक लाग कानून का पालन जो नहीं करते उन्हें कानून के खिलाफ सत्याग्रह करने का अधिकार ही नहीं रहता। ऐसे लोग जब कानून का भंग करते ह तब वे सत्याग्रही नहीं कि तु मामूली गुनाहगार ही होते ह।

अस्पृश्यता निवारण का काम कब का खतम हो जाना चाहिए था। स्वराज सरकार इस बात में अगर जोर न लगावे और अस्पृश्यता निवारण नाम से एक कायमी महकमा चलावे और बजट में उस के लिए आर्थिक प्रबन्ध कर रखे और उतने से सत्तोप माने तो सरकार की नीयत पर किसी का विश्वास नहीं होगा। अस्पृश्यों की ओर से बोलनेवाले लाग का सत्तोप और वोट पान के लिए सरकार अगर प्रजाकीय धन का कुछ हिस्सा उन्हें देती रहे तो अस्पृश्यता

दूर तो नहीं होगी लेकिन सम्भव है अस्पश्यता मजबूत ही बनगी। अस्पश्यता के खिलाफ बोलनवालों को एक व्यवसाय मिलेगा और रुढ़िवाणी कहेंगे कि अगर अस्पश्यता चलागे है तो अस्पश्यता निवारकों की उन्नता रुम करने के लिए उन्हें कुछ-न-कुछ अवश्य दना चाहिए। रुढ़ि की रक्षा के लिए इतना धन का व्यय बहुत नहीं है अस्पश्यता पाप है बल्क है गुनाह है ऐसी बातें चन्द लोगों के मुँह से सुननी पड़ेगी अखबारों में पढ़नी पड़ेगी। उस व आदी हम बन जायेंगे।

अस्पश्यता कानून से दूर हो चुकी है। उस की धार्मिक बुनियाद टूट गयी है। अब जो लोग आज तक अस्पश्य गिने जाते थे उन में तेजस्विता आनी चाहिए। उन को कहना चाहिए कि हम अस्पश्य नहीं हैं। कोई हमें अस्पश्य कहेगा तो हम उस चीज का बरदाश्त नहीं करेंगे। गिन्या पाने के लिए और अपनी माली हालत सुधारने के लिए जो कुछ सीधी मदद मिल सकेगी हम जरूर लेंगे। लेकिन अस्पश्यता स्वोकार करने के लिए अगर हमें कोई घूस देगा तो हम उस नहीं लेंगे। लोगों की न्या पर जीने के दिन अब चले गये हैं। सबकों का ह्यपरिवर्तन करने का काम सबण करें। उस के लिए सरकारी पैसा खच नहीं होना चाहिए। अस्पश्यता निवारक प्रचार के लिए न हम सरकार से पैसा लेंगे न और किसी को देने देंगे न मरवार को देने देंगे। सामान्य समाज के साथ एक रूप हो जाना यही हमारा एकमात्र उद्देश है। हमारे अंदर जो अस्पश्यता पायी जाती है उसे दूर करने का काम हमारा है। उस के लिए हम किसी से पैसा नहीं माँगेंगे। पैसा ले कर किये हुए प्रचार में जान नहीं आती तेजस्विता नहीं आती। भाडूती प्रचार से दो नुकसान होते हैं। घमबुद्धि से न्यायवृत्ति से चलाया हुआ तेजस्वी प्रचार फीकी पड़ जाता है और कानून भी कमजोर होता है। भाडूती प्रचारकों को कहना ही पड़ता है कि कानून निर्धार्य है।

अस्पश्यता निवारण के प्रचार के नाम पर सरकार की आर से जो पैसा खच होना है वह पैसा बरबाद ही जाता है और अस्पश्यता निवारण का काम कमजोर होता है।

महारामा गांधी अर्थों के पण्यप्रताप से जो मावभौम कानून बना है उसे जीवित रखना है प्रभावशाली बनाना है। साथ साथ गांधीजी ने अपनी तेजस्विता से जो प्रचार फाय किया उसी को गांधीजी के ही ढंग से आगे चलाना है। पाँच बरस के अंदर इस काम को पूरा कर के दूसरे मन्त्व के काम की आर राष्ट्र का ध्यान बढ़ित करना चाहिए। ऐसा नहीं किया तो सामाजिक जीवन सड़ जायगा और स्वराज खतरे में आवेगा।

(२४ फरवरी १९१६)

पुराना रास्ता नहीं चलेगा

हरिजनो के प्रति आज तक कम अयाय नही हुआ ह। आज भी हो रहा ह। यह अयाय सामाजिक है। उमे धम का आधार दिया गया यह सब से बनी भूल हूँ। अधम हुआ। इस अधम को इस अयाय को दूर करने की कोशिश अनेक स त महात्माओ ने की। अब तो सारे राष्ट्र ने प्रायश्चित्त की पीछा ली ह। हरिजना के नता भी आत्मानति का प्रयत्न कर रहे हैं।

अस्पश्यता निवारण का प्रयत्न महात्माजी जसे चन्द लोगो ने किया। लेकिन उन का अमल तो मारे राष्ट्र ने किया ह। अमेरिका जमे सुशिक्षित देश में भी नीग्रो के प्रति पूण याय का बरताव करने के लिए वहाँ के सेनेट क सब सदस्य तयार नही ह। चन्द पक्ष में है चन्द रूढिवादी विरोध में ह। जिस तरह भारत अनेक राज्या का बना हुआ देश ह उसी तरह अमेरिका भी अनेक राज्यों का— (स्टेट्स का) देश ह। चन्द स्टेट्स नीग्रो को पूणतया अपनाते को तयार ह। चन्द स्टेट्स नही है। ऐसे राज्य (स्टेट्स) केन्द्रीय सरकार को अपना करने को भा तैयार हुए। उन को दवाना पडा। केन्द्रीय सरकार उन्हें परा दवा भी नही सकता।

भारत की स्थिति ऐसी नही है। यहां के सब राज्य सब प्रांत और सब पक्ष क नेता अस्पश्यता निवारण क बारे में एकराय ह। देश के धार्मिक नेता भी अब अस्पश्यता निवारण क बारे में अनुकूल हो गये ह।

ऐसी हालत में जब देश के सब के सब प्रधान तत्व प्रायश्चित्त-मनोत हो रहे ह देश के प्रति समाज क प्रति समाज की याय बुद्धि के प्रति धमबुद्धि के प्रति अविश्वास टियाना अंधे स्वाध का लक्षण होगा पीछदष्टि का अभाव होगा और मनुष्य हृदय क प्रति नास्तिकता का पाप होगा।

विदेशी राज्यकर्ताओं ने भारतीय समाज को कमजोर बनाने के लिए उस में फूट डाली। जहाँ हमारी सामाजिक या धार्मिक कमजोरी देखी उमे बनाने की कोशिश की। हर समाज को अलग-अलग बनाया। हिन्दुओं के हाथ में मुसलमाना का हित मुरक्षित नही ह इन लोगों के हाथ में ईसाइया का हित मुरक्षित नही ह ऐसी बातें फल्यो। पागसियों को भी बहकान की कोशिशें हुई। आसाम के और

पूव भारत के आदिवासियों को अलग करने में विदेशी मिशनरियों का बहुत-कुछ सफलता भी मिली । और हरिजन हिंदू ही नहीं है ऐसी भूमिका खड़ी करने की आखिरी कोशिश ब्रिटिश सरकार ने कर के देखी । गांधीजी ने प्राण की बाजी न लगायी होती ता अंगरेज इस में सफल हो जाते । अंगरेज मुसलमानों का देश के बंटवारे तक ल गये । लेकिन भारत में तो देश का नहीं किन्तु समाज का बंटवारा अब भी चलाने की नीति पायी जाती ह । इसे अगर हम रोक्के नहीं तो सारा राष्ट्र कमजोर होगा और आखिरकार तितर बितर हो जायेगा ।

देश के सविधान में जब हर एक आदमी को मताधिकार—वाट—मिला ह तब देश में जिन की बहुमती ह ऐसी पिछड़ी जातियों को विशेष विधासी अधिकार क्या दिये जायें ? सब देना जाये ता देश के सावभौम अधिकार अब सावजनिक वोट के द्वारा, बहुसंख्यक पिछड़ी जाति को मिल ही चुके ह । उन को इस सावभौम अधिकार क उपरान्त विशेष अधिकार देने से उन को सावभौम शक्ति बनेगी नहीं किन्तु घटेगी । और हमेशा के लिए वे लगड रहेंगे । जिस समाज ने और जिन देश के नेताओं ने उन को याद देने क लिए इतनी कोशिशें की ह उन पर अविश्वास करना हरिजना के हित की बात नहीं ह । और मुख्य बात तो दूसर किसी पर विश्वास रखने की ह नहीं । अपनी सख्या और अपना जागृति पर ही वे विश्वास रखें तो काफी ह ।

और म तो इस के आगे जाकर हरिजन-नेताओं को यह समझाने की कोशिश कर रहा हू कि जब तक वे गैडयूल कास्ट यानी हरिजन होकर रहेंगे तब तक वे एक छोटी सी जमात ही रहेंगे । जिस दिन वे अलूतपन की बात भूल कर विराट पिछड़ी जाति में घुल मिल जायंग तब देखते देखते व एक प्रचण्ड बटुमन के नेता बनेंगे । और तब सार देश का नतूत्व भी उन के हाथ में आ जायगा ।

हरिजनों क लिए कानून या विधान के द्वारा खास स्थान सुरक्षित रखने से उन का हालत आश्रितों की जसी हो जातो ह । इस स चर्द नेताओं को घाडा कुछ लाभ होगा जरूर, लेकिन वह व्यक्तिगत लाभ होगा । सार हरिजन समाज की स्थिति उस स सुधरेगी नहीं । जब व विराट पिछड़ी हुई जातियां वे स्वाभाविक और लाकमाय नेता बनेंगे तब उन में नया तेज आयेगा और उन की अस्पश्यता अपने ही आप नष्ट हो जायगा । सविधान की महरखाना स जा अधिकार उन्हें मिलेगे व अधिकार कमजोर लोगों के अधिकार हैं धान में दिये हुए अधिकार ह । जब वे अपनी आन्तरिक शक्ति क द्वारा अपने स्वाभाविक अधिकार चलायेंगे तब उन क जीवन म इतना तेज आयेगा कि उन्हें दूर रखने की कोई हिम्मत ही नहीं करेगा ।

पुराना रास्ता नहीं चलगा

अस्पृश्यता दूर करने का एक उत्तम तरीका है आंतरजातीय विवाह का । आज की समाज रचना देखते देश में हजारों और लाखों आंतरजातीय विवाह हो नहीं सकेंगे । उस की जरूरत भी नहीं है । लेकिन जब तक हरिजन अपने को अछूत जाति के मानेंगे शौचयूल में होना का दावा करेंगे तब तक मिश्र विवाह होने में वही एक बड़ी रुकावट रहेगी । अनुभवों लोगो न कहा है कि मनुष्य की जसी श्रद्धा होगी वैसा वह बनता है ।

हरिजना की सबसे बड़ी आवश्यकता है हर तरह की शिक्षा की । अपने लड़कों को और खास कर क लड़कियाँ को हर तरह की शिक्षा अधिक से अधिक देने की कोशिश करें । हरिजना की बुद्धिशक्ति और किसी भी जाति से कम नहीं है । अगर उन में महत्वाकांक्षा आ गयी तो चाहे जितने ऊँचे वे पहुँच सकते हैं । सरकार की अपनी नीति स्पष्ट करनी चाहिए कि नौकरी देते समय आवश्यक योग्यता होने पर ही हरिजनो को प्रमुखता दी जायगी । उच्च श्रेणी की नौकरियों में बवल योग्यता का ही ग्याल रखना चाहिए । राष्ट्र का हित उसी पर निर्भर है । तीसरी श्रेणी की नौकरियों में स्पर्धा कम तत्त्व बहुत होता है । वहाँ पिछड़ी हुई जातियाँ के लिए खास स्थान मकरर रखा जाय । पचास प्रतिशत नौकरियाँ पिछड़ी हुई जातियों के लिए रखी जाय तो बुरा नहीं है । चौथी श्रेणी की नौकरियों में पिछड़ी हुई जातियों के लोग ही अक्सर भरती होते हैं । वहाँ तो कुछ करने की आवश्यकता नहीं रहती ।

सब पिछड़ी जातियों का घर बनाने के लिए औद्योगिक प्रगति के लिए जीवन में सहकार का तत्त्व बढ़ाने के लिए हर तरह की मदद देनी चाहिए ।

अस्पृश्यता निवारण के दार में समाज को समझाना का काम तनटावाह पान वाले प्रचारकों का नहीं है । वह काम तो देग के नेताओं का है । जिन लोगो न हरिजनों की, आदिम जाति गिरिजनों की और इतर पिछड़ी जातियों की दस दस, बीस बीस बरस सेवा की है वे ही स्वाभाविक नेता हैं । लेकिन एम लोगो की प्रतिष्ठा अब कम हो गयी है । धन के लिए उन्हें सरकार के पास जाना पड़ता है । अब नेतृत्व है उ हीं मिनिस्टरो का और सरकारी अमलदारा का त्रिन के हाथ में सरकारी सत्ता और सरकारी पैसा है । पिछड़ा हुई जातियों को उन की जातिगत सस्थाओ का अनुदान के रूप में प्रजा का पैसा देकर लोकप्रिय बनना आसान है । लेकिन उस में सेवा नहीं है । अगर राष्ट्र के सब नेता समय समय पर गाँव-गाँव में जाकर लोगो को सहानुभूति दिखावें और अज्ञान लोगो का समाज के आदग समता देवें तो बहुत कुछ हो सकता है । स्वदेशी अमलदार समाज के ऊपर काफी प्रभाव डाल सकते हैं । अस्पृश्यता अगर गाँवों में अभी

तक रही हो तो उस का कारण यही है कि हमारे अमन्दार और मंत्री अपने सामाजिक कर्तव्य का पालन नहीं करते ।

(१२ मई १९१६)

इजन के डिब्बे

एक एक सवाल को हल कर के उस से छुट्टी पाना और फिर दूसरे सवाल हाथ में ले कर उन का भी निबटारा करना हम लोग जानते ही नहीं । समाज जड़ता से मरा हुआ है । किंवा सत-महात्मा ने पोछे से घबेल दिया तो थाड़े आगे बढ़ेंगे । जड़ता को भी एक गति हाता है जिस जंगरजी में inertia कहते हैं । यह जड़ गति जब तक टिकती है समाज कुछ आगे बढ़ना है और फिर चतय के अभाव में ठहर जाता है । इस के बाद जा प्रगति होता है वह विचारपूर्वक नहीं हाता । पुराना आग्रह नहीं रहा गिथिचना आ गयो, इस लिए पुरानो भलो बुरी बहुत सी चीजे छूट जाता है । धर्म सुधार की बात हो या सामाजिक सुधार की, जड़ता और शिथिलता के कारण जो कुछ भी परिवर्तन हा सनता है समाज को मजूर है । किसी चीज को पकड़ रखन के लिए भी चीय शक्ति की आवश्यकता होनी है ।

जमी आगरा में एक निष्ठावान भूदान, ग्रामदान कार्यकर्ता ने बडे दद के साथ पूछा कि भूदान ग्रामदान की प्रवृत्ति अब पहल का तरह नहीं चल रही । उस में काफी शिथिलता आ गयो है । इस का कारण क्या और इलाज क्या ?

बात सुन कर दु ख हुआ लेकिन आश्चर्य नहीं । म ने कहा कि हर प्रवृत्ति में ऐसा ही चलता है । वारिग के ही दिन लीजिए । जब वारिग गुरू होती है कुछ दिन के लिए वारिग अच्छो होती है बाद में कम होती है और अन्त में घुपकाल आता है । पाना कम हो जाता है । और फिर दूसरी बपा का राह खवनी पडता है । हमारा समाज इजन के डिब्बे जसा है । इजन खीबता है तब तक डिब्बे चलत है । इजन के छूट जाने के बाद जडगति के कारण विना इजन के डिब्बे भी कुछ हद तक दौडते रहते हैं और बाद म बन्द होते है । इसी तरह वाह्य प्रेरणा जब तक काम करे कुछ होता है । नहीं तो जडगति और जडस्थिति— यही हमारे जीवन के सामान्य नियम है । हमारे युद्धो में भा जब तक सनाप्रति

सलामत ह, फौज लडगी । सेनापति मारा गया या गायब हुआ तो उस का स्थान
 कार्द नहीं लगा और लिया तो सफल नहीं हो सकेगा ।

[गिफ एक ही एक इस का एक अपवाद पाया गया । अंगरेज न एक
 भारतीय फौज अफगानिस्तान की ओर भेजी थी । अंगरेज सेनापति मारा गया
 और सना तितर बितर होने की तयारी में थी । लेकिन एक भारत का डॉक्टर,
 जो फौज के साथ था लेकिन फौजी आदमी नहीं था उस ने स्वच्छा से सना का
 नतुत्व किया । लोगों में आत्मविश्वास आया । व बहादुरी से लड़ और विजय
 पा कर लौटे । अंगरेजों ने इस डॉक्टर की सज्जन कीर्तिवर का काफ़ी
 प्रशंसा की ।]

मैं न जवाब में बहा, भूदान ग्रामदान की सफलता सारी दुनिया में एक
 चमत्कार ह । श्री विनोबा लोगों की दानशक्ति त्यागशक्ति पहचान कर और उसे
 जागृत कर सके यह उन की बड़ी आस्तित्वता ह । योग्य आदमी की प्रेरणा
 मिलते ही हमारा जनता अपना मामूली स्वभाव छोड़ कर चाह जितनी ऊँचा
 उठ सकती ह ।—यह ह सच्चा चमत्कार ।

इस तरह चैतन्यशक्ति और जडशक्ति का सघप हमें चलता रहता ह ।
 सम्भव ह कि विनोबा के काय के बाद यानी विनोबा से प्रेरणा पा कर जिन
 हजारों लोगों ने और ग्रामों ने जो विचार परिवर्तन कर लियाया जो जीवन
 परिवर्तन किया उस के प्रभाव से सरकार में नयी हिम्मत जायगी और कानून
 बनाय विना भी सरकार जमाने वालों को और ग्रामों को समझा कर जरूरी
 परिवर्तन कर देगी जमे भारत सरकार हमारे राजाओं को समझा सके कि सिर
 पर का मकुट उतार देन में ही खरियत ह ।

अमरिका में नोगो गुलामी को गुलामी शुरू शुरू में एस ही दूर हो सकी ।
 बाद में दक्षिणी राज्यों ने समय को नहीं पहचाना इस लिए आब्राहम लिंकन को
 बाकायदा युद्ध करना पडा ।

गांधीजी ने अस्पश्यता निवारण के काय को राजनीतिक क्षेत्र में स्थान
 दिया । स्वराज्य प्राप्ति का उसे एक अविभाज्य अंग बनाया । कुछ प्रगति हुई ।
 अंगरेजों ने अपने स्वभाव के अनुसार हरिजनों को खरीदने की कोशिश की और
 उन्हें अपनी निष्ठा बेचने का धर्म सिखाया । जो नतिक प्रवृत्ति थी उस बाजारू
 रूप आ गया । अस्पश्यता निवारण का काम नतिक रूप से होना चाहिए था ।
 अंगरेजों ने उसे भ्रष्ट किया । स्वराज्य प्राप्त ही अस्पश्यता निवारण का काम बानूनी
 ढंग से हम कर सकें ।

माघ माघ गिरिजनों के उद्धार का काम भी राजनीतिक ध्येय में आया। उस के बाद बाक़ी की पिछली हुई जातियों का सवाल भी राजनीति ने अपने हाथ में ले लिया। इस से सब जातियों की स्थिति तो कुछ सुधर गयी। आइए जोरा से सुपरगो भी लेकिन सवाल हल नहीं हुआ। न किमी की मानव गुडि हुई न किमी के जीवन में परिवर्तन हुआ। वह काम अब करने के लिए सोचो।

यह काम अब भाषण देन में और हस्तपत्रक संप्रदान से होना चाहिए। समाज को और सरकार को चाहिए कि वह समाज का एक छोटा सा सारा हिस्सा अपने हाथ में ले कर उसे एक-दो बरस में और बहुत ता एक पंचवारिक योजना में हल कर व ही छोड़ें।

यह काम हम भगिया की अस्थायता दूर कर उन का जीवन सुधारने का। इस के लिए सामाजिक तनाव का प्रयोग करना पडगा।

जो लोग जन्म से यानी परम्परा से भगो है गरीब का पना कर रहे है ऐसा को दूसरो कोई नीकरा दे कर, उन से भगो काम जबरनस्तो छुटवाना चाहिए। अब हम लान्नों गणार्थियों का अपने समाज में समा मके और उन की आजीविका का सवाल कुछ न कुछ हल कर सके, तब भगिया का सवाल हल क्यों नहीं हो सकता? इस में सबण समाज का जितना विरोध होगा उतना भगियों की आर म भी विरोध होगा। भगोजाति क ननाआ का हम में कमीटी हागी। जाति का नाम उ कर सब कुछ पान को वे तैयार हैं तो इस आजीविका परिवर्तन के लिए उन को अपने गरीबों को सफलतापूर्वक तयार करना ही चाहिए। नहीं तो अपना नेतृत्व छोड़ दें।

भगियों का सवाल गरीब का नहीं गरीबों का है। अमेरिका में लोग यही सवाल पूछते थे कि नीकरा को मुक्त करने पर जो काम वे करते आये है आइदा कौन करेगा? जवाब यही हो सकता है कि जिन का गरज है वे करेंगे। अगर रसाई बनाने का काम स्त्री जाति और रमोइषों न उाड लिया तो रसाई बनाये बिना दुनिया घा भी रहने वाली है? कुछ रास्ता निकल हा आयगा। चमार के व्यवसाय में मुनाफ़ा है यह देख कर सब जाति के लोग चमार काम करने के लिए घेरें घेर तयार हो रहे है। जूते के बिना गाय मनुष्य का काम चल सकेगा। गन्गी (टट्टियाँ) साफ किये बिना वह दस दिन भी नदी चलेगा। लोग रोग के गिकार बन कर मरन लगेग। हम नहीं मानते कि समाज क नता और समाज क सेवरु ऐसी नीबत आने देंगे। भगो काम जो आज इतना गन्ना है और जा करने के लिए भगी ही तयार है देखते खते विपान को मदद म मुपर जायेगा। विद्वान् लोग अपना विभाग चलायेंगे। नगरपालिकाएँ बर वर पुरस्कार दे कर

नये नये आविष्कारों को प्रोत्साहित देंगे। वह लोग इस आन्दोलन से लाभ उठा कर विलायत की यात्रा कर के वहाँ से सबका मोचन आयेंगे। लेकिन कुछ इलाज अवश्य होगा इतना निश्चित है।

भगियों को गन्गी की सफाई के काम से हटवाना, यह एक काम—और 'उन के रहने का मकाना की समस्या' हल करना यह दूसरा काम इतना अगर हमारा प्लानिंग कमिशन तीन या पाँच साल के अन्दर नहीं कर सके तो वह राष्ट्रीय सबोट का निवारण क्या कर सकेगा ?

गांधीजी होते तो ऐसी कुछ पंचवर्षीय योजना ले कर उसे हल कर के दिखाते। अगर आज जवाहरलालजी इसे सफल बनाने का निश्चय करें तो भी वह हो सकेगा। हमारा समाज और सरकार के इज्जत के ही हैं। बाकी सरकारी सारा तंत्र इज्जत के पाछे गौड़ने वाले अच्छे अच्छे डिब्बे के समान है।

अस्पृश्यता का हडक

बुद्ध भगवान् सनातन हिन्दूधर्मो धारणिय थे। कहते हैं उन के मन में कुलाभिमान भी था। लेकिन किसी भी जाति के प्रति उन के मन में तिरस्कार नहीं था। हिन्दू समाज में धार्मिक, दार्शनिक और सामाजिक सुधार उहाँ ने किये। अस्पृश्यता-निवारण के प्रयोग तो उहाँ ने किये ही होंगे। उहाँ ने ब्राह्मण और चाण्डाल शत्रु की नयी 'पारिया की। उन के अनुयायियों को नाम मिला बौद्ध। लेकिन वे हिन्दू समाज से अलग नहीं हुए थे। हिन्दू समाज के वे सुधारक थे।

धीरे धीरे बौद्ध धर्म हिन्दुस्तान के बाहर गया। उस में शाक्त धर्म का मिश्रण हुआ। शाक्त धर्म पूरा पूरा हिन्दू ही था और है। जिस धर्म का प्रचार नेपाल, तिब्बत चीन मंगोलिया कोरिया जापान आदि देशों में फल गया—उसे महायान कहते हैं। इन के प्रधान ग्रन्थ सस्कृत में ही हैं। इस लिए ऊपर के सब देशों के लोगों को हम हिन्दू कह सकते हैं। लेकिन वे अपने को अलग मानें तो उन्हें हम जबरदस्ती हिन्दू थोड़े ही कह सकते हैं ?

सोलोन (लका) ब्रह्मदेश कम्बोडिया आदि प्रदेश के बौद्ध लोग हीनयान पक्षी हैं। वे अपने को कभी भी हिन्दू नहीं कहेंगे। उन की भूमिका ही प्रोटेस्टेंट भूमिका है।

मने मान लिया था कि बौद्ध धर्म में हिन्दुओं के कुछ कुछ दोष तो जरूर पहुँच गये होंगे लेकिन अस्पृश्यता से बौद्ध लोग मुक्त ही होंगे। लेकिन देखा कि जापान में ईता कर के एक अस्पृश्य जाति है। उन का पेशा खटीक (कसाई) का था।

हमारे यहाँ के अस्पृश्यो ने सब तरह के अयाय और अपमान सहन किये, लेकिन वे हिन्दू धर्म में ही रहे। उन की श्रद्धा और निष्ठा का फल हिन्दू धर्म के भगवान् ने उन्हें दे दिया। हिन्दुआ के सत्त महर्तों ने सुधारक और महात्माओं ने अस्पृश्यता के खिलाफ अबरदस्त जेहाद चलाया और अब तो सारे राष्ट्र ने सर्वानुमति से घोषित किया कि किसी को जाति के कारण अछूत समझना गुनाह है और उस के लिए सजा हो सकती है। अब अस्पृश्यता के अयाय का सामना करने के लिए धर्मान्तर करने की आवश्यकता न रही।

इस के पहले चन्द अछूतों ने अपनी अस्पृश्यता दूर करने के लिए इस्लाम का स्वीकार किया। जब पश्चिम के गुरो का राज इस देश में हुआ तब कई अछूतों ने अपनी मुक्ति के लिए ईसाई धर्म को स्वीकार किया।

लेकिन धर्मान्तर करने पर भी कहीं-कहीं उन की अस्पृश्यता न गयी। जो सबण हिन्दू ईसाई हुए वे हरिजन ईसाइयों को पहले पहल अपने मन्दिर-चर्च में भी नही आने देते थे। बाद में मन्दिर में तो आने दिया, लेकिन उन को अलग बिठाते थे। कहीं-कहीं सबण ईसाइया की कब्रस्तानें अलग और हरिजन ईसाइयों की कब्रस्तानें अलग। कहते हैं कि आज भी ऐसा भेद दक्षिण भारत में कहीं कहीं पाया जाता है।

खर। धर्मान्तर करने पर भी अस्पृश्यता ने उन को नही छोडा। तो भी इस्लाम में या विश्वासी धर्म में अस्पृश्यता को मायता जाहिरा तौर पर नही है।

अब हरिजनों के चन्द नेताओं ने सोचा कि हम जब तक हिन्दू हैं, हमारी अस्पृश्यता टलने की नही। इस लिए हम धर्मान्तर करें। वे बौद्ध हुए, नवबौद्ध हुए। हिन्दू न रहे।

अब सरकार कहने लगी कि जिन लोगों ने धर्मान्तर किया वे हिन्दू न रहे। इस लिए अछूतों को जो विशेष अधिकार या सहूलियतें मिलती हैं, तुम को नही मिलनी चाहिए।

जो अछूत मुसलमान या ईसाई हुए वे अपने को शेड्यूलकास्ट में शुमार नहीं करने। उन को अछूतों की सहूलियतें नही मिलतीं, न वे माँगते हैं। अगर वे माँगेंगे तो उस का अर्थ यही होगा कि या तो वे अपने को हिन्दू मानते हैं अथवा उन्होंने अस्पृश्यता की बुराई इस्लाम में या ईसाई धर्म में ले जाना पसन्द किया। स्वयं तो अस्पृश्यता से मुक्त नही हुए किन्तु एक मुक्त धर्म को उन्होंने अस्पृश्यता के पाप से भ्रष्ट कर दिया।

सुनता है कि बम्बई की सरकार कई नव-बौद्ध सरकार से कहते हैं कि हम ने धर्मान्तर तो किया, लेकिन हमारी अस्पृश्यता गयी नहीं है इस लिए हमें शेड्यूल-

कास्ट के जो विशेष अधिकार मिलने से, सूर्यसिद्धि मिलती है, आदर भी मिलती चाहिए ।

सरकार इन्हें गाराज क्यों करे ? जो लोग अस्पृश्यता की चेष्टा में रहता पादते हैं वे सचमुच हिन्दू मिटे ही नहीं । मुझ भगवान् जैसे हिन्दू से, बड़े से भी हिन्दू ही है ।

अब वे अस्पृश्यता छोड़ धर्म में लगे गये । जो छोड़ जमात अस्पृश्यता के पाप से मुक्त हो, यह पैती ग रही ।

पता नहीं कि जब मय-बौद्धों को आत्मा के अधिकार मिल रहे हैं तब जो अस्पृश्य ईसाई बन गये या मुसलमान बन गये वे भी अगर मय-बौद्धों के जैसे रोड्फूलकास्ट की चेष्टा में घुसता पाहे तो सरकार उन क इस दावे को मान्य रतोगी या नहीं । घुसाव के लिन जब आयेंगे तब यह सवाल अवश्य उठेगा ।

हमारा तो स्पष्ट अभिप्राय है कि अस्पृश्यता के दैत्य को मष्ट करने का कसम्य हिन्दूधर्म का ही है, हिन्दू समाज का ही है । हिन्दुओं का पाप हिन्दू ही हो सकते हैं । हम अपने लोगों को अस्पृश्य बनाने का पाप कर ही चुके, साथ साथ इस्लाम, विद्यापी धर्म और बौद्ध धर्म को भी इस बात से मुक्त नहीं रहने देंगे और यह विचित्र प्रयत्न सबर्णो सन्तानियों के द्वारा नहीं, किन्तु जो आज तक अस्पृश्य गिने गये उन्हीं के प्रयत्न से अस्पृश्यता का प्रचार अथ घमियों में भी घुस जायगा । पाप का प्रचार कहीं होगा कहीं नहीं होगा कहना मुकिल ह । सब धर्मों को बचाने के लिए भी हमें अपने धर्म में से अस्पृश्यता को समाप्त करना ही चाहिए ।

(१२ मई १९६१)



पिछड़ी जातियाँ

हमारे आदिम-जाति भाई

देश की जापति के साथ हमारे आदिम जाति भाइयों की उन्नति होती देख कर खुशी होती है। हालाँकि हरिजन आदि अ्य जातियों में जितनी जापति हुई है इतनी अभी तक इन में नहीं पायी गयी है, तो भी जहाँ देखें आदिमजाति के कई लोग अपनी उन्नति के लिये कुछ न-कुछ सोचते हुए और करते हुए दीख पड़ते हैं। श्री ठक्कर बाप्पा ने महात्माजी की सहायता से जो काम शुरू किया, उसे सारे देश में इस तरह जोर पकड़ते हुए देख कर किसे खुशी नहीं होगी ?

बद लोग कहते हैं कि इन भूमिजनों का जीवन जैसा है वैसा ही रहे। यह जीवन इतना आकषक है कि उस का काव्य बिगड़ने नहीं देना चाहिए। इन रसिकों को क्या पता है कि हमारे भूमिजन भाइयों की जीवन-यात्रा कितनी कठिन और कष्टमय है ! आदिमजाति के लोगों का एक जिन्दा संग्रहालय बनाना रसिकों के लिए लाभदायी बनेगा। नृवशशास्त्री लोग के अध्ययन के लिए इस में बड़ा सुभीता होगा। लेकिन हम चाहते हैं कि हमारे इन भाइयों की उन्नति और आनन्द के सब साधन मिलें। उन का ज्ञान और कौशल्य बढ़े। जो तरह-तरह के प्रगति के और सुख के साधन हमें हासिल ह, वे सब इन्हें मिलें, और देश में इन्हें वही प्रतिष्ठित स्थान मिले जो दूसरों को आज मिल रहा है। श्री जवाहरलाल नेहरू और राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद जिन स्थानों पर आज विराजमान हैं वे सब स्थान आदिमजाति भाइयों के लिए भी खुले हैं। लेकिन उन की महत्वाकांक्षा आज वहाँ तक नहीं पहुँचती है। किसी-न किसी वक्त उन को वहाँ तक पहुँचना ही है।

आदिमजाति के लिखे-पड़े नवयुवक आज अपनी जाति की उन्नति की बातें सोच रहे हैं। यह अच्छा ही है। लेकिन केवल अपने ही लोग की उन्नति का ध्यान करने वालों का पूरा उत्कथ नहीं होता। जो लोग औरों के हित की—सारे देश के लोगों के हित की बात सोचते हैं, उन्हीं की पूरी उन्नति होती है। महात्माजी अगर सीराष्ट्र के मोड बनिया की ही उन्नति की सोचते तो विश्वबन्ध महात्मा नहीं बनते। भारत के सर्वोच्च सेवक जवाहरलालजी भारत की उन्नति

के लिए दिन रात लगे रहते हो ह, लेकिन साथ साथ वे दुनिया के अ प देशों की भी सोचते हैं । इसीलिए आज दुनिया में उन का इतना ऊँचा स्थान ह । और उन के कारण भारत को ओर सारी दुनिया आशा की निगाह से देख रही है । हमारे आदिमजाति भाइया की ओर बहनों की महत्वाकांक्षा की तनिक भी मर्यादा नहीं होनी चाहिए ।

इन गिरिजन और भूमिजन बंधुओं की उन्नति की बात जब हम सोचते ह, तब हमारी यह कोशिश नहीं होनी चाहिए कि हम उन्हें अपनी कोई मतमानी सूरत दे दें, उन्हें हम अपने सचि में ढाल दें । आदिम जातियाँ ईश्वर की कलाकृति हैं । उन के सामने इस युग के सब आदर्श हम प्रेम से धर दें । इन्हें जो बात पसन्द आयेगी, ले रेंगे, जो पसन्द नहीं आयेगी, छोड़ देंगे । जैसी इन की खुशी हो, वसा अपना विकास-क्रम वे पसन्द करेंगे ।

आज इन के आसपास की दुनिया जारों से आगे बढ रही ह । उन्हें इस की पूरी जानकारी नहीं ह । कई स्वार्थी लोग इन भोले लोगों की अज्ञानता से लाभ उठाते हैं, इन का शोषण करते हैं । इन्हें बचाना हमारा प्रथम कर्तव्य ह ।

इन्हें बचाने का ओर इन की उन्नति का सब से महत्त्व का तरीका ह शिक्षा । हम अपने बच्चों को जैसी शिक्षा देकर बिगाड रहे हैं, वैसी शिक्षा इन्हें देंगे तो इन का अहित होगा । इन्हें इन के जीवन के अनुरूप वही शिक्षा देनी चाहिए जो महात्मा गांधीजी ने देश के सामने रखी ह । लेकिन अगर हम इन्हें उच्च शिक्षा का रास्ता ओर सरकारी नौकरी का रास्ता बन्द कर दें तो इन का विकास रुक जायेगा । आज की शिक्षा के द्वारा बेकारी बढती जाती है । यह बेकारी की शिक्षा इन के काम की नहीं है—किसी के भी काम की नहीं ह । इन लोगों के लिए महात्माजी की बतायी हुई बुनियादी शिक्षा ही सब तरह से मुफीद ह । लेकिन हम जानते हैं कि य लाभ यह शिक्षा लन के लिए तभी तयार होग जब हमारी सरकारें घोषित करेंगी कि सरकारी नौकरी देते वकत उही की पयादा पसन्द किया जायेगा, जिहोंने बुनियादी शिक्षा में प्रवीणता हासिल की ह ।

ओर भी एक बात है । बुनियादी शिक्षा के लिये आज तक हम ने ऐसे शिक्षक पसन्द किये जो सफेदपाग जाति क थे । ऐसे लोगों की परिधम के प्रति अहंकि होती है । हाथ पाँव चलाना व अपना धान के खिलारु समझते हैं । स्वयं काम करने की अपेक्षा व दूसरों का शोषण कर अपना घर भरते हैं । गांधीजी की बतायी हुई शिक्षा ऐसा के हाथ में सलामत नहीं ह ।

आइए हम गाँव के ओर देहातो के कारीगरो को बुला कर कहेंगे कि गाँव के गृह उद्पाग ओर हाथ-कारीगरी में हम आप का इस्तहान लेंगे । उस परीक्षा में

भी इन्हें समझना जरूरी है। थोटा (मज्जा) क्या चीज है, पालियामेण्ट क्या काम करती है, आयाम का इलाज कैसे हो सकता है, पचावन के अधिकार कसे और बिगन है, इन सब बातों से इन्हें वाजिक करना चाहिए।

विगन के साथ कुछ घम का मा भी गिना के द्वारा दिया जाये और धार्मिक जीवन के विनाश के लिए शीघ्र, नृत्य, नाटक और गिबकला का उपयोग किया जाये। आदिवासियों के गीत और नृत्य का सम्मान तो हम करते आये हैं। लेकिन इतना जाती नहीं है। जहाँ वहाँ इन के गीत और नृत्य संस्कारी और आरपक है वहाँ उन को अपनाते जा, फैलाने का प्रयास हम करें, यह भी इतना हो सकता है। जब य दमोंगे कि उन के पास देने सायक भी कुछ है जो हम उन के पास से सीखते हैं तो उन का आत्मविश्वास बढ़ता और हमारे साथ घुलते मिलते हुए उन को संकोच नहीं रहेगा।

गिरिजनों को और भूमिजनों को लाग जगलो कहते हैं। जंगला के साथ का घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है इन अर्थ में इन्हें हम जंगली कह सकते हैं। लेकिन धर 'जंगली' का अर्थ अमस्कारी है, तो यह सम्बन्ध इन आदिवासीयों के लिए बिलकुल अनुचित है। इन का सामाजिक संगठन, इन की सस्वनिष्ठा, सुले निष्ठ से बात करने का इन का तरीका, जहाँ विश्वास बठ गया वहाँ इन की असाधारण निष्ठा—ये सब ऊँची सस्वकारिता के लक्षण हैं। परिमित साधना के द्वारा ये लोग जिस तरह अपनी जीवन-समस्याएँ हल करत हैं, उस में भी इन की सस्वकारिता और शक्ति प्रकट होती है। प्रामोद्योग में इन की प्रवीणता और कला-बौद्ध्य बढ़े ही आरपक होते हैं। इन के औजार, इन के वाजिक इन के गिवार के साधन आदि हर बात में इन की सस्कारी सफलता पायी जाती है। इन की धनाया हुई कलायुक्त चीजें हम केवल संग्रहालय में न रखें। हजारों घरों में भी उन का इस्तेमाल बढ़ाना चाहिए।

आदिवासियों के धार्मिक रयालों का हमें आदरपूर्वक अध्ययन करना चाहिए। ईसाइयो ने उन के बाब घम प्रचार बहुत किया है। दो करोड आदिवासियों में से चार लाख आदिवासी ईसाई बन चुके हैं। जो घम हमारे इन भाइयो ने अपनाया उसे हम अब परामा घम नहीं कह सकते। ईसाई मिशनरी भल हैं आदिवासियों के घम विचार के प्रति सहानुभूति या आदर न रखें, किन्तु हमें ईसाई घम के प्रति अनुदार दृष्टि नहीं रखनी चाहिए। दुनिया में जितन भी महान् घम हैं, हमारे आदर के अधिकारी हैं। जब दुनिया में अघम का फैलाव बढ़ रहा है, सब घमों को चाहिए कि वे अपनी अपनी सङ्कचितता छोड कर परस्पर भाई चारा बढ़ायें और सब मिल कर अघम के खिलाफ मोर्चा बाँध दें।

ईसाई धर्म प्रचारकों को हम दुश्मन क्या मानें ? अगर उन में सकुचितता है, तो वह हम अपनी उदारता के द्वारा दूर करें। भगवान् ईसा एक परम भागवत थे। उन की ईश्वरनिष्ठा अनन्य थी। वे बाल ब्रह्मचारी थे। पतितोदधारक थे। हिन्दू धर्म ने ऐसे सब सन्तों को आराध्य माना है। हम लोग जिस तरह अनेक त्योहार मनाते हैं, नाताल (क्रिसमस) का भी त्योहार मनावें। ईसा के उपदेश में कोई ऐसी चीज नहीं है जो हमें आपत्तिजनक लगे। हम हिन्दू रह कर ईसा को और ईसा के सदुपदेश को स्वीकार कर सकते हैं।

ईसाई मिशनरियों ने हमारे देश में बहुत कुछ प्रचार किया है। राज्य सत्ता की उन्हें मदद थी। और उन्होंने सेधा-फाय भी बहुत किया है। इस लिए उन्हें कामयाबी मिली। चन्द मिशनरियों की करतूत अच्छी नहीं हैं लेकिन इस से ईसाई धर्म को हम बुरा नहीं कह सकते। हिन्दू धर्म और ईसाई धर्म दोनों की दृष्टि में एक बड़ा फ़क़्र ह। ईसाई धर्म के प्रचारक कुछ असहिष्णु होते हैं। वे कहते हैं कि सत्य तो हमारे पास ही है। बाकी के सब धर्म असत्य में डूबे हुए हैं। लेकिन ख़ुबी यह है कि इन ईसाइयों में अनेक पय हैं। एक को जो बात सही लगती है, वह दूसरे को गलत लगती है। आपस में वे विवाद करते रहते हैं।

हम कहते हैं कि भगवान् की दुनिया में तरह-तरह के मानस होते हैं। ईश्वर की आर बढ़ने के रास्ते बहुत हैं। आदिवासियों में भी सदाचार की चाह है। हिन्दूधर्म में आदिवासियों के धर्म विचारों का और रूढ़ियों का तिरस्कार नहीं किया है। आदिवासियों के धर्म विचारों के लिए हिन्दू धर्म में स्थान है। अगर ठीक सोचा जाये तो हिन्दू धर्म एक विशाल धर्म कुटुम्ब है। इस में अनेक भागों के लिए स्थान है। हम अपनी उपासना में रोज़ कहते हैं "सब सन्तन की जय।" सकीण बुद्धि के लोग इस चीज का नहीं समझ सकेंगे। वे तो वाद विवाद करने को ही तयार हो जाते हैं। उन के प्रति हम दयाभाव रखें और उन से पर्चा करना छोड़ दें।

आज दुनिया में तीन धर्म अनेक देशों में फले हुए हैं बौद्ध, ईसाई और इस्लाम। तीनों के साथ हम प्रेम का सम्बन्ध रखें, भाईचारा बढ़ायें। सब धर्मों के साथ सहयोग स्थापित कर हम अपनी दृष्टि को जामन (heaven) की तरह उपयोग में लायें। जैसे हम दूध में दही का जामन डालते हैं और उस में से मक्खन निकालते हैं उसी तरह हमारी दृष्टि का जामन इस्तेमाल कर के हम सब धर्मों में से उन का मक्खन निकाल सकते हैं और अपना सकते हैं।

आज दुनिया में राजनीतिक विचारों का शगडा चल रहा है। धार्मिक हमारे आदिम-जाति माई

शागड़ों से घरी हुई दुनिया अब राजनीतिक धारों में लगी हुई है। और अब इन धाराओं का शागड़ चल रहे हैं। पूँजीवाद, समाजसत्तावादी साम्यवादी आदि के शागड़े ऐसे ही बड़े हैं जैसे घम के चले थे। अब इन में से एक रास्ता निकल आया है जिसे कहते हैं 'को-एक्जिस्टेंस' या सहपार या सह अस्तित्व, जिस के माने हैं "सेवा तुम भी रहो, हम भी रहेंगे। तुम्हारे सगूल तुम्हें मुबारक हों। हम अपने जगह, अपने उगूल पर चलेंगे। शागड़ा बन से कोई घम या कोई 'इसम' का नाश नहीं होता, किसी एक की विजय भी नहीं होती। सिर्फ शागड़ा बढ़ता है। तो क्यों न मान लें कि शागड़े का मुँह काला। शागड़ा छोड़ कर हरेक अपने-अपने रास्ते चलें। जब भगवान् सब को बरदारत करता है तो हम क्यों आराम से साय न रहें?"

अगर शागड़ा छोड़ कर सह-अस्तित्व की स्वीकार किया तो पीरे पीरे सह-अस्तित्व से सहयोग पैदा होगा। आदान-प्रदान शुरू होगा। और अन्त में हम सब-समय सब पहुँच जायेंगे।

असली बात प्रेम, सेवा, भाईचारा और सहयोग की है। अगर हम अपने सब भाइयों की सच्चे दिल से सेवा करें, उन के जीवन के प्रति मन में आदर रखें और उन के उत्कर्ष से हम खुश हो जायें तो कोई शागड़े नहीं रहेंगे।

इन दो साल हम सारे देश में सब घूमे। जो आदिम जाति लोग ईसाई नहीं बने हैं, उन की ईसाइयों के खिलाफ गिनामत है कि उन के मन में आदिमजाति जीवन के प्रति आदर नहीं है। वे अपने को थोड़ा समझते हैं और चार लाख होते हुए, दो करोड़ के अगुआ बन बैठना चाहते हैं।

स्वराज्य सरकार का राज्य जब तक अंगरेजी में चलेगा तब तक ईसाई आदिमजाति की विशेष प्रतिष्ठा कुछ न-कुछ कायम रहेगी ही। हमारी सरकार भी उन की तरफ कुछ पगपान रखती है। अगर राजकाज हिन्दी में चला तो स्थिति सुधर जायगी। "अगर ईसाई आदिमजाति की जमात अलग करो, उन के हिसाब से ईसाइयों को उन के अधिकार दे दो। और हमें अपने ढंग से जीने और बढ़ने दो। नहीं तो हमारा विकास रुक जायेगा और हम हमेशा दबे रह जायेंगे।"

जिस तरह आदिम जातियाँ अनेक हैं वही तरह उन की भाषाएँ भी अनेक हैं। इन भाषाओं का अध्ययन हमारे सेवक सा करेंगे ही, लेकिन उस के साथ हमारे विश्वविद्यालय-यूनिवर्सिटियाँ भी आदिमजाति भाषाओं का गहरा अध्ययन शुरू कर दें। पूना में डेक्कन कलेज रिसर्च इन्स्टीट्यूट के द्वारा डॉ० कत्रे इस दिशा में जो प्रयत्न कर रहे हैं वह सराहनीय हैं। हमारे आदिमजाति-सेवक उन के साथ अपना सम्पर्क शुरू करें, उन की सहायता करें और उन से सहायता भी लें।

आदिमजाति भाषाओं के लिए या तो प्रादेशिक लिपि काम में ली जाये या देवनागरी। इन की भाषा के कोश, व्याकरण और गीत-संग्रह तो नागरी में ही छपने चाहिए। ताकि उच्च और गहरा अध्ययन करने वालों को सहूलियत मिल जाये। और आदिमजाति के हुशार नवयुवकों को भी हिन्दी, संस्कृत आदि अनेक भाषाएँ सीखना आसान हो जाये।

इतने विशाल देश में आदिमजातियों का जीवन सबत्र एक-सा नहीं है। जो लोग स्वराज की नींव मजबूत करना चाहते हैं, राष्ट्र-संगठन का महत्व समझते हैं, उन को चाहिये कि वे आदिमजातियों के जीवन का अध्ययन गहराई से करें। उन की भाषाएँ कामबलाऊ नहीं—अच्छी तरह से सीखें। उन की भाषा में, उन्हीं के ढंग के नये-नये शब्द बनाने की शक्ति भी सेवकों में होनी चाहिए। उन की भाषा के अच्छे-अच्छे शब्द हम हिन्दी में और अपनी प्रान्तीय भाषाओं में क्यों न लें? उन के गीत और नृत्य भी हम अपनायें। उन के साथ धानपान का परहेज भी न हो। जिस तरह दिल्ली के उत्सव में हम इन्हें बुलाते हैं, वैसे ही हर जगह के स्थानिक उत्सव में हम इन्हें बुलायें और आमोद प्रमोद में विलकुल एक हो जायें।

जैसे हम इन की सेवा करें वैसे ही उन की सेवा लेते भी हमें सकोच नहीं होना चाहिए। आदिमजाति लोग प्रकृति के बालक हैं। वनस्पति का ज्ञान इन के पास बहुत है। हमारे वैद्य और रसायनशास्त्री इन की इस जानकारी से बहुत लाभ उठा सकते हैं।

आदिमजातियों के शिक्षण क्रम में भी हमें इस बात का खयाल रखना चाहिए कि इन का जीवन एक पशु पत्नी, वनस्पति और खनिज द्रव्यों के साथ क्यादा सम्बन्ध रखता है। इसलिए इन की वनस्पति विज्ञान, पशु विज्ञान, खनिज विज्ञान आदि शास्त्रों का अच्छा परिचय कराना चाहिए। कोयले के या लोहे के खदान में इन लोगों को मजदूरों के तौर पर हम रखते हैं इतना काफी नहीं है। अगर इन में-से अच्छे होनहार नवयुवकों को हम खदान काम 'माइनिंग' और खनिजशास्त्र 'मेटालर्जी' में प्रवीण होने का मौका दें तो इन के प्रति बहू-लाभ होगा, और इन से राष्ट्र की अच्छा सेवा भी हो सकेगी। चन्द युवकों को हम जर्मनी रशिया और अमेरिका भेज दें और वहाँ की विद्या स्वदेश में लाने का बहुमान इन्हें प्राप्त हो, यह सबथा उचित है।

कोअपरेटिव सोसाइटीज के बारे में मैं यहाँ ज्यादा कुछ न कहूँ इस विषय के जो माहिर हैं उन्हीं को यह अधिकार है। मैं जानता हूँ कि बम्बई राज्य में बय सहकारी समितियाँ बड़ी सफलता के साथ चल रही हैं। मैं यह भी जानता हूँ कि

आदिमजाति लोग का स्वभाव इस प्रवृत्ति के लिए सब तरह से अनुकूल है। जल्दी जानकारी पाने के बाद वे ऐसी सोसाइटी का काम बड़ी सफलता के साथ कर सकते हैं। महा जाता है कि अनुकूल समय आन पर, जो सब से पिछड़े हैं वे ही सब से आगे आ जाते हैं—'द लास्ट डॉल बी द फ़र्स्ट'।

हर एक देश की सुपरी हुई सरकारें जंगल को हिफाजत की ओर सब ध्यान देती हैं। हर साल जितने पेड़ काटने की इजाजत दी जाती है, उस से दस गुने पेड़ बोने का प्रयत्न भी किया जाता है। हमारे जंगल हमारी ही कीमती सम्पदा हैं। उन्हें घटने नहीं देना चाहिए।

साध-भाष इस का भी ख्याल रहे कि जंगल में रहने वाले आदिवासियों को भी परेशानी न हो। आदिवासियों की सहाय और शक्ति भी देश की कीमती दौलत है।

अरण्य विद्या का रहस्य इन्हें खियाकर, इन्हीं की अरण्य रक्षक के तौर पर नियुक्त किया जाये। वन रक्षक (फॉरेस्ट गार्ड) के तौर पर बाहर से लोगों को लाना बिलकुल जरूरी नहीं है।

आदिमजाति के पढ़े हुए नवयुवकों से मैं कहूँगा कि वे अपनी जाति की सेवा करें तो वह ठीक है ही। किन्तु इतने से वे अपना और अपनी जाति का पूरा उत्थान नहीं कर सकेंगे। उन्हें भारत के समूचे उत्थान में योग देना चाहिए। जिस तरह राष्ट्र के अग्र नेता केवल अपनी जाति की बात नहीं सोचते, विश्व कल्याण का ख्याल रख कर ही सेवा में लग जाते हैं वैसे ही उन्हें भी करना होगा। वही सर्वांगीण उन्नति का एक मात्र उपाय है।

आदिवासियों के बीच रह कर उन की सेवा करने का व्रत जिन्होंने लिया है ऐसे कई सज्जन यहाँ उपस्थित हैं। उन का काय ईश्वरीय काय है। इस काय में लगे हुए लोगों की वन्दना करना हमारा प्रथम कर्त्तव्य है। इन से दो बातें करने का जो मौका मिला वह तो परमात्मा की कृपा ही है।

हमारा तो आदर्श है कि जिन की सेवा करते हैं उन्हें भगवान् का ही रूप मान लें। भगवान् ने आदिमजातियों का भाला रूप धारण कर के हम से सेवा लेने का तय किया है तो हम पूरी निष्ठा से उन की सेवा करें। हम उन के विश्वास के योग्य बनें यह हमारा प्रथम कर्त्तव्य है। जब तक हम उन की भाषा पूरी तरह से नहीं सीखते हैं और उसे नहीं अपनाते हैं तब तक उन का हृदय कमल पूरा खिलेगा नहीं। उन की सेवा के साथ अगर उन की भाषा की भी सेवा हम ने की तो नये साहित्य के द्वारा हम उन के कण्ठ में और हृदय में स्थान

पा सकेंगे और आने वाली अनेक पीढ़िया के साथ हमारा सम्पर्क बना रहेगा ।
वर्णस्थ साहित्य हरेक समाज की क्रोमती पूँजी होती है ।

हमारे दश में जाति भेद के कारण हम खान-पान का परहेज बहुत रखते हैं ।
ऐसे सब परहेज छोड़ने से ही हम भाईचारा बढा सकेंगे । अभय भक्षण और
अपेय पान की सिफारिश मैं नहीं कर रहा हूँ । लेकिन किसी के साथ बैठ कर
खाना, किसी के हाथ की बनी हुई चीज खाना—इस में तो कोई कठिनाई नहीं
होनी चाहिए ।

आदिवासियों को हिसाब किताब का ज्ञान जितना अधिक दें उतनी ही
उन को उन्नति तेजी से होगी । बहुधर्मी सहकारी समितियाँ चलाने के लिए
भी हिसाब किताब का अच्छा ज्ञान बहुत जरूरी है ।

आरोग्य के बारे में भी हमारे पास इन्हें देने लायक काफी ज्ञान होना
चाहिए ।

असली बात तो यह है कि हम उन के बीच ऐसे आश्रम चलायें कि जिन के
द्वारा आदिमजाति के अनेक खानदान एकत्र रह सकें और सब धर्मों के प्रति
आदर रखने वाला वायुमण्डल पैदा कर सकें ।

जीवन शुद्धि और जीवन समृद्धि यही हमारा आदर्श हो । इन लोगों के
साथ ओत प्रोत हो कर रहने का जो आनन्द है, वही हमारे जीवन की सच्ची
वृत्तायता है ।^१

■

१ अ भा आदिमजाति कल्याण सम्मेलन जगन्पुर (मध्य प्रदेश) में १०-११ मार्च
१९१६ को दिया गया भाषण ।

हम असहिष्णु क्यो बने ?

साम्प्रदायिक मनमुटाव

हमारे बचपन में हिन्दू और मुसलमान ये दो जमातें करीब अलग अलग रहती थी। हिन्दू मुहल्ला अलग, मुसलमान मुहल्ला अलग। ऐसा होते हुए भी दोनों के बीच वैमनस्य नहीं था। हिन्दू अपने रस्म रिवाज के अनुसार चलते थे, मुस्लिम अपने।

हिन्दुओं के घर में, दुकानों में और कारखानों में मुस्लिमों को नौकरी मिलती थी। मुसलमानों की दुकानों में हिन्दू ग्राहक खुशी से जाते थे। त्योहारों के दिनों में लोग अपनी अपनी जमात के लोगों को ही बुलाते थे। लेकिन हिन्दू मुसलमान दोनों, अपने भिन्न घर्माँ दोस्तों के यहाँ मिठाइयाँ और दूसरी चीजें भेजते थे।

जहाँ मुस्लिम राज रहा, वहाँ मुसलमान हिन्दुओं का कम समझते थे। हिन्दू राज में मुसलमानों की वसी ही हालत थी। इस में किसी को बुरा नहीं लगता था। दोनों समाज विभक्त होते हुए भी समानभाव से रहते थे और सहयोग भी करते थे। जहाँ हिन्दुओं का जोर रहा मुसलमान गोवध नहीं करते थे। जहाँ मुसलमानों का अधिकार था, वहाँ हिन्दू लोग गोवध सहन करते थे।

मुख्य बात यह थी कि दोनों समाज एक दूसरे के रस्म रिवाज समझ कर और बलाबल पहचान कर शांति से रहते थे। आज भी मैं समझता हूँ, हालत ऐसी ही है लेकिन अब दोनों पक्षों के लोगों के मन में अशांति रहती है। कभी कभी मनमुटाव भी पैदा होता है। हमारे बचपन में हिन्दू मुस्लिमों के बीच जब झगडे होते थे तो गोवध के ही कारण। मस्जिद के सामने बाजे बजने के कारण कभी झगडे नहीं हुए थे। उन दिनों हिन्दुओं में सचमुच गोमाता के प्रति भक्ति रहती थी। गाय की बचाना हमारा विगेष धर्म है ऐसी भावना करीब हर एक हिन्दू की थी। आजकल हिन्दुओं की वसी गोभक्ति बहुत सी निधिल हुई है। चन्द लोग गौरना की बातें करते हैं गौरना का प्रचार जोरों से होता है लेकिन ऐसे प्रयत्न को गांधीजी ने रचनात्मक रूप दिया है। गाय

को मारने वाले के साथ क्षमता कर के उसे मारने की कोशिश आजकल कोई नहीं करता, न करनी भी चाहिए।

प्राणियों की हत्या करने का अधिकार किसी का भी नहीं है। तो भी मनुष्य छोटे-बड़े प्राणियों को मारता ही आया है। हम इतना ही कह सकते हैं कि जानवरों को और पशु पक्षियों को मारना है तो बुरा, लेकिन इस तरह प्राणियों की हत्या करने वाले लोगों को अबरदस्ती रोकने का अधिकार हम अपने हाथ में ले नहीं सकते। मनुष्य जाति का इतना विकास नहीं हुआ है।

लेकिन हम जीवदया की दृष्टि से और उच्च धार्मिक दृष्टि से लोगों के बीच प्रचार तो जरूर कर सकते हैं कि प्राणियों को न मारना अच्छा।

इस में भी हमें अपना प्रचार क्रमशः करना चाहिए। सिंह, बाघ आदि हिंस्र पशु और साँप आदि ख़हरीले प्राणियों की हत्या रोकने का प्रयत्न हम इन दिनों न करें। केवल अभयारण्य में ही इन प्राणियों को न मारने का नियम है वही पर्याप्त है।

मनुष्य के शरीर में रोग के जो सूक्ष्म जन्तु होते हैं और बढ़ते हैं, उन का विनाश दवाइयों से कर हम करते हैं। ऐसी जन्तु-हत्या को रोकने की बात कोई मानेगा नहीं। हम प्राकृतिक चिकित्सा का प्रचार कर के ही सन्तोष मानेंगे।

घर के इन्डिग खेतों में और बगीचे में मच्छर आदि जन्तुओं का उपद्रव दालने के लिए आजकल डी० डी० टी० जैसी ख़हरीली दवाओं का छिड़काव किया जाता है। इसे रोकने का हमारे देश में वही भी प्रयत्न नहीं हो रहा है। ख़हरीली दवा के छिड़काव से मनुष्य की जानें बचती हैं, रोग दूर रखे जाते हैं, यह लाभ स्पष्ट है। इसलिए जन्तुनाशक दवाओं का प्रयोग हम रोक नहीं सकते।

हालांकि अमेरिका में खेतों बचाने के नाम जन्तुनाशक ख़हरीली द्रव्य इतने नये नये बनाये जा रहे हैं और उन का प्रयोग इतने बड़े पैमाने पर हो रहा है कि पशु-मनुष्य और मनुष्य का जीवन भी ख़तरे में आ रहा है और वहाँ जन्तुनाशक द्रव्यों के प्रयोग के खिलाफ एक अबरदस्त आन्दोलन शुरू हुआ है।

ऐसी बातों में हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी सब का हित एक सा है। और जीव-दया का प्रचार सब के बीच एक-सा होना चाहिए।

आजकल जो साम्प्रदायिक मनमुटाव है, वह सचमुच धर्म के कारण नहीं है। अपनी अपनी जमात का स्वार्थ सिद्ध करने के लिए और हृदय से क्यादा अधिकार पाने के लिए जो खींचातानी चलती है वही कारण है। अबरदस्त लोग कमजोर लोगों को दबाने की कागिरी जब तक करते रहेंगे मनमुटाव ही रहेगा। जब समानता और दया का आदर होगा, और सब को अपने-अपने उत्कथ के लिए

एक-सा अवसाग मिलने लगेगा, तब साम्प्रदायिक आन्दोलन अपने-आप बन्द हो जायेंगे, और अगर चलेंगे भी तो उन की ओर कोई ध्यान नहीं देगा ।

अलगाव सचमुच राष्ट्रीय रोग है

हमारे देश में अनेक धर्म हैं, अनेक भाषाएँ चलती हैं और जानकार लोग बताते हैं कि हमारा राष्ट्र अनेक वंशों (races) का बना हुआ है । इतनी विविधता हमारे देश में रहते हुए भी उन के बीच परस्पर आत्मीयता का सम्बन्ध रहना चाहिए । बिना आत्मीयता के एकता टिक नहीं सकती । नाम मात्र की एकता से यह दुक़ता, यह सतोंप और सामर्थ्य पैदा नहीं हो सकता जो सच्ची, दिल की एकता—आत्मीयता की एकता से सहज पैदा होता है ।

यदि विविधता के बीच एकता—सच्ची, आत्मीयता वाली एकता—स्थापित न हो जाये तो वह एक रण दशा है । इस रण स्थिति के हम ऐसे आदी बन गये हैं, कि यह स्थिति रण है यह भी हम भूल गये हैं, और मानने लगे हैं कि यह तो स्वामाविक स्थिति है ।

अक्सर लोग अपने परिवार का, अपने खानदान और अपनी छोटी सी जाति के ही विषय में सोचते हैं । कहते हैं “हम अपने हितों की रक्षा करते हैं, एक दूसरे की मदद करते हैं, औरों का कुछ बिगाड़ते नहीं । हम को बाहर के लोगों की क्या पड़ी है ? इस में हमारा क्या दोष है ? हर एक आदमी अगर अपना और अपना के हितों की रक्षा कर ले तो किसी को कुछ कहने के लिए न रह जाये । सारी दुनिया का भार उठा कर हम वहाँ फिरे ? हमारे लिए हमारी जाति काफी है ।” पिछड़े हुए स्वजनो के प्रति खास कतय है इस बात को वे भूल ही जाते हैं ।

ऐसी सङ्कुचित दृष्टि देश को कमजोर बनाती है । व्यापक आत्मीयता के बगर राष्ट्र की एकता टिक नहीं सकती । आज की सङ्कुचितता हम अगर कायम रखेंगे और झगडालू कौमों के साथ केवल राजनीतिक समझौते करते रहेंगे तो छोटे छोटे समाज क्या-क्या ब्रह्मांड मजबूत होते जायेंगे और झगडा और समझौता, ‘फिर झगडा और फिर से नया समझौता’—ऐसी ब्रह्मण्ड परम्परा चलती रहेगी और राष्ट्र की रणता जड़ पकड़ेगी ।

इस का इलाज राजनीतिक तरीके से नहीं हो सकता । यह तो सामाजिक

और सांस्कृतिक क्षेत्र में ही सम्भव हो सकता है। जातिभेद, धर्मभेद, प्रातभेद, वंशभेद और सस्कृतिभेद होते हुए भी परस्पर ओतप्रोत होने की कला हमें सीखनी ही होगी। हर एक को लगना चाहिए कि 'हम सब एक ही हैं, हम सब के हैं, सब हमारे हैं। हमारा क्षेत्र सब के हाथ में है और सब के लिए हम जिम्मेवार हैं।' 'म स्वयं का प्याल रखूँगा अपनी जाति के बारे में ही सोचूँगा'—यह सोचना राष्ट्रद्रोह है। इतना अगर हम न समझ सकें तो देश की एकता और देश की आजादी टिक नहीं सकेगी।

भारत के हम सब लोग अगर आत्मियता से एक होंगे तो, जगत भर में भारत सब से समय राष्ट्र बनेगा और दुनिया की सेवा कर के सबत्र शान्ति और आत्मियता स्थापित कर सकेगा।

भारत से भगवान् ने ऐसी युग-सेवा की अपेक्षा की है।

इस के लिए रोटी बेटा-ब्यवहार के तग दायरे तोड़ने ही पड़ेंगे। अपनी सम्पत्ति, समृद्धि और काय शक्ति का फायदा अमुक लोगों को ही मिले, औरों को न मिले, ऐसी सकुचित वृत्ति छोड़े बिना मुक्ति न होगी।

गुजरात की ही सोचें। हमारे पारसी भाई तेरह सौ साल से हमारे बीच रहते हैं। ईरान की अपनी भाषा छोड़ कर उहाने स्वभाषा के तौर पर गुजराती भाषा अपनायी। पारसी लोग किसी के साथ झगडा नहीं करते। फिर भी हम और व अलग अलग ही रहते हैं। यह स्थिति तोड़ कर हमें परस्पर घुल मिल जाना चाहिए। यही बात ईसाई और यहूदियों के बारे में भी है। इन सब के साथ अगर हम ओतप्रोत हो सकें तो मुसलमानों का सवाल भी आसान हो जायेगा।

यही सब से बड़ी क्रांति अब हमें करनी है।

(१५ जनवरी १९६८)

दूसरों की देखा देखी हम सकुचित क्यों बनें ?

हिंदू धर्म में और समाज में असह्य पंच और जातियाँ हैं तो भी हम उन्हें हिंदू ही कहते हैं। इन के बीच अकसर घादियाँ नहीं होती। खानपान की कठिनाश्याँ बहुत थी जो आज कम हो गयी हैं। भिन्न जाति के बीच विवाह नहीं होते तो नहीं लेकिन उन की मख्या कम है। समाज पहले ऐसे मिश्रविवाहों को बहिष्कार

दूसरों की देखा देखी हम सकुचित क्यों बनें ?

की सजा देता था, अन्न नहीं देता। शव, वैष्णव और देवी उपासकों के बीच शार्दिया आसानी से हो सकती है, इस में कोई शिकायत नहीं है। गुजरात में हिन्दू बनिया और जैन बनियों के बीच आसानी से शादी होती है। घमचर्चा जब चलती है तब जैन कहते हैं, हम हिन्दू नहीं हैं। ऐसा बहने का उन्हें अधिकार है, क्योंकि हिन्दू लोग वेद को मानते हैं और जैन नहीं मानते। (सच पूछा जाये तो वेद को मानने-न मानने से किसी का कुछ बिगड़ता नहीं।) पञ्जाब में अंगरेजी शासनकाल से सिरा अपने को हिन्दुआ से अलग मानते हैं, लेकिन हिन्दू सिखों के बीच शार्दिया हो सकती है आज भी होती है।

कहते हैं कि पूव भारत में बगालियों और असामियों के मध्य सौहाद नहीं। उन के बीच प्रात भेद और भाषा भेद के कारण काकी मनमुटाव है, तो भी हम देखते हैं कि वहाँ पर बगाली और असमिया लोगों में काकी शार्दिया होती है और इस के खिलाफ कोई शिकायत नहीं करते। जाति एक रही तो भाषा भेद बाधक नहीं होता। महाराष्ट्र और कर्णाटक के बीच ऐसा ही है। महाराष्ट्री और कर्णाटकी ब्राह्मणों के बीच हमेशा विवाह होते आये हैं। भाषा की कठिनाई कायम घोडे ही रह सकती है ? लडकियाँ सुसराल की भाषा सीख जाती हैं।

इसीलिए मैं कहता हूँ कि सिखों को और जनियों की सस्त्रुति की दृष्टि से और सामाजिक दृष्टि से हिन्दू ही कहना चाहिए।

अब यह सामाजिक भेद वहाँ से आता है और सामाजिक एकता कसे तय की जाती है ? बडा सवाल तो आहार का है। मासाहारी और शाकाहारी जातियाँ अलग रहें तो इस में आश्चर्य नहीं माना जाता। उन का अलग रहना यथायोग्य और याध्य माना जाता है तो भी एक ही जाति में अगर दोना रिवाज है तो इन के बीच शादी विवाह में कठिनाई नहीं आती। उत्तर भारत में और बगाल में भी एक ही जाति में मत्स्याहारी और गैर मत्स्याहारी मासाहारी और शाकाहारी ऐसे भेद पाये जाते हैं फिर भी उन में शार्दिया होती आयी है। शादी के बाद लडकियों को ज़रा संभालना पडता है। उन के लिए वह कठिन नहीं है। हम तो इस तरह जवरदस्ती किये हुए विवाहों की मायता देने के पक्ष में नहीं हैं। लेकिन आहार भेद होते हुए भी राजो खुशी से ऐसे विवाह होते हैं तो उन का हम अभिनन्दन करते हैं और चाहते हैं, ऐसे विवाह बढ़ें। आहार के बारे में किसी पर जवरदस्ती नहीं होनी चाहिए। दोनों रिवाजों के बीच समझौता चलाना कठिन नहीं है। तब जहाँ हिन्दू और ईसाई दो परिवारों में परस्पर परिचय है, एक-दूसरे के घर में आना जाना चालू है वहाँ खानपान का व्यवहार चला तो उस में कोई बाधा नहीं होनी चाहिए। शाकाहारी मनुष्य शाकाहार को

नहीं छोड़ेगा। ईसाइयों के घर पर भी अपना आग्रह कायम रखेगा। लेकिन एक-दूसरे के घर में भोजन करने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। आज वैसा चलता भी है। लेकिन वह पूरा समाजमाय नहीं हुआ।

इसी तरह हिंदू ईसाई शादियाँ हुई तो तनिक भी हानि नहीं होनी चाहिए। मेरे एक मित्र थे। वे कहते थे कि हमारा विरोध किसी जाति से नहीं है। कोई जमन महिला बौद्ध धर्म को स्वीकार करे तो मैं उसे अपने मंदिरों में ले जाऊँगा। और अगर कोई जमन बौद्ध लड़की मेरे लड़के के साथ शादी करे तो मुझे एतराज नहीं है। मुझे एतराज है ईसाई धर्म से क्योंकि वह हिन्दू नहीं है।

अब सवाल उठता है कि वेद में, परमात्मा में और आत्मा में भी न मानने वाला बौद्धधर्म हिंदू है और ईश्वर को परमपिता मानने वाले, बालब्रह्मचारी पतिव्रतोद्धारक ईसा का धर्म पराया क्या? मास तो बौद्ध लोग भी खाते हैं और हिन्दू लोगों में ब्राह्मणों से ले कर हरिजनों तक कई जातियाँ मास खाती हैं। शराब के बारे में भी वैसा ही है। ईसाई धर्म में याने ईसाई समाज में अच्छे अच्छे भक्त और सन्त पैदा हुए हैं, जिन को ईश्वर भक्ति, परोपकार और सदाचार देख कर हम भक्ति-भ्रम बनते हैं। और उन को जीवनकथा पढ़ कर चकित होते हैं। तो ईसाइयों को अपनाते में और ईसा को ईश्वर का अवतार मानने में हर्जियाँ क्या हैं? भगवान ने कभी यह नहीं कहा कि मैं हिन्दूधर्म में और हिन्दुस्तान में ही अवतार लूँगा। सब धर्म भगवान् के ही हैं। सभी को भगवान् की ओर से ही प्रेरणा मिली है।

हम गाय को पवित्र मानते हैं। मासाहारी हिंदू भी गोमास नहीं खायेंगे। ईसाई लोग गोमास खाते हैं इस वास्ते वे हिंदू नहीं हैं, हम उन्हें अपना नहीं सकते ऐसी दलीलें सुनी जाती हैं। वे लोग नहीं जानते कि हिन्दुओं के पूर्वज किसी समय गोमास भी खाते थे। और श्राद्ध में भी गोमास का व्यवहार होता था। हम लोगों ने कभी भी उन को पापी या भ्रष्ट नहीं कहा है। किसी समय हिंदुओं में गोभक्ति बढी और उन्होंने गोमास छोड़ दिया यह अच्छा किया। हिंदूधर्म की अनेक सिद्धियों में यह भी एक महत्त्व की सिद्धि है। तो क्या हम योग्य ढंग से प्रचार करें तो ईसाइयों को भी हम गोभक्त नहीं बना सकते? हम अपनी शक्ति के बारे में नास्तिक क्यों बनें? भारत में अगर 'गोभक्त' गोभक्त बन गये तो बाहर भी, कानून के द्वारा नहीं राजसत्ता से नहीं, लोगों के सख्याबल के जोरों धमकाने से नहीं, किंतु उन की कृतज्ञता और धमबुद्धि जाग्रत कर गो-रक्षा का काम हम क्यों न करें? सवाल यह है कि क्या ईसाइयों को दूर रखने से यह काम होगा? या नज़दीक लाने से या अपनाते से होगा? हरिजनों को दूर दूरों की देखा देती हम सकुचिन क्यों बनें?

रराने से जो काम नहीं हो सका यह उन्हें अपनाते से हो रा
भूल नहीं सकते ।

अब एक महत्वपूर्ण सवाल पूछा जाता है—“हम लोग
को तयार हुए तो क्या वे नज़दीक आनेवाले हूँ ? वे अपने
हमारी ओर तुच्छता की नज़र से देखते हैं । ऐसी स्थिति में उ
प्रयत्न किस काम का ?”

सवाल महत्व का है । जवाब में हम कहेंगे कि जब
अथवा पोचुगीज राज्यकर्ता थे तब तक भारत के ईसाई अ
थे । यह बात अब नहीं रही । अब तो स्वदेशी प्रजाराज्य
पराजित लोगों का, दासों का घम नहीं रहा । हिन्दूधर्म में ज
यह सब हम दूर कर रहे हूँ । ईसाइयों ने किसी समय पर जो
किया उस का शर्म अब दूर हुआ है । हर एक घम में उ
अच्छाई होती ही है । वैसी अनेक अच्छाइयाँ ईसाई घम में
कदर हम क्यों न करें ? ईसामसीह तो परमभागवत थे
पतितोद्धारक थे । उन्हें हम परमवैष्णव क्यों न करें ? और
भागवतोत्तम के रूप में क्यों न करें ? इतना करने के बाद
चाहिए कि ईसाइयों को अपनाते का हमारा प्रयत्न निष्फल नहीं
कई लोग मस्कृत का अध्ययन करते हैं । बाद ईसाइयों ने अ
दिया है । और ऐसे भी ईसाई हैं जो अपना कट्टरपन छोड़े
कई चीजें समझ रहे हैं और आदर के साथ उन की इज्जत भी
है कि “जिस तरह पश्चिम के ईसाई यज्ञदी घम ग्रन्थों को पवित्र
तरह हम भारत के ईसाई हिन्दू धर्म ग्रन्थों को पवित्र मान कर
ईसामसीह के उपदेश का बोज क्यों न बोजें ?” ईसाई लोग हम
तब वे अपने ही ढंग से आयेंगे, यही योग्य है । हम दोनों एक
अच्छाइयों की कदर करें और उन का कीर्तन करें तो किसी को
है, दोनों को ही लाभ है ।

भारत के ईसाई और उन के पूज्य भारतीय थे और है ।
विविधता आयी तो हिन्दुओं को बुरा लगने का कोई कारण न
ने शुरू से ही विविधता का अभिनन्दन किया है । राजनीति की
हम सख्या पर ध्यान केन्द्रित न करें । हम इस का हिमात्र नहीं
में वैष्णव कितने हैं सावत कितने हैं और गैर कितने हैं । द्वैतवा

वादी वा तो हम सख्या की लाभ-हानि की ओर नहीं देखते । जिस दिन हम परायापन छोड़ देंगे उसी दिन सख्या का महत्व अपने ही आप टूट जायेगा । राष्ट्रियता कमजोर रहती है एक-दूसरे के परायापन से । धर्मभेद भले रहे लेकिन परायापन दूर हो, यही है राष्ट्रियता मजबूत करने का तरीका । धर्मभेद को हम जितनी शिकायत करते हैं और धर्मान्तर का आग्रह या विरोध करते हैं उतने धर्म-भेद मजबूत होते हैं । परायापन दूर कर के जब हम आत्मियता बढ़ायेंगे तभी जा कर राष्ट्रियता मजबूत होगी । परायापन बढ़ा कर एक दूसरे के प्रति अविश्वास रख कर कौन-सा लाभ है और कौन-सी सुरक्षितता है इस का अनुभव लोगो ने किया ही है । उसी रास्ते अगर हम चलते रहे तो राष्ट्रीय आरोग्य बिगड़ता जायेगा । 'जस को तैषा' की नीति चलाने में हम दूसरे के अनुयायी बनते हैं और राष्ट्र की कमजोरी बढ़ाते हैं और अंत में बँटवारे को नौवत आ जाती है । इस लिए उस नीति को छोड़ना ही अच्छा है । न हम किसी को राजनीतिक घूस देंगे न घूस लेंगे । आत्मियता बढ़ाते जायेंगे और विश्वास रखेंगे कि आत्मियता का प्रयत्न बहुत कम किया जाता है लेकिन सच्चा प्रयत्न कभी विफल नहीं होता ।

मैं ने ईसाइयों का उदाहरण केवल मिसाल के तौर पर लिया है । लेकिन सब धर्मों के प्रति सच्चा हिन्दूधर्म तो आदरभाव ही रखता है । हिन्दूधर्म ने किसी भी धर्म की निंदा नहीं की, विरोध भी नहीं किया । 'स्वधर्मपालन के द्वारा सब लोग सब धर्मों बनें यही है हिन्दूधर्म की व्यापक उदार नीति । औरों की देखा-देखी हम सकुचित क्या बनें' और अपनी उदार नीति क्यों छोड़ें ? हम विश्वास रखें कि सकुचित लोगो को किसी न किसी दिन उदार बनना ही है । हम सभी को स्वीकार करते हैं और आत्मविश्वास से आगे बढ़ते हैं ।

(१ फरवरी १९८८)

क्रमशः आगे बढ़ें

हिन्दू-समाज के नहीं किन्तु हिन्दू-समाज के कई हितपी लोग देश की स्थिति सुधार के इलाज पर विचार करने के लिए झुका हुआ है । विषय था कि धर्मभेद के कारण सामाजिक अलगाव देश में है ही, जातिभेद के कारण बिनाल हिन्दू-समाज सब से अधिक कमजोर हुआ ही है उस पर अब अनेक राजनितिक पक्षा के कारण राष्ट्र

का समाज तितर बितर हो रहा है। गागा यह सब कम है, भागा भेद को ले कर भी परस्पर मन-मुटाव पैदा होने लगा है। 'देश की दुर्बलता बढ़ाने का कार्यक्रम कीते मजबूत हो चकेगा', यही देशने पर मानो सब तुले हुए हैं ॥ १

पर्षा मुनते हो हम ने कहा कि नये हागड़े राडे होने से पुरान हागड़ों को ठरऊ प्याा कम जाता है यह सही है लेकिन पुराने हागडे मिा तो नहीं रहे हैं। ये सब राडे के राडे हैं। इन का भी निपटारा किए बिना भारत की एक्ता टिक नहीं सकती।

लाला लाजपतराय ने एक बार बम्बई में कहा था कि 'हिन्दू समा के आप नेहागण मुसलमानों की नीति पर नाराज और दु गी है यह तो मैं समझ सकता हूँ। यह बठिनाई हम पंजाबी लोग जितनी जानते हैं और महसूस करते हैं इतनी शायद आप नहीं कर सकते। लेकिन मुसलमानों का छोड़ कर भारत में जो दूसरे अय लोग हैं—ईसाई हैं, यहूदी हैं आप के पारसी हैं इन के साथ आप मेल-जोल क्या नहीं बढ़ाते? इन को अलग क्यों रहने देते हैं? एक ओर हिन्दू और दूसरी ओर बाङ्गी की सारी दुनिया—ऐसी रचना करने से आप अपने को कमजोर नहीं करते?"

हिन्दुओं में जाति भेद के कारण अलगाव बढ़ता ह। छोटे छोटे समाज, अदर के छोटे-छोटे स्वार्थ और मतभेद ले कर भीतर ही भीतर झगडा करते ही हैं। बाहर को दुनिया को समझे बिना आन्तरिक एक्ता की जरूरत ही महसूस नहीं होती।

राष्ट्रहित की बातें करने के लिए मुसलमाना के पास केवल हिन्दू ही क्यों जायें? हम हिन्दू (जिन में सिख, जन, बौद्ध आदि सब को लेना ही चाहिए,) ईसाई, यहूदी, पारसी सब मिला कर के राष्ट्रीयता के नाम मुसलमानों के पास जायें तो मारी भूमिका ही बदल जायेगी।

हिन्दूलोग जब अपने ही विचारों में और घर के सवालो में डूबे रहते ह तब उन को खयाल तक नहीं आता कि उन की सकुचितता कितनी खतरनाक ह। भगवान् ने गायद यही सोचा कि ये हिन्दू अपने छोटे छोटे दायरे के बाहर निकलते ही नहीं। इन को बताना चाहिए कि उदारता के बिना ब्यापकता के बिना और आदमीयत के विकास के बिना दुनिया में जीना उन के लिए असम्भव ह। छोटे छोटे विदेशी समाज के सामने भी जब ये हिन्दू हार जायेंगे तभी वे शुद्ध और ब्यापक सामाजिक नीति अपना सकेंगे। एसा सोच कर भगवान ने दुनिया के सब घमों के घोटे घोडे लोगो को भारत में ला छोडा और कहा, कि अब इस विविधता से बच नहीं सकोगे। अब 'या तो जानवरो की तरह आपस में आमरणात झगडा

चालू रखो' अथवा 'आदमी बन कर परस्पर सहयोग करना सीखो'। यहाँ केवल सख्या बल का सवाल नहीं है। धर्म मनुष्य के लिए है, मानवता के विकास के लिए है। प्रधानता होनी चाहिए मानवता की, सभी को ले कर चलने के लिए गूढ़ बुनियाद के सहयोग की।

मगवान् ने ईरान के जरमुदवी पारसिया को पश्चिम भारत में ला छोड़ा। ये लोग बड़े मिलनसार हैं। मुसलमान, ईसाई और हिन्दू सब के साथ इन की बनती है। इन्हीं से हम प्रारम्भ क्यों न करें? इन की धम भाषा है गाथिक। वह हमारी वैदिक भाषा के बहुत नजदीक है। इन को अपनाते हमें पता चलेगा कि हमें अपने जीवन में क्या-क्या दृष्ट परिवर्तन करना जरूरी है।

इतिहास का क्रम देखा जाय तो वैदिक साहित्य के समकालीन गाथिक साहित्य में प्रकट होने वाला पारसियों का धम बहुत पुराना है। उस का प्रभाव यहूदियों पर पड़ा। यहूदी धम भी एबेश्वरवादी बना।

इस यहूदी धम-समाज में एक लोकोत्तर धम-सुधारक यहूदी निकला जिसस अथवा ईसु। उस के नाम से जो धम चला उसे हम ईसाई धम कहते हैं।

इन धर्मों के बाद इस्लाम आया जो उम्र में सब से छोटा गिना जाता है। इस इस्लाम पर अरबस्तान, ईरान, तुर्कस्तान और इजिप्त मिस्र के समाज का असर हुआ और इस्लाम का असर इन पर।

इसाहीम के (यहूदी?) धम का ही शुद्ध और विवक्षित रूप है कुरान शरीफ का इस्लाम।

यह सारा इतिहास बताता है कि सब धम मिल कर एक विशाल धर्म परिवार बनता है।

भारतीय धम ने और भारतीय सस्कृति ने कभी नहीं कहा कि केवल हमारा ही एक धम सच्चा है और बाकी के झूठे हैं। हम तो मानते हैं कि सब धम सच्चे हैं मनुष्य के कल्याण के लिए प्रकट हुए हैं सब मिल कर इन का एक विशाल परिवार बनता है इस पारिवारिकता की और आत्मीयता की जो चीजें स्रष्टित करती हैं उन को छोड़ देने के लिए सब को तयार रहना ही चाहिए। हर एक धम-समाज अन्तमुख हो कर अपने दिल को टटोल कर देखें कि जागतिक मानवीय एकता का द्रोह हम से कहीं तक हो रहा है।

अब हम पारसियों को अपनाते की पूरी कोशिश करेंगे तब हम आत्मशुद्धि प्रारम्भ करेंगे। इस तरह जब हम अपने की एकता के योग्य बनायेंगे तब हमारा प्रभाव ईसाइयों पर पड़ेगा। ईसाइयों को अपनाता एक तरह से आसान है और एक तरह से टेढ़ी-धीर भी है। सगठित है, चतुर है उन के नेता लोग। अपने स्वाय

क्रमशा आगे बढ़ें

को अच्छी तरह जानते ह। ऐसे लोगों को अपनाने के लिए हमारी धार्मिकता जीवित, व्यापक और सबकल्याणकारी होनी चाहिए। ईसाई समाज को अपनाते हमारी पूरी बसोटी होगी। वे भी अनुभव करेंगे कि भगवान् उन की भी बसोटी कर रहा है।

योरप-अमरिका के कई सुशिक्षित विद्वान् लोग विज्ञान के अक्षर के नीचे आ कर ईसाई धर्म को छोड़ बैठ हैं। यह देख कर ईसाई धर्म-समाज के नेता चिन्तित हो रहे ह। और ईसाई धर्म की परम्परा विगुद करने की कोशिश में हैं।

समस्त दुनिया की सेवा करना हम भारतीयों का और हमारी सस्कृति का सब से पहला कर्तव्य है।

गांधीजी की बात हमें माय है कि हिन्दू मुस्लिम एकता के बिना भारत का उद्धार हो नहीं सकता। कई गांधीवादी लोग इस दिशा में जोरों से प्रयत्न करते थक कर पूछते हैं कि "यह इक्तरफा प्रयत्न कहाँ तक चलेगा? मुसलमानों की तरफ से एकता की कोई इच्छा या आतुरता दीख नहीं पडती। जो मुसलमान हमारे पास आते ह, अपने समाज से बहिष्कृत-से हो जाते हैं।"

हमें समझना चाहिए कि हिन्दू और मुसलमान दोनों समाजों को अलग अलग रखने की नीति जो अँगरेजों ने चलायी थी वह दोनों समाजों की हडिडियों तक पहुँच आयी ह। उस का अक्षर घाते समय लगेगा। लेकिन दोनों समाज किसी न किसी दिन अपना सच्चा स्वाय अवश्य समझेंगे। मुसलमानों के और ईसाइयो के नेता आज तक मानते थे कि अलग रहने से, बिगड बठने से ही लाभ ह। उन को अपना स्वाय नयी परिस्थिति में नये ढग से समझते देर लगेगी। तब तक हमें राह देखनी पडेगी। और अपनी कमियाँ दूर करनी पडेगी।

स्वराज्य पाने के बाद राजनीतिक लोगो की नतिक बुनियाद ही नीचे उतर गयी है। सत्ता और सम्पत्ति का खवाल कर के अधिकार पाने की होड ही उन के लिए प्रधान हो गयी ह। सारा वायुमण्डल बाजारू बन गया है। 'अपने अपने लोगों को सगठित कर के दूसरों से अधिकाधिक माँगना और वह सब पान के लिए खीचातानी करते रहना' यही ह इन दिनों की राजनीति।

ऐसे हालत में राजनीति को एक ओर रख कर हमें सास्कृतिक प्रगति पर भार देना चाहिए।

हिन्दू आज के जसे हिन्दू रहे मुसलमान जसे आज ह वैसे ही मुसलमान रहे तो दिला एकता कभी हो नहीं सकती। 'केवल समझौता' तीन दिन भी टिक नहीं सकता। हमें आज की सङ्कितता क्षुद्रता से कट्टी करने का रास्ता मिलना ही चाहिए। सास्कृतिक मेलजोल बढ़ान का यही एक तरीका ह।

इस में हम आसान काम प्रथम हाथ में ले कर उस में सफलता पा कर अपनी शक्ति बढ़ायेंगे । शक्ति बढ़ने पर हमारे हृदय में व्यापकता, उदारता और आत्मीयता का अंश हम देखते जायेंगे । फिर बड़े काम लेने की हिम्मत और शक्ति मिलेगी । दूसरा रास्ता है नहीं ।

(१२ मई १९६०)



यह तरीका है तो अच्छा लेकिन दो में से एक भी दिल से समझोते के लिए तैयार न हो तो समझोते की बातें आगे कबे बढ़ेंगी ? फिर आती है पचायत की बातें । इस में भी कठिनाई वही होती है । पचायत का 'याय मजूर न होने पर तटस्थ 'यायाधीशों का फैसला मजूर करना यही एक माग रहता है, जिस में 'यायाधीश के चुनाव का सवाल आता है । अब सारा मामला नसीब के हवाले किया जाता है । जब कोई निणय नहीं हो सक्ता तब रुपया अथवा पैसा उछाल कर निणय किया जाता है । इसे अँगरेजों में 'टॉस' कहते हैं ।

जहाँ सर्वस्व को छोड़ चलती है । वहाँ बड़े-बड़े राष्ट्र और बड़े-बड़े धनी लोग टॉस का 'याय अथवा निणय बेभे मान सकते हैं ? झगडा किसी न किसी रूप में चलता ही है और बढ़ता भी है ।

इस लिए जहाँ कहीं मतभेद आया, वहाँ समन्वय को काम में लाने की वृत्ति जगानी चाहिए । यह काम एक दिन का नहीं, 'यायालय का नहीं किन्तु नित्य के जीवन की मनोवृत्ति और प्रवृत्ति का है ।

किसी समय मनुष्य स्वभाव को उन्नत करने का काम धर्म का था । धर्म के द्वारा मनुष्य की स्वाध, अहिंसा, असूया अभिमान आदि मनोवृत्ति का समय होता था और आत्मीयता सेवा, त्याग आदि सात्त्विक शुभ-सद्गुणों का विकास होता था । लेकिन धर्म में बौद्धिक जडता अधविश्वास, साम्प्रदायिकता समुचितता और अभिमान घुस गये । धार्मिकता ही भ्रष्ट होन लगी । धर्म भी आपस में प्रथम चर्चा और झगडा करने लगे और अन्त में क्रुते की तरह लड़ने भी लगे । आखिरकार लोग धर्माभिमान से ऊब आये और धर्म की प्रतिष्ठा भी डूबने लगी । कई धर्माभिमानों लोग व्यक्तिश सदाचारों से किन्तु जहाँ धर्माभिमान का सवाल आया तो अभिमानी, स्वार्थी और अधे बनने लगे । आगे जा कर 'यक्तिगत जीवन में भी शुद्धता की जगह दभ ने ले ली । बाहर सफेद और अन्दर गलित ऐसा वणन धर्मों का और धर्मगुरुओं का सुनना पडने लगा । और अन्त में धर्म ही मानव जीवन में अप्रतिष्ठित होने लगा । किसी समय धर्म का प्रभाव राजनीति पर पडता था । अब धर्म ही गये राजनीति के आधित ।

ऐसी हालत में शुद्ध समन्वयवृत्ति को जागृत करना यही एकमात्र उपाय रहा । अगर हम सारे समाज में घुल मिल गये और जगत की खतरनाक परिस्थिति समझा कर लोगों में परस्पर सहयोग की वृत्ति जगा सके, आत्मीयता का दिन प्रति दिन अनुभव करने लगें तो समन्वय का वायुमण्डल स्थापित होगा । लोगों को वही प्रिय लगेगा । सम वय के लाभ लोगों के ध्यान में आयेंगे । जीवन की सुन्दरता का अनुभव होने पर उसी को लोग पसंद करने लगेंगे ।

यह परिवर्तन आसान नहीं है। लेकिन दुनिया ने सघप का खतरा कितना बड़ा है इस का अनुभव किया है। इस लिए समन्वय का प्रयोग कर देखने के लिए दुनिया तैयार हो रही है।

सघप भी आज पहले की तरह आसान नहीं रहा है? युद्ध छिड़ते ही लोग सहायकों को मदद के लिए बुलाते हैं। सहायकों को मदद में दौड़ना ही पड़ता है और फिर तो हर एक बड़ा युद्ध विश्वयुद्ध बन जाता है, जिस का अन्त सवनाश ही हो सकता है।

आज सारे संसार को यह अजीब विद्वरूपमान हो रहा है। इस लिए हम आशा करते हैं कि मानव-समाज समन्वय के लिए तैयार हो जायगा। विनाश शक्ति की अपेक्षा जीवन-शक्ति अधिक प्रभावशाली साबित होगी।

(१ सितम्बर १९६६)

सर्व धर्म-परिवार

दुनिया के अलग अलग दशों की यात्रा करते मैंने देखा कि युरोप के सब लोगों की चमड़ी का रंग करीब-करीब एक-सा है—सफेद। उत्तर के लोग कुछ ज्यादा गोरे हैं। दक्षिण युरोप के लोग ज्यादा धूप मिलने से इतने गोरे नहीं हैं। अफ्रीका खण्ड के सब बाशिन्दों का रंग भी करीब एक-सा है—काला। जापान के और चीन के भी लोगों को आप पीला कह सकते हैं। जो हो, प्रत्येक देश के लोगों का रंग एक-सा होता है। हमारा भारत ही एक ऐसा देश है जिस में एक जाति में भी सब रंगों के लोग पाये जाते हैं। दक्षिण में काले भी हैं और गोरे भी हैं। एक ही जाति में शालिग्राम के जैसे काले और केतकी के फूल के जैसे गोरे लोग भी मिलते हैं।

अगर लाखों बरसों का मानव जाति का इतिहास हूँडा जाये तो पता चलेगा कि भारत में सब धर्मों के और सब खण्डों के लोग आ बसे हैं। मानो भारत को भगवान् ने अपना एक सग्रहालय बनाया है।

धर्मों के बारे में भी यही स्थिति पायी जाती है। हमारे सनातन धर्म में—जिसे आजकल हिन्दू धर्म कहते हैं—अनेक पन्थ, अनेक सम्प्रदाय और अनेक साधनाएँ हैं ही। इम के अलावा इतिहास विधाता की योजना के अनुसार दूसरे तीन चार धर्म भी भारत में आये हैं। मुट्टी भर यहूदी लोग अब और कैसे आये

सर्व धर्म-परिवार

अध्ययन किंसी ने किया है ? यह लोग अपने परम्परागत हठि प्राप्त अधिकारों के लिए आपस में जब लड़ते हैं सब सरकारी अमलों को और 'यायाधीशा को उस का फेंसला करना पड़ता है । उन को तो इन के जीवन की हीनता का काफ़ी पता रहता है । लेकिन उन में से किसी ने भी इन के जीवन को सुधारने का कभी प्रयत्न किया है ? अथवा समाज के सामने सारा खयाल खड़ा कर दिया है ? हिन्दू समाज मृतबुद्धि की अदृष्टता से ग्रस्त और नेतृत्वहीन समाज बन गया है । इस समाज के आंतरिक जीवन में सुधार तथा बुद्धि लाये बिना उस का संगठन करना एक राजनीतिक खेल और चालवाजी ही है ।

असंस्कारी पुजारी पण्डे दक्षिणा के स्वाध के लिए लोगों की अधी धममावना को बनाये रखते हैं । और "हिन्दू राजनतिक नेता" पक्ष संगठन और वोट-मत प्राप्ति के लिए लोगों में धार्मिकता की जागृति करने की जगह अप्र धर्मा भिमान जहरी पदाभिमान को जाग्रत करते हैं । उस का आसान रास्ता यह है कि विधर्मी लोगों की चालवाजी का जिक्र करते रहना और सरकार की सदासीनता के प्रति चिढ़ पैदा करना ।

जब मैं ईसाइयों के धम-संगठन पर विचार करता हूँ और हिन्दू-समाज की गफलत, अजागृति और अबुद्धि का खयाल करता हूँ तब निराश होना पड़ता है ।

हमारे स त सतपुरुष अच्छा काम करते हैं । लोगों में धार्मिकता, ईश्वरनिष्ठा और सदाचार का प्रचार करते हैं । लेकिन वे समाज के दोषों को दूर करने का कोई संगठित प्रयत्न नहीं करते । फलतः समाज का पुरुषाय नहीं बढ़ता । समाज की प्रगति नहीं होती ।

तीसरा वर्ग है सयासी और वरागियों का । इन में कई लोग बहुत ऊँचे दर्जे के सतपुरुष होते हैं । इन में सच्ची धार्मिकता का अच्छा खयाल होता है । लेकिन ये अपनी जमात की हठिया से ऐसे बँधे रहते हैं कि अपनी उस जमात का सुधार करने का काम उन्होंने अपने हाथ में बहुत कम लिया है । स्वामी विवकानन्द और उन के रामकृष्ण मिशन ने एक अच्छा नमूना अवश्य पेश किया है ।

चद सयासी और वरागी अच्छे चारित्र्यवान और धमभक्त होने हैं लेकिन बिल्कुल विरक्त और यत्तिवादी अपनी उन्नति और अपने मोक्ष में मस्त रहते हैं । उन के आचरण का समाज पर अच्छा असर होता है सही । लेकिन स्वाध निवृत्ति एक चीज है (जा अत्यन्त जरूरी है) और जीवन विमुक्तता अलग चीज है । दोनों को वराग्य कहना योग्य नहीं होगा । लेकिन निवृत्तिवादी लोग दोनों को एक साथ रखते हैं । इस लिए जीवन सुधार का काम उनसे नहीं होता ।

जब मैं ने हिमालय की और अन्य तीर्थों की यात्रा की तब ऐसे सयासी,

बरागी और साधुओं के साथ काफ़ी रहा था। उन के प्रति मेरे मन में आदर और सहानुभूति है। इनमें से चार लोग ऊपर-ऊपर से केवल भिक्षुमार्गी के जैसे दिखते हैं, लेकिन नज़दीक से देखने से उन का चरित्र, उन की धर्मबुद्धि और सामाजिक परिस्थिति का उन का परिचय अद्भुत होता है। वे व्यवहार चतुर भी होते हैं, लेकिन इन सद्गुणों का संगठन करने का काम वे नहीं करते। प्रवृत्ति का केवल संगठन करने से सिर्फ़ एक गद्दी तैयार होती है और अव्यवस्था ही संगठित होती है। इस के सदाहरण जगह जगह मिलते हैं। श्रद्धा के कारण ऐसे संगठनों को समाज चलाता भी है। मूल सस्थापक के पुण्य के बल पर ये संगठन काफ़ी दिन तक चलते हैं लेकिन इन के द्वारा समाज की सेवा नहीं किन्तु असेवा ही होती है।

सायासी बरागी और भटकते साधुओं के आदर छोड़े लोग तो विलकुल धर्मविहीन रूढ़िप्रस्त भिक्षुमार्गी ही होते हैं। ऐसों की सस्था समाज मानता है— उस से बहुत कम होती है। अधविश्वासी, ज्ञानविहीन किन्तु धर्म में मानने वाले और अपने पंथ के भले-बुरे नियमों को माननेवाले साधुओं का सस्था ही अधिक होती है। इन के आदर काम करना आसान नहीं है। उन्हीं में से कोई सुधारक पैदा हो जाय तो ज़रूर सुधार ही सबेगा।

हिन्दू-समाज में इतने अनेकानेक असह्य पंथ और फिरके हैं कि सारे समाज का एक साथ विचार करना और उस में सुधार करना प्रायः अशक्य है।

सारा समाज रूढ़िप्रस्त होते हुए भी असंगठित है। इस में अधरूढ़िप्रिय लोग नेता बन सकते हैं। सुधारकों को अनुयायी मिलना मुश्किल होता है और भिन्न भिन्न विचार वाले सुधारक समाज को सुधारन की कोशिश शुरू करें उस के पहले ही आदर-आदर परस्पर विरोध करके एक दूसरे को क्षीण करते हैं। और समाज में अधश्रद्धा और अधविश्वास दोनों का विविध मिश्रण अपना काम कर के समाज को श्रद्धाविहीन और निष्प्राण बनाता है।

पिछले सौ डेढ़ सौ वर्ष इस देश में समाज-सुधार के अनेक प्रयत्न हुए। हरएक प्रयत्न में शुरू में बड़ा जोश दीखता था। बाद में जोश के अभाव में सारी प्रवृत्ति निष्प्राण हो कर एक नयी रूढ़ि-सी ही गयी।

इतनी सारी दुर्दशा के आदर भी समाज में एक प्रकार की सज्जनता, सदाचारिता और धार्मिकता रही है। ऐसे लोग पुरानी रूढ़ियाँ का साथ विरोध नहीं करते किन्तु उन पर विश्वास भी नहीं करते। धर्मों के प्रति उन क मन में आदर है लेकिन धर्माभिमान से अंधे हो कर अथ धर्मियों के साथ झगडा करने को भी वे तैयार नहीं हैं। धर्मग्रन्थों के प्रति सामान्य आदर-भक्ति होते हुए भी किसी

यही है भारत का मिशन

भगवान् की लीला का पूरा रहस्य कौन समझ सका है ? फिर भी जितना हम समझ सकते हैं, भगवान् की युग प्रेरणा को उपयोग में लाना हमारा कर्तव्य है ।

भारत के आर्य लोग, चीन देश के चीनी लोग इजराइल के यहूदी लोग, इजिप्त के प्राचीन लोग अपने-अपने देश में स्थिर रह कर खेती आदि सस्कृति का विकास कर सके और उन्होंने अपनी सस्कृति को जीवन यापी घम वा स्वरूप दिया । न जाने ये सब लोग इन देशों में कहां से आये ? लेकिन आ कर स्थिर होने के बाद उन्होंने अग्रज जाना पसन्द नहीं किया । अच्छा उपजाऊ देश, सुसंगठित सस्कृति और खेती का साधन ऐसी सहूलियत से उन की समृद्धि बढ़ो और उन्होंने प्रगतिशील समाजों की स्थापना की और अपने अपने देश में सत्तोप से रहने लगे । लेकिन मनुष्य पूरा स्थावर नहीं हो सकता । मनुष्य चाहे ही कोई वनस्पति है कि जमीन में जड़ें डाल कर वहीं पर अपना भाग्य बो दे ? मनुष्य स्थावर भी है और जगम भी । उस के आँखें, हाथ और पाँव उसे प्रेरणा देते हैं बैठे मत रहो खड़े हो जाओ और खड़े खड़े क्या देखोगे ? चलते चलो । जो चलता है उसी का भाग्य चलता है । ' चराति चरतो भग ' (भग यानी भाग्य) ।

योरप के दक्षिण में ग्रीस और इटली में लोगों को पुरुषार्थ की सूझी । ग्रीक लोगों ने दर्शन का विकास किया मूर्तिकला बढ़ाई और नगर राष्ट्र के द्वारा स्वराज्य शासन के प्रयोग किये । रोमन लोगों ने दूसरे ढंग से राजशासन के प्रयोग किये और सफलता मिलने पर साम्राज्यवाद आजमाया—राजनीतिक और सांस्कृतिक भी । रोमन लोगों ने युद्धकला का भी विकास किया और अपना साम्राज्य फैलाया । चीन के लोगो ने भी ऐसा ही किया ।

इधर ईरान के लोगो ने भी अपना साम्राज्य स्थापित किया और आर्यों ने भारतवर्ष में । ये सब लोग एक दूसरे को बमोबग पहचानते थे । भारतीयों ने जैसे खेती का विकास किया वैसे ही जहाज बना कर नौका-नयन भी विकसित किया और समुद्र लाघ कर दूर-दूर के देशों तक जा कर अपनी सस्कृति का विस्तार किया । ये सब पुरानी बातें हैं ।

इधर अरबस्तान में आबोहवा और जमीन की कठिनाई के कारण लोगो का जीवन क्रम कठिन था । ऊँट का वाहन और खजूर की खुराक और जैतून का तेल

इन के सहारे वे दूर-दूर सफर करने लगे । उन्होंने अपना पर सैनाला और घोर घीर अपना साम्राज्य भी बनाया ।

इन सब जातियों ने अपनी-अपनी जीवन-व्यवस्था स्थिर बनाने के लिए अपने-अपने धम चलाये । हो सकता है कि भगवान् ने ही इन के नेताओं को धम की प्रेरणा दी और ईश्वर की आना पालते हुए इन के धर्मों का और इन के सामुदायिक जीवन का विकास हुआ ।

जब से हम भारतीय लोग भारतवर्ष में आये, यहाँ की भूमि, यहाँ की नदियाँ और यहाँ के पहाड़ हमें भा गये । यहाँ हम ऐसे स्थिर हो गये कि फिर यहाँ से बाहर जाने का मन ही न हुआ । उत्तर, पूव और पश्चिम में जो पहाड़ थे उन्ही को हम ने अपने विस्तार की सीमा मानी ।

पश्चिम, पूव और दक्षिण में तो समुद्र ने हमारी मर्यादा बाध दी । जीवन विकास के लिए यह भूमि हमारे लिए पर्याप्त थी । समुद्र और हिमालय हमारे प्रेरणा के स्रोत थे । समुद्र से हम सीधे गाम्भीर्य और हिमालय से हम सीधे धैर्य । 'समुद्र इव गाम्भीर्यं धर्मणं हिमवान् इव ।' शुरू शुरू में हम समुद्र भी लांघ सकते थे और हिमालय के उस पार भी जाते थे । लेकिन भारत की समृद्धि के हम ऐसे लट्टू बन गये कि समुद्र-यात्रा का हम ने निषेध किया और अटक के उस पार जाना बिना जरूरी माना । आर्यों के नेता इंद्र का वचन हम भूल गये—जो बठता है उस का भाग्य बठ जाता है, जो खड़ा होता है उसका भाग्य भी उठ कर खड़ा होता है, साने वाले का भाग्य सोता है और चलने वाले का भाग्य चलता है और प्रगति करता है । प्रगति के मानी ही है आगे बढ़ते जाना ।^१

जब भगवान् को अगर इन सब धर्मों का और सस्कृतियों का सम्मेलन बनाना हो और हम समन्वय के लिए तयार न रहें, और कहने लगे कि दुनिया के सब लोग इस देश में आ जायें और 'इस देश में पैदा हुए ब्राह्मण इत्यादि बड़े लोगों से अपने अपने चरित्र का रास्ता सीख लें', तो भगवान् क्या करे ?

हो सकता है कि चीन के, ब्रह्मदेश के, काम्बोज (काम्बोडिया) के लोग यहाँ आ कर धम और सस्कृति की दीक्षा लेते हागे । लेकिन हम लोग ने बाहर जाना ही छोड़ दिया । फलत हमारा धम और हमारी सस्कृति ताजी न रही,

१ आस्तं भग आसीनस्य ऊर्ध्वम् तिष्ठति तिष्ठत ।

छेते निपट्टयमानस्य चरति चरती भग ।

२ एतद्देशप्रभूतस्य सर्वाशात् अप्रजन्मन ।

स्वम् स्वम् चरित्रम् शिखेरत् पृथि-यात् स्वमानवा ।

भौतिक विज्ञान का सत्य और अध्यात्म का सत्य अलग अलग हो नहीं सकता 'एकम सत् यह भी सही है और 'सत्यम अनन्तम' यह भी सत्य है ।

यहाँ तक आने के बाद क्या भारतवर्ष भूतकाल को उपासना करते हुए विज्ञान को छोड़ देगा ? वह तो दकियानूसी वृत्ति होगी । तो क्या भारत विज्ञान को स्वीकार कर अध्यात्म को छोड़ देगा, तिलाजली देगा ? वह होगा आत्महत्या । विज्ञान का रहस्य है प्रकृति में और अध्यात्म का रहस्य है पुरुष में । दोनों अनादि हैं, अनन्त हैं । अलग अलग रह नहीं सकते । दोनों की शादी ही अभीष्ट है ।

इसलिए तो भारत में पूव और पश्चिम का सहयोग हुआ है । पश्चिम के अनेक शिष्य और अनुयायी बन कर और चेंचुली से ऊब कर हम अध्यात्म को छोड़ देंगे तो हमारे हाथ में कुछ नहीं रहेगा ।

हम अंधे हो कर अभिमान से यह न कहें कि अध्यात्म में हम शिखर तक पहुँच गये हैं नया पाने को, सावधान करने को और खोजने को कुछ शेष नहीं रहा । वह तो अभिमान ही होगा, गलत अध्यात्म को सावभौम बनाया होगा । जब हम भौतिक विज्ञान और अध्यात्म को ओतप्रोत बनाएँगे तभी भारत राष्ट्र प्राणवान होगा । भारत के सामने अब दो ही बातें खड़ी हैं । या तो सब धर्मों में से धार्मिकता को बाहर निकालना और उस धार्मिकता की दीक्षा द कर भौतिक विज्ञान को परिपूर्ण करना या अध्यात्म को अस्वीकार कर के भौतिक विज्ञान को पीछे पीछे चलना और काफी समय तक पश्चिम की स्याहीसोख का अनुयायी बनना और सब के साथ विनाश की यात्रा में अग्रसर होना ।

हमारी श्रद्धा है—भारत का जम इस तरह से मरने के लिए नहीं है ।

भारत भाग्य विधाता का हेतु हमें तो स्पष्ट दीखता है कि भारत स्वयं विज्ञान और अध्यात्म का समन्वय कर बतावे और दुनिया को सबनाश से बचावे ।

(१ अगस्त १९६५)

नवसमन्वय की नयी नीति

मुगल साम्राज्य के दिनों में भारत का सम्बन्ध ईरान के साथ खूब बढ़ा । ईरान यानी इस्लाम की सत्कारिता । इस्लाम का जन्म हुआ अरबस्तान में । वह पनपा भी उसी देश में । लेकिन इस्लाम की सत्कारिता पूरी-पूरी प्रकट हुई ईरान की

मदद स । जब मुग़ला का राज इस देश में हुआ और अरबी-फारसी भाषा का अध्ययन यहाँ बढ़ा तब कई अच्छे-अच्छे ईरानी विद्वान् और गुणीजन भारत में आ कर बसे । और यहाँ के लोग भी उस देश में गये । सस्कृति का आदान-प्रदान सतत चला और कई बातों में घनिष्ठ हुआ ।

दो देशों का आपस में सम्पर्क बढ़ने से गुण तथा दोष दोनों का आदान प्रदान होता है । दोषों की बात इस वक्त में नहीं सोच रहा हूँ । सद्गुण और सस्कारिता की ही बात यहाँ सोचनी है ।

ईरान की इस्लामी सस्कृति का असर हमारे शिष्टाचार पर हुआ, पोशाक पर हुआ, खानपान के प्रकारों पर भी हुआ, साहित्य पर तो बहुत हुआ । धार्मिक रस्म रिवाजों पर भिन्न धर्मी सस्वारो का असर जल्दी नहीं होता और जो होता भी है उसे धार्मिक मायता आसानी से नहीं मिलती ।

वेदकाल से लेकर मुस्लिमों के आगमन तक भारतीय धार्मिक जीवन में जो परिवर्तन होते गये उन का प्रतिबिम्ब हमारे स्मृतिग्रन्थों में और पुराणों में स्पष्ट या अस्पष्ट पाया जाता है । लेकिन इस्लामी सस्कृति का असर उन में नहीं देख पड़ता । शायद नये-नये स्मृतिग्रन्थ न बन सके, न पुराणों में भी नयी बात आयी । समाज में (खासकर विशिष्ट जातियों में और राज-परिवारों में) बहुत परिवर्तन तो हुआ, लेकिन उस का प्रतिबिम्ब स्मृतियों में और पुराणों में कम पाया जाता है । सतवाणों का क्षेत्र ही मर्यादित था । लेकिन उस में कुछ न-कुछ असर अवश्य देख पड़ता है ।

(मैं ने भविष्यपुराण नहीं पढ़ा और इस्लाम के आने के बाद जो अरलोपनिषद् लिखा गया वह भी ध्यान से नहीं पढ़ा है । इसलिए उस के बारे में कुछ नहीं कह सकता । भारतीय सस्कृति का ईरान की इस्लामी सस्कृति पर ज़रूर असर हुआ होगा । लेकिन उस का अध्ययन सशोधन अगर कही हुआ हो तो हम नहीं जानते और यहाँ पर उस का चिन्तन भी अप्रस्तुत है ।)

पठान और मुग़लों के राज्य के बाद यूरोपियन लोग आये । इन में पोचुगीज, फ्रेंच और अंगरेज—तीनों का ही असर हम पर हुआ । पोचुगीज लोगों का असर भारत व्यापारियों नहीं हुआ, लेकिन गोवा और पश्चिम भारत में दीर्घ काल तक हुआ । गोवा के समाज पर पोचुगीज ईसाई सस्कृति का असर चार सौ पचास वर्ष तक लगातार हुआ है । इस देश में रोमन क्यालिब ईसाइया की सख्या दूसरे ईसाइयों से अधिक है । लेकिन जिन लोगों ने धर्मांतर नहीं किया उन पर पश्चिमी ईसाई साहित्य, सस्कृति और अभिर्घचि का असर तो हुआ ही है ।

पश्चिम लोगों का प्रभाव ज्यादा नहीं हुआ होगा। सब से ज्यादा असर हुआ अंगरेजों का। यह असर उन के राज्य के कारण, उन की शिक्षा के कारण और उन के व्यापार तिजारत के कारण बहुत गहरा हुआ।

और एक विशेष असर हमें भूलना नहीं चाहिए। यूरोप के (और कुछ हद तक अमेरिका के) लोगों ने संस्कृति भाषा उस का व्याकरण, उस का साहित्य और उस में प्रगट होने वाले धर्म और तत्त्वज्ञान का अध्ययन किया। उस अध्ययन के साथ उन लोगों ने हमारी काफी निंदा स्तुति भी की। हमारा इतिहास (राजनीतिक तथा सांस्कृतिक) ढेंढ निकालने में गोरो की असाधारण मदद हुई है। पहले पहल उन का यह सारा अध्ययन प्राथमिक स्वरूप का और छिछला था। इसलिए उन्होंने हमारा बहुत कुछ निंदा भी की। ईसाई धर्म के प्रचारकों ने तो हमारी भली बुरी असख्य चीजों की बुराई की बाद में गहराई में उतर कर गोरो लोगों ने हमारी संस्कृति की अच्छाइयों की कदर करना शुरू किया। अब वह जमाना खत्म हो गया है। अब ईसाई धर्म की दृष्टि से नहीं किन्तु पाश्चात्य विज्ञान प्रधान संस्कृति की दृष्टि से और जीवन समृद्धि की दृष्टि से वे हमारी संस्कृति के गुण दोषों का तटस्थ भाव से अध्ययन और विवेचन कर रहे हैं। ऐसे साहित्य का आदर के साथ अध्ययन करना ही पड़ता है। पाश्चात्यों के इस नये प्रयत्न का हम पर अधिक से अधिक असर हो रहा है।

हमारी संस्कृति का इस नयी जागतिक दृष्टि से अध्ययन, विवेचन और स्वीकारण करने का प्रारम्भ पियासोंकी के दिनों से हुआ। स्वामी विवेकानन्द और रवीन्द्रनाथ ठाकुर जैसे प्रतिभावान् यत्नियों ने सारे राष्ट्र को उत्तम प्रेरणा दी। और अब तो हमें हमारी संस्कृति को न तो भूतकाल के तरफ ले जाना है न वर्तमान काल में स्थिर करना है। हमारी संस्कृति इतनी प्राणवान् और क्रांत दर्शी है कि हमें अपनी संस्कृति का एक उज्ज्वल नवस्वीकरण बनाकर उस के द्वारा जगत की सेवा करनी है।

लेकिन यह सब तब बन सकता है जब हम अपने पर ससार के होनेवाले असर को पहचाने और उस का विशाल दृष्टि से यथाथ परीक्षण करें।

हिन्दू समाज के अतगत संस्कृति के भिन्न भिन्न स्तर चलते आये हैं, जिन के अन्दर पूरा समन्वय और आत्मियता सिद्ध होना बाकी है। यह बड़ा काम हमारी सामाजिक गफलत से रह गया है। लेकिन भारतीय संस्कृति अब केवल हिन्दू संस्कृति नहीं रही। भारत में मुसलमान हैं ईसाई हैं और हैं सब धर्मों से ऊब आये हुए धर्म विमुख लेकिन समाज हितपी सत्कारी सज्जनों का एक बड़ा समाज है। ये सारे समाज अगर केवल क्षीण सत्त्व सह अस्तित्व से

सन्तुष्ट रहे तो हमारी संस्कृति को खरियत नहीं है । इन सगो का अगर समन्वय हम नहीं कर सके तो जीने का और विजयी होने का सब तरह का मादा होते हुए भी हम हार जायेंगे और हमारी संस्कृति का दुःखद अन्त हो जायेगा ।

इस वक्त हमारे जीवन पर अधिक से अधिक असर पश्चिम का हो रहा है यानी यूरोप-अमेरिका के असर में हम नाक तक डूब गये हैं । (सांस्कृतिक सुराह हमें खानी पडती है पश्चिम की ही । केवल साँस ही अपनी ले रहे हैं) पश्चिम का यह असर स्वराज्य मिलने के पहले कुछ कम था, भयाँदित था । स्वराज्य हाने ही पश्चिम का डर कम हो गया । साय-साय उस का प्रभाव बढ़ गया । अब इस को शिवायत भी नहीं हो सकती । हम अपने मालिक हैं । क्या आहार करें, क्या नहीं करेंगे, हम ही तय कर सकते हैं ।

अंगरेजी शिक्षा का, अंगरेजी व्यापार का और अंगरेजों के सम्पर्क का हम पर बितना असर हुआ है यह तो स्वराज्य पाने के बाद ही हम कमोवेश समझ रहे हैं । लेकिन उस का आकलन अभी तक ठीक ढंग से नहीं हो रहा है ।

स्थूल रूप में हम कह सकते हैं कि हमारे स्वराज्य के राज्यकर्ता देशप्रेमी हैं, देशामिमानी हैं, भारतीय संस्कृति का परिचय भी उन्हें है, लेकिन इस वक्त पश्चिम से जो कुछ मिल सकता है उसी को आत्मसात् करते जाने की उन की नीयत है ।

पश्चिम की संस्कृति से अपने देश की संस्कृति को बचा कर पुराने आदर्शों को फिर से चलाने का आग्रह रखने वाला' एक जबरदस्त पक्ष इस देश में था आज भी है । लेकिन उस में न राजनीतिक सामर्थ्य है न भविष्य की दिग्दर्शिता है । अब न अंगरेजों का विरोध करने की गुंजाइश है न भूतकाल के सुन्दर चित्र खींचने के दिन बचे हैं । पाश्चात्य संस्कृति का विरोध कर भारतीय संस्कृति का केवल रक्षण करने का कार्यक्रम जिन का था स्वराज्य होने पर शिक्षा का तन्त्र उन के हाथ में न जा सका । शिक्षा का तन्त्र तो पश्चिम की संस्कृति की बाढ़ को आमन्त्रण देने वाले लोगों के हाथ में ही पहुँच गया । इस में न कोई आश्चय है, न रोने की बात है । ऐतिहासिक सक्ति का असर हो कर ही रहेगा । पश्चिम की इस बाढ़ से नुकसान बहुत होगा लेकिन हमारा एक बहुत बड़ी बीमारी उस में बह जाने की सम्भावना है । हमारी भूतकाल की भक्ति करने की वृत्ति अभिमान के लिए चाहे जितनी पोषक हो, और भूतकाल के उज्ज्वल आदर्श को समझने के लिए चाहे जितनी उपयोगी हो, नवनिर्मिति का प्राण उस में पनप नहीं सकता ।

और सब से बड़ी बात यह है कि भूतकाल की भक्ति के कारण हम अपने को दोषरूप नहीं देख सकते, और राष्ट्र का बुकापा भी नहीं जा सकता। तब के सब उपासक हमें का बुकापे को ही चोता देने रहते हैं। इस बीमारी छोड़ कर जब हम भविष्यकाल की तरफ देखते चलेंगे और कावगामी जीवन उपासना करने लगेंगे तभी हम नव निर्माण में योग्य बनेंगे।

इस के लिये पश्चिम की सस्कृति की शक्ति हमें जीवन की बसोटी पर कि हमारी पुरानी बसोटी पर) बस कर देखनी चाहिए। हमारे पुराने श तात्त्विक, आध्यात्मिक दृष्टि से चाहे जितने गुद्ध और उत्तम हों, उन को इन के अध्यात्म' की बसोटी पर बसना चाहिए। और एक बार जब हमें इन का सच्चा अध्यात्म' प्राप्त होगा तब हमें पता चलेगा कि कहीं से क्या चाहिए, क्या टालना चाहिए और भविष्य के लिए कौन सी जागतिक-ति काम में आयेगी। किन्तु पश्चिम की बाढ़ में बहन स जो लाभ हानि। उस के लिए हमें तयार रहना ही है उस का विरोध करने की हम में त है ही नहीं। और किस चीज का विरोध करें और किस चीज को प्रसन्नता स्वीकार करें हम का निणय करने की हमारे पास न है गुद्ध दृष्टि, न है सिद्धि।

इस जीवन दृष्टि और हृदय सिद्धि के लिए कोशिश करने से ही नव-समय होगा।

(१५ अगस्त १९६६)

को हम विशुद्ध और प्राणवान् बनावें

अपना भूतकाल भूल जाने से मनुष्य अपनी बुनियाद का बठता है। लेकिन आमाद खोने के डर से मनुष्य जब भूतकाल का उपासक बनता है तब सिर्फ आमाद ही नहीं अपना सारा जीवन ही खो बठता है। किसी समय भूतकाल में प्राण अवश्य था लेकिन प्राण भूतकाल की उपासना कभी नहीं करता। जीता है बनमान काल में जीता है भविष्यकाल के लिए, और जी सकता भूतकाल को छोड़ देने से है। यही है प्राण की प्राणशक्ति का रहस्य।

ससार में आज जितने भी घम हैं सब के सब भूतकाल के उपासक हैं। लिए ये सब घम अपने पुराने कलेवर को ले बैठत हैं और प्राण को खोते हैं।

युगासुद्ध हिन्दू जीवन दृष्टि

और फिर भूल बन कर अपने-अपने धमनिष्ठा के तिर पर सवार होते हैं और आपस में लड़ते हैं।

अगर हमारी धमनिष्ठा जीवन निष्ठा की तरह प्राणपूण होती तो हम लोग ने अपने-अपने धम को नयी-नयी दृष्टि दी होती, उस के फलेवर को बढ़ने दिया होता और भविष्य के लिए नये-नये पुरुषार्थ करने की उम्मीदें रखी होती। अगर सब के सब धम इस तरह से बढ़ते रहते और भविष्यकाळ को ओर देखते रहते तो वे एक-दूसरे को दुश्मनी करने की भूल नहीं करते।

जब धमनिष्ठ लोग अपने अपने धम का अभिमान ले कर आपस में लड़ते हैं और एक-दूसरे का मूल करते हैं तब वे जानते नहीं कि वे अर्थ धर्मों का नाश नहीं कर रहे हैं, अपने ही धम की कत्र बना रहे हैं।

आजकल इन धर्मों के प्रति जिंदा-जीवित निष्ठा कही भी नहीं दीख पड़ती। जीवित निष्ठा होती तो धम को जीवित रखने के लिए उस का नव संस्करण किया जाता। लोग में पाया जाता है केवल धर्माभिमान। लोग नाम लेते हैं भगवान का लेकिन अभिमान रखते हैं तीन चीजों का पुराने धम संस्थापक का भूतकाल के लिए लिखे गये धम ग्रंथों का और भूतकाल के लिए बनायी गयी धम साधना का और उस के रस्म रिवाज का। ईसाइयों में ईश्वर भक्ति गीण है ईसा की भक्ति प्रधान है। मुसलमान कहेंगे, हमारे नबी साहब, हजरत मोहम्मद पैगम्बर साहब दुनिया के लिए आखिरा पैगम्बर हैं, उन्हीं की बात हमेशा के लिए माननी चाहिए। हमारे वैष्णव कहेंगे कृष्णस्तु भगवान स्वयम्। चन्द वैष्णव यहाँ तक बढ़ते हैं कि वे कृष्ण को भगवान् का अवतार मानने को तैयार नहीं हैं। अवतारी पुरुष तो बलराम था। कृष्ण स्वयं भगवान थे। दस अवतारों की जब वे गणना करते हैं तब बोलते हैं 'रामो रामश्च रामश्च' याने एक परशुराम, उन के बाद दशरथी राम और आखिरकार बल राम ऐसे तीन रामावतार हुए।

वेदात्त विद्या के लिए हम पुराने ग्रंथों को ही ले कर क्यों बैठें? वेदात्त का प्रारम्भ हुआ वेदा से इस में तो कोई शक नहीं है। उस विचार का विकास हुआ उपनिषदों में। उपनिषदों के मौलिक विचारों को अपने ढंग से व्यवस्थित रूप दिया ब्रह्मसूत्रा ने।

उस के आगे प्रगति को भगवतगीता ने, गीता में ब्रह्मविद्या भी है, योगशास्त्र भी है और जीवनकला भी।

अब यह वेदात्त विद्या गीता तक आ कर ठहर नहीं गयी। आचार्यों ने वेदात्त विद्या को बढ़ावा दिया। वेदात्त विद्या की बुनियाद भले ही उपनिषदा

धर्मों को हम विशुद्ध और प्राणवान् बनावें

के वचनों में पायी जाती हो लेकिन वेदान्त विद्या उपनिषदा के वचना का अर्थ करने पर निभर क्यों रहे ? वेदान्त विद्या का सच्चा आधार पौरुषेय वचना पर नहीं है किन्तु वेदान्त विद्या की उपासना करने वाले पुरुषों की अनुभव-परम्परा पर है ।

लेकिन हमारी भूतकाल की उपासना हमें अज्ञान बना देती है । यह कहती है कि मानवत्वय तो त्रिकालीन थे । शंकराचार्य चाहे ही त्रिकालीन थे ? शंकराचार्य का अधिकार मानवत्वय के वचनों का अर्थ करने तक सीमित है ।

शंकराचार्य का कोई अज्ञान भक्त इस पर चिढ़ कर कहेगा कि 'आप भी क्या कह रहे हैं ? हमारे शंकराचार्य तो स्वयं भगवान् शंकर ही थे ।' अगर ऐसे शंकर भक्त को मैं कहूँ कि श्री अरविन्द भी तो भगवान् ही थे तो यह मानने को तैयार होगा ? ।

(१ सितम्बर १९६६)

चाहिए नव समन्वय

भारत में घर्षों की बात अब पुरानी हो गयी है । लोग घर्षों का मानते तो हैं । घर्षों के नाम से सारे समाज के तान धार बड़े टुकड़े हुए हैं । घर्षों की बाधा बिल्कुल दूर नहीं हुई है, तो भी घर्षों की प्रधानता अब पहले की जसी नहीं रही । अब तो दुनिया के दो ब्लॉक हो गये हैं, पूरे तो नहीं हुए हैं लेकिन किये जा रहे हैं, जोरो से किये जा रहे हैं । एक दल अमेरिका का शिष्य अथवा अनुयायी या आधित बन रहा है । और दूसरा रशिया का ।

भारत सरकार दाना के बीच तटस्थता के नाम छोटे छोटे झोंके ले रही है । स्वयं सरकार का ही पता नहीं कि किस बलत उस पर किस दल का प्रभाव पड़ रहा है या बढ़ रहा है ।

यह हो गयी राजनीतिक निष्ठा की बात, आयडियालाजी की बात । लेकिन हमारे जीवन की हालत क्या है ? उस में तो सारा परादलम्बन, परप्रत्यय, असमर्थता और असंतोष ही है ।

एक ही उदाहरण ले लें । हमारी अज्ञोत्पत्ति जितनी चाहिए उतनी बढ़ नहीं रही है और दूसरी बात है कि काफी चाहने पर भी हमारी प्रज्ञोत्पत्ति तनिक

भी एक नहीं रही है। न भारत का रकबा बढ रहा है, न भारत की जनता को किसी उपनिवेश में जा कर बसने की सहूलियत है। इस का कोई विचार ही नहीं करता।

जब लोकसख्या जोरो से बढती है तब आजकल की भाषा कहती है, लोकसख्या का विस्फोट हुआ है। (या देखा जाय तो सारी दुनिया में लोकसख्या का विस्फोट जोरो से हो रहा है और प्रजोत्पत्ति और अन्नोत्पत्ति का प्रमाण सँभालना सबत्र कठिन हो गया है। दुनिया की सरकारों के लिए और मनीषियों के लिए यह बडा चिन्ता का विषय हो रहा है।) भारत की बात सोचते हुए कहना पडता है कि जब से स्वराज्य हुआ है हमारे सवाल—चिन्ता जनक सवाल बढते ही जाते हैं। कहना पडता है कि सवालों का भी विस्फोट हो रहा है। मैं हिसाब कर रहा था कि “इन दिनों हम लोगो ने कितने सवालो का हल ढँड निकाला है।” बहुत सोचने के बाद भी एक भी सवाल घ्यान में नहीं आता है जिस का हमने सन्तोपजनक हल निकाला हो। सन्तोप इतना ही है कि सारी दुनिया की हालत हम से अच्छी नहीं है।

खाने के अन्न के लिए विदेश पर आधार रखना पडे, यह तो परावलम्बन की अवधि हो गयी।

जहाँ ऐलें अगरेजी का बोलबाला है। फलत हमारे नवयुवक और युवतियाँ अमेरिकी उपन्यास दिन रात पढते हैं। और अब उसी ढंग के देगी उपन्यास भी लिखने लगे हैं जिस में नोति, मदाचार, अभिरुचि सब कुछ विदेशी ढंग के हो रहे हैं। छोटे-छोटे बच्चे देशी भाषा का किताबें हाथ में कम लेते हैं। अँगरेजी किताबों की ही भरमार है।

राज्य चलाने के लिए धन चाहिए, सो भी अगर हम विदेश से भगवा लें तो हम मित-ययिता—विफायतशारी कब साखेंगे? जब पैसा, चाहे जितना, आसानी से मिलता है तब मनुष्य अघा होकर खच करता जाता है। विदेशी लोग पहले-पहल, बिना किसी शत के कर्जा देते जायेंगे। कर्जे लेने की हमारी आदत बढने पर अब वह देखते हैं कि हम पूरे लाचार हो गये हैं तब ऐन मौके पर कर्जा देना बन्द कर देते हैं और तब शरण गय बिना चारा ही नहीं रहता। अब चाहे जितना पसा मिलता है, तब पसा बनता है सस्ता और सब चीजें बनती हैं महगी। ऐसी हालत में अगर किसी की सलाह लेनी पडे तो विदेश के दिन सलाह देने के लिए बुलाये जाते हैं।

हमारे दश में हमारी शिक्षा कसी होनी चाहिए, जिस का निणय करने के लिए एक आयोग नियुक्त हुआ, इस में भी विदेश के विन लोगो को बुलाया

गया । जिस देश के पास 'स्वयं प्राण' नहीं उस का दूसरा क्या होगा ?

हम नहीं कहते कि विदेशी लोगों के पास अच्छा ज्ञान और उच्च सस्कृति नहीं है । लेकिन उन की बुनियाद में उन का अनुभव, उन का स्वभाव, उन का आदर्श और उन की वायपद्धति होती है जो, हमारे देश के लोगों के लिए अनुकूल है या नहीं यह देखे बिना, अगर हम लादते गये तो भारत के लोग सहन तो करेंगे लेकिन उन का उत्कर्ष नहीं हो सकेगा । दुनिया से हम सब कुछ ले सकते हैं लेकिन अपनी क्षमता और उन की मर्यादा देखनी पड़ेगी । अच्छी से अच्छी सुराक भी अगर हमारे हाजमे के लायक नहीं है तो ऐसी सुराक से लाभ होने की जगह हानि ही अधिक होगी ।

हमारी पुरानी सस्कृति उस काल के लिए शायद काफी हदतक मुफीद थी । लेकिन आज की बदली हुई और बढ़ी हुई परिस्थिति के लिए वह बिलकुल अनुकूल नहीं है ।

पुरानी सस्कृति को व्यापक बनाने के लिए उस का पुराना कलेवर छोड़ना ही पड़ेगा, ज़रूरत पड़ने पर तोड़ना भी पड़ेगा और नयी और भविष्य काल के लिए लाभदायी समन्वित सस्कृति के अनुरूप नया कलेवर उसे देना पड़ेगा ।

अगर हमारे पास ऐसे समाज शास्त्री होते जो हमारी प्राचीन सस्कृति के प्राण को पहचानते हो, उस के प्रति आदर भक्ति भी रखते हो, लेकिन भूतकाल के उपासक बन कर पुराने कलेवर में हमारी वर्धमान सस्कृति को मार डालना नहीं चाहते हैं, तो ऐसे अध्यात्म परायण समाज शास्त्री हमारी सस्कृति को उस के नवसमन्वय के अनुकूल एक तारुण्ययुक्त कलेवर दे देते ।

लेकिन जो लोग भूतकाल के उपासक हैं व्यापक समन्वय को समझ नहीं सकते, वे इस नवनिर्मित का जिद के साथ, विरोध करेंगे और इसी में अपने जीवन की कृतायता समझेंगे ।

ऐसे लोगों को विवाद में सफलता मिले या निष्फलता, समाज उन के रास्ते जाने वाला नहीं है । समाज तो अपने प्राण के प्रति निष्ठा रख कर जाने अनजाने नव समन्वय की ओर ही जायेगा । और यह नव-समन्वय भारतीय सस्कृति के लिए जीवनपूर्ण नया शरीर बना ही लेगा ।

हजारों वर्षों की भारतीय सस्कृति का इतिहासक्रम भविष्य की ओर इंगित कर रहा है । भविष्य की ओर देखने की दृष्टि को ही दिव्यदृष्टि कहते हैं । ऐसी दिव्यदृष्टि जिन के पास है वे ही इस नव समन्वय को समझ सकते हैं और उस की तैयारी कर सकते हैं । पिछले डेढ़ सौ वर्ष के आदर भारत में ऐसी दिव्य दृष्टि वाले लोग पैदा हुए हैं । भविष्यकाल उन्हीं का है ।

(११ अक्टूबर १९६६)

साम्यवादी देशों में क्यों नहीं ?

हम सम-वयवादी किसी से नायमी असहयोग कर ही नहीं सकते। सहयोग है जीवन धर्म, असहयोग है आपद धर्म। सीधे सधप से बचने के लिए ही, और विरोधी पक्ष में धमबुद्धि जाग्रत करने की आशा है तब तक ही, असहयोग का आश्रय हम ले सकते हैं।

हम ने कहा कि चीन और रशिया में साम्यवाद प्रचलित है। वहा पर आत्मीयता लाने के लिए, सम-वय सफल बनाने के लिए हम कुछ नहीं कर सकते। यह कोई सिद्धांत की बात नहीं है। हमें इतना ही कहना था कि जहा साम्यवाद प्रचलित है वहा की सरकारें अपने-अपने देश के प्रजा-जीवन पर पूरा पूरा नियंत्रण रखती है। वहा सांस्कृतिक सम-वय का प्रचार या प्रयोग करने के लिए हमें मौका मिलना भी मुश्किल है।

मैं ने एक साम्यवादी देश में किसी आदमी से कहा कि मुझे अपने घर ले चलिए। हम आप का गृहस्थी जीवन देखना चाहते हैं। (हम सरकार के मेहमान थे। उन्होंने हमें एक आलीशान होटल में रखा था। मैं ने विनोद म उन लोगो से कहा था कि आप लोगों ने अपने बादशाह को उत्तम किया अब मेहमानों को बादशाह की तरह रखने लगे हैं।) जब मैं ने उस आदमी के घर जाने की बात की तो पहले चकित हुआ। बाद में उस के चेहरे पर असमंजसता दोख पडी। तुरंत वह सन्धला। उस ने कहा—जल्द आप को अपने घर ले जाऊंगा। अभी पांच दस मिनट में आप को लेने आ जाऊंगा। फिर वह आदमी कभी मिला ही नहीं।

जो हो हम लोगो ने देखा कि साम्यवादी देश में खानगी तौर पर लोगों से मेल-जोल साधना आसान नहीं है। सरकार ही समस्त प्रजा की समस्त रूपेण प्रतिनिधि है। कभी कभी कही कही साम्यवादी सरकारें व्यक्तियों को अपने प्रजाजनों के घर पर जाने देती होगी अथवा श्चय ले जाती होंगी। लेकिन वह सब सरकारी ढंग से सरकारी मायता के अनुसार ही हो सकता होगा।

(अमरिका के एक लेखक ने जिसने Mice and Man लिखा है, रशिया जा कर वहाँ जनता का पारिवारिक जीवन देखने का प्रयत्न किया। उस ने साम्यवादी सरकार को निदिक्कत करने के लिए कहा 'न मुझे राजनीतिक दृष्टि से

साम्यवादी देशों में क्यों नहीं ?

देगा है ग कुछ लिगा है। मैं बेचल बौद्धिवा जीवा ही देगता चाहता है और उयो वा वर्ण करता चाहता है। जो भी पोटो मैं लुंगा थीर जो भी लिगुंगा आग को गौं रूंगा। आप जितता मजूर करने उता ही आप बे देग के बाहर जायेगा। उग को सफलता मिली और उग की यह किताय सारी दुनियाने पाय से पड़ी। यह सब म जाता है। मैं ने भी यह किताय पड़ी ह। फिर भी मैं पढ़ूंगा कि साम्यवादी देनों में जाता में समन्वयवृत्ति का प्रचार करने के लिए जाना थागान नहीं ह। हम जो कुछ भी समझाता चाहें वहाँ के राज्य वर्ताओ को ही) और उन के आदमियों को ही समझा सकते ह। अगर हम समन्वय के सच्चे मिदानरी ह तो साम्यवादी देगा में भी पढ़वने का रास्ता हमें बँढता होगा। (म रगिया और चीन में सोमनस्य मण्डल का सदस्य का कर सरकारी मेहमाग के तीर पर घोड़ा घूमा है। मैं जानता ह कि वहाँ भी समन्वय वृत्ति का प्रचार पूणरूप से थावय नहीं है। लेकिन ऐसा काम आघान भी नहीं।)

सब तक घर-साम्यवादी देनों में गैर राजनैतिक ढग से समन्वय का सासृतिक कार्यक्रम करते जायें। वहाँ हमें जितनी सफलता मिलेगी उग का बखर साम्यवादी देनों पर भी होगा। हम निराग नहीं ह। हमारे लिए निरागा नास्तिकता का ही रूप ह।

समन्वयवादी और एक काम कर सकता ह जो हमारे कुमारप्पा ने किया था, और जित की मैं ने भूरि भूरि सराहना की थी। कुमारप्पा ने रगिया में और चीन में जा कर वहाँ जो भी चीज अच्छी देखी, प्रजाहित के सामाजिक बल्याण के काय देते उन की उहोने हादिक प्रदासा की और कहा कि ये सब बातें हमारे यहाँ और सबन होनी चाहिए। जब साम्यवादी नेता देख सकेंगे कि हम दबी हुई जनता के पदापाती है, सारी दुनिया में आदर से समता लाने की हमारी नीति ह, सब के भी हम पर विश्वास करेंगे और हमें समन्वयवृत्ति का प्रचार करने का मौत्रा बिसीन किसी दिन अवश्य देंगे।

लेकिन सावभौम समन्वय-वृत्ति का प्रचार करने का सबश्रेष्ठ काम करने वाले लोग हमारे पास हैं ही कितने ?

(११ अप्रैल १९६०)

युगानुद्धक हिंदू जीवन दृष्टि

धर्म समन्वय

किलहाल मेरे मन में एक ही चिन्ता जोरो से चल रहा है। हिन्दुओं को अपना पुराना और कालप्रस्त हिन्दुत्व छोड़ कर जात-पात का अलगाव छोड़ कर पारसी, यहूदी आदि स्वदेश के अन्य धर्मों लोगों के साथ आतप्रात हो जाने की तैयारी करनी चाहिए।

श्री विनोबा को आशा है कि ग्रामदान व्रान्ति के जरिये ऐसी व्रान्ति अपने आप होगी। यह भी आशा रखी जाती है कि ग्रामदान के द्वारा सब धर्म के लोग मिल कर एक कुटुम्ब बनेगा। कभी न कभी यह परिवर्तन होगा जरूर, लेकिन वह समय पर होगा या नहीं यही सवाल है। राष्ट्र की भावात्मक एकता आज सब तरह से जोखिम में है। डर है कि चाहे जसी परिस्थिति में जात पात का भेद एक या दूसरे तरह से जिंदा रखने की हिन्दुओं की मनोवृत्ति तथा कुशलता ग्रामदान को भी मात कर देगी। यह हम अभी तक ठीक समझ नहीं पाये हैं कि जात-पात का दुरावा एक सामाजिक और राष्ट्रीय राग है। 'सामाजिक जीवन तो ऐसा ही हो सकता है' ऐसा सोच कर इस सामाजिक कमजोरी के प्रति कोई ध्यान नहीं देता। और इस बारे में नेतागण समाज का छेड़ते ही नहीं। इस परायेपन का यदि हम यथाशीघ्र दूर नहीं करेंगे तो अब हम टिक नहीं सकेंगे। समाज के और खासकर के अपने कायकर्ताओं के गले इस बात को उतारे बिना कोई चारा नहीं है।

(१७ अप्रैल १९६८)

भावनात्मक एकता की जड़ पकड़ें

'मंगलप्रमात हमारी सस्या का मुखपत्र है। राष्ट्रभाषा हिंदी का उद्देश विविध भाषी, विविध धर्मों समूचे भारत का एकहृदय और एकप्राण बनाने का ही है। जब गाँधी जी ने देखा कि प्रचलित हिंदी द्वारा, ऐतिहासिक कारणों से और बद लोगों के सकुचित आदर्शों के कारण, वह भावनात्मक एकता यत्न नहीं हो रही

है, तब उद्दाने हिन्दी को और उर्दू को (और दोनों भाषाओं के अस्मिन्मानी लोकां को) एकत्र लाने के लिए हिन्दुस्तानी शब्द का प्रयोग किया। लेकिन जहाँ एदय की इतनी सर्वसम्भवकारी विगाहता नहीं है वहाँ वेयल शब्द बदलने से मामले में वहाँ गुपार हो सकता है? दो समाजों के बीच जो अलगाव है उसे दूर करने का संकल्प अगर शायों ने किया तो फिर उस में दोष के लिए एक-सी आशान भाषा मदद कर सकती है और जीवन पुनर्मिल सकता है। इस के अभाव में एक नये नाम से दोनों बाजू काकागोलना बढ़ी और किसी भी पक्ष को हम राजी न कर सके।

अलगाव राष्ट्रीय एकता के लिए बाधक है, परस्पर अविश्वास को पोषण देता है। अलगाव बढ़ने से और तीव्र होन से समय-समय पर परस्पर हत्या भी होती है लेकिन जब सब लोग अलगाव को एक राष्ट्रीय बीमारी नहीं मानते, और उसे स्वामाविक समझ कर उस का समर्पण करते हैं और जब तक ऐसे अलगाव से जो राष्ट्रीय कमजोरी बढ़ती है उसे बरदाश्त करने के लिए सब तयार हैं, तब तक इस बीमारी की जड़ें दूँड़ लेना ही हमारा प्रथम कर्तव्य बनता है।

लोग लड़ते हैं, अपने-अपने स्वाध के लिए। स्वाध हमेंगा अघा होता है, 'याय-अयाय को देखता नहीं। ऐसे स्वाध को बाजू में बने लाया जाय, यह एक बड़ा सबाल है। मामूली ढग से याय पाने के लिए लोग या तो पचायत के पास जाते हैं अथवा अदालत के पास।

यह बात नहीं कि हिन्दू हिन्दुओं के बीच कोई किसी के प्रति अयाय नहीं करता अथवा मुसलमान मुसलमान के बीच स्वाध का झगडा नहीं होता। हिन्दू मुसलमान, ईसाई सब एक ही मिट्टी के बने हुए हैं। जब स्वाध बढ़ता है तब लोग पहले उस को चर्चा करते हैं लोकमत का सहारा माँगते हैं अदालत के या पचायत के पास फसला माँगते हैं। इतने से याय नहीं मिला अथवा सन्तोष हुआ तो लोग निराश होकर बैठ जाते हैं। कहते हैं कि 'हमारी तबदीर ही ऐसी। जिम का इलाज नहीं हो सका उसे बरदाश्त किये बिना चारा ही क्या?'

भले लोग कभी-कभी इस से भी उच्च भूमिका का सहारा लेते हैं। वे कहते हैं, 'भले ही मेरे हक का मुझे न मिला। जिसन मेरे प्रति अयाय किया, वह आखिरकार है तो मेरा भाई ही। मुझे जो न मिला, पर भाई को मिला। मुझे मूखा रख कर वह खायेगा, उस के बाल-बच्चे खायेंगे। वे सलामत रहे तो किसी न किसी दिन मेरी मदद करेंगे। आखिरकार हम सब एक हैं। एक दूसरे के बिना हमारा काम नहीं चलेगा।' जहाँ आत्मोपता है प्रेम है, वहाँ

छोटे-मोटे अत्याय वरदास्त ही ही जाते ह । मुसलमान मुसलमान के साथ आराम से रहते ह क्योंकि उन में सब लोग ऊपर बताये हुए ढंग से ही सोचने हैं । यही बात ईसाइयों की । और ज्यादातर यही बात है हिन्दुओं की ।

लेकिन अब अत्याय का मामला हिन्दू और मुसलमान के बीच खडा होता है अथवा मुसलमान और ईसाई के बीच खडा होता है तब वह व्यक्तिगत मामला नहीं रहता । मुसलमान कहने लगते हैं "ये कमबख्त हिन्दू (या ईसाई) होते ही ऐसे । उस की जगह पर मुसलमान होता तो ऐसा नहीं सहन करना पडता ।" कोई देखता ही नहीं कि सचमुच हिन्दू ने अत्याय किया ह या नहीं शायद मुसलमान का दावा ही गलत है । बस, 'सवाल हिन्दू मुसलमान के बीच है । और हम मुसलमान ह । इसलिए मुसलमान की बात ही हमें सही माननी चाहिए । और सारी मुसलमान कौम को एक होकर हिन्दुओं को सबक सिखाना चाहिये ।'

हिन्दू लोग भी ऐसी ही बातें करते ह । वे कहते हैं कि "जहाँ मुसलमानों का राज ह अथवा उन के हाथ में अधिकार ह, शुद्ध याय मिलने की आशा ही नहीं ।'

यह स्वभाव केवल हमारे ही देश में है यह बात नहीं । अमेरिका में गारे लोगो के और नीग्रो लोगो के बीच जब झगडा होता ह तब याय अत्याय देखे बिना सब गोर एक हो जाते हैं और नीग्रों को मार डालते ह । इसे कहते ह लिच ला (Lynch Law) । इस लिच ला के कानून में याय किस के पक्ष में है, यह देखने के लिए कोई बधा हुआ नहीं हाता । झगडा खडा हुआ ह । शिकायत गोर ने की है इस लिए काले को (नीग्रों को) सजा देनी ही चाहिए । एक बदमाश गोरी औरत ने हो हल्ला मचाया कि एक नीग्रो ने मुझ पर अत्याचार करने की कोशिश की । नीग्रो ने लाख कहा कि मैं निर्दोष हूँ । एक भले गोरे ने भी गवाही दी कि नीग्रो का कोई क्रमूर नहीं है । गोरी औरत ने अपना मतलब सिद्ध नहीं हो रहा ह यह देख कर बेचारे नीग्रो के खिलाफ यह हो-हल्ला मचाया ह । नीग्रो की बात सही ह । वह गुनहगार नहीं ह ।'

इकट्ठा हुए गोरे चिल्ला कर कहेंगे, क्या काले निगर की बात हम सही मानें और गोरी औरत पर अविश्वास कर ? यह कभी नहीं हो सकता । अगर काला गुनहगार हाथ नहीं आया तो उस के लोगो को सजा करगे । इस कमजात कौम को सिर ऊंचा करने दिया तो उस का दिमाग आसमान पर पहुँच जायेगा ।

जहाँ आरमोयता नहीं ह वहाँ लिच कानून (?) की मनोवृत्ति ही काम करेगी ।

जब दो कौमो के लोग एक-दूसरे के पडोस में रहते ह, धीरे धीरे एक दूसरे को पहचानने लगते ह, एक दूसरे की मदद करने के मौके भी उन्हें मिलते ह । मदद की लेनदेन चलने से आदमियत खडी होती ह । अगर दोनो कौमो का एक दूसरे के प्रति आदर ह तो समानता अपना काम कर ही लेती ह । (जहाँ समानता नही ह, उच्च-नीच भाव दम्भूल ह वहाँ आत्मीयता और मानवता गायब हो जाती ह जसा सवण और हरिजनों के बीच कई बार पाया जाता ह ।)

हम ने विवेचन करने के लिए कडे उदाहरण दिये ह । सामाजिक व्यवहार में अकसर भलाई और बुराई का मिश्रण ही पाया जाता ह । लोग मामूलीतौर पर आत्मीयता से चलते ह अथवा एक दूसरे की बुराई निभा लेते हैं और झगडा टालते ह । कदम कदम पर 'याय के लिए हरएक आदमी लडता रहेगा तो दुनिया चलेगी हो नही । लेकिन जहाँ पर एक पक्ष शक्तिशाली होता ह और दूसरा पक्ष अपनी लाचारी महसूस करता है तब जबरदस्त पक्ष याय की बात देखेगा ही नही । मानो, कहेगा कि सिरजोरी करने का हमारा अधिकार ह । ज़ेरदस्त को याने कमजोर को सिरजोरी बरदास्त करनी हा चाहिए । यह तो कुदरत का कानून ह ।

हमारे देश के लोगो ने ऐसी सब हालतें देखी ह । जब गाँव के सवण लोग हरिजनों के बारे मे बातें करते ह तब उन का मानस जसा ह वसा प्रगट होता ह । अमेरिका के कई गोरो के मुँह से मैं ने ऐसी ही बातें सुनी ह । गोरे अक्सर कहते ह कि काल लोगो को सिखाना चाहिए कि समाज में उन का स्थान कहाँ ह । ऐसा नही किया तो देखते देखते वे हमारे सिर पर चढ बैठेंगे । '

लोगो को दूर-दूर रखने से हम उन के गुण कम देख सकते ह । और जो थोड दोष देख सकते ह उन्हें घडा कर दिखाते ह । जिस कौम को हमेशा अयाय सहन करना पडता ह वह देखते देखते आत्मविश्वास और आत्मसम्मान खो बैठती ह । ऐसे की सस्कारिता ही नाचे उतर जाती ह । और फिर लोग कहने लगते ह, देखिए इन की सस्कारिता ! इन्हें हम समानता से अपने पास कैसे बाने दें ?

भेद के कारण अलगाव । अलगाव के कारण परिचय का अभाव, और परस्पर अविश्वास । इस क्रम से सबकुच बिगडते जान ह ।

इस सारी परिस्थिति के लिए ऐतिहासिक कारण होते ही ह । कोई ऐसा न माने कि दोष बवल हिन्दुआ में ही ह । सब लोग एक ही मिट्टी के बने हुए ह । जब मुसलमानो का राज था हिन्दुओं को इतना सहन करना पडा ह कि वह आज तक भूल नही सचते । ईसाईयों ने धर्मापता के कारण हिन्दुओं पर कितना जुम्म किया उस के सबूत गोवा में हम ने देख ह । (भारत में सिफ एक जाति

के लोगों को राज्य बनने का मौजा नहीं मिला जो है ईरान से आये हुए पारसी । इहा ने रायकर्ता के रूप में कभी किसी पर अजाय नहीं किया । क्योंकि इहे वैसा मौजा ही नहीं मिला ।)

अब सवाल यह है कि क्या हम पुरानी सब बातें याद कर के बदला लेते जायें ? या कहें कि जो हो गया, सो हो गया । पुरानी बातें कहाँ तक ढूँढने जायें ? जालिम का गुनाह तो ह ही । किन्तु गुलाम ने गुलामी बरदास्त की ओर इस तरह जालिमा को जुन्मगार होने दिया यह भी एक दोष ही है । अब हम पुरानी बातें दफना कर नये सिरे से एक-समाज क्यों न बनें ? उच्च-नीच भाव सब से पहले दफनाना होगा । उस के बाद आप-पर भाव अथवा भेद छोड़ देना पड़ेगा । धमभेद, बशभेद, रस्म रिवाजों को जुदाई इन सब बातों से ऊपर उठ कर हमें एकता की ओर बढ़ना चाहिए ।

यह काम, यह सुधार, यह क्रांति इकतरफा नहीं चल सकती । जालिम कहेगा, 'हमारा जुल्म बरदास्त करो । फिर तो कोई झगडा ही नहीं रहेगा । बड़ी मिठास से हम साथ रहेंगे । लेकिन ऐसी एकता, आत्मोपता हम बरदास्त नहीं कर सकते । अठगाव भी बरदास्त नहीं करना ह । समानता की भूमिका पर, 'याय की भूमिका पर हम झकड़ा होना चाहते हैं । दबू हो कर जीने को सलाह हम किसी को दे नहीं सकते । हम इतना ही कहेंगे—

भारत में अनेक धर्मों के, अनेक बशा के, अनेक भाषाआ वाले लोग एकत्र रहते ह, रहत आये हैं । अलग अलग रहें तो स्वभाव बिगड जाता है । उच्च नीच भाव चत्राया तो अजाय मजबूत होता ह । नष्टि भद बरदास्त करना चाहिए । सब-समाज अपने-अपन रस्मरिवाज सुधारने की कोशिश करें । और तब तक एक-दूसरे के रस्म रिवाज सहन करने को सीखना ही चाहिए ।

जो लोग धार्मिक है धम या मजहब मानते ह उन की पहली बसोटी यह ह कि उन के मन में सब धर्मों के प्रति इज्जत आदर हो । हर एक धम के लोग अपने धम की बात किस तरह से समझते ह और किस कारण उन पर इतना विश्वास रखते ह यह भी सहानुमूति के साथ समझना चाहिए । मेरा ही धम अच्छा, मेरा ही धम ईश्वरप्रणीत ह ऐसी जिद केवल जिद ही ह इतना तो उन का समझाना चाहिए । या तो सब धम और सब धमग्रन्थ ईश्वर प्रणीत है और इस लिए इज्जत के योग्य ह अथवा सब के सब धमग्रन्थ बुद्धि और अनुभव की बसोटी पर बसने लायक है इतना तो धमनिष्ठों को कबूल करना ही चाहिए । वे उतनी शुद्ध दृष्टि नहीं रखते ह इस लिए आज की लिखी पढी दुनिया सब धर्मों के प्रति एक सी उदासीन बन गयी है और किसी भी धम के

प्रति लोगो के मन में अब आदर नहीं रहा। अपने अपने धर्म का अभिमान तो हर एक में हो सकता है। लेकिन अभिमान चीज ही अर्थात्मिक है। अभिमान, गुमान, गव और अहंकार को किसी भी धर्म ने अच्छा नहीं माना। जो विचार तकशुद्ध नहीं है, 'याम्य नहीं है, सावभौम आदर के पात्र नहीं है, उस का सम धर्म केवल अभिमान से करना अपनी स्थिति कमजोर है, ऐसा कबूल करने क बराबर है।

सब धर्मों के प्रति एक-सा आदर रहे यह धार्मिकता का पहला लक्षण है। उस की बुनियाद पर अपने धर्म के प्रति विशेष भक्ति हो तो उस की कोई िकायत नहीं करेगा।

इसी वृत्ति को गांधीजी ने सब धर्म-समभाव का नाम दिया। इस की साधना करते हम लोगो ने देखा कि जब हम सब धर्मों के प्रति एक समान आदर रखते हैं तब धीरे धीरे सब धर्मों के प्रति आत्मीयता बंध ही जाती है। सब धर्म समभाव का फल है सब धर्म समभाव।

समभाव का यह अर्थ हरगिज नहीं कि 'धर्म धर्म में कोई भेद है नहीं, है तो केवल भाषाभेद ही है।' हर एक धर्म में अपनी खूबी और विशेषता होती ही है जिस का लाभ दूसरे धर्म ले सकते हैं। हर एक धर्म 'अपने देश, अपने काल और अपने समाज' से प्रभावित होता है। समय-समय पर उस का अर्थ और उस का भाव व्यापक करना पड़ता है। धर्मग्रन्थ को उस के शब्दार्थ से बांध देना उस के प्रति अर्थात्मिक करना है। धर्म को अगर ताजा, जिंदा और प्राणवान बनाना है तो पुराने ग्रन्थों के शब्दार्थ को पढ़ कर चलना ठीक नहीं होगा। मनुष्य का विकास होता जाता है उस के साथ धर्म समझने की शक्ति का भी विकास होता है। हर एक धर्म-समाज को अपने-अपने धर्म का सस्वरण 'अध्यात्मज्ञान के प्रतीक लोगो की मदद से करते रहना चाहिए। धर्म का सामान्य स्वरूप हमें भूतकाल की ओर देख कर पूरी तरह से नहीं होगा। धर्म का प्रारम्भ भले ही भूतकाल में हुआ हो। उस का विकास हमेशा होता रहेगा। और धर्म की वृत्तीयता तो भविष्यकाल में ही पायी जायेगी। धर्म का आकलन, धर्म का पालन और धर्म की सिद्धि काल भगवान् की मदद से ही हो सकती है।

जो बातें धर्म के सम्बन्ध में कही गयी वही सस्वरण के बारे में भी सही है। और अब तो सत्य सस्वरण को एक-दूसरे में पुनर्मिल जाने का समय आया है। दुनिया के अनेकानेक देशों में जा कर हमने देखा सब धर्म सस्वरणों ओतप्रोत होने लगे हैं।

सगळे धर्मों में सत्ता सम्पत्ति, अधिकार और प्रतिष्ठा के कारण। इस लिए

समन्वय का काय राजनीतिक ढंग से करना आसान नहीं है। इष्ट भी नहीं है। यह काम जनता को सस्कृति सेवकों के द्वारा ही करना होगा।

हमारी सस्था ने प्रारम्भ किया, भाषा और साहित्य से। अनुभव हुआ कि यह काम गहरा है। सस्कृति-समन्वय का ह। इस लिए हमारी सस्था के सदस्यों ने सर्वानुमति से तय किया कि सारी शक्ति सस्कृति-समन्वय की स्थापना के लिए हा खच की जाय। इस लिए गांधी हिन्दुस्तानी साहित्य सभा का काम प्रधान तथा सस्कृति-समन्वय का ही बन गया ह। हमें विश्वास है कि इस समन्वय काय में हम अप्रसर हुए तो समाज के बहुत से सवाल हल करने की शक्ति इसी में से प्रगट होगी।

‘मंगल प्रभात के पाठका का वचारिक सहयोग तो हमें मिलता आया ही है। हमें विश्वास है कि उन की और हमारी याने हम सब की यह सस्था विश्व समन्वय के काम को बढ़ाती जायेगी। काम समष्टि का ह। सभी के सहयोग से ही यह सिद्ध होगा। हमें विश्वास ह कि समन्वय प्रेरक भगवान की सहायता इस में ह ही।

(११ सितम्बर १९६०)

युगावतार समन्वय भगवान

रहा न गया इसलिए विश्व-समन्वय सघ की स्थापना की। स्वतन्त्र भारत के सामने असह्य सवाल ह। भारतीय सस्कृति अत्यन्त प्राचीन, विविध और समृद्ध ह। हरएक युग ने नया-नया पुरुषाय करके इस सस्कृति को अनक तरह से सजाया ह और सब से बड़ी बात तो यह कि प्रतिकूल परिस्थिति में भी इस सस्कृति ने अपनी आत्मा को सँभाल कर रखा ह। दुनिया की दूसरा किसी भी सस्कृति ने ऐसा जीवट नहीं दिखलाया।

यह सब होते हुए भी हम भूल नहीं सकते कि हमारी सस्कृति में काफी कमजोरिया पर कर बठी ह। मनुष्य जाति के कई महत्व के सवाल का हल न ढूँढ सकने के कारण हमारी सस्कृति कदम कदम पर परास्त भी हुई है। इतने बड़े विशाल देश के करोडों की जन सख्या के सस्कारी नागरिकों का यह राष्ट्र होते हुए भी मुट्टे भर पठान लोग यहाँ आकर राज्य कर सके क्योंकि हमारे राजा और उन के सनिक शूरवीर और बहादुर होते हुए भी सगठित होकर

लहने की आवश्यकता अनुभव कर सक्ने जितने दूरदर्शी नहीं थे। हम लोगों ने स्वामी विद्या से पठाना का राज्य मजबूत किया और उसे मुदालता से चलाया भी।

उन के बाद मुगल लोग आये। उन्होंने पठानों को परास्त कर के भारत पर अपना राज्य स्थापित किया। उस समय भी मुद्दा भर मुगल को हम परास्त न कर सके।

यह हो गयी जमीन के रास्ते आक्रमण करनेवाले विदेशी लोगों की कहानी। यूरोप के लोग भारत से तिजारत करने को लालायित थे। उद्योग-दुनरा में और क्लिप्त कलाआ में उन दिनों भारत अप्रगण्य दश था। यूरोप के लोगो ने जमीन के रास्ते भारत पहुँचने की कोशिशें की। किंतु मुसलमान राष्ट्रों ने भूमध्य समुद्र के इस पार उन्हें नहीं आने दिया। यूरोप के गारे लोग पुरुषाथ में किसी से कम नहीं थे। उन्होंने भारत पहुँचने का समुद्री रास्ता ढँढ़ निकाला। इस में उन्हें भारतीय मत्सियो की अच्छी मदद मिली। अब मामूली जहाजों में बठ कर भारत आनेवाले पोचुगीज या फ्रेंच लोगो की संख्या कितनी हो सकती है? मुट्टीभर पोचुगीज लोगों ने भारत के पश्चिम के किनारे एक राज्य स्थापित किया। ४५० साल तक वह अ-याहत चला।

यही हालत अँगरेजो की थी। वे यहाँ आये तिजारत करने के लिए। हमारी राष्ट्रीय, राजनतिक और सांस्कृतिक कमजोरिया पहचान कर उन्होंने धीरे धीरे हम लोगो की मदद करना शुरू किया (इस शत पर कि भारत के राजा अँगरेजो को छोड कर यूरोप की ओर किसी भी प्रजा की मदद न लें।) सात समुद्र के उस पार से आये हुए मुट्टी भर अँगरेजो ने हमारी कमजोरियाँ समझ ली और इस दश में अपना राज्य सुदृढ किया। फ्रेंच लोगो ने भी हमारे बारे में बडा आश्चर्य किया कि ये लोग कायर नहीं है, बडे बहादुर है किंतु देश निष्ठा नहीं जानते, असाधारण स्वामीनिष्ठ है। वे परलोक की बातें करते है किंतु इहलोक की परिस्थिति समझते नहीं। ये लोग पातिप्रिय है उद्योग-दुनरा का विकास करने योग्य सस्कारी है किंतु धम-अड होने से अपना आपक हित समझ नहीं सकते।

इस तरह हमारी राष्ट्रीय कमजोरियाँ समझ कर अँगरेजों ने हमारे देश पर, हमारी बुद्धि पर और हमारे मस्तिष्क पर भी अपना राज्य स्थापित किया।

जब तक हम जीवननिष्ठ थे तब तक हमारी सूझ अच्छी थी और हम कठिनाइयो पर विजय पाने का रास्ता निकाल सकते थे। लेकिन जब हम प्रथनिष्ठ और परम्परा निष्ठ बने तब सफलता का माग देखने की और ढँढ़ने की शक्ति लो बडे।

हमारे यहाँ इतिहासक्रम से अनेक वंशों के लोग आ बसे। हम लोगों ने सस्कृति के बल पर सब को एक-जीव, एक प्राण बना दिया। हमारे यहाँ उपासना-भेद के कारण वज्र, दान्त, शैव आदि अनेक पथ भेद हुए लेकिन हमारी सामाजिक एकता कायम रही। क्योंकि हमने भेद में अभेद देखने की शक्ति कायम रखी थी। हम ने कभी नहीं कहा कि एक ही रास्ता सच्चा है और शेष सब गूठे। हमारे यहाँ वंश भेद के कारण और प्रदेश भेद के कारण भाषाएँ अनेक चलीं। किन्तु सस्कृति संवर्धन के लिए वैदिक और अनेक प्राकृत भाषाओं को संज्ञ कर सब को एकरूप बनाने वाली सस्कृत भाषा हमने चलायी, जिस का प्रचार काश्मीर से ले कर कन्याकुमारी तक और सिन्धु नदी से ले कर लोहित—ब्रह्म-पुत्र तक एक समान फल गया। पचासतन पूजा, अवतारों की कल्पना आदि समन्वयकारी सावभौम सिद्धांतों के बल पर हम ने साम्प्रतिक एकता मजबूत की थी। राजनतिक एकता का इतना महत्त्व तब नहीं था, जितना आज है। छोटे-मोटे राजा अपना-अपना राज्य चलाते थे। ईर्ष्या के कारण, अगर महत्त्वाकांक्षा बढ़ी तो साम्राज्य को स्थापना करते थे। साम्राज्यों का लाभ समझते हुए भी हमारे यहाँ किसी का भी साम्राज्य दीर्घजीवी न हो सका।

विदेशी आक्रमण के खिलाफ हम टिक न सके। पर राज्य का खतरा समझ ही नहीं सके। विदेशी राज्यों को मजबूत करने में हम ने सहयोग दिया। लेकिन विदेशियों को स्वदेशी बनाने की हमारी अपेक्षा सिद्ध न हो सकी। सब को आत्मसात करने की हमारी शक्ति हम लो बठी।

तब से हम ने एक ही नारा चलाया कि विदेशी घम, विदेशी ही रहने वाला है। विदेशी घम को स्वीकार करने वाले अपने लोग भी विदेशी बनने वाले हैं। तब से हमारी धार्मिक सामाजिक राजनतिक नीति 'जसे के साथ तैसा' वाली बन गयी। याने सब का आत्मसात करने का हमारा स्वप्न हम ने छोड़ दिया।

विदेशी लोगों ने यहाँ पर अपने-अपने साम्राज्य बनाये और साम्राज्य के द्वारा राजनतिक एकता की स्थापना की। उस का प्रभाव देख कर हम चकित हो गये और हमने अपनी सस्कृति को 'आत्मरक्षा' का सङ्कुचित रूप दे दिया। पराधीन समाज को ऐसा ही करना पड़ता है।

लेकिन अब तो हम स्वाधीन बन गये हैं। सन् १८५७ के बड्डव अनुभव के बाद पच्चीस बष के अंदर ही हम लोगों की एकता का रास्ता सूझा। देश के मनीषियों ने सन् १८८५ में काँग्रेस की स्थापना की। और घमभेद के बावजूद राजनीतिक और राष्ट्रीय एकता का प्रयोग गुरू किया। विदेशी राज्यकर्ताओं ने अपने लिए वह खतरा पहचान लिया। औरकाँग्रेस का

बल न बडे इस के लिए जितनी भी हो सकी उतनी कोशिशें की। न अंगरेज लोग इस देश में साम्राज्य कायम बना सके, न हम अपनी एकता अधुण्ण रख सके। अंगरेज तो चले गये लेकिन अपनी भाषा, अपना साहित्य और अपनी जीवन-व्यवस्था का साम्राज्य यहाँ मजबूत हो रहा है इतना सतोप उन्हें हो गया है। एशिया और अफिरा में यूरोप के गुरो का राजनीतिक अधिकार टिक नहीं सका। लेकिन जीवन-व्यवस्था में और सांस्कृतिक पुरुषाप में भी पश्चिम का प्रभाव सब को माय करना ही पड रहा है।

ऐसी हालत में पश्चिम के सावभौम विज्ञान और यन्त्रोद्योगी सस्कृति के साथ भारतीय अथवा एशियाई आध्यात्मिकता का समन्वय करने से ही हम पुराने झगडे और तनाजे मिटा सकते हैं।

भारत के स्वभाव में धर्म-समन्वय का माद्दा है ही। इसी का प्रभाव बौद्ध धर्म ने एशिया के बहुत बडे हिस्से में आजमाया। इस के विपरीत समन्वय का स्वीकार न करते हुए साम्राज्यवाद का प्रयोग इसलाम ने और ईसाइयत ने सबन आजमाया। न इसलाम विश्व-साम्राज्य स्थापित कर सका, न ईसाइयत बसा कर सकी। दोनों ने आपस में युद्ध चला कर देखा किसी को भी विजय न मिली। अब अपना-अपना साम्राज्यवाद न छोडते हुए दोनों ने सबन शीतयुद्ध की नीति चलायी है। ऐसे शीतयुद्ध को धमचोर कर के विश्व-यापी एकता स्थापित करने का प्रयत्न आज दुनिया में बडी गति से किन्तु जोरों से चल रहा है। एक है पश्चिम के विज्ञानवाद का सावभौम प्रभाव और दूसरा है वेदांत, बौद्ध धर्म और भक्ति मार्ग की त्रिवेणी का आध्यात्मिक प्रभाव। इस त्रिवेणी ने समन्वय का मार्ग अपनाया है और विज्ञान का प्रभाव तो सत्य और सेवा के बल पर पुराने दायरों को तोड ही रहा है।

(जो लोग विज्ञान और यन्त्रोद्योग का सहारा लेकर पुराने दायरों को मजबूत करने की कोशिश करते हैं उन को अनुभव हो रहा है कि विज्ञान और यन्त्रोद्योग विनाश की ओर ही ले जा सकते हैं। विज्ञान उपदेश के लिए ठहरता ही नहीं। विज्ञान कहता है कि मेरी उत्कट खोज सत्य के सूक्ष्म और सावभौम स्वरूप की है। उस का आदेश है 'सब दायरे कालग्रस्त हैं सब को छोड दो और एकता की ओर आ जाओ। अथवा मेरी शक्ति पक्षपातरहित सब की मदद करती हुई विनाश को ही सावभौम बना देगी।

विज्ञान और यन्त्रोद्योग परस्पर सहयोग करते हैं किन्तु दोनों एक नहीं हैं। विज्ञान स्वयं तटस्थभाव से सत्य की उपासना करता है। सत्य को छोड कर और किसी भी तत्व की तरफ ध्यान देना उसे स्वीकार नहीं है। उस की श्रद्धा

है, सत्य की शुद्ध उपासना करने वाला आदमी अगर तमाम असत्या को छोड़ दे तो उस का अकल्याण कमो नहीं होगा। Absolute, undiluted truth need not and cannot hurt anybody यही सत्य जब समाज-विज्ञान की भाषा में बोलता है तब वह कहता है Right wrongs no man अगर हमारा आचरण पूणतया 'माययुक्त' रहा तो हमारे द्वारा किसी का अयाय और अहित हो ही नहीं सकेगा। आज कल के प्रयोग परायण विज्ञान ने सूक्ष्मता में प्रवेश किया है। गूढ़ शक्तियों से उस का परिचय बढ़ रहा है। उसे विश्वमागत्य का थोड़ा साग्नाकार होने लगा है। विज्ञान की शक्ति दसते-दसते बढ़ रही है। साथ-साथ उस की श्रद्धा इसी प्रमाण में सबकल्याणकारी रूप पकड़ने की तयारी में है।

विज्ञान वैसा भी हो, तटस्थ ही रहेगा। सतरा है यत्रोद्योग से। क्योंकि जहाँ प्रयोग-परायण विज्ञान जानमार्गी है, शक्ति-उपासक सेवा-परायण यत्रोद्योग, कल्याण-अकल्याण का भेद न करते हुए अपना प्रभाव बढ़ाता जा रहा है। जहाँ विज्ञान सत्यापासक जानमार्गी है वहाँ यत्रोद्योग सेवा-परायण कममार्गी है। यत्रोद्योग स्वभाव से गान्त है। वह कल्याण भी कर सकता है, विनाश भी। हम न विज्ञान का बहिष्कार कर सकते हैं, न यत्रोद्योग का त्याग। हमें दोनों की शक्ति विश्वात्मिक्य के उपासक अध्यात्म की सेवा में लगानी है।

इस सावभौम विचार के प्रचार के लिए ही विश्व-समन्वय-संघ प्रवृत्त हुआ है। जहाँ सघप है वहाँ एकागिता है। सघप जिद्दी बन कर परस्पर विनाश के द्वारा एक पक्ष को विजय दिलाने की कोशिश करता आया है। विज्ञान कहता है कि वे दिन अब चले गये। अब तो सघप किसी की भी विजय देखने नहीं देगा। सघप सीधा ले जायेगा सघनाश की ओर। अब ठीक समझ लो कि सघप का जमाना खत्म हो गया है। अब जीना है तो समन्वय के रास्ते अपसर होना ही पड़ेगा। जहाँ अंधे लोगों की जिद समन्वय को माय नहीं करेगी वहाँ सत्याग्रह के रास्ते समन्वय की तयारी करनी पड़ेगी। सत्याग्रह अहिंसा की पराकाष्ठा है। समन्वय की वह अंतिम शक्ति है। जब अहमदाबाद में किसी समय महात्माजी का सत्याग्रह पूणतया सफल हुआ तब गांधीजी ने जाहिर किया कि दोनों पक्षों की जीत हुई। जब यूरोप व गोरे लोगों के नेतृत्व के दो महायुद्ध का अंत हुआ तब मानवता ने बड़े विपाद से कहा, दोनों पक्षों की हार हो गयी है। अमेरिका और इंग्लैंड, फ्रांस और जर्मनी, चीन और जापान किसी भी देश में विजय का उत्सव हो नहीं सका।

अब इतने भयानक अनुभव के अंत में समन्वय-युग का प्रारम्भ करना ही

होगा। जीवन-श्रान्ति का प्रारम्भ विचार श्रान्ति से होता है। विचारा में कम जोरी रही तो मानवजाति को भयानक ढग से भुगतना पड़ता है। विश्व के जीवन का प्रवाह किस तरह से बह रहा है यह देख कर जब विश्वास हो गया कि अब एक ही मार्ग है, समन्वय का, तब निश्चय हुआ कि विश्व-समन्वय की घोषणा पूरी हृदय शक्ति से करनी चाहिए। लोगों के धानों तक, मस्तिष्क तक और हृदय तक पहुँचने में देरी लगेगी ऐसी चिन्ता हम करें ही क्यों? पुराने लोग जिसे काठबल कहते थे उसी को आज हम युगबल कहते हैं। युगबल अमोघ होता है, दुर्जेय होता है। उस के खिलाफ कोई शक्ति टिक नहीं सकती।

कौरव-पांडवों के भारतीय युद्ध के दिनों में कुरुक्षेत्र पर भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा था—

कालोऽस्मि लोकक्षय-कृत् प्रभुः

आज वही श्रीकृष्ण समन्वय भगवान् बन कर बह रहा है—

कालोऽस्मि लोकोन्नति कृत् प्रभुः

अगर हम आस्तिक हैं तो भगवान् की शान्ति सेना के सैनिक बन जायें और विश्व-समन्वय के काम में पूरी शक्ति लगा दें।

६

(१६ अक्टूबर १९६०)

■

सार्वभौम गोरक्षा मिशन

मनु भगवान् की सीख के अनुसार गोरक्षा

मारपीट कर के, या लड़ाई-झगडा कर के गाय की रक्षा करनी चाहिए ऐसी धम की आना नहीं है।

ब्राह्मण अपने तप से गाय की रक्षा करे।

सत्रिय लोग दिलीप राजा के समान अपना बलिदान देकर गाय की रक्षा करें।

लेकिन गोरक्षा का उत्तरदायित्व धमशास्त्र ने वैश्यकम के रूप में ही बतलाया है—कृषि-भोरभ्य-वाणिज्य वैश्यकम स्वमावजम्।

आज की हालत में हम नहीं कह सकते कि वश्य लोग ही गाय की रक्षा करें। लेकिन ऊपर के वचन का यह अर्थ होता है कि पशुओं की रक्षा वैश्य ढग से ही करनी चाहिए। सारा समाज कुल गाय-बैली का एक राष्ट्रीय ट्रस्ट बनावे और गायों को अपने ताबे में लेकर उन का रक्षण करे। यही एक धर्म्य माग है।

गोरक्षा किसी दूसरे का ही नहीं, वश्यों का ही काम है। मनु भगवान् ने अपनी स्मृति में स्पष्ट कहा है कि जब तक वैश्य गोरक्षा करते हैं तब तक दूसरों को इस काम में नहीं पढना चाहिए। आज इस वचन का अर्थ यह है कि जब तक वैश्य ढग से गोरक्षा होती है तब तक दूसरे साधन काम में लाने ही नहीं चाहिए। वैश्य के कौशल्य से ही गोरक्षा हो सकती है।

यह रहा मनु भगवान् का वचन

प्रजापतिर्ह वैश्याय सृष्टवा परिददे पशून्। [अ० ९ श्लो० ३२७]

विघाता ने पशुओं को पैदा कर के उन के रक्षण के लिए वैश्यों को सौंप दिया है। इस लिए वैश्य को चाहिए कि—

वातयिा नित्ययुक्त स्यात् पशूना च व रक्षणे। [९, ३२६]

वह कृषि, गोरक्षा और वाणिज्य आदि अपने पेशे में हमेशा मगगूल रहे और खासकर वे पशुओं की रक्षा में। अन्य प्रकार से आजीविका और धन प्राप्ति

मनु भगवान् की सीख के अनुसार गोरक्षा

उत्तम होती हो तो भी वश्य के लिए मोरणा के प्रति वेदरक्षार बनना उचित नहीं है और जब तक वैश्य पशु रक्षण करने के लिए तयार है तब तक दूसरों को उस में नहीं पड़ना चाहिए ।

न च वश्यस्य काम स्यात् न रक्षेय पशून्' इति ।

वश्ये चेच्छति नायेन रक्षित्तया वयचन ॥ [९, ३२८]

(खेती इत्यादि उत्तम कामाई होनी हो तो भी) वश्य को 'पशुओं का रक्षण में नहीं करेगा', ऐसा टयाल नहीं करना चाहिए । उसे अवश्य पशुओं का रक्षण करना ही चाहिए और जब तक वैश्य इस कतव्य को पूरा करने की इच्छा रखता हो तब तक दूसरों को उस काम में नहीं पड़ना चाहिए ।

इस के बाद मनु भगवान् ने वश्य लोगो को कौन-कौन सी विद्याएँ सीखनी चाहिए उस का महत्त्व का वणन दिया है । आज के युग में भी ये सब विद्याएँ महत्त्व की गिनी जायेंगी । उस में 'पशूना परिवधनम्'—cattle breeding—पशुसंवधन को स्थान है । उस का अर्थ टीकाकार ने नीचे के अनुसार किया है—

अस्मिन् देशे, काले, अनेन च तृण उदक-यवादिना ।

पशवो यधते अनेन क्षीयते इति एतत् अभि जानीयात् ॥

पशुसंवधन के लिए अमुक स्थान पर, अमुक मौसम में, अमुक जाति की घास, पानी अनाज आदि अनुकूल है । उस से पशु पुष्ट बनता है, सुधरता है और बढ़ता है । उसी प्रकार अमुक हालातों में पशु दुबले बनते हैं, नष्ट होते हैं, यह सब जान लेना चाहिए ।

[२६ नई २६६६]

गोरक्षा और कानून

जिन के हाथ में धन नहीं होता, वे धन के बड़े भक्त होते हैं । मानते हैं, भगवान् के जैसी ही कतुम, अकतुम, अयथा कतुम सब शक्ति धन के पास भी है । उसी तरह जिन लोगो ने कानून बनाने की शक्ति का अनुभव कभी नहीं किया है और कानून के नाम तरह तरह के दुर्देवो अयायो का अनुभव किया है वे मानते हैं कि कानून सब कुछ कर सकता है । वे मानते ही नहीं कि कानून की भी अपनी निश्चित मर्यादाएँ होती हैं ।

जिन के हाथ में सत्ता है और दिमाग में न्याय का शुद्ध रजाल नहीं है वे आदेश निकाल कर उसे कानून कह सकते हैं और लोगों पर जबरदस्ती कर सकते हैं और उस का फल उन को और औरों को भुगतना पड़ता है ।

कानून की अपेक्षा रहती है कि न्यायालय में आने वाले और बैठने वाले सब लोग सत्य ही बोलें । लेकिन कानून के द्वारा सारी जनता को हम सत्यवादी नहीं बना सकते ।

स्वतंत्र भारत ने कानून बनाया कि एक आदमी एक ही समय एक से अधिक स्त्रिया के साथ पत्नी का सम्बन्ध नहीं रख सकता । यह कानून ईसाइयों के लिए था ही । एक पत्नीव्रती रामचन्द्र को अवतार मानने वाले हिंदू समाज में यह कानून नहीं था, हालांकि रिवाज तो बरौब-करीब था ही । स्वतंत्र भारत ने यह कानून बनाया । लेकिन यह कानून मुसलमानों पर लागू नहीं किया । इसी में हमारी न्यायबुद्धि सिद्ध होती है । मुसलमानों में कई सुधारक नेता लोग हैं जो एक पत्नी वाला कानून पसंद करते हैं । लेकिन उन का बहुमत नहीं है । इस्लाम में चार पत्नियाँ तक रखने की शरीअत है । इस शरीअत के साथ कुछ शर्तें भी लगायी हैं जिन का अमल कानून से कराना मुश्किल है ।

हिंदूओं की और दूसरे लोगों की भी प्रचण्ड बहुमती के जोरा हम एकपत्नी कानून मुसलमानों पर लागू कर तो सकते थे लेकिन यह किसी एक धर्म की जमात पर औरों की जबरदस्ती हो जाती ।

[कभी-कभी ऐसी जबरदस्ती करने के प्रसंग खड़े हो सकते हैं, लेकिन खूब सोच विचार कर के ही वैसा करना पड़ता है । सती की प्रथा जब हम लोग ने बंद करवायी तब उस के पक्ष में बहुमत है या नहीं, सोचने-पूछने हम नहीं बैठे ।]

कानून से गान्धुशी—गायों की हत्या-बंद करवाने की बात दूसरे एक व्यापक जीवहत्या या पशुहत्या बंद करवाने के प्रश्न के अंदर आ जाती है ।

मेरे जैसे चर्द लोग मानते हैं कि पशु आदि प्राणियों को आहार के लिए या शिकार लिए मारने का मनुष्य का कोई अधिकार नहीं । वह तो निरा पाप है । हम लोग मानते हैं कि हिंस्र पशु-पक्षियों को और नुकसानदेह जन्तुओं को मारने में पाप नहीं है । मनुष्य ने ही यह तय किया है । पशु पक्षी और जन्तुआ से किसी ने पूछा नहीं है उन को राय भी नहीं ली है । मनुष्य अपनी ही अवि

फसित या अल्पविकसित धमबुद्धि के अनुसार पाप-पुण्य के धार में तय कर लेता है ।

आजकल के मनुष्य ने तय किया है कि हिंस्र, जहरीले और नुकसानदेह पशु-पक्षियों को और जन्तुओं को मारने का मनुष्य को अधिकार ही है । किंतु अपने आहार के लिए मनुष्य पशु-पक्षियों का और जलचरों को मारना है और उस में जो पाप रहा है वह देख नहीं सकता ।

हिन्दुआ में भी पशु पक्षियों को और भुरगी-मछलियाँ को मार कर खाने का रिवाज अधिकांश लोगों में है । गाय-बैल को छोड़ कर बाकी के प्राणियों को मारने में किसी को एतराज नहीं है यानी इस बारे में कानून बनाने की बात कोई सोचता नहीं, सुझाता नहीं ।

ऐसा हालात में प्राणियों को मारने की इजाजत रहे और सिर्फ गाय-बैल को, एक ही पशु को मारने की इजाजत न रहे यह अर्थ धर्मियों के ऊपर हम याचक नहीं लाद सकते ।

हिन्दू धर्म की आत्मा है हिन्दू लोगों का रिवाज है हिन्दू मानस की तीव्र भावना है इस वास्ते गैरहिन्दू भी गाय-बैल को न मारें ऐसा कानून हम नहीं बना सकते । अपील तो जरूर कर सकते हैं । खिलाफत के दिनों में गांधीजी ने बड़ी ही खूबी से मुसलमानों को ऐसी अपील की थी और उन दिनों उस का असर भी अच्छा हुआ था ।

धर्म की दृष्टि से नहीं हिन्दू भावना की दृष्टि से भी नहीं किंतु भारत की परिस्थिति देखते व्यवहार की दृष्टि से दूष देने वाली गायों की और खेती में काम आने वाले बैलों की हत्या बन्द करने का कानून हम अवश्य बना सकते

। उस के बारे में व्यवहार को क्या-क्या कठिनाइयाँ हैं—यह सोचना पड़ेगा । यह एक व्यवहार की बात हुई । जिन की हम दिन रात कीमती सेवाएँ लेते हैं वे प्राणी हमारे लिए अवश्य हैं । वे तो हमारे व्यापक परिवार के सदस्य बन चुके । यह दृष्टि जब मुसलमान ईसाई आदि सब लोग स्वीकार करेंगे तब गारक्षा का कानून बनाना आसान होगा । तब तक हमें अपनी गोभक्ति (जो आजकल वही दीख नहीं पड़ती है) और कम से कम गो दया बढ़ानी होगी । सेवा के द्वारा, तपस्या के द्वारा ही यह हो सकता है ।

किसी समय हमारे हिन्दू और ब्राह्मण भी गो भक्त थे इस बात को बार बार दोहराने में हमें आनन्द नहीं आता । गो भक्तों की तपस्या से ही हिन्दू धर्म में गाय को अभयदान दिया गया । वही हमारी धमबुद्धि, हमारा तपस्या के द्वारा औरों तक पहुँच जायगी, तभी गोरक्षा की बात करने का हमारा अधिकार

होगा । गाय को बचाने के लिए मनुष्य के साथ मारकाट चलाना अधम ही है । इस तरह से हम गाय के प्रति भक्तिभाव या कृतज्ञता उत्पन्न नहीं कर सकेंगे ।

जीव दया की प्रवृत्ति भी आज कानून से इतना ही माँग सकती है कि पशुओं को आहार के लिए या शिकार के लिए मारते समय उन की मानसिक और शारीरिक वेदना कम से कम की जाय । मानवीय सस्कृति इस से आगे बढ़ी नहीं है यह दुर्दैव की बात है । लेकिन षगडा करने से, लोगो को गालिया देन से और जोरशोर से व्याख्यान देने के लिए जोभ या कलम चलाने से कुछ होने वाला नहीं है । तपस्या के द्वारा ही सिद्धि मिल सकती है । हमारे ऋषि मुनियो ने इस चीज को अनुभव कर के ही स्पष्ट कहा है—

यददुस्तर यद्दुराप यददुग यच्च दुष्करम् ।

सब तन तपसा साध्य तपो हि दुरतिक्रमम् ॥

जो कुछ भी सकट तर जाना मुश्किल हो, जो कुछ भी पाना मुश्किल हो, जहा पहुँचना, या जो करना मुश्किल है वह सब तपस्या के द्वारा ही साध्य होता है । तप के सामर्थ्य को टालना किसी के बस की बात नहीं, तप किसी भी सक्त् से हारा हुआ नहीं है ।

(२६ मई १९१६)

गाय के सवाल का राष्ट्रीय हल

गौरक्षा भारतीय सस्कृति का सनातन प्रश्न है । देवकाल से ले कर हमारे पुरखो ने इस का चिन्तन किया है । गाय बल का मास, गाय का दूध और उस से बनने वाले पदार्थ और छेती आदि के लिए गाय के बस का सेवा, इन सब बातों का चिन्तन करते हमारे पूज्य कभी थके नहीं है । पशु-पक्षियों के बीच रहने वाले मनुष्य ने गाय, घोड़ा, गधा, ऊँट, हाथी, भैंस हिरन बिल्ली कुत्ता, भेड़, बकरी, मोर मना, पोपट, कायल आदि अनेक प्राणियों को उन की जगली हालत से मुक्त कर के मनुष्य के आश्रित बनाया । लेकिन सब से अधिक चिन्तन किया है गाय का ही । गाय की रक्षा के लिए हमारे ऋषियो ने अपने प्राण भी अर्पण किये हैं । ब्राह्मण, वैश्य आदि अन्य वर्णों ने गोपात्रन के लिए असाधारण उत्साह दिखाया है ।

फिर तो हम कह नहीं सकते कि हमारे देश के इतिहास में कभी भी ऐसा

समय था जब कि हम ने गाय के सवाल का सतोपकारक हल कार्यान्वित किया हो। गाय के प्रति हम ने असाधारण भक्तिभाव बढ़ाया। उसे माता कहा, देवता कहा, उस के नाम से स्वर्ग में गो लोक को स्थापना की, ता भी गाय का सवाल अभी तक हल नहीं हुआ है। घर घर में गाय रखना, गाय के दूध से भगवान का अभिषेक करना, गाय के घी के बिना अन्न शुद्ध नहीं होता ऐसे ऐसे रिवाज उत्साह के साथ हम ने प्रचलित किये।

इस के बाद किसी शुभ-क्षण गोरक्षा के हेतु गोशालाएँ या विजरापोल स्थापित करने का खयाल लोगो को हुआ। जब सब लाग अपने अपने स्वाध म डूबे हुए थे, चन्द परोपकारी सज्जनों ने अपनी अपनी गायों की रक्षा करने की सोची और गोरक्षण सस्थाएँ जगह जगह स्थापित हुई। इन सस्थाओं का विचार केवल गायों की रक्षा का ही था। इस के लिए दयालु लोगो से धन इकट्ठा किया जाता था और लैगडी, लूली दुबली गायों का पोषण होता था।

सब से पहली धार गांधीजी ने सुझाया कि अच्छी गायें रख कर लोगो को गाय का दूध देने का प्रवर्ध किया जाय और उसी के मुनाफे म से बूढ़ी असहाय गायों का पालन भी किया जाय। गोरक्षणी सस्थाओं को एक नई दिशा मिल गयी और गोरक्षा की प्रवृत्ति में व्यवहार और अधशास्त्र न प्रवेश किया। गाय को मार कर खाने वाले लोगो से लडते रहना और उन के हाथ में पहुँची हुई गायों को खरीद कर या किसी तरह से छुडवाना यह जो विचार जोर पकड रहा था उस की जगह अब गाय कसाई के हाथ में जा ही न सके, ऐसा आर्थिक ढग का स्वावलम्बी प्रयोग आजमाया गया और गोरक्षणी सस्थाओं का रूपांतर अच्छे दुग्धालया में होने लगा।

गांधीजी का दूसरा सुभाव था कि ग्नय जैसे जानवरों के मर जाने के बाद उन की हड्डी, चमडे, सींग, खुर आदि सब चीजों का व्यवहार के लिये उपयोग किया जाय। उन के लिए जो कारखाने खुलने या उन की तिजारत चलेगी वह गोरक्षा में विश्वास मानन वाले के हाथ में आ जाय और सारा मुनाफा गोवश के हित में खच किया जाय। अहिंसक चमडे या मृतचम की वस्तुएँ खास पसंद करने की जोर भी लोगों का ध्यान गांधीजी ने खीचा। और इस तरह से गाय के सवाल का हल बडे पैमाने पर और धनानिक ढग से किस तरह से किया जाय यह भी सुझाया।

अब इस सवाल को एक कदम आगे ले जाना जरूरी ह। गोरक्षा का सवाल जितना जावदया का ह उतना ही हमारे वच्चा के दुग्धाहार का भी। और खेती के उत्कष की दृष्टि से भी गोरक्षा की बात सोची जा सकती ह। इस लिए

भारत में अब गोवश के सवधन का प्रश्न—बच्चा को अच्छा दूध मिले और अस्पतालो में मरीजों को भी अच्छा दूध मिले, इस लिए गोवश सवधन और दुग्धालय का सारा काम राष्ट्रीय पैमाने पर नगर-पालिकाओं के द्वारा करना चाहिए। जिस तरह हर एक शहर में रास्ते बनाने की व्यवस्था, रात को रास्ते पर दिये जलाने का प्रबन्ध, रास्ता पर पानी छिड़कने का काम नगर-पालिकाओं के द्वारा होता है नगर-पालिकाएँ ही बच्चों के लिए पाठशालाएँ चलाती हैं, शक्राखाना जसी आरोग्य सस्थाएँ चलायी जाती हैं, उसी तरह गोवश-सवधन का काम, दुग्धालय और चर्मालय चलाने का काम नगरपालिकाओं के द्वारा ही चलना चाहिए। गाँवों में और किसानों के घर भले ही गाय रखी जाय। शहरों में (और छोटे छोटे ब्रिक्सों में भी) गाय रखना दिन-पर-दिन अशक्य प्राय होता जाता है। इस लिए अब गाय का सवाल और दूध का सवाल हल करने के लिए विशेष मन्त्री की नियुक्ति हो जाय तो आदश आहार, आरोग्यरक्षा, सामाजिक कल्याण और खेती आदि सब दृष्टि से हम इस सवाल को वैज्ञानिक ढंग से हल कर सकेंगे। और उस में अगर जीवदया का तत्त्व भी चरितार्थ हो गया तो मनुष्य जाति के लिए एक नया रास्ता दिखाने का श्रेय भारत को मिलेगा। यह काम भारत में ही शुरू हो सकता है।

(११ फरवरी १९६०)

प्रश्न क्या है और उस का हल क्या ?

गाय की ओर से होने वाली मानव की सेवा और गाय की दयनीय स्थिति दोनों को देख कर गांधीजी ने गाय को 'वरुणा का काय' कहा था—A Poem of Pity। गाय को बचाना और उसे सेवायोग्य बनाना यह काम केवल हिन्दुओं का नहीं, सारे देश का है। इन बात को जितने आग्रह से गांधीजी ने देश के सामने रखा उतना गायद इस के पहले किसी ने नहीं रखा था।

गांधीजी ने कहा कि भारतीय आदर्शों के अनुरूप अथवास्तव बनाया जाय तो मनुष्य को स्पष्ट होगा कि गाय को बचाये बिना न हम अपने बाल-बच्चों को बचा सकते हैं न हमारी सस्कृति टिक सकती है।

गाय को बचाने में हमारी मानवता की रक्षा है। यह बात भारत छोड़ कर दूसरे किसी भी राष्ट्र ने या सस्कृति ने मान्य नहीं रखी।

प्रश्न क्या है और उस का हल क्या ?

गाय की परवरिश करो, उसे खिलाओ पिलाओ, अधिकाधिक दूध निकालो और जब गाय इस काम के लिए योग्य साबित नहीं होगी तब उसे मार कर खा जाओ, यही ह बाकी की सब दुनिया की व्यवहार दृष्टि। पश्चिम व देशों में गायों की सख्या हिन्दुस्तान के समान नहीं ह। लेकिन जो गाएँ रहती ह, अच्छी परिपुष्ट होती ह। हम कल्पना हो नहीं कर सकते, इतना दूध देती ह। यह बात सही ह कि वहाँ के लोग गायों की उतनी ही सख्या रखते ह जितनी उन के काम की होती ह। गाय का दूध और गाय का मास दोनों को वे पेट में पहुँचा देते ह इसलिए उन के लिए गौ का कोई सवाल ही नहीं।

हमारे देश में हमारी सस्कृति ने सोचा कि जब गाय दूध देती ह, बछड देती है, इन बछडो म से अच्छे बल बना कर उन को हम खेती आदि के काम में लेते ह। बल की मदद से हम अन्न धाय मिलता ह कपडे के लिए रई मिलती है। बँल की मदद से मोट चला कर कुए का पानी हम बाहर निकालते ह और शाक-पान, फल फूल सब कुछ उगा सकते ह और हजारो बरस तक अनाज, नमक और हर तरह का माल देश के एक छिर से दूसरे छिर तक ले जान का काम भी हम बलो की ही मदद से करते थे। सारा माल या तो बलो की पीठ पर लाद कर या बल गाडी में भर कर हम ले जाते थे। खेती का काम और माल ढोने का काम दोनों कामों के कारण बल को सारे साल बारह मास काम मिलता था। इस वास्ते बँल को कोई मारता नहीं था। अब वह हालत बदल गयी ह। तो भी गाय और बल की उपयोगिता बढ़ाने की जिम्मेवारी हमारे छिर पर ह। इस जिम्मेवारी का स्वीकार भारत के सब लोग करत ह।

अब ऐसे उपयोगी जानवर को हम अपन परिवार का सदस्य समझें और उस के बद्ध होन पर उसे मार डालने के बजाय उसे जीन द। उस से कोई काम ले सकते ह तो ले लें। यही ह हमारी सस्कृति का मुज्ञाव। जिस तरह की सेवा हम गाय बल से लेत ह उसे सोचते मनुष्य का कतव्य होता ह कि वह गाय को मार नहीं।

जिन दिना हमारे देग म गोमेध यज्ञ होते थे और ब्राह्मण भी बँलो को खा जाते थे तब भी बंदो में लिखा था कि गाय को नहीं मारना चाहिय वह अच्छा ह। श्रुति और वाणिज्य दोनों के लिए गाय बल काम में आन स दोनों को बचाना कठिन काम न था। गोवश को उपयोगिता इतनी अधिक थी कि वृद्ध अवस्था में अपने बडा के समान उन्हें पालना-पासना कठिन काम नहीं था। 'गोमास का स्वाद छोड दिया और गाय बच गयी इतना सोचा था उपाय उन दिना में। लेकिन अब गाय की जगह दूध देने के लिए भस भी आ गयी और उस के

पुणानुदल हिन्दू जावन दृष्टि

दूध में चरबों का घाने घी का प्रमाण ज्यादा मिलने लगा इस वास्ते लोग गाय को छोड़ कर भैंस को पालने लगे । तब से गाय का जीवा सत्रे में आ पडा । दूध देने के साथ अगर खेती के लिए और वाणिज्य के लिए भैंस और उस के बच्चे काम में आते तो गाय को छोड़ कर हम भैंस को और पाडे की ही अपने जीवन-साथी बना लेते और उन को न मारने का धम हम स्वयं पालन करते और दुनिया को समझाते । लेकिन बैल का जितना उपयोग है उतना पाडे का नहीं है । गाय जितना उपयोगी जानवर ह उतनी भैंस नहीं ह । अब अगर हम दूध देने वाले जानवरों का कृतज्ञतापूर्वक बचाने का धम छोड़ दें तो कोई सवाल ही नहीं रहता । चाहे जितने जानवर रखे, उन से लाभ उठाया और लाभ कम होने पर उन को घोखा दिया । हम रक्षक भी बनें और भ्रमक भी । ता फिर सवाल कौन-सा रहा ? मनुष्य सबत्र यह काम करता ही आया ह । लेकिन ऐसी कृतज्ञता से बचने का उपाय ढूढना, यही है हमारी सस्कृति की मांग ।

बहुते है कि आज की प्रतिकूल हालत में भी गाय की अस्सी टका उपयोगिता सिद्ध है । तो केवल बीस टके के बीस के लिए हम कृतघ्न और घातक क्या बनें ? यही सवाल हमारे सामने है । अथशास्त्र व जीवन शास्त्र की मदद से हम उपाय ढूढें । सारी दुनिया के लोग गाय, भैंस आदि जानवरों को मार कर खा जाते ही ह । गोरक्षा के लिए सारी मनुष्यजाति के साथ हम विश्वयुद्ध नहीं चला सकते । गोरक्षा का काम सांस्कृतिक काम ह अर्थशास्त्र और धर्मशास्त्र दोनों की पूरी मदद से ही हम इस में कामयाब हो सकते ह ।

हो सकता ह कि भारत में ही गोरक्षा में विश्वास रखने वाले लोगों की संख्या ज्यादा है । लेकिन सारी दुनिया में तो हम अल्प-संरक्षक ही ह । भारत में भी जब तक मासाहार प्रचलित है तब तक मासाहारो लोगो को हम आदेश नहीं दे सकते कि दूसरे जानवरों का मांस तुम खा सकते हो, गाय का नहीं । हिन्दूधर्म का नाम आगे कर के अगर हम औरों की नसीहत देने जायें तो हम कामयाब नहीं हो सकते । केवल मानवता की दृष्टि का प्रचार कर के और गाय-बल की उपयोगिता हर तरह से बढ़ा कर के ही हम गाय को बचा सकते ह । गाय को मारने वाले लोगों को कानून से रोकने का प्रयत्न करने के बजाय हम गाय की उपयोगिता बढ़ाने के लिए सरकार की मदद लें तो वह अच्छा रास्ता होगा । भारत के बच्चों को दूध चाहिए अनाज और कपास उगाने के लिए बल की सेवा जरूरी ह इस बात में कोई दो मत नहीं हो सकते । तो इसी को ले कर हमें आगे बढ़ना ह । धार्मिक क्षण्डे में पड़ कर हम यह काम नहीं कर सकते ।

एक बात स्पष्ट ह कि दुनिया में, और हमारे देश में भी, ऐसे छोटे मोटे प्रदेश

ह जहाँ धारिदा बहुत होन के कारण और आयोहवा भी प्रतिपुत्र होने के कारण गाय वहाँ पाप नहीं सकती। ऐसे स्थानों का पता लगा कर और उत को धन मर्यादा लिखित कर हम जाहिर कर सकते हैं कि इन धन में गायों की जगह भैंसों को ही रखा जाय।

जहाँ गाय ही अच्छी तरह रह सकती है और भैंस को आयोहवा भी अनुपुत्र नहीं है ऐसी जगह गाय को ही रखा जाय भैंस को वहाँ से हटाया जाय। दोनों जगह जानदया और स्वाय बहुत है कि दोनों जानवर एकत्र रखने में हम माहुर की कठिनाई पैदा करते हैं।

अब धात्री के देग में जहाँ भैंस गाय को हटा रही है वहाँ गाय को ही रखा कर उसे जीवित-दान देने के लिए जितनी मरु की आवश्यकता हो उतनी धन की कौशिला की जाय। गाय को रक्षा के लिए और गाय का दूध सस्ता करने के लिए अगर भस का कुछ उपयोग हो सकता हो तो अवश्य करें। गाय का मारन के लिए नहीं, किन्तु उसे बचाने के लिए अगर भैंस की मदद हो सकती हो तो उतनी ले सकते हैं।

यह काम 'यक्ति की दीघदृष्टि पर न छोड़ कर अगर हम सरकार नगर पालिका, पिजरापोत्र आदि समर्थ संस्थाओं द्वारा काम करें तो इस सवाल का हल हो जायगा और बाद में हम सारी दुनिया को भी इस धम का उपभोग कर सकते हैं। (सारी दुनिया मान दुनिया का वह हिस्सा जहाँ गाय पनप सकती है।)

और दुनिया में ऐसे भी लोग हैं जो मांसाहार का त्याग करना चाहते हैं। उन को भी हम समझा सकते हैं कि दूध, घी पनीर आदि गोरस का व्यवहार बढ़ाने से ही मांसाहार का त्याग हो सकता है। जो लोग मांसाहार छोड़न की तयार हुए हैं व लोग गाय का महत्व आसानी से समझ सकेंगे। हम गाय की रक्षा करनी है लेकिन वह सफलता प्राप्त करने के ढंग से ही। केवल हिंदू धम और हिंदू समाज के बल पर नहीं, किन्तु मानवता के प्रचार के द्वारा यह काम हो सकता है। जो लोग मानवता में विश्वास रखते हैं व नास्तिक न बनें। गोरक्षा का धम हिंदुस्तान के बाहर भी फलाना है। उस के तरीको को, हम धर्मांध बन कर खतरे में न डालें। गाय को बचाना ही है। बचान के ढंग से ही वह बचगी। इस के लिए हम धर्माभिमान नहीं किन्तु हमारी धार्मिकता बचावें। सच्ची धार्मिकता प्रसरणशील होती है। यह काम आस्तिकता से ही हो सकता है।

गोसेवा के लिए—चाहिए एक योजना आयोग

अहिंसा किसी धर्म पथ की केवल आचार-सहिता का एक अंग नहीं है। अहिंसा वृत्ति मानवव्यापी विराट जीवन-संस्कृति की बुनियाद है। बुनियाद न कहते हुए घरातल कहेंगे। बुनियाद मकानों को भीमारों की और किले की होती है। संस्कृति कोई मकान नहीं होती। संस्कृति तो मानव निर्मित और प्रयोजनपूर्ण उपवन के समान होती है, जिस का घरातल केवल आधारशिला का काम नहीं करता किंतु असंख्य वृक्ष वनस्पतियों की जड़ों के लिए पोषण देने का भी कार्य करता है। अहिंसा भविष्य की समस्त मानव-संस्कृति का चैतन्यपूर्ण घरातल ही है।

मानव जाति को अहिंसा की प्रेरणा अत्याय धर्मों से मिली। मानव-जीवन के प्रयोजन का साम्राटकार जिस धर्म को जितना हुआ, उसी के अनुपात में उस ने अहिंसा को सम्मानित किया है।

असंख्य जमाना के अनुभव से हम कह सकते हैं कि समय और अहिंसा ही धर्मजीवन का सारसवस्व है।

अहिंसा का प्रारम्भ कौटुम्बिक जीवन से अपनी-अपनी जाति अथवा जमात से होता है। आगे जाकर वह गाव या स्थानिक समाज तक फलती है। जितने लोगों का जीवन परस्पर ओत प्रोत होता है और जिन लोगों के परस्पर सहयोग के द्वारा सारे समुदाय का जीवन सुरक्षित, सहूलियतपूर्ण और समृद्ध होता है, उन का एक समाज बनता है। इसीलिए हम कहते हैं कि मानवीय सामाजिक जीवन की बुनियाद अहिंसा है। वैरभाव या शत्रुता टाल कर जहाँ मैत्री भावना का उदय होता है और एक दूसरे के उत्कर्ष में मददगार होने से प्रसन्नता का अनुभव होता है वहाँ अहिंसा स्थापित हुई अथवा सिद्ध हुई।

मनुष्य जाति का जीवन समस्त जीव सृष्टि के साथ घुलामिला तो है, किन्तु वहाँ पर अधिकांश तो भक्ष्य भक्षक का सम्बन्ध पाया जाता है। हम वनस्पति को—गाक, फल और आजाज को चाहते हैं उन की पैदाइश बनाते हैं लेकिन अधिकांश विराट मानव जाति पशु-पक्षियों को और भल्लियाँ आदि जलचरा को, सुराव की दृष्टि से ही देखती है। इसलिए तो कहा गया है 'जोवो जीवस्य जीवनम्।' वनस्पति आदि उद्भिज जीवसृष्टि और जलचर, भूचर, खेचर आदि

प्राणी-सृष्टि में से अपना आहार ढूँढ़ लेना यही है जीव सृष्टि का सामान्य नियम। जीवों जीवस्य जीवनम् के मानो हैं—हर एक जीव जीन के लिए दूसरे जीवों पर ही निर्भर रहता है। जीवों का जीवसापन (भ्रम्य) जीव ही है।

यह हो गया बुरदरत का प्रवृत्तिधम। लेकिन मनुष्य के लिए ऐसे प्राकृतिक धम से श्रेष्ठ आत्मिक या आध्यात्मिक धम है। यह धम कहता है कि जीवा को भक्ष्य बना कर जीना भले स्वामाविक हो इस में मनुष्य-जीवन को कृतायता नहीं है। मनुष्य को जीवा पर नहीं जीवा के लिए जीना है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह अपने जावन में से दिया को मात्रा जैसे ही सके क्रमण कम करता जाय।

इस मानवीय जीवन धर्म के अनुसार मनुष्य न प्रथम छोट दिया मनुष्य का मांस खाना। मनुष्य का मांस खान वाले लोगो का अग्ररखी में कहते हैं Cannibals अथवा Anthropophagus ससृष्ट में कहते हैं नरमुक् ब्रह्म्याद अथवा मनुष्य भोजी। मनुष्य को मार कर उस का मांस खाने वाले लोग दुनिया में सब जगह पर थे। धीरे धीरे यह रिवाज बन्द हो गया। अफ्रिका में आज भी मनुष्य मांस पर थे। धीरे धीरे यह रिवाज बन्द हो गया। अफ्रिका में आज भी मनुष्य मांस खानेवाले लोग पाये जाते हैं। सवट के समय और युद्ध के दिनों में आज भी मनुष्य चोरी से मनुष्य का मांस खाता है। रिवाज अभी पूरा नामगैप नहीं हुआ है तो भी हम कह सकते हैं कि यह रिवाज कभी नामगैप हुआ है। इस के बाद पशु पक्षियों का मांस छोटन की बात आयी। चन्द लोगो ने सोचा कि पशु और पक्षी हमारे ही जैसे हवा में साँस लेकर जीते हैं। इसीलिए उन को प्राणी कहते हैं। (प्राण शब्द में 'अन' धातु है। उस का अर्थ होता है साँस लेना।) पानी में रहने वाला मछलियाँ हवा की साँस नहीं लेती। इसलिए उन को प्राणी-व्य म न रख कर उन को खाने में हर्षा नहीं ऐसा चन्द लोगो ने सोचा। इन्होंने पशु पक्षी का मांस छोडा इतने दरजे आहार के क्षय म अहिंसा की प्रगति हुई। आज के शाकाहारी भारतवासी पशुपक्षी का मांस नहीं खाते मछलियाँ भी नहीं खाते और मुर्गा आदि जानवरों के अण्ड भी नहीं खाते। अनाज, ग्राक, फलफूल और ब दमूल तथा दूध और दूध से बनने वाले पदार्थ खाकर ही जीते हैं। इन में अब पश्चिम के शाकाहारी लोगो की दलीलें सुन कर यहाँ के चन्द शाकाहारी अण्डे खान लगे हैं। और उन का प य बढ रहा है। पश्चिम के शाकाहारी जहाँ अण्ड खाते हैं वहाँ दूध नहीं पीते। तमाम गोरस को मासाहार गुमार कर क य उसे नहीं खाते। उन की देखादेखी हमारे लोग दूध छोड़ेंगे ऐसी अपेक्षा थी लेकिन शायद ही ऐसे कोई भारतीय शाकाहारी हो जिस ने दूध छोडा होगा।

जीवदया में प्राणियों को न मारने की बात आती है। उन का पालन-पोषण करने की जिम्मेवारी मनुष्य ने न अपने न सिर पर ली है, न ले सकता है। चूड़ लोग तोता, तीतर आदि छोड़े पक्षियों का पालन करते हैं। हिरन, खरपोश आदि पशुओं का भी वैसा ही पालन करते हैं। लेकिन वह शौक के लिए है, घम के खयाल से नहीं।

स्वार्थ के लिए मनुष्य ने पालन-पोषण शुरू किया गाय-बल का, भैंस और पाडा (भैंसा) का, घोड़े का और गधे का। इसी फेहरिस्त में हम ऊँट और हाथी को भी डाल सकते हैं। उत्तर ध्रुव की ओर गाड़ी खींचने के लिए वहाँ के लोग हिरनों का और कुत्तों का भी उपयोग करते हैं।

इन प्राणियों में भारत में अधिक से अधिक उपयोग होता है गाय-बैल का। गाय के दूध के बिना, हमारा और हमारे बच्चों का काम नहीं चलेगा। और बैल के बिना खेती हो नहीं सकती, इसलिए गाय-बल, दोनों को भारतीयों ने अपने परिवार का सदस्य गिना।

इन में बैल को अमयदान देना, हत्या से मुक्त रखना आसान था। क्योंकि बैल की सेवा हम बारहों महीने अखण्ड ले सकते हैं। खेती के काम में हल चलाने में, पानी खींचने में, तेल और गने का कोल्लू चलाने में और मनुष्य की और माल की यातायात के लिए गाड़ी चलाने में बैल का उपयोग होने से बैल को मारने को कोई सोचता ही नहीं। गाय का ऐसा नहीं है। गाय का उपयोग सिर्फ उस के दूध के लिए और उस के गोबर का उपयोग खाद के लिए होता है। जब गाय दूध नहीं देती है तब उस को खिलाना पिलाना मनुष्य के लिए आसान नहीं है। यह देख कर हमारे समाजशास्त्री, घमकारों ने आज्ञा की कि गाय को कभी भी मारना नहीं चाहिए। वश्य (किसान और बनिया) अपने मुनाफ़े में से गाय को बचावे। इस कठव्य का इनकार उन्हें कभी भी नहीं करना चाहिए। गौरक्षा हिन्दूधर्म की विशेषता है और उस में मानवधर्म का विकास पाया जाता है।

मनुष्य की खेती बनी, लोक-संख्या बढ़ी, गाय का दूध बढ़ाने की तरकीबें भारतीयों ने पूरी ढूँढ़ी नहीं। लेकिन उन्होंने गाय की मदद में भैंस को लिया। उस का दूध ज्यादा, उस में मक्खन की मात्रा अधिक, और उस जानवर की हिफ़ाजत करने की तकलीफ़ गाय से कम। यह सब देख कर भारत के किसानों ने और खालों ने गौ-पालन में भैंस को भी अन्तर्गत किया। लेकिन हमारे अर्थशास्त्र में भैंस को विठाना नामुमकिन था। खेती का काम जैसा चल कर सकता है वैसा भैंसा नहीं कर सकता। उस से गर्भों वरदारत नहीं हो सकती। किसानों ने तय किया कि हम गाय को तो रखेंगे, भैंस को भी रखेंगे लेकिन उस

के नर वच्चो को बचपन में ही मार डालेंगे । हमारे जैजियों ने इस बठोर हत्या का विचार नहीं किया । (विचार करने का काम पुराने आचार्यों का । उन के सामने भैंस नहीं थी ।) आखिरकार गांधीजी के मन में भैंस का विचार आया । खूब सोचने के बाद गांधीजी ने तय किया कि गाय और भैंस दोनों के बग का रक्षण हम से कभी नहीं हो सकेगा । इस लिए हम न तो भैंस की सेवा लें, न उस के रक्षण का भार उठावें। वह जगल का जानवर है । दूसरे जानवरों का जो होता है वही उस का होगा । गांधीजी के गौरशा के कार्यक्रम में भैंस के दूध का बहिष्कार आ गया ।

गांधीजी के सब कार्यक्रमों में आर्थिक दृष्टि भी होती थी । गाय-बल की नस्ल सुधारना, गाय का दूध बढ़े, बछड़े देने की गाय की आयु मर्यादा बढ़े गाय की मृत्यु के बाद उस की हड्डियाँ, उस के सिर, खुर और चमड़े से हम अधिक से अधिक लाभ उठावें मरी हुई गाय के मांस की हम खाद बनावें इत्यादि सब दंगों से गोपालन का बोझा कम से कम हो जाय यह ह गांधीजी की गोपालन प्रवृत्ति का रहस्य । बल के बारे में उन को चिन्ता नहीं थी । क्योंकि उस की सेवा सतत और लाभदायी होने से उस को हत्या का खतरा नहीं था ।

लेकिन अब बैल के जीवन को भी बड़ा खतरा पैदा हुआ ह । मनुष्य के घम विमुख स्वाय ने, यन्त्रोद्योग और विज्ञान में असाधारण प्रगति की ह । अब खेती के सब तरह के कामों के लिए बैल की उपयोगिता कम हो रही ह । यन्त्रों के द्वारा ही ऐसा काम बहुत जल्दी व्यवस्थित ढंग से और कम खर्च में होने लगा है । मनुष्य के और माल के यातायात के लिए भी बसों या टकों का उपयोग राष्ट्रीय पैमाने पर हो रहा है । अब बैल की कीमत कम हुई । बैल का पालन महंगा हुआ । और अब तो बैल की हालत गाय से भी बदतर हो रही ह ।

पश्चिम के लोग और हमारे धार्मिक पशुपालन विद्या प्रवीण कहते हैं कि गाय और बैल का उपयोग तो हमें आता है ही लेकिन अहिंसा की बात आप को छोड़नी होगी । गाय-बल को अपने परिवार का सदस्य मानने की भावना छोड़ दीजिए । बेल्ले के पेड़ जब फल नहीं देते, तब आप उन्हें तोड़ कर काम में लेते ह । उसी तरह जानवरों का भी ह । आर्थिक लाभ के लिए नहीं किन्तु दयाघम से आप बूढ़े और रोगग्रस्त कुत्तों को आजकल मार डालते ह । जिस कुत्ते को आप ने करीब-करीब अपना जीवन साथी बनाया था उस का दद दूर करने के लिए आप उसे मयु दान देते ह । बूढ़े घोड़ों के लिए भी मृत्युदान का ही माग अच्छा माना जाता ह । तो गाय-बल के लिए भी वही नियम आप क्यों नहीं सोचते ह ?

गारे लोग तो कहते ही ह कि 'गाय के बारे में आप के मन में जो अच्छी नाजुक भावना ह उस का ख्याल कर के हम कुछ बोलते नहीं । लेकिन थोड़े ही दिनों में आप स्वयं ही अनुभव करेंगे कि गाय को हत्या से बचाना और साथ साथ खेती को भी बचाना आप के लिए नामुमकिन है । लोकसंख्या बढ़ती ह, यन्त्रोद्योग बढ़ते ह, रासायनिक खाद आप को दसगुना लाभदायी ह । ऐसी हालत में कम से कम मासाहारी लोग तो गाय-बैल का उपयोग दूध, मजदूरी, मास और चमड़े और हड्डियों के लिए ही करे । फिर तो गाय का आर्थिक बोझ आप पर नहीं रहेगा । गाय और बैल दोनों को आप अच्छी तरह से खिला पिला सकेंगे । मच्छरों के उपद्रव से उन्हें बचाने का और उन को सुखी बनाने का वैज्ञानिक प्रबंध आप कर सकेंगे और उन के मास का अगर आप परहेज नहीं रखेंगे तो आप की आहार-समस्या भी कुछ हद तक आसान होगी ।

जा बात अंगरेज जाहिरा तौर पर नहीं करते थे, वही अब हमारे लोग भी करने लगे ह और सब दलीलें जोरों से हमारे सामने पेश कर के पूछते हैं कि इस का जवाब आप के पास क्या ह ?

बात स्पष्ट ह । गाय को और बैल को हत्या से बचाना मुश्किल है । और यह भी स्पष्ट ह कि गाय और बैल के बिना हमारा, हमारे बच्चों का और हमारी खेती का काम नहीं चलेगा ।

अगर हम अपनी परम्परागत संस्कृति का और उस के अहिंसातत्त्व को नयी परिस्थिति में नये ढंग से जिलाना चाहते हैं तो इरादापूर्वक और हिंमतपूर्वक सारी परिस्थिति को ही बदलने की तयारी करनी चाहिए । "परिस्थिति बदलना अशक्य ह । काल ही बलवान है" ऐसा कह कर अगर पश्चिम के संस्कार और पश्चिम का नेतृत्व मजूर करना है, यन्त्रोद्योग और स्वायत्त-परायण विमान के आदेश को शिरोधार्य बनाना ह तो यूरोप-अमेरिका की सूचना ही मजूर करनी होगी, उसे मुँह से जाहिरा तौर पर ब्रबूल करे या न करे । और अगर जिस अहिंसा-संस्कृति के रक्षण का और विकास का भार इतिहास विधाता ने हमारे सिर पर विस्वासपूर्वक सौंपा ह, उस को स्वीकार करना ह तो इस बहुधर्मों, बहुवर्षी देश में परिस्थिति पर विजय पाने के लिए हम क्या कर सकते हैं । इस की मनमानी सूचनाएँ प्रकाशित करने की अपेक्षा संस्कृति-संरक्षण के नवाग्रा की ओर से एक प्लानिंग कमिशन—योजना आयोग, नियुक्त करना होगा । और पाब, दस और पचास वर्ष तक राष्ट्र को क्या करना चाहिए इस की क्रमबद्ध योजना उस से माँगनी चाहिए । केवल सरकारी कानून के द्वारा गाय की हत्या रोकने से सवाल हल नहीं होगा । या तो गाय की बेदना बढ़ेगी या घूसखोरी के—भ्रष्टाचार

के लिए एक नया क्षेत्र बड़ेगा। हिंदुत्व के अथवा अहिंसा के अर्धे अनुयायी और केवल जोशीले लोगों के सुझाये हुए इलाज से भी हल नहीं होगा।

गाय की हत्या का कुछ भी हो, उस हत्या के पाप से हम बचें, इतना ही आदर्श सामने रखने वालों का रास्ता आसान है। (उन को भी अपने सकुचित जीवन की कुछ योजना तो बनानी ही होगी।) लेकिन अब गोवश की सेवा करने का सच्चा तरीका क्या है इस का 'यावहारिक' निणय पूरे अध्ययन के बाद हमें करना होगा।

(११ अप्रैल १९४४)

सावभौम गौ रक्षा मिशन

गांधीजी ने गाय को A Poem of Pity कहा था। हम नहीं मानते कि गौ रक्षा के लिए इस से अधिक समर्थ बाणी किसी के मुँह से निकली होगी। गाय की उपयोगिता, उस का भीटा स्वभाव और उस की असहायता सब कुछ उस एक वाक्य में यत्न होता है। गाय का मनुष्य के साथ सहयोग सचमुच एक जीवन का काव्य है। कई जानवर हिंस्र होते हैं। वे मर जायेंगे किन्तु मनुष्य के साथ सहयोग नहीं करेंगे। सिंह, बाघ भेड़िये इस किस्म के जानवर हैं। दूसरे अहिंसक जानवर भी होते हैं जो मनुष्य की कुछ भी सेवा नहीं कर सकते।

ऐसे भी जानवर हैं जो मनुष्य के साथ सहयोग तो नहीं करते किन्तु मनुष्य के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। जिन में जहर नहीं है ऐसे साँप भी मनुष्य से डरते हैं उस से दूर रहते हैं, लेकिन खेतों में रहने वाले चूहों को खा कर खेतों की रक्षा करते हैं। हमारे बच्चों ने ऐसे साँपों को 'क्षेत्रपाल' कहा है।

आकाश में उड़ने वाले पक्षी बड़े सुन्दर होते हैं। बहुता की आवाज मोहक होती है। उन का गान और उन की उड़ान दोनों लुभावने होते हैं। उन के पक्षों की 'गोभा' फूलों की घोभा से टक्कर लेती है। तो भी ये पक्षी मनुष्य के साथ सहयोग करने के लिए, उस से प्रेम का आदान प्रदान करने के लिए उत्कण्ठ नहीं होते। अगर वे खेतों के दाने खाकर मनुष्य के पास से एक बड़ा टक्का (कर) लेते हैं तो खेतों का नाश करनेवाले कीड़ों को खाकर मनुष्य की सेवा भी करते हैं।

मनुष्य के साथ सहयोग करके मनुष्य का और अपना जीवन समृद्ध करने

वाले जानवरा में कुत्ता, गाय, बल, भैंस, भैंसा, घोडा, बिल्ली, हापी और ऊँट मुख्य हैं। हिरन भी कभी-कभी मनुष्य के साथ दोस्ती करते ह और उस की सेवा भी करते हैं। लेकिन मनुष्य के साथ पूरा सहयोग करते आये ह सिफ दो ही प्राणो, कुत्ता और गाय। इन दोनो का मनुष्य के बिना काम नही चलेगा। और मनुष्य तो इन के बिना जो ही नहीं सकता। समाज विज्ञान के प्रवाण्ड विद्वान् पेट्रिक गेटिस से बातचीत करते में ने कहा Man has civilized the cow मनुष्य ने गाय-बैल को अपनाकर दोनों से सेवा लेते-लेते उन्हें सम्म-सस्कारी बनाया ह।

गेटिस साहब ने हँसते-हँसते कहा Perhaps the opposite is more true It is the cow that has civilized man (शायद बात उलटी है। गाय ने अपनी सेवा के द्वारा मनुष्य-जीवन को सस्कारी बनाया ह।) बैल के बिना खेती नही होती। अनाज और कपास की उपज से ही मनुष्य के अन्न-वस्त्र का सवाल हल हुआ ह। गाय के दूध से ही हमारे बाल-बच्चे पुष्टि पाते ह। मनुष्य के आहार में दूध का महत्त्व धाय से भी बढ़ कर ह।

और असली बात मनुष्य को भूलना नहीं चाहिए कि गाय का दूध मिला तभी तो मनुष्य मासाहार छोड कर फिर से शाकाहारी बना। हमारे जीवन के लिए और हमारी सस्कृति के लिए गाय के उपकार इतने ह कि पेट्रिक गेटिस की बात सही लगती ह कि गाय-बैल ने ही मनुष्य प्राणी को सुधार कर सस्कारी बनाया है।

ऐसे गाय-बलो को खिला पिला कर परिपुष्ट और दीधजीवी बनाना यह तो स्वाथ की बात हुई। घम कहता ह कि गाय को और उस के बच्चों को हत्या से बचाना, अभयदान देना यही गाय बल से कुछ हद तक उन्मृण होने का एकमात्र उपाय ह। हिंदू समाज ने इस घम का—इस कतव्य को सब से पहले स्वीकार किया। इस स गौ रक्षा का घम केवल हिंदुओं का नही बनता, मानव मात्र का वह कतव्य है—घम है।

प्रजाराज्य होने के बाद भारत में हम बहुमत के बल पर कानून के द्वारा गौ हत्या को बंद कर सकते ह। लेकिन इतने से हमारा कर्तव्य पूरा नही होता। हमें तो भारत के अंदर और बाहर भी गौ रक्षा का संदेश मानव जाति के हृदय तक पहुँचाना ह। इस काम के लिए अगर भारत के लोगों ने एक बडे मिशन की स्थापना की और अपने मिशनरी जापान, यूरोप तथा अमेरिका तक भेज दिये तो वह एक घम-सेवा का बडा पुरुषाथ होगा। जीवदया के घम को

सबसेष्ट मानने वाले जन समाज न अपने साधुओं को एक तरह से पंगु बनाया है। वे भारत के बाहर जा नहीं सकते, उन की धर्महानि होगी। अहिंसा धर्म का प्राणवायु प्रचार करने वाले सन्तपालत्री, आचार्य तुलसी और गुणोलमुनि जैसे जैन साधुओं से मेरी प्रार्थना है कि अगर वे स्वयं बिभेग नहीं जा सकते तो जन धर्मसमाज की ओर से साधुओं की एक ऐसी नयी प्रया निर्माण करें, जो न है गृहस्थी, और न है कट्टर रुढ़िवादी श्रमण। समस्त हिंदू समाज, अब जन, शिखर आदि सब सम्प्रदायों की मदद ले कर, पश्चिम के जीवदयावादी लोगों की भी सहायता ले कर एक बड़े जागतिक मिशन की स्थापना करें और गौ रक्षा का और शुद्ध आहार का संदेश मानवमात्र के हृदय तक पहुँचा दे तो भारत का स्वराज्य सचमुच धर्मराज्य बनेगा और भारत को स्वतंत्र करने वाले भगवान् के आशीर्वाद हमें मिलेंगे।

गौ-हत्या प्रतिबन्धक कानून बनाने से पहले और उस के बाद भी गौ रक्षा का संदेश भारत के सब नागरिकों के दिल पर जमाने का काम हमें करना चाहिए। ऋषिमुनियों के जिस श्रद्धायुक्त धर्म प्रचार से हिंदू जाति ने गौ रक्षा का सिद्धांत माय रखा उसी धर्म-शक्ति को पहचानने वाली श्रद्धा से प्रचार का यह पवित्र काम हमें फिर से चालू करना चाहिए।

केवल कानून से धर्म की स्थापना नहीं होती। राजसत्ता जब धर्म की शक्ति से भी बड़ी बनती है तब धर्मशक्ति क्षीण होती है। धर्मशक्ति अपना काम पूरा करे उस के बाद उस धर्म काय को मजबूत करने के लिए राजसत्ता, कानून की सत्ता मदद में आ सकती है। इस का एक उदाहरण हम लें। एकपत्नी-व्रत हिंदू धर्म की पसंद है लेकिन हिंदू धर्मशास्त्र ने उसे अनिवाय नहीं बनाया था। पश्चिम के लोगों ने यहाँ आ कर अपना राज्य स्थापित किया तब से वे हमें समझाते आये कि कानून से तो 'एक पति को एक ही पत्नी होनी चाहिए। लेकिन पश्चिम के लोगों ने अपने राज्यकाल में यहाँ वसा कानून नहीं बनाया। भारत में प्रजासत्ता होते ही भारत के स्त्री पुरुषों ने बड़े उत्साह से एकपत्नी व्रत का कानून बनाया, जो हिंदू ईसाई यहूदी और पारसी सब पर लागू है। उसी कानून के नीचे हम कानून के जोरा मुसलमानों को भी ला सकते थे जिस से मुस्लिम महिलाएँ रात्री भी हो जाती। लेकिन हम लोग ने सोचा कि मुस्लिम समाज में पहले एकपत्नी व्रत की धर्मबुद्धि जाग्रत की जाय, बाद में उसी समाज के बहुमत से जब माँग पैदा होगी, तभी एकपत्नी-व्रत का कानून उन को भी लागू होगा।

हिमालय के अंचल में कई जातियाँ ऐसी ह जिन में पाण्डवों के जैसे रिवाज के अनुसार अनेक भाइयों के बीच एक ही पत्नी होती है। वहाँ पर हम ने एक पति-व्रत का कानून लागू नहीं किया है हालाँकि करीब समस्त मानव जाति में वैसा कानून लागू है। याय, नीति, धर्म, सदाचार के सिद्धांत समाजमाय होने के बाद ही उन का कानून की मदद लेना इष्ट होता है और सफलता भी तभी मिल सकती है। अमेरिका ने प्रेसिडेंट हूवर के दिनों में मद्यपान निषेध का एक सावभौम कानून पास किया लेकिन वह अमल में नहीं आ सका। वहाँ की मद्य प्रेमी जनता ने उस कानून की ऐसी हँसी उड़ायी कि कानून निर्वाय हो गया।

हमारे यहाँ अब अस्पृश्यता का पालन करना कानूनन गुनाह है। तो भी भारत के गाँवों में अभी तक अस्पृश्यता पूरी तरह नेस्तनाबूद नहीं हुई है। हम ने अस्पृश्यता के खिलाफ कानून बना कर के अपनी घमबुद्धि को मदद पहुँचायी, यह अच्छा ही हुआ। लेकिन जहाँ अस्पृश्यता का पालन आज भी चलता है वहाँ हम रुढ़िवादी सधनों को न तो 'यायालयों में ले जा कर सजा करवाते हैं, न भारपीट कर के उन्हें ठीक करते हैं। हरिजन सेवक सध पूरी श्रद्धा से और पूरी शान्ति से सधनों के बीच प्रचार का काम करता जाता है। सुधरी हुई सस्कारी मानवता का यही तरीका हो सकता है। और अगर इतने से काम नहीं हुआ तो सत्याग्रह का रामबाण हलाक हमारे पास है ही।

गौरक्षा के लिए इसी तरह से हमें सोचना चाहिए और एक विशाल, विराट गौरक्षा मिशन की स्थापना कर के उस के द्वारा सारी दुनिया में प्रचार करने जितनी आस्तिकता बतानी चाहिए। ऐसा मिशन शुरू में भले ही छोटा हो तो भी उस का सगठन आंतरराष्ट्रीय और सवधर्मों बनाने का प्रयत्न हमें करना चाहिए। यही उत्तम धर्म-भाग होगा।

(१५ अक्टूबर १९६५)

कानून का सहारा

[गौहत्या निवारण के लिए पवित्र, धर्मपरायण और राजनीति विमुक्त स्वामीजी ने केवल धर्म समझ कर उपवास शुरू किये उन्हें उपवास न करने की प्रार्थना करने के लिए जो पत्र थी काका साहेब ने लिखा वह नीचे दिया जा रहा है।— सम्पादक]

सर्वश्रेष्ठ मानने वाले जन समाज ने अपने साधुओं को एक तरह से पगु बनाया है। वे भारत के बाहर जा नहीं सकते उन को धमहानि होगी। अहिंसा धम का प्राणवान् प्रचार करने वाले सन्तबालजी, आचार्य तुलसी और सुशीलमुनि जैसे जन साधुओं से मेरी प्रार्थना है कि अगर वे स्वयं विशेष नहीं जा सकते तो जन धमसमाज को ओर से साधुओं को एक ऐसी नयी प्रथा निर्माण करें, जो न ही गृहस्थी, और न ही कट्टर रुढ़िवादी श्रमण। समस्त हिन्दू समाज, अब जन, सिख आदि सब सम्प्रदायों को मदद ले कर पश्चिम के जीवदयावादी लोगों की भी सहायता ले कर एक बड़े जागतिक मिशन की स्थापना करें और गौरक्षा का और शुद्ध आहार का संदेश मानवमात्र के हृदय तक पहुँचा दे तो भारत का स्वराज्य सचमुच धमराज्य बनेगा और भारत को स्वतंत्र करने वाले भगवान् के आशीर्वाद हमें मिलेंगे।

गौरक्ष्या प्रतिबन्धक कानून बनाने से पहले और उस के बाद भी गौरक्षा का संदेश भारत के सब नागरिकों के दिल पर जमाने का काम हमें करना चाहिए। ऋषिमुनियों के जिस श्रद्धायुक्त धम प्रचार से हिन्दू जाति ने गौरक्षा का सिद्धांत माय रखा उसी धम-शक्ति को पहचानने वाली श्रद्धा से प्रचार का यह पवित्र काम हमें फिर से चालू करना चाहिए।

केवल कानून से धम की स्थापना नहीं होती। राजसत्ता जब धम की शक्ति से भी बड़ी बनती है तब धमशक्ति क्षीण होती है। धमशक्ति अपना काम पूरा करे उस के बाद उस धम काय को मजबूत करने के लिए राजसत्ता, कानून की सत्ता मदद में आ सकती है। इस का एक उदाहरण हम लें। एकपत्नी-व्रत हिन्दू धम को पसन्द है लेकिन हिन्दू धमशास्त्र ने उसे अनिर्वाय नहीं बनाया था। पश्चिम के लोगों ने यहाँ आ कर अपना राज्य स्थापित किया तब से वे हमें समझाते आये कि कानून से तो एक पति को एक ही पत्नी होनी चाहिए।' लेकिन पश्चिम के लोगों ने अपने राज्यकाल में यहाँ बसा कानून नहीं बनाया। भारत में प्रजाराज्य होते ही भारत के स्त्री पुरुषों ने बड़े उत्साह से एकपत्नी व्रत का कानून बनाया, जो हिन्दू ईसाई यहूदी और पारसी सब पर लागू है। उसी कानून के नीचे हम कानून के जोरों मुसलमानों को भी ला सकते थे जिस से मुस्लिम महिलाएँ राजी भी हो जाती। लेकिन हम लोगों ने सोचा कि मुस्लिम समाज में पहले एकपत्नी व्रत की धमबुद्धि जाग्रत की जाय, बाद में उसी समाज के बहुमत से जब माँग पैदा हो जायगी तभी एकपत्नी-व्रत का कानून उन को भी लागू होगा।

हिमालय के अंचल में कई जातियाँ ऐसी हैं जिन में पाण्डवों के जैसे रिवाज के अनुसार अनेक माइयो के बीच एक ही पत्नी होती है। वहाँ पर हम ने एक पति-व्रत का कानून लागू नहीं किया है, हालाँकि करीब समस्त मानव जाति में वैसा कानून लागू है। 'याय, नीति, धर्म, सलाचार के सिद्धांत समाजमाय होने के बाद ही उन को कानून की मदद लेना इष्ट होता है और सफलता भी तभी मिल सकती है। अमेरिका ने प्रेसिडेंट हूवर के दिनों में मद्यपान निषेध का एक सावभौम कानून पास किया लेकिन वह अमल में नहीं आ सका। वहाँ की मद्य प्रेमी जनता ने उस कानून की ऐसी हँसी उड़ायी कि कानून निर्बल्य हो गया।

हमारे यहाँ अब अस्पृश्यता का पालन करना कानूनन गुनाह है। तो भी भारत के गाँवों में अभी तक अस्पृश्यता पूरी तरह नेस्तनाबूद नहीं हुई है। हम ने अस्पृश्यता के खिलाफ कानून बना कर के अपनी घमबुद्धि का मदद पहुँचायी, यह अच्छा ही हुआ। लेकिन जहाँ अस्पृश्यता का पालन आज भी चलता है वहाँ हम रुढ़िवादी सबर्णों को न तो 'यायालयों में ले जा कर सजा कराते हैं, न मारपीट कर के उन्हें ठोक करते हैं। हरिजन सेवक संघ पूरी श्रद्धा से और पूरी शक्ति से सबर्णों के बीच प्रचार का काम करता जाता है। सुधरी हुई सत्कारी मानवता का यही तरीका हो सकता है। और अगर इतने से काम नहीं हुआ तो सत्याग्रह का रामबाण इलाज हमारे पास है ही।

गौरक्षा के लिए इसी तरह से हमें सोचना चाहिए और एक विशाल, विराट गौरक्षा मिशन की स्थापना कर के उस के द्वारा सारी दुनिया में प्रचार करने जितनी आस्तिकता बतानी चाहिए। एसा मिशन शुरू में भले ही छोटा हो तो भी उस का संगठन आंतरराष्ट्रीय और सबधर्मी बनाने का प्रयत्न हमें करना चाहिए। यही उत्तम धर्म-भाग होगा।

(११ अक्टूबर १९६६)

कानून का सहारा

[गोहत्या निवारण के लिए पवित्र, धर्मपरायण और राजनीति त्रिमुख स्वामीजी ने केवल धर्म समझ कर उपवास शुरू किये उन्हें उपवास न करने की प्रायश्चित्त करने के लिए जो पत्र थी बाका साहेब ने लिखा वह नीचे दिया जा रहा है।— सम्पादक]

कानून का सहारा

हो गया है। इस लिए आजकल की राज्य व्यवस्था को प्रजातन्त्र कहना ही रिवाज हो गया है।

अधतन्त्र में समाज-सत्तावाद

अधतन्त्र के बारे में भी ऐसा विचार ही धीरे धीरे दृढ़मूल हो रहा है। राष्ट्र में जो भी संपत्ति पैदा होती है, वह जमीन, पानी, जंगल, रेत, सदान आदि प्राकृतिक समृद्धि से ही उत्पन्न की जाती है। उत्पन्न करने वालों में जिन जिन का हिस्सा है उन का वर्गीकरण भी मुजब किया गया है।

जमीन का मालिक जमीनदार, पूँजी का मालिक पूँजीपति परिश्रम करने वाला मजदूर, कौशल्य से काम करने वाला कारीगर इन सब को एकात्मक रूप से उन को संगठित करने वाला संगठक अथवा उद्योगपति, जो भी संपत्ति पैदा होती है उस का बँटवारा इन्हीं वर्गों के बीच यथा-यथा होना चाहिए और यह काम समस्त प्रजा का प्रतिनिधि मंडल यानी राजसत्ता यापवक करे यही अपेक्षा की जाती है।

जब राजसत्ता का समस्त अधिकार प्रजा के हाथ में आ गया तब प्रजा कहने लगी कि राष्ट्र में जितनी भी जमीन है उस पर किसी व्यक्ति या वर्ग का अधिकार न होकर समस्त राष्ट्र का हो यानी राष्ट्र के प्रतिनिधियों से बनी हुई सरकार के हाथ में जाय। जमीनदारों का अलग वर्ग न रह कर राष्ट्र ही एक मात्र जमीनदार बने।

इस विचार को यापक कर के साम्यवादियों ने यापक नारा चलाया है कि केवल जमीन ही नहीं किंतु सम्पत्ति उत्पादन के सब के सब प्रधान साधन राज्य के ही अधीन रहें। यहाँ समाज सत्तावाद और साम्यवाद के बीच जो भेद है उसे हम देखने नहीं बठते क्योंकि जो बातें हम कहना चाहते हैं उस में इस भेद का महत्त्व बहुत कम है।

अब अगर समस्त खेती, सब कारखाने और सदान से उत्पन्न होने वाली खनिज सम्पत्ति सरकारी मालिक की है तो खेती आदि सब प्रवृत्तियाँ चलाने का अधिकार भी सरकार का ही हो।

मजदूरों के परिश्रम का मालिक समाज सरकार

और इतना कबूल करने के बाद कौन कहाँ कितनी मजदूरी करे, मजदूरों को क्या दिया जाय कितना दिया जाय, उन से कितना काम लेना है यह भी सारा राष्ट्र ही तय करे। (राष्ट्र याने सारा समाज और उस की प्रतिनिधि

सरकार) और मजदूरों के अन्दर बुद्धि से काम देने वाले लोग भी आ जाते हैं । मजदूर, कारीगर, किसान, वाणवान, धुनकर (जुलाहा), हिसाबनीस मोहरिर, (कारखान), व्यवस्थापक आदि सब के सब मजदूर वर्ग में आ ही जाते हैं । इन मजदूरों का परिश्रम समाज की ही दीलत है, समाज का ही उस पर अधिकार है और सरकार का आदग माय किये बिना इन मजदूरों की दूसरा चारा ही नहीं ।

यह सारा साम्यवाद अथवा समाज-सत्तावाद खडा हुआ उस के पहले कल कारखाना की चर्चा करने वाले अथशास्त्री अथवा सपत्तिशास्त्री एक सवाल उठाते थे—

वे कहते थे कि एक कारखाना चलाने से जो लाभ होता है, मुनाफा मिलता है उस पर अधिकार किस का, मजदूर को जीने के लिए केवल मजदूरी मिले, जमीनदार को जमीन का सिक्क किराया मिठे, पूँजीपति को उस की पूँजी पर केवल सूद मिले, बहुत हुआ सो पूँजी खतरे में डाली इस के लिए बीमे की क्रिस्त भी मुनाफे में से ले । सगठक व्यवस्थापक अपनी कौशल्ययुक्त सेवा के लिए अच्छी तनख्वाह ले । बाकी का जा मुनाफा रहता है वह न मिलना चाहिए जमीनदार को और न मिलना चाहिये पूँजीपति को । व्यवस्थापक को भी तन रवाह से अधिक कुछ न मिले । कारखाना चलाने से जो भी स्पष्ट मुनाफा होता है वह सारा ऊपर का मेहनताना चुकाने के बाद समाज की मिल्कियत है । प्रजाहित के लिए वह मुनाफा सरकार के हाथ में जाना चाहिए ।

जो अर्थशास्त्र और राजनीतिशास्त्र सब लोगो को परिचित है उस यहाँ पर थोडे में दोहराने का खास उद्देश्य है गौरक्षा के हेतु हम यहाँ दो सवाल उठायेगे ।

गोपालन को जिम्मेवारी सरकार की

सारे राष्ट्र के हर एक आदमी के लिए दूध अत्यन्त आवश्यक, पोण्टिक और प्राणवान आहार है । इस दूध को पैदा करने वाले जानवर यकित की नहीं किन्तु ध्यष्टि की, सारे समाज की, राष्ट्र की याने राष्ट्रीय सरकार की मिल्कियत होनी चाहिए । गाय का पालना, गाय के लिए अच्छे से अच्छे साँड तयार रखना । दूधो के आहार का प्रवर्ध करना, गायो की नस्ल सुधारना, खेतो के लिए जहुरो अच्छे मजदूर तल तयार कर के देना, यह सब काम सरकार की ओर से ही होना चाहिए । गाय बल की नस्ल सुधारने की चिन्ता और प्रवर्ध भी सरकार के ही हाथ में ही । क्या यह विचार भारत की सब प्रजा को माय है ?

अगर है तो गौरक्षा का सवाल राष्ट्राय है प्रजा निमित्त सरकार बना है ।

सरकार के प्रतिनिधियों को इसे हल करना ही चाहिए। और गौहत्या माय की तो भी उस के लिए सरकार जिम्मेवार होगी और गोरक्षा का सिद्धांत राष्ट्र माय हुआ तो उस का पालन भी सरकार को ही करना होगा। गाय के बछड़े को संभालना, बृद्ध गाय-बल, लँगड़े-टूले, बीमार गाय बल सब का प्रबंध भी सरकारी खर्च से ही हो। और जिस तरह टाबखाना और तार घर द्वारा होने वाली प्रजा-सेवा सीधी सरकार ही करती है वैसे ही सब लोगो को यथा-याय दूध पहुँचाने का काम भी सरकार के द्वारा ही हुआ करे।

गोरक्षा को बुनियाद में धर्म निरपेक्षता

हम मानते हैं कि भारत का और सारी दुनिया का समाज-सत्तावाद धर्म निरपेक्ष है। और साम्यवाद तो सब के सब धर्मों के प्रति तिरस्कार युक्त उपेक्षा ही रखता है। यह तटस्थता और उपेक्षामूलक चिंतन ही गोरक्षा की बुनियाद आधार में रहेगा। ऐसी हात में भी लोकहित के लिए संस्कृति रक्षा के लिए और कसरत राय की कदर करने के लिए गोरक्षा का सिद्धांत माय होना कठिन बात नहीं है।

ऊपर के सारे विवेचन में हम ने मान लिया है कि गाय मानवजाति की, मनुष्य समाज की केवल मिल्कियत ही है। समुद्र की मछलियाँ जंगल के जानवर और बाकाय के परिदे मनुष्य के हाथ में आने पर मनुष्य की मिल्कियत यानी चीज बनते हैं। उन को रखना, मारना न मारना, अपनी सेवा के लिए काम में लाना और उन्हें बेचना मनुष्य के अधिकार की बात है। इन पशुओं को बेचने का अधिकार जैसे मनुष्य का है, वैसे ही उन्हें मार कर खा जाने का अधिकार भी मनुष्य का है।

सारा समाज ही चाहे तो प्रचण्ड बहुमत के बल पर इन पशुओं को हत्या से बचा सकता है। अथवा डाँ की हत्या पर अक्रुश भी रख सकता है यानी हत्या मर्यादित कर सकता है।

अब हम दूसरा सवाल उठावेंगे।

समाजसत्ता में और समाजवाद में मजदूर के परिश्रम पर समाज का अधिकार है, मनुष्य पर नहीं। क्योंकि मनुष्य, मनुष्य है। मनुष्य अपने को बेच कर गुलाम भी नहीं बन सकता।

अब गाय बल घोडा, ऊँट हाथी, कुत्ता आदि जानवरो से हम सेवा लेते हैं और चाहे तो उन्हें मार भी सकते हैं खरीद सकते हैं, बेच सकते हैं, मार कर खा भी सकते हैं। लेकिन अगर मनुष्य की 'यायवृद्धि' जाग्रत हुई, प्राणियों

के प्रति रहा हुआ उस का उच्च कृतव्य वह पहचान सका तो वह कह सकेगा कि जिन प्राणियों की हम आजम सेवा लेते ह, उन के परिश्रम से लाभ उठाते ह उन को हम गुलाम तो करें, लेकिन उन्हें मारने का हक हमें नहीं है। सामान्य पशु और मनुष्य के बीच का स्थान इन उपयोगी सेवक जानवरों को देना चाहिए।

अगर समाज-सत्तावाद को हम मान्य करें तो इन जानवरों को राष्ट्र-सम्पत्ति (नये अर्थ में National Animal) मान कर इन का खरीदना-बेचना भी बन्द कर सकते हैं।

जब गुलामी की प्रथा नयी-नयी थी तब मालिक गुलाम को खरीदने के बाद उसे बाँध कर भी रख सकता था, उस के हाथ पाँव तोड़ सकता था, उस को शादी करना, न धरना यह भी मालिकों की मर्जी की बात थी। गुलाम के बाल-बच्चे कुत्ते बिल्ली के बाल बच्चों के जैसे ही भेंट में दिये जाते थे अथवा बेचे जाते थे। इतना ही नहीं मालिक अपने गुलाम को चाहे तो मार कर खत्म भी कर सकता था, क्योंकि वह उस की मिल्कियत थी।

धीरे धीरे मनुष्य की मानवता और 'यायबुद्धि' जागी। गुलाम को भी अधिकार मिलने लगे और गुलाम मालिक की सम्पत्ति हाते हुए भी मालिक उस से मनमाना व्यवहार न कर सका।

अन्त में मानवों की (गोरों को भी) मानवता पूरी-पूरी जाग्रत हुई। गुलाम मुक्त हो गये। अब किसी भी मनुष्य को गुलाम माने अपनी मिल्कियत बनाना अशक्य हो गया। इतना ही नहीं, सब मानवों को, वे जहाँ स्थायी रूप से रहते हैं, नागरिकों के सम्पूर्ण अधिकार, पूरे गुलामों को भी, मिलने लगे हैं।

गुलामा की मुक्ति का, उन का स्वतंत्रता का और नागरिकता का यह इतिहास हिन्दू सभ्यता का नहीं किन्तु पश्चिमो सभ्यता का है, और पिछले सौ दो सौ बरस के अन्दर का हो है। लेकिन वह हमारे लिए इतना विश्वास रखने के लिए काफी है कि आस्तिक प्रयत्न करने पर और धार्मिकता का तेज प्रकट करने पर मानवों की, केवल हिन्दुओं की नहीं, किन्तु समस्त मानवों की 'यायबुद्धि', घम-बुद्धि जागृत हो सकती है। सत्याग्रह का असर मनुष्य मात्र पर हो सकता है। इस को मैं मनुष्य हृदय में रही हुई आस्तिकता उत्तम प्रमाण मानता हूँ।

अब हम भारत में रहने वाली समस्त जनता से मानवता के नाम कहना चाहते हैं कि गाय-बैल, घोड़ा-जैट, कुत्ता बिल्ली आदि जानवरों को हम अपनी मनुष्य जाति के लोग अन्य जानवरों से कुछ अलग समझें। उन से श्रमोत्ती सेवा मिलती है, उन से प्रेम निष्ठा भी मिलती है इस की इतर कर के इन प्राणियों के प्रति हम अपना विशेष धर्म मंजूर करें। हम जानते हैं कि यह काम आसान

नहीं है इस लिए इस उदात्त मानव धर्म का प्रारम्भ हम भारत में और गाय से करते हैं। लेकिन हम यहीं अटक जाने वाले नहीं हैं। (उपर की फेहरिस्त में हमने बिल्ली को भी स्थान दिया है, इस बात को याद कर के कि प्राचीन काल के मिस्र देश में (इजिप्त में) बिल्ली को पवित्र जानवर माना जाता था और समाज धर्म बिल्ली को अर्घ्य—न मारने लायक—कगर कर के बचाता था।)

गाय को बचाने के विचार का समयन हम केवल हिंदू शास्त्र अथवा हिंदू भावना के बल पर नहीं करते हैं किन्तु मानवता के, मानवधर्म के बल पर ही कर रहे हैं। और हम आशा करते हैं कि कम से कम गाय-बल को बचाने के लिए भारत के सब धर्मों के भारतीय लोग सहमत होंगे।

भारत में गाय की, और अरबस्तान में ऊँट की रक्षा हो

हमें विश्वास है कि भारत में अगर हम गाय को बचा सके तो हम से सबक सीख कर अरबस्तान के मुसलमान, वहाँ के राष्ट्रीय प्राणी ऊँट को इसी तरह बचाने के लिए किसी दिन तयार हो जायेंगे। क्योंकि इसलाम के नबी हजरत मोहम्मद पगम्बर ने एक दफे एक बूटे ऊँट की शिकायत को मान कर उसे जीवनदान दिलवाया था। यह क्या मोहम्मद साहब के जीवन चरित्र में हो है।

पशुधर्म की बचाने का मिशन

घोड़े के बारे में किसी एक देश से प्रारम्भ करने की आवश्यकता नहीं है। घोड़े की उपयोगिता विश्वव्यापी है। अगर हिंदुओं में सच्ची आस्तिकता है और धर्म तंत्र प्रकट करने की हिम्मत है तो हम लोग केवल गाय को ही नहीं, किन्तु ऊँट और घोड़े को बचाने के बर्तनिक ढंग का प्रचार अपने मिशनरियों के द्वारा सारी दुनिया में कर सकेंगे। जनी साधु अगर हिंदुस्तान के बाहर जाने योग्य बहिष्कारों बन गये तो पशुधर्म का सवाल ले कर सारी दुनिया में वे पहुँच सकते हैं। और मेरी आस्तिकता मुझ कहती है कि उन्हें यथासमय सफलता अवश्य मिलेगी। धर्मगत है ही अमोघ।

धर्मबुद्धि जागृत होने पर ही कानून का सहारा

अगर मनुष्य जाति ने गुलामों की मारना बेचना, परीदना बंद कर दिया तो मनुष्य-सेवक प्राणियों की हत्या बंद करने के लिए मानवों की धर्मबुद्धि जागृत करना और सगठित करना अभाव नहीं। इतना ध्यान में रखना चाहिए कि धर्मबुद्धि पूरी जाग्रत होने के बाद ही कानून का सहारा लेना चाहिए। अहिंसा का ही यह उद्देश्य है। धर्मतंत्र जाग्रत होने के पहले अगर कानून का सहारा लिया तो धर्मतंत्र कुच्छिन्न होता है और हिंसा के तत्त्वा का बल मिलता है।

जब अंगरेज़ों का राज्य था तब सती की प्रथा आदि चन्द अनिष्ट रिवाजों को बढ़ाने के लिए देश के हिन्दू नेताओं ने बड़ा आन्दोलन चला कर अंगरेज़ सरकार को मदद ली यह सब जानते ही हैं। उस जमाने में लोकमान्य के जैसे ऐसे नेता भी थे जो कहते थे कि बाल विवाह आदि अनिष्ट रूढ़ियाँ बंद होनी ही चाहिए, लेकिन धर्मकाय विदेशी राज्यसत्ता के हाथों करवाने में खतरा है। सरकार के हाथ में जब हम अधिकार दते हैं तब दोषदायिणी से सोचना चाहिए कि आइए इस का असर क्या होगा ! वह जमाना विदेशी और परधर्मी राज्यसत्ता से सकारण डरता था। आज भारत में स्वराज्य है और समस्त प्रजा की धर्म निरपेक्ष सरकार भी है। तो भी हम कई क्षेत्रों में सबमाय सामाजिक सिद्धांत लागू नहीं करते। एकपत्नी और एकपति का कानून प्रचण्ड बहुमत से स्वीकृत होने पर भी हम उस का अमल न मुसलमानों पर करते हैं, न हिमालयीय बहुपतिव्रती आदिवासी जमानों पर।

अब हमें समाजसत्तावादी सरकार के हाथ में सबतन्त्र-स्वतन्त्र अधिकार देने के पहले सोचना चाहिए कि इस का नतीजा वहाँ तक पहुँचेगा। गाय के बारे में हिन्दूमत अनुकूल होगा। मुसलमान, ईसाई आदि शायद प्रकट विरोध नहीं करेंगे। (सुनता हूँ कि पाकिस्तान में और बर्मा में गोवध नहीं हाता है। मने इस के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त नहीं की है।) लेकिन विवाह सत्या में आमूलग्र सुधार (विगाड नहीं) करने के दिन आयेंगे तब डर है कि सनातनी हिन्दू बहुमत के नियम से शायद सहमन नहीं होंगे। इस झगट में आज हमें नहीं उतरना है।

गोपालन कौन करे ?

अब एक बड़ा सवाल रहता है जिस का जिक्र हमने गाँधीजी के अखबारा में सन् १९२६ में और १९३२ में किया था। गौहत्या केवल कानूनन बंद करने से गाय बच नहीं सकती। उस के जीने का और पालन-पोषण का प्रबन्ध भी होना चाहिए। मनु भगवान् ने कहा है कि भगवान् ने ब्राह्मण और क्षत्रिय पैदा कर के उन्हें सौंप दो 'समस्त प्रजा की हिफाजत'। गाय को पैदा कर के उस की हिफाजत सौंप दो वश्य को खेती, तिजारत, कारीगरी आदि वेश्यों के कामों के साथ पशु-पालन और खासकर के गौरभा का काम भगवान् ने (यानी समाज-पबस्या ने) वश्यों को सौंप दिया।

इस के बाद मनु भगवान् कहते हैं कि (अप्य उपायो से घनवद्धि होती देख कर) वश्य को कभी ऐसा बुद्धि न हो कि गौ रक्षा और पशु पालन का काम हम

न करें। और मनु भगवान् इस से धागे जा कर कहते हैं कि वीरों ने अगर निष्ठापूर्वक पशुपालन का काम करना चाहा तो बाड़ी की प्रजा उस से सत्ताप माने और उस क्षण में न पड़े।

गौरक्षा का आधार सत्यस्तवृत्ति के गोभक्तों पर

सन् १९३२ में हम ने कहा था 'दूसरी बात यह है कि गाय के धार में हम ने आज तक जो अत्याय किया है। उसे याद कर के आत्मा गोपालन में से होने वाला सारा मुनाफा गाय और उस के धार के रक्षणाय खर्च करना चाहिए। जिस प्रकार 'खानी काय का अन्तिम आधार सत्यस्तवृत्ति से रहने वाले, परोपकारी, त्यागी और निर्लोभो समाज सेवका पर है उस प्रकार 'गौरक्षा का आधार भी सत्यस्तवृत्ति के गोभक्त समाज-सेवक स्त्री पुरुषों पर ही रहेगा।'

हमारे इसी विचार का बलिष्ठ समर्थन अभी श्री विनोया के निवदन में देना हमें परम स तोप हुआ। सरकारी काम जिस ढंग से आज होते हैं उस की तन्त्रिक भी टीका किये बिना हम कहेंगे कि गौरक्षा का रचनात्मक काम अगर सफलता से करना है तो कायकुशल साधु-सदासियों और त्यागी सेवकों के द्वारा ही होगा। अथवा 'यह सारा प्रयास अव्यवहार्य है ऐसे युक्ति-युक्त लम्बे चौड़े स्पोट ही सुनने की नौबत आयेगी। इस काम में हम पारसी, ईसाई और मुसलमाना को भी ले सकते हैं। जब मं सिप में राष्ट्रीय शिक्षा का काम करता था। मैं ने ऐसे मुसलमान किसान देखे थे जो पूरे-पूरे गोभक्त थे। धर्म कुछ भी हो, मानवता तो सब में एक-सा होती है। जाग्रत होते ही वह काम करने लगते हैं।

जब मैं सब से कठिन आर्थिक पहलू पर आना चाहता हूँ जिस के कारण इस लेख के प्रारम्भ में मैं ने अथशास्त्रीय चिन्तन का घोडा विस्तार किया।

मनुष्य बोल कर लड़ सकता है, सेवक पशु नहीं

हमारे गुलाम, हमारे गिरमिटिया और हमारे मजदूर मनुष्य होने से सोच सकते हैं बोल सकते हैं सगठित हो कर लड़ सकते हैं और सत्याग्रह भी कर सकते हैं। मनुष्य-सेवक पशुओं की यह शक्ति नहीं। वे मनुष्य को अपनी सेवा अपना प्रेम और अपनी निष्ठा दे सकते हैं। हम उन्हें जस रखें, सत्तीय या लाचारी से रह सकते हैं। उन की सहज शक्ति मनुष्य से कम नहीं, कुछ अधिक ही है। उन की सगठन-शक्ति जंगल में घोड़ी दीख पड़ती है। और सत्याग्रह तो वे जानते ही नहीं। ऐसी हालत में उन की ओर से उन के अ्याय की, अधिकार की और जीने के हक की विचारणा उदार हृदय के मनुष्य को ही

करनी चाहिए। अगर गाय-बैल, ऊँट घोड़ा आदि पशुओं का कोई प्रतिनिधि मनुष्य की तरह सोच सकता और मनुष्यवाणी में बोल सकता तो कहता—

सेवक पशुओं की न्यायोचित भाग

“कई धर्मात्मा मनुष्या ने जीवदया का प्रचार किया है उन के प्रति हम कृतन हैं। लेकिन हम आप से दया या दान माँगने नहीं आये हैं। हमारा जीने का अधिकार अगर आप माय करें ता हम लोग केवल अपने परिश्रम से ही अपने सारे वश को बचा सकेंगे और इन्हें आराम से रख सकेंगे। आज आप अपनी बुद्धि शक्ति, सगठन-शक्ति और हमारी वैक्रियत करने की शक्ति भी हमारी मदद में दीजिए, तो हम आप के सर्वोत्तम सहयोगी साबित होंगे।

“आज हम आप को जितनी सेवा देते हैं उस के बदले में आप हमें क्या देते ह ? केवल घास चारा आदि खाना और पानी। रहने के लिए, टण्डी, गरमी, धारिस और तेज हवा से बचने के लिए आप हमें मकान देते हैं। यह सब कभी अच्छा होता है, कभी बुरा, इस से अधिक आप से हम कुछ भी नहीं मिलता। अपने मजदूरों को आप केवल खाना, कपड़ा और घर नहीं देते। इस से भी अधिक आप को दना ही पड़ता है।

आप का मुनाफा सेवक-पशु फण्ड में जमा हो

‘अब हमारी माँग यह है कि बल, घोड़ा, ऊँट, गाय आदि हम लोगो से आप जितनी सेवा लेते ह उस का हिस्सा पूरे माय से लगाइए। आप को जितना मुनाफा होना है (मुनाफा न होता तो आप एक दिन भी हमें जिंदा नहीं रखते।) उसी में से आप अपनी मेहनत का लीजिए और बाकी का सारा मुनाफा सेवक-पशु-फण्ड में जमा करते जाइए। घोड़ा और ऊँट आप की कम सेवा नहीं करते। खेती में, बैल से तनिक भी कम काम नहीं देते। लड़ाई में ता इन सब पशुओं से आप ज़ीमती सेवा लेते हैं। इन सब सेवक-पशुओं की सेवा का मुनाफा ईमानदारी से अलग रख दीजिए तो उस में से हम अपने वश के लिए ‘ओल्ड एज पेन्शन’ प्राप्त कर लेंगे। स्वास्थ्य सम्बन्धी निश्चितता तो तुरत होगी, मकानों की स्थितियों में भी काफ़ी सुधार आयेगा। उस फण्ड में से हमारे लिए अच्छे गाँवर चल सकेंगे। सब के लिए अच्छी घास मिलेगी। मच्छरों के उपद्रव से हम बच जायेंगे।

“हृद से ज्यादा काम न लेने के आप के कानून ता हैं हाँ लेकिन उन का पालन कैसे होता ह, यह कौन नहीं जानता ?

“मजदूरो के हित के लिए अगर आप के प्रधान मण्डल में एक प्रधान या मंत्री और सचिव होते हैं तो सेवक-पंगु की हित रक्षा के लिए भी एक मंत्री नियुक्त किया जाये। जिस का जीवप्रेम प्रत्यक्ष सेवा से प्रमाणित हो चुका हो ऐसे मंत्री को यह काम सौंप दीजिए। फिर आप को जीवदया की बात हमारे लिए नहीं चलानी पड़ेगी। हम पुन यहो दोहराना चाहते हैं कि हम दया नहीं मांगते, बल्कि हम ही आप पर दया कर सकते हैं। हम आप से केवल ईमानदारी, माय और आत्मीयता की अपेक्षा करते हैं और वही चाहते हैं।”

पशुओं की इस माँग को मजूर न करने जितने हम घातकी रागस न बनें। मानव संस्कृति को जाग्रत रखने के लिए जिस तरह शिक्षा विभाग और धर्म-संस्थाओं के प्रचार कौशल्य का पूरा उपयोग हम करते हैं उसी तरह हमें अपने मनुष्येतर सहायक साधियों के कल्याण के लिए भी गतिशील प्रवृत्तियाँ चलानी चाहिए। पुराने धर्म-ग्रन्थों के विवेचन से यह काम नहीं होगा। हमारे साधु संन्यासी अपने धर्मतेज को ब्रह्मनिक रूप दे दें, और अपने सेवाधर्म को कृतार्थ करें—यही एक आवाज से माँग है सब धर्मों की।

(१ फरवरी १९६०)

शास्त्र-चर्चा का यह समय नहीं

इस में कोई शक नहीं कि वेद काल से ले कर आज तक भारत में गौरक्षा के पक्ष में सतत आन्दोलन चलता आया है। यह आन्दोलन कभी मन्द रहा, कभी उग्र। लेकिन यह विचार भारत के लोगों के सामन हमेशा जाग्रत रहा है।

वेद काल में धार्मिक क्रियाओं में, यज्ञ में अथवा अतिथि के स्वागत में भोग्य होता था या नहीं इस की चर्चा हम वर्षों से सुनते आये हैं। वेद काल में ब्राह्मण काल और उपनिषद् काल भी गिना जाता है। उस के बाद आता है महाभारत काल। उस काल में मासाहारी लोग सब तरह का मांस खाते थे। इस में शका के लिए अवकाश नहीं है। लेकिन क्या आज यह सबाल प्रस्तुत है? हमारे पूज्य बड़े धर्मात्मा थे, तत्त्वज्ञ थे इस का गौरव हम मन में रखें और उा की कीर्ति बढ़ाने की कोशिश भी करें। लेकिन हमारे पूज्यों में जैसे भले लोग थे वैसे बुरे भी थे। जो भले थे उन में भी चन्द बुराइयाँ थी। इस का इतिहास पढ़ कर हम भी बुरे रहें या बनें ऐसा तो कोई नहीं कह सकता। पूज्यों की

बुराइयों पर परलप डालना कभी-कभी इष्ट भी होता है। सत्यान्वेषो इतिहास परदों को हटा कर सत्य परिस्थितिया का आविष्कार करेगा ही। उस से धवराने का कोई कारण नहीं है। द्रोणाचार्य ने अपने अस्वीकृत अथवा अदीक्षित आदिवासी शिष्य से गुह्यदक्षिणा के रूप में उस का दाहिना अँगूठा ले लिया। यह महाभारत का तथ्य है। अब द्रोणाचार्य की कीर्ति बचाने के लिए अगुष्ठ शब्द के अर्थ बोरों में हम बँड सकते हैं और एकलव्य का अँगूठा काटा नहीं था ऐसा सिद्ध भी कर सकते हैं। ऐसे सशोधनों में जिन को श्चि नहीं है उन्हें उन के रास्ते जाने देना चाहिए। उन्हें भी जीने का और सोचने का अधिकार होना चाहिए।

भारत के असह्य हिन्दुओं के साथ में भी हृदय से केवल गाय की ही नहीं समस्त गोवत्स की रक्षा चाहता हूँ। गाँधी जी ने इस वारे में राष्ट्रमानस को अच्छी तरह से जाग्रत किया और गोरक्षा के आग्रह के पीछे धार्मिक तथा साम्कृतिक भूमिका बैसी है यह भी स्पष्ट किया।

सारी दुनिया में गाय की और गाय-असे मनुष्य-सेवक प्राणियों की रक्षा के लिए धमबुद्धि जाग्रत करना जरूरी है। यह काम अत्यन्त महत्व का है। भारत में भी इसे अच्छी तरह से नहीं कर सके हैं, यह दुःख की बात है। भारत के जैन, वैष्णव आदि सब लोग इस काम को दुनिया में जोरा से चलायें यह मुख्य बात है। यह विश्वव्यापी काम केवल कानून से नहीं होगा। धमतेज के द्वारा, सांस्कृतिक रचना के द्वारा और रचनात्मक प्रवृत्तियों के द्वारा ही प्रधानतया यह काम हो सकता है। यथासमय कानून बनाने से उस की मदद भी हो सकती है। लेकिन केवल कानून-द्वारा यह बड़ा काम सफल नहीं होगा। और हम लोग तो कानून बना कर सरकार के सिरे पर बोध डाल कर सो जाने क आदी हैं।

मैं नहीं कहता कि कानून न बने। उस के बारे में आज भी एक तरह से तटस्थ हूँ। मैं जानता हूँ कि कानून बनने से गोरक्षा का काम आसान होगा, लेकिन हल नहीं होगा। इस लिए मैं ने कहा है कि कानून बनाने के पूर्व और कानून बनने के बाद भी लोगों में—सब धर्मों के लोगों में—धार्मिकता जाग्रत करना और वैश्य ढग से रचनात्मक काम करना अत्यन्त जरूरी है।

जब कल्कत्ते में रामकृष्ण मिशन की ओर से सन् १९३७ या ३८ में विश्व धम परिषद् हुई थी और सारी दुनिया के प्रतिनिधि आये थे तब एक अधिवेशन के अध्यक्ष की हसियत से बोलने का मौक़ा मिलते ही, मैं ने गोरक्षा के पक्ष में अपनी आवाज़ उठायो थी। दुनिया के सब देशों में मैं यात्रा कर आया

हू। जहाँ-जहाँ सज्जना से बोलने का मौका मिला, गोरक्षा के लिए मैंने कुछ-न-कुछ कहा ही है।

मैं जानता हूँ कि हमारे पारसिया के धर्म में भी गोरक्षा की बात की गयी है। इस्लाम के नबी मोहम्मद साहब के जीवन चरित्र में मैंने पढ़ा था कि अरबस्तान की गाय यानी ऊँट की रक्षा के लिए पैगम्बर साहब ने ऊँट के मालिक को बूढ़े ऊँट की आज्ञा-सेवा याद कर के उसे न मारने की नसीहत दी थी, इस प्रसंग का भी मैं मौका पाते ही प्रचार करता हूँ। इजिप्त की राजधानी अल काहिरो में मुसलमानों को गोरक्षा का अपना आयत समझाते हुए ऊपर का किस्सा सुनाया था, इस का असर अच्छा हुआ था। जापान में भी अपने ढंग से गोरक्षा का प्रचार किया।

मेरा विश्वास है कि हम अगर सब धर्मों के प्रति आदरभाव रखें तो प्राणों रक्षा का काम अच्छी तरह से शुरू कर सकेंगे। इस के लिए नये धर्मनिष्ठ मित्र-भारतियों की आवश्यकता है।

वेदपूर्वकाल से ले कर हमारे सुदीर्घ इतिहास में गोरक्षा का प्रचार सतत करने की आवश्यकता रही यही बताता है कि हम पूरे-पूरे सफल नहीं हुए थे। विदेशी लोगों ने आ कर भारत में राज्य स्थापित किया। उस के पहले धर्म और कानून काफी हद तक मिले-जुले थे। तो उस समय जा सिद्धियाँ हम प्राप्त न कर सके यह अब व्यापक धार्मिकता के जोरा करनी होगी। प्राचीन ग्रन्थों के वचनों का अनेक ढंग से अर्थ करने से वादविवाद चल सकता है। 'गोधन' शब्द का अर्थ 'गोरक्षक' भी होता होगा। लेकिन क्या सब जगहों पर वही अर्थ ले कर हम चल सकते हैं? 'गोधन' की सजा देने की बात नहीं आती है वहाँ यह पण्डितों का अर्थ काम नहीं देगा। पुराने इतिहास को ऐतिहासिक ढंग से ही बूँदना चाहिए और तय करना चाहिए कि विकासवाद का भी सावनीय सहारा हम ले सकते हैं। लेकिन जहाँ गोरक्षा के लिए सब-शक्ति एकत्र करनी है वहाँ ऐतिहासिक बातें छोड़ कर, शास्त्राय चला कर दो पक्ष खड़े करना भी इष्ट नहीं मानता। सरकार की मदद ले कर कानून हम बना सकते हैं। आज शायद यह उल्टी भी होगी। लेकिन मैं स्वयं 'सामाजिक जीवन में कानून का हस्तक्षेप जितना कम हो अच्छा है इसी पक्ष को मानने वाला हूँ। राज्य शक्ति बढ़ने से सामाजिक-शक्ति गिरियल होती है क्षीण होती है इस खतर की ओर भी ध्यान देना चाहिए। लेकिन यह समाज विनाश का गहरा सवाल है। आज गान्धेय चिन्त से इसे सोचने के लिए लोग तयार नहीं हैं यह तो मैं जानता हूँ। अतः खतरों की

धोर इशारा करना जरूरी समय पर ही उस की घोड़ी चर्चा कर के इस बात को यहीं छोड़ देता हूँ ।

गाय-बल आदि उपयोगी पशुओं से जो अक्षण्ड सेवा हम लेते हैं उस का मूल्य चुकाने को अगर हम तयार ही गये तो गाय हमारी दया का भाजन नहीं बनेगी, बल्कि हम ही गाय-बल के चिन्तुणी और कृतन हैं यही सिद्ध होगा । गो-सेवा सघ की स्थापना कर के गा-घोजी ने जो काय शुरू किया उसे राष्ट्र व्यापी और उत्कृष्ट बनाने के लिए कानून की उतनी नहीं जितनी धार्मिकता की आवश्यकता है । कानून को अगर निर्वीर्य नहीं बनाना है तो गो-सेवा की समस्त योजना राष्ट्रीय पैमाने पर अमल में लानी चाहिए, जिस में सब घमों के लोगों को हम आहिस्ता-आहिस्ता खींच सकेंगे ।

(१५ फरवरी १९६७)

गोरक्षकों की कसौटी

मानव जीवन के महत्त्वपूर्ण और व्यापक प्राय सभी क्षेत्रों को अपने मातहत करने की आकांक्षा आजकल की सरकारें करती हैं । यूरोप-अमेरिका के गिरे राष्ट्रों में समाज सत्तावाद चलता है इसलिए हमारे यहाँ भी चलना चाहिए, यही सोच कर पश्चिमी समाजवाद हमारे यहाँ शुरू किया गया है । उन राष्ट्रों का इतिहास हमारा नहीं है तो भी उन के पुन्याय के उत्तराधिकारी हम बनना चाहते हैं । गा-घोजी ने स्वदेशी सर्वोदय के लिए काफी तैयारी की थी । मगर इन पश्चिम के सिप्या ने वह सब कुछ हटा कर परे रख दी, और कहा कि वह उत्तम आदर्श है किंतु ख़्वाबी है । 'सांशयलिज्म' पश्चिम में सिद्ध हो चुका है इस लिए हमारे यहाँ भी सफल होना चाहिए ।

हमारे नेताओं ने 'सोशलिज्म' शब्द का रटन तो बहुत किया किन्तु उस के लिए प्रजा-मानस तैयार नहीं किया । प्रजा-मानस तो दूर, राज्य चलाने वाले छोटे-बड़े मंत्री, राज्यकर्त्ता ऑफिसर और कमचारी—किसी की भी तयार नहीं किया । कानून बनाते जाते हैं । प्रजा अब परेशान हो कर जो कुछ सीखेगी सो सीखेगी ।

जनता दूसरा कुछ सीख या न सीखे, एक बात सीख गयी है, चुनाव के द्वारा राज्यकर्त्ताओं को बदल देना । कई मरीज होते हैं जो अपने रोग के बारे

में जानने की कोशिश नहीं करेंगे, अपनी आदतें नहीं सुधारेंगे, पशु का पालन भी नहीं करेंगे। परहेज से उन्हें क्या मतलब ? समय-समय पर डॉक्टर या वैद्य को बदल दो, उन से नयी-नयी दवाइयाँ माँग लो, फिर जो होगा अपने आप होगा। 'यद्वा तद्वा भविष्यति'।

ऐसी सरकार के द्वारा हमारे जीवदया वाले, घमनिष्ठ, गो भक्त गाय को और घम को बचाना चाहते हैं। आन्दोलन करने का काम हमारा। काम सिद्ध कर के दिखाने का अथवा उस के बारे में रिपोर्ट लिखने का काम सरकार और उस के कमचारियों का।

गोहत्या प्रतिबन्धक कानून तो हो जायेंगे। हत्यारे लोगों को सजा भी शायद होगी। सम्भव है कि सरकार की ओर से बूढ़े, बीमार, पगु गाय-बैलो को रखने के लिए वृद्धाश्रम खोले जायेंगे। पिंजरापोलो को सरकारी ग्राण्ट मिलेगी। खर्चा बढ़ने पर लोगो पर काज (गो)-टैक्स लगाया जायेगा। और जिस तरह शासन में खाद्यमन्त्री, कृषिमन्त्री उद्योगमन्त्री नियुक्त होते हैं, गोमन्त्री भी स्वतन्त्र रूप से नियुक्त होंगे।

हमें डर है कि इतने से गो का सवाल और हमारा धार्मिक बक्तव्य हल नहीं हो सकेंगे। वास्तव में हमारी चिन्ता के कुछ विशेष साधन हैं, जिन का यहाँ उल्लेख करना शायद उपयोगी होगा।

१ मनुष्य सख्या के अनुपात में अन्नसंग्रह पूरा नहीं है। प्रजोत्पत्ति शारो से बढ़ रही है। अन्नोत्पत्ति और कुटुम्ब नियोजन दोनों दिशाओं में जोरा से प्रयत्न करते हुए भी पूरा अन्न खाने की नहीं मिल रहा है। भारत के अन्न माँगने वाले मुख की आत्त आवाज दुनिया के सब राष्ट्रों के कानों तक पहुँच गयी है।

ऐसे समय पर अपने मवेशियों के चारे आदि का सवाल भी हमें हल करना होगा। घास और इतर आहार बढ़ाने के लिए बसे प्रयत्न हो रहे हैं इस के विषय में हम ने कुछ सुना नहीं है। उलटा गाय आदि मवेशियों के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आहार की चीजें बिना सोचे विदेग भेजी जा रही है। आज भी गिकायत हो रही है कि दूसरे देशों की अपेक्षा भारत के गाय-बल दुबल है। दूध देन की और परिश्रम करने की उन की शक्ति बहुत ही कम है।

अब अगर मर्वागियों की सख्या बढी और उन्हें काफी मात्रा में पोष्टिक आहार न मिला तो गाय-बल दिन-पर-दिन दुबल होते जायेंगे। उन से लाभ कम होगा। उन का आर्थिक बोझ दस पर बढ़ेगा।

जब मनुष्य के लिए हम कुटुम्ब नियोजन बना रहे हैं तब गाय बैल के जनन का नियोजन सुव्यवस्थित रूप से कर ही सकेंगे। और उस की कला हरएक किसान को सिखायेंगे, ताकि उन की नस्ल सुधर जाये। फिर तो फवन बूढ़े और पशु जानवरों का सवाल रहेगा। उन का आर्थिक बोध सहन करने की शक्ति राष्ट्र की बतानी होगी।

हम ने तो बताया ही है कि गाय-बल की मेहनत से होने वाला कुल मुनाफ़ा आज मनुष्य खाते हैं। वह सारा मुनाफ़ा गाय-फण्ड में जमा हो जाये तो गाय की चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी, क्योंकि गाय स्वाश्रयी बनेगी। गाय-बैल के हज़रत का मुनाफ़ा जब गो-वश को देंगे तब मनुष्य की, खासकर वे किसानों की उत्तनी आमदनी कम हागी। इस से वे लोग नाराज़ हागे। लेकिन याय तो गाय के पक्ष में रहेगा।

२ मवेशी के लिए अत्यन्त जरूरी पौष्टिक आहार जो विदेश जाता है उसे तुरत रोकना हागा। तभी जा कर खेती का सवाल हल हागा और हमारे बाल-बच्चो को अच्छा और पूरा दुध मिलेगा।

३ यहाँ तक हम घम की बात नहीं ले आये। बैलों की सेवा और गायों का दुध हिंदू मुसलमान, ईसाई आदि सब के लिए जरूरी है। इसलिए भारत वासियों को गाय-बलो के प्रति अपने कर्तव्य का स्वीकार करना ही चाहिए यही है आज की भूमिका।

लेकिन राज्यकर्ता कुछ भी सोचें गोरक्षा आन्दोलन करने वाले गोभक्तो ने घम के नाम से ही लोकमानस को जाग्रत किया ह। गाय-बैल के प्रति मनुष्य का जो मानवीय कर्तव्य ह, उस का प्रचार गरहिन्दुओ में आज तक हम ने नहीं किया। लेकिन अब करना हागा। बडी मूवी से करना हागा। नही तो झगडे ही झगडे लडे हाँगे।

हम तो कहते आये हैं कि गोवर्ग के प्रति हमारा जो कर्तव्य—घम है उस घम का प्रचार हमें सारी दुनिया में करना चाहिए। अगर ईसाई लोग घमनिष्ठा ने प्रेरित हा कर अपने घम का प्रचार बडी हिम्मत और निष्ठा के साथ सारी दुनिया में करते आये हैं तो गोरक्षा और गोसेवा घम को दुनिया में फैलाने का काम हम क्यों न करें? किसी ने नहीं कहा कि ईसाइयो की घमनिष्ठा से हिन्दुओं की घमनिष्ठा कम है। अगर अपने घम पर विस्वास है और गोपाल श्रीवृष्ण को हम जगद्गुरु मानते हैं तो गोभक्तों को सारी दुनिया में भेजने का हमारा प्रथम घम ह।

गोरक्षकों की कर्माग्नी

स्वीकार किया और उसने हिन्दू-समाज को चुनौती दी कि मैं ईसाई हुआ हूँ
 खरूर, किन्तु मेरा खान पान आदि व्यवहार केवल ब्राह्मणों के साथ ही रहा
 ह। मैं ने हिन्दुओं के सामाजिक नियमों का प्रकट रूप से या खानगी तौर पर
 तनिक भी उल्लंघन नहीं किया है। मुझे आप किस आधार पर बहिष्कृत या
 पन्क्तिबाह्य कर सकते हैं ? मैं ने ईसाई धर्म की दोषा ली, इस में शका नहीं।
 लेकिन ईसाई बनने से मेरा हिन्दुत्व कैसे नष्ट हो सकता है ? रोटी बेटी व्यवहार
 में मैंने कुछ भी भ्रष्टाचार नहीं किया। इसलिए हिन्दू भी हूँ।

बडा पेचीदा सवाल था।

लोकमाय तिलक ने अपनी बुद्धि चला कर हिन्दू का लक्षण वाप लिया—

'प्रामाण्य बुदधिर वदेपु साधनाना अनेकता।

उपास्यानाम अनियम एतत हिन्दुत्वलक्षणम्॥

इस में पहला लक्षण तो केवल आस्तिको का है। बाकी के दो लक्षण बंधन का
 अभाव बताते हैं। हिन्दू बौद्ध, जैन, सिख, आयसमाजी ब्राह्मसमाजी आदि
 सब मिल कर हिन्दू समाज बनता है। इन में अदर-अदर शादी-व्यवहार होने
 में जाति की कठिनाई आती होगी। मनुष्य समाजबाह्य नहीं होता और अब तो
 हिन्दू लोग मुसलमान, बौद्ध ईसाई आदि समाज के साथ शादियाँ कर के भी
 समाजबाह्य नहीं होते। आज चीन, जापान, ब्रह्मदेश, युरॉप, अमेरिका किसी
 भी देश के लोगो से शादी करने से हिन्दू अपने समाज से बहिष्कृत नहीं होता।
 अगर कोई जान-बूझ कर हिन्दू-समाज से बाहर जाना चाहे अपने को अ हिन्दू
 कहने का आग्रह रये तो बात अलग है, धरना हिन्दू किसी भी हालत में हिन्दू
 रह सकता है। यह बात सामाजिक नेता स्पष्ट रूप बतूल करें या न करें, सिद्ध
 हो चुकी है।

हिन्दूओं का समाजविज्ञान क्या है, इसका भी अध्ययन करना आवश्यक है।
 अध्यात्मशास्त्र, धर्मशास्त्र और समाजशास्त्र परस्पर सम्बद्ध होते हुए भी हमारे
 लिए अलग जगह है। और इन में परस्पर विरोध होने के बावजूद हम लोग
 इस मुद्दे पर विचार करने के प्रति उदासी है जब कि यह जरूरी है।

संस्कृत भाषा और साहित्य ही हमारी सांस्कृतिक एकता समृद्धि और
 भविष्य की बुनियाद है। संस्कृत साहित्य हमारे पुरखों की सारी दुनिया के लिए
 गौरवास्पद है। अध्यात्म, तन्त्रशास्त्र, साहित्य मोक्षोपाय, कला की अभिव्यक्ति,
 शास्त्रशास्त्र आदि विषयों में आज भी हम दुनिया के सामने बहुत-कुछ रख सकते
 हैं। गणित ज्योतिष, वनस्पतिशास्त्र, वैद्यक संगीत आदि विषयों में हमारी

प्राचीन प्रगति जीर उपलब्ध दुनिया के लिए आदरणीय है। लेकिन जिस विषय पर हमने अधिक से-अधिक ब्योरेवार चिन्तन किया है, लेकिन जिस का विधिवत विज्ञान हम लोगो ने लिखा नहीं है, वह है हमारा समाजशास्त्र।

चार वष, चार आश्रम और त्रिगुण-व्यवस्था की बुनियाद पर हम लोगो ने एक विशाल और वास्तविक समाजशास्त्र बनाया था। यहाँ के मित्र-मित्र सामाजिक भूमिका वाले आदिम जाति के लोगो का जीवनक्रम सहानुभूतिपूर्वक समझ कर हम लोगो ने उन्हें धीरे-धीरे—अत्यंत धीरे-धीरे—आत्मसात करने के अनेक प्रयोग भी किये।

चातुर्वर्ण्य की पकड़ हमारे आदि मानस पर सर्वोपरि रही। तो भी अनेक वश के और कुनवे के लोगो के जीवन का आदर और सांस्कृतिक पेशे के जीवन विकास का टयाल करते हम लोगो ने अपनी चातुर्वर्ण्य व्यवस्था को भी गौण बनाया और उस की जगह विशाल जटिल किन्तु सामजस्यपूर्ण जाति-व्यवस्था का विस्तार किया और इन—सहजीवन, सहचार और सहयोग—का एक व्यावहारिक सम-वय भी बना दिया।

यह सही है कि भविष्य में हमारी वह भारतीय समाज-व्यवस्था चलेगी नहीं, किन्तु हजारों बरसों से लगातार निष्ठापूर्वक जो प्रयोग हमने किये उन का गहरा अध्ययन दुनिया को करना ही पड़ेगा और उस में से बहुत ही कीमती बोधपाठ दुनिया को लेने ही पड़ेंगे।

वश हो, पथ हो, कुनवा हो या गोत्र हो, हर एक की आंतरिक जीवन व्यवस्था की, स्वायत्तता की रक्षा हमने की है। लोक-जीवन के प्रति हमने जितना आदर दिखाया है उतना और किसी दूसरी संस्कृति में नहीं दिखाया। अनेक धर्म, अनेक वश और अनेक राष्ट्र और अनेक विचारधारा या जीवनधारा में विभक्त इस दुनिया को अगर सहअस्तित्व का व्याकरण बनवाना है तो उसे भारतवर्ष के प्राचीन और मध्ययुगीन सामाजिक प्रयोगों का आदर के साथ अध्ययन करना ही पड़ेगा।

प्रत्येक जाति की पचायतों ने जो भी 'उच्चावच' रिवाज चलाये होंगे, उन का अध्ययन भी साथ साथ करना होगा और अपने पुराणों तथा लोककथाओं में जो भी मसाला समाजशास्त्र के लिए और लोक-जीवन को समझने के लिए उपयोगी होगा उसे भी इकट्ठा करना हमारा काम है।

जब हम संस्कृत की बात करते हैं तब बर्दिक और पाणिनीय संस्कृत का ही नहीं, किन्तु पाली अथमागधी औरसेनी, महाराष्ट्री पेशाची आदि प्राकृत भाषाओं का और उस के साहित्य का भी उस में अंतर्भाव करते हैं। संस्कृत

साहित्य में से समाज विज्ञान के लिए मसाला इकट्ठा करने की बात जब हम कहते हैं तब पाली, अधमागपी आदि भागवतों में बौद्ध संघ का और धीन तपो गच्छ का इतिहास बूझने की बात भी उस में शामिल होगी चाहिए। साथ ही भारत की जो अनेकानेक जाति-संस्थाएँ हैं उन के अलग-अलग रस्म-रिवाजों का अध्ययन भी हमें अभीष्ट है।

ऐसे विद्यालय संस्कृत-साहित्य का आगोहन और मध्यम कर के उग में से समाज विज्ञान के नियम और उन्हें प्रेरणा देने वाले सिद्धांत इकट्ठा करने के लिए एक अखिल भारतीय संस्था की स्थापना होनी चाहिए। यदि एक बार हमन इस दिशा में प्रयत्न शुरू किया और प्राथमिक विचारणा की मीठ शान्ति तो दुनिया के समाजशास्त्री और मानव-बल्याण का घितन करने वाले मनीषी उस में से हज़ारों अच्छी-अच्छी चीज़ें संगठित कर के हमारे सामने रखेंगे और समाजशास्त्र के लिए एक नये युग का प्रारम्भ होगा। बाबू भगवानशास जग ने इस क्षेत्र में कुछ काम किये हैं, दिना निर्देश भी दिये हैं।

अधिय्य के लिए कम-से-कम दस-पात्रह बरस का हमारा कामक्रम यही हो कि—संस्कृत, पाली, प्राकृत आदि साहित्य में पाये जाने वाले समाजविज्ञान की (सोश्लोजी की) सामग्री को व्यवस्थित और धनानिक रूप दिया जाये।

(२६ मई १९१६)

समाज विकास के मूलभूत तत्त्व

गीता ने मनुष्य-समाज के मुख्य दो विभाग माने हैं—दवी और आसुरी

‘दो भूतसर्गौ लोकेस्मिन्

दव आसुर येव च।’

और फिर कहा है कि—

‘दवी सम्पद् विमोक्षाय

निबन्धायामुरी मता।’

दवी सम्पत्ति के कारण मनुष्य का विकास होता है और धीरे धीरे समाज विनाशक दुगुणो से वह मुक्ति पाता है। आसुरी सम्पत्ति समाज के स्वाध, अहंकार, मत्सर इत्यादि समाजद्रोही गुणा को ज़्यादा से ज़्यादा पोषण देती है। भोग और ऐश्वर्य में अपने मन को पिरो कर लोग अंधे बन जाते हैं, सच्चा ज्ञान खो

बैठते हैं और अंत में उन की अधोगति हो जाती है। अनियंत्रित काम, क्रोध और लोभ इन तीनों को स्वीकार करने पर समाज की अवर्धति ही होगी। नरक के द्वार रूप इस तीनों दुगुणों का सतत विरोध करने से ही सृष्टि टिक सकती है।

केवल जीने से जिस तरह व्यक्ति का जीवन कृताथ नहीं होता, समाज का भी ऐसा ही है। जीना, भोगना, जोतना और टिकना इतने से ही समाज कृताथ नहीं बन सकता। समाज की महत्वाकांक्षा, समाज की प्रवृत्ति अथवा पुरुषार्थ, समाज की ज्ञानराशि, किसी महान् उद्देश्य की ओर दौड़ रहा हो, जीवन को कृताथ करने वाला हो, मनुष्य जाति का चित्त उसी के ध्यान में मग्न हो, तभी कहा जा सकता है कि जीवन में कुछ प्रवृत्ति है, सफलता है। जिन लोगों के सामने यह वस्तु नहीं है आसुरी सम्पत्ति वाले हैं। वे— मोघाशा मोघकर्माणो, मोघज्ञाना विचेतसः—है ऐसा गीता ने कहा है।

ऊपर के विवेचन पर से हम देख सकते हैं कि गीता का समाजशास्त्र दैवी सम्पद् और आसुरी सम्पद् के विभाग में ही समाया हुआ है। दैवी सम्पत्ति में समाज के स्थय और अभिवृद्धि के सब लक्षण आ गये हैं, जब कि आसुरी सम्पत्ति में विजय और ऐश्वर्य के आभास से मनुष्य किस तरह अधा बन जाता है, जीवन रहस्य कैसे भूल जाता है और अन्त में उस का किस तरह नाश होता है, यह बताया गया है। यह मान कर कि अध्यात्मशास्त्र या वेदातविद्या परलोक के लिए ही है, इहलोक की वह विरोधी है, हम आजकल उस के बारे में बहुत उदासीन बन गये हैं। लेकिन उपनिषदा ने साफ साफ कहा है कि इहलोक और परलोक के बीच इस तरह का विरोध हो ही नहीं सकता। इहलोक में जो नालायक सावित हुए, परलोक सिधार कर वे अनायास प्रतिष्ठित हो जायेंगे यह हो ही नहीं सकता। जसा यहाँ बसा ही वहा, जसा वहाँ बैसा ही यहाँ। जो इन दो के बीच विरोध देखते हैं वे एक विनाश में से निकल कर दूसरे विनाश में उतर पड़ते हैं, यह स्वयं यमराज ने भी कहा है। धर्म के बारे में श्री शंकराचार्य ने भी यही कहा है कि धर्म की शक्ति द्विविध होती है। इहलोक का अभ्युदय और पारलौकिक कल्याण, जो इन दोनों को प्राप्त कर सके वही धर्म है धर्म के बारे में 'नाना' यानी परस्पर विरोध हो ही नहीं सकता, यह बात मनुष्य को अपने हृदय में विचारपूर्वक बठानी ही चाहिए

“मनसवदमास्य नेह नानास्ति किंचन।”

हमारे मायता है कि मनुष्य पूर्वसंस्कारों के कारण विशिष्ट जन्म लेता है और उस मर्यादा या बंधन में रह कर ही उस को अपना विकास करना होता

है। जय देह कुटुम्ब और समाज की मर्यादा में रह कर यह पुनर्जाग करता है, सब या तो यह अपने पुराने बंधन जयादा से जयादा दुड़ बनता है और अपनी पानि क्षीण करता है, या कर्म-द्वारा सब संकुचितता से पुनर्कारा पा कर अधिक व्यापक जीवन के लिए अनुकूल बनता है। व्यक्ति न समाज समाज भी विकास कोल है और दोनों का म्येय एव ही हो सकता है।

व्यक्ति का आदर्श अलग और समाज का आदर्श अलग एसा भेद नहीं होता है। अत 'व्यक्तित्वाद या समाजवाद' के इस झगडे में कोई अय नहीं है। व्यक्ति या समाज अपना विकास साध कर किस दिशा में प्रगति करना चाहता है यह अगर पहले से ही निश्चित हो तो युरूप के समाज-शास्त्रिया में दोषबाल से बलता आया यह झगडा कितना अयहीन है यह सहज ही समझ में आ जाता है।

पुरुषाय यानी विघ्नो पर विजय। मनुष्य के स्वभाव में एमी भी एव वृत्ति ह जो जीवन की जीवन साफल्य की ओर ले जाती है, और ऐसी आत्मपान की वृत्तियां भी ह जिनके कारण जीवन का उद्देश्य ही समाप्त हो जाता है। इन दूसरी वृत्तियों को विकृति या विकार कहा जाता ह। स्वाय, संकुचितता विरोध, धैर, द्रोह, हिंसा, अभिमान आदि विकारा से जीवन प्रयोजन नष्ट भ्रष्ट होता ह और मनुष्य वहीं अधिक मुसीबतो में फस जाता है।

गीता में वर्णित समाज विकास के मूलभूत तत्वा का अब हम विचार करें—

अभय

समाज का विकास सब के साथ पानमुक्त एव्य साधन में ह एसा गीता का कहना है। इस से अधिक व्यापक, उदात्त और व्यवहारो आदर्श दुनिया क किसी भी दशन या धम न मनुष्य-समाज के आगे नहीं रखा ह। सब के साथ सम्पूर्ण ऐव्य का अनुभव करना—यही है सच्चा विश्वजित यन। जहाँ भेद रहा वहाँ विजय असम्भव ह। जहाँ भेद ह वहाँ भय ह ही। भेद को निबाल देना हो तो पहले अभय को प्राप्त करना चाहिए। अत गीता ने दवी सम्पत्ति के गुणों को चर्चा करते समय 'अभय' को पहला स्थान दिया है।

उपनिषद के अनुसार— द्वितीयाद् वै भय भवति । —अभय के दो प्रकार हैं। मनुष्य अपने जीवन की रचना इस तरह कर के रखे कि वह खुद किसी से डरे नहीं और किसी को उस से डरने का कारण न रहे। ये दोनो जब सधते ह तभी मान सकते हैं कि अभय प्रतिष्ठित हुआ। इन दोनो पहलुओ का विकास जकीरी-बेफिक्री के बगर नहीं हो सकेगा। मैं किसी से भी तभी नहीं डरूँगा जब कि मुझे यकीन होगा कि मेरा असली सबस्व कोई भी लूट नहीं सकता, या जिन

को लोभ लूट सकते हैं ऐसी चीजें मेरे जीवन विकास में कुछ महत्व ही नहीं रखती। 'हू स्टील्स माई पस स्टीलस ट्रेण'—ऐसा कहने वाला आदमी इस बात को जरूर कुछ हद तक जानता था। लोभ लूट-लूट कर क्या लूटेंगे? सम्पत्ति, कीर्ति, प्रतिष्ठा स्थान या सम्बन्ध? और यह मृत्यु शरीर इतना ही लूट सकेगा। वीर इन चीजों को परवाह नहीं करते।

मुझ से कोई न डरे—यह वृत्ति अपनाते के बाद यानी किसी का भी नुकसान अपने हाथ से न हो, इस दृष्टि से जीवन की रचना करने से सम्पूर्ण समाधान का लाभ होता है। इतना होते हुए भी लोभ हमसे नहीं डरेंगे, यह नहीं कहा जा सकता। क्योंकि मनुष्य सशयी प्राणी है। जहाँ डरने-जैसा कुछ भी न हो वहाँ डरता है। लेकिन जो आदमी किसी को डरने का मौका ही नहीं देता वह धीरे धीरे समाज का अत्यन्त हितकर्ता साबित होता है।

फर्ना आदमी हमारा कुछ भी बिगाड़ने वाला नहीं है इतना यकीन होने के बाद उस का लाभ लेने वाली विभूतियाँ दुनिया में मौजूद होती ही हैं। ऐसे लोगों के बारे में अभय का पहला भाग यानी किसी से भी डरना नहीं क्योंकि कोई भी हमारा सही मानो में नुकसान नहीं कर सकता, यह वृत्ति ही रखनी पड़ेगी।

आत्मरक्षण की वृत्ति व्यक्ति या समाज में इस हद तक व्याप्त है कि आत्म बलिदान के असंख्य प्रसंगों को मनुष्य टाल ही देता है। आत्म-बलिदान ही विकास की खुराक है। वह आवश्यक प्रमाण में समाज को नहीं मिलती इस लिए समाज का चारित्र्य इतना दुबल है। आत्म बलिदान जब सहज और स्वाभाविक बन जायेगा तब देखते-देखते समाज उन्नत अवस्था को पहुँच जायेगा। डरपोक और डरावे वाला दोनों जानते हैं कि निभय मनुष्य ही समाज का हीरो है—भीरो है। केवल सत्ता, सत्ता या सस्कारिता से ही कोई समाज आगे बढ़ा है यह नहीं कहा जा सकता। जहाँ अभय है वही विकास हाता है, प्रगति होती है।

अभय के अर्थ पर बार-बार सोचना उचित होगा। मैं किसी से डरता नहीं, मुझे किसी की परवाह नहीं इस प्रकार के उद्धोष करते रहना अभय का लक्षण नहीं है। मनुष्य का जीवन ही ऐसा होना चाहिए कि उस के समस्त भय की स्थिति ही न आये। लोभ, भोग-लालसा आदि मनुष्य में जब तक हैं तब तक वह निभय नहीं, और जो खुद निभय नहीं वह औरों को क्या निभय करेगा? जो तप्त, अज्ञप्त या विरक्ति है वही निभय हो सकता है और वही औरों को भी अभयदान दे सकता है क्योंकि तृप्ति या विरक्ति में से ही समाधान का वातावरण हम पा सकते हैं।

समाज की दृष्टि से—मनुष्य जाति की दृष्टि से—समाधान ही एक मुख्य वस्तु है जिस की आज दुनिया को बहुत जरूरत है। मेरी उन्नति पूरी-पूरी नहीं हुई है, ज्ञान के कितने ही क्षेत्रों में अभी संचार करना बाकी है, द्वेष मत्सरदि शत्रुओं पर अभी तक विजय नहीं पा सका हूँ। ऐसी-ऐसी बातों के लिए मनुष्य को असंतोष जरूर रहना चाहिए। लेकिन भोगश्रवण के बारे में असंतोष बढ़ा कर दुनिया किसी भी दिन सुखी होने वाली नहीं है। आज दुनिया के विभिन्न समाजों के मानस का जर्चें तो वे या तो भयभीत दशा में हैं या दूसरा को भयभीत करने की तयारी में हैं। यह कतई प्रगति का लक्षण नहीं है। इसी लिए अभय द्विविध अभय—समाज के स्थय और उत्कृष्ट के लिए अत्यंत आवश्यक है।

सत्त्व सशुद्धि

आज कल सब कोई मानते हैं कि शिक्षा बिना समाज सुखवस्थित नहीं रह सकेगा। जिस तरह बतन रोज मजिने चाहिए, शरीर को रोज नहलाना खिलाना चाहिए, उसी प्रकार समाज को अभय का भी शिक्षण मिलना ही चाहिए। उसी शिक्षण का आदेश सत्त्व सशुद्धि और ज्ञान-योग-व्यवस्थिति में आ जाता है। सत्त्व सशुद्धि यानी हृदय इच्छा हेतु, वासना, आदेश इन सब की शुद्धता। यह जिस हृद तक साध्य हुई हो उस हृद तक समाज सुधरा हुआ गिना जायेगा।

सत्त्व-सशुद्धि के लिए पुराने जमाने में धर्मोपदेशक बहुत प्रयत्न करते थे, आज विद्वान् और समाज सेवक प्रयत्न करते हैं। और अब तो एक ऐसा भी बग पैदा हो रहा है कि जो ऊपर के दोनों बगों की निष्फलता देख सत्त्व-सशुद्धि के प्रयत्न ही 'यथ है'—ऐसा मानने और कहने लगा है। अपने-आप कुछ सत्त्व सशुद्धि भले होती रहे। एक बात और सत्त्व-सशुद्धि के लिए विशेष प्रयास 'यत्किंमत तौर पर भले हाते रहें लेकिन सामाजिक प्रयास से वह नहीं हो सकेगी न ऐसे प्रयास होने चाहिए—यह कहने और मानने वाला भी एक पक्ष है।

लेकिन सत्त्व-सशुद्धि के लिए सामाजिक पुरुषार्थ हा सकता है और वह होना चाहिए करना प्राप्त किया हुआ ज्ञान और विकसित की हुई शक्ति समाज को नष्ट करने के काम में लयी जायेगी। इस तरफ किसी का ध्यान नहीं जाता है। इस लिए राष्ट्र युद्ध की तयारियाँ बढ़ाते ही जाते हैं, व्यापारी और उद्योग पति घातक स्पर्धा चलाते हैं और शिक्षण के सोना को मूल में ही कल्पित किया

जाता है। पुराने घर्मोपदेशका ने और आज के चंद्र अध्यापको ने सत्त्व सशुद्धि का प्रयत्न किया इसमें कुछ गलत नहीं हुआ। किंतु अखण्ड प्रयत्न के बिना सत्त्वति टिकने वाली नहीं है। और यह भी ध्यान में रखना होगा कि सत्त्व-सशुद्धि के प्रयत्न में शब्दों की शक्ति परिमित होती है। शब्द अर्थों का वहन करते हैं। निश्चय, चारित्र्य या सकल्प शब्दों में नहीं होते। उन का उपयोग में लाने वाला के जीवन में से आते हैं। अतः जीवन प्रयत्न के अभाव में शब्द यदि प्रभावहीन हो जायें तो सत्त्व सशुद्धि के प्रयोग भी न किये जायें—यह अनुचित भी होगा।

(सितम्बर १९४६)

सुधारों का मूल

रेल की यात्रा में कई बार भीड़ न होने पर भी लोग झगडा करते हैं। हर एक आदमी यदि अपने लिए पयास जगह ले कर भी बठ जाये तो सभी लोग आराम से बैठ कर यात्रा कर सकते हैं। लेकिन कुछ लोग अकारण स्वार्थी और मनुष्य शत्रु होते हैं। लड कर जितनी जगह रोक सकता हूँ उतनी रोक लूँ तभी चैन की सांस लूँ—यह उन की आदत होती है। भले ही ऐसा करने में बैठने की सुविधा धूल न मिल जाये और स्वयं उन्हें ही अधिक दुःख भुगतना पड़े। सीट पर अधिक जगह रोकने के लिए वे पलथी मार कर बठने हैं और पलथी को इतनी चौड़ी करते हैं कि साँधों में दद शुरू हो जाये। जब तक अपने पैर का स्पश दूसरे को नहीं होता तब तक अपना स्वाथ पूरी तरह से साध्य हुआ ऐसा विश्वास उन को नहीं होता। ऐसा करने के बजाय अगर प्रत्येक आदमी सज्जनता से एक दूसरे की सुविधा के बारे में जागृत रह कर सत्तोपवृत्ति से काम ले तो किसी को तकलीफ नहीं होगी और सब आराम से मुसाफिरी कर सकेंगे।

साहरो और गावों में भी लोग जब घर बनाते हैं तब, पडोसी-पडोसी के बीच झगडा खडा हो ही जाता है। वहाँ भी लोग सुख-दुःख का या सुविधा-असुविधा का विचार छोड कर स्वाथ घम के प्रति वफादार रहने के लिए ही बहुत दफा लड लेते हैं। एक बालिशत जमीन पडोसी को देने से अगर मेरा कुछ खास नुकसान न होता हो और मेरे पडोसी को उस से काफ़ी सुविधा हो सकती हो, तो भी मैं उतना स्वाथ भी कस छोड सकता हूँ? मेरा जी ही नहीं मानेगा।

और अगर सायद मुझे इतनी सद्बुद्धि मिलती तो भरे रिश्तेदार या अज्ञेय-अज्ञेयी मुझे दुनियादारों के गान सिखाने के लिए अवश्य पधारेंगे : ' क्या भूग बन गये हो ? इस तरह दानेस्वरूप बन कर परोपकार करो जाओगे तो लोग तुम्हें देते देते फकीर भित्तारी बना डालेंगे । बालकों के लिए भी तो कुछ रगना है या नहीं ? अगर उद्योग का काम रका है तो माँग तो उद्योग के पाग से पाँच-गात्र सौ रुपये । अगर न देना हो तो भाद में जाये । हमें क्या गरज पड़ी है ! अपनी जमीन अपना स्थान छोड़ कर बोड़े हो भाग जाने वाली है ?' भग, स्वार्थ धर्म का यह फरमान तोड़ भी कैसे सकते हैं ? स्वायत्त धर्म के आगे पड़ोसी धर्म डीका पड जाता है या मर जाता है । इसीलिए हम भूग का काम पढा है कल्पियुग । कलि यानी कलह ।

दो कुटुम्बों के बीच विवाह सम्बन्ध होने के समय भी यही हालत होती है । जो पराये से यह सम्बन्धो हुए इसलिए वहाँ तो प्रेमधर्म का व्यवहार शुरू हो जाना चाहिए लेकिन नहीं, वहाँ पर भी व्यवहार की रीति के सगड़े राडे हागे । मानपान के बारे में एक भी रस्म छूट नहीं जानी चाहिए । छेठ के यहाँ गालियाँ भी सुननी पडती हैं, वहाँ कुछ विगड नही जाता, लेकिन समझी के पास से तो रीति के अनुसार सब-कुछ मिलना ही चाहिए । करना दूल्हे को वापस ले जाने की धमकी दी जायेगी । विवाह का मंगलाचरण ईर्ष्या और द्वेष से शुरू होगा । यही स्थिति होती है जाति-जाति के बीच । परस्पर अविश्वास और स्वायत्त छोड़ने की कामरता सब जगह फली हुई है ।

जब घर घर में, जाति जाति के बीच यही हालत है तो राष्ट्रों राष्ट्रों के बीच न इस से भिन्न और क्या होगा ? पड़ोस का राष्ट्र कमजोर हो तो उस के ऊपर चढ़ाई करनी चाहिए बलवान हो तो हमेशा उस से डरना चाहिए और उस के खिलाफ साजिशें करनी चाहिए । पड़ोसी अगर तुल्यबल रहे तो झगडा मिटा ऐसा थोडे ही है ? समानता को मनुष्य पसन्द कैसे करे ? कुछ विनोपता श्रेष्ठता पाने की कोशिश तो होती ही रहेगी इसलिए वहाँ पर भी अविश्वास और विरोध खडा हुआ । हरएक पक्ष यही कहेगा कि आत्मरक्षा के लिए, बचने के लिए हमें इतना तो करना ही पडेगा । दो प्रबल राष्ट्रों के बीच अगर छोटा-सा राष्ट्र हो तो प्रबल राष्ट्र सोचता है कि यदि मैं ने इस को नही खाया तो सामने वाला तो खाये बगैर नही रहेगा । और फिर इस को खा कर बलवान बन कर वह हम पर चढ़ाई भी करेगा । इस से बेहतर है कि मैं ही इसे हडप जाने का आयाय करूँ । इसी तरह साम्राज्य बढ़ते हैं । सौभाग्य से अब परिस्थिति कुछ बदली हुई है ।

स्वाध थीर अयाय की यह स्पधा आज यूरप में सावत्रिक हो गयी है और इसी सिद्धात पर उन की राजनीति चलनी ह । इसलिए ऐसा मानना कि यही मानव-स्वभाव है ठीक नहीं होगा । आज भले ही सुग्यवस्थित पशु शक्ति को यूरप सुधार माने, लेकिन सच्चा सुधार तो प्रेमधम में—पडोसी धम में ही है । इस पडोसी धम का हमें श्रद्धापूवक विकास करना चाहिए । जो सज्जनता बरतते हैं उन के साथ दोस्ती और जो दुजन बन गये ह उन के खिलाफ असहकार—यही प्रेमधम का नियम है । प्रेमधम सहानुभूति दिखाता ह, मदद देता ह, लेकिन दीन बन कर मदद की अपेक्षा नहीं रखता । प्रेमधम निमय होता है और इसलिए वह अमर्याद होता ह । हम जिस पर प्रेम करते हैं उस की शक्ति बढने से हमें डर नहीं लगता । बरखिलाफ़ इस के, जिस के साथ हमारी दोस्ती है वह जितना दुबल होता ह उतनी हमारी शक्ति कम होती है ।

जहाँ अविश्वास का वातावरण होता ह वहाँ उसे दूर करने के लिए प्रेम असाधारण धीरज और सहिष्णुता से काम लेता है, नम्र हो कर उतत बनता है और बहुत-सी वस्तुआ को त्याग कर विजयी बनता ह । प्रेमधम में सहन करना पडा तो भी थोडे दिनों के लिए, लेकिन उस की विजय अक्षय होती है । इस प्रेमधम का प्रचार कुटुम्ब से ले कर राष्ट्रों राष्ट्रों के बीच के सम्बन्धों तक पलाना चाहिए । यही सब सुधारा का मल ह और फल भी ।

(२० अगस्त १९६०)

सामाजिक सद्भाव का स्वरूप

सो दो सो बप हुए, मानवजाति समाज-व्यवस्था या राज्य-व्यवस्था के अनेक प्रयोग करती आयी ह । कुछ-न-कुछ आददा नजर के सामने रख कर उसे प्राप्त करने के लिए समाज-व्यवस्था में क्या-क्या त-दीली करनी चाहिए, या राज्याधिकार किन किन के हाथ में कितने प्रमाण में होने चाहिए, इस का चिंतन विवरण मनोपियों ने बहुत किया ह । और पुरुषार्थी प्रजाओं ने उस के प्रयोग भी बहुत किये हैं । ऐसे प्रयोग करने के लिए प्रजाओं ने महंगी क्रातियाँ भी कर देखी ह । लेकिन अभी तक स-तोप या पूरे सफलता प्राप्त नहीं हुई ह ।

पुराने लोग रचना या व्यवस्था-जसी बाह्य और तात्रिक वस्तु का महत्त्व कम समझते थे । उन का कहना था कि समाज को अगर अच्छी तरह से चलाता

ह, शांति, सुस्थिति और प्रगति के लिए अनुकूलता चाहिए, तो समाज में रहने वाले व्यक्तियों का स्वभाव भी सामाजिक ढंग का होना चाहिए। सामाजिक सदगुण बढे तो समाज की सुस्थिति के बारे में चिंता करने की नीवत नही आयेगी। जो ह सो सामाजिक सदगुण में ही है।

ऐसे सामाजिक सदगुणो का परिगणन दुनिया के नेताजा ने समय समय पर किया है। 'दशक घमलक्षणम' कह कर मनु भगवान ने मानो जीवन सस्कृति की बुनियाद बनायी।

योगशास्त्र का विधान करते पतजलि महामुनि ने प्राचीन यमनियमो का परिगणन किया। इन यमनियमो का स्थान बौद्ध घम चर्चा में और जैन घमों पदेश में पाया जाता ह। दुनिया से विरक्त हो कर अपना एक निजी जीवन विकसित करने वाले सत्ता ने भी यम नियमो पर जोर दिया ह। महात्मा गांधी ने भारतीय राष्ट्र की कमजोरी दूर करने के लिए जो ग्यारह आश्रमव्रत सुजाये उन में भी यागशास्त्र में बताये हुए पाच यम तो आये ही ह। इधर भगवदगीता में, समाज के अम्युदय के लिए जिन छत्तीस सदगुणो को आवश्यकता ह उन का जिक्र और वणन दवी सम्पत् के रूप में दिया ह।

यह सारा विस्तार बताता ह कि भारत का अध्यात्म और भारत का समाजशास्त्र जिन लोगो ने विकसित किया वे सब दुनिया के उद्धार के लिए इन सदगुणों पर ही सारी मदार रखते थे। अब आदश जनसमाज की स्थापना करनी हो तो समाज के घटकरूप यक्तियों को अपने सारे जीवन व्यवहार में एक-दूसर से जिन वक्तियों के साथ पेश आना चाहिए इस का भी विस्तार योग शास्त्र में और जीवन विद्या में किया ह।

इन चार बुनियादी वृत्तियों को बौद्धों ने ब्रह्मविहार का नाम दिया ह। सामाजिक जीवन में आयवृत्ति के लोग जिन वृत्तियों से काम लेते ह उन वृत्तियों को भी ब्रह्मविहार कहा गया ह। क्या वेद विद्या के आद्य सरक्षक और सग्राहक ब्रह्मदेव के चार मुख सचमुच ये ब्रह्मविहार ही ह ?

मैत्री, करुणा, मुदिता उपेक्षा ये ह मिल कर ब्रह्मविहार। सब मानवो के अथवा सब जन्तुओं के प्रति सद्भाव की वृत्ति रखना मत्री है। इन में भी जो लोग या जो प्राणी दुःखी है हम से बुरी हालत में ह उन के प्रति दयाभाव रखना करुणा ह। जो लोग सद्भाग्य से अच्छी हालत में ह कुछ अच्छी सद् लियतें प्राप्त करते है उन की स्थिति देख कर, ईर्ष्या, असूया, मत्सर नहीं करना, मन में नहीं जलना, लेकिन उन्हें अपना भाई समझ कर, उन्हें खुशहाल देख कर सन्तुष्ट प्रसन्न होना ही मुदिता ह। और जो लोग बुरे ह समाजकण्टक है, या अपना

द्वेष करते ह उन के प्रति मन में चिन्, तिरस्कार या द्वेष न रखते हुए उन का अहित करने की नायत न रखते हुए, केवल उपेक्षा से और कुछ तितिक्षा से उन की ओर पेश आना यह है उपेक्षावृत्ति । बुरे-से-बुरे आदमी के प्रति भी अधिक कठोर नहीं होना, उपेक्षा तक जा कर ठहर जाना इस आयवृत्ति को, सज्जाता की स्वभाविक मर्यादा को, उपेक्षा कहा गया है । योगसूत्र के अनुसार सुख के प्रति मन्त्रीभाव रखना, दुःख के प्रति करुणामाव रखना, पुण्याचरण, सदाचार के प्रति मुदिता यानी प्रसन्नता रखना और अपुण्य, उन्नति विरोधी, समाजविधातक तत्त्वों के प्रति केवल उपेक्षा से पेश आना ही चित्तशुद्धि, समाज शुद्धि और उत्कृष्ट का साधन है ।

अपुण्यवृत्ति के प्रति, दुराचार के प्रति केवल उपेक्षामाव रख कर, ग्रहवृत्ति धारण कर कसे सुपरिणाम ला सकते है इस का मूना गांधीजी ने अपने असह-योग आन्दोलन के द्वारा, समय समय के सत्याग्रह के द्वारा और नोजाली में कीर्तल ब्रह्मस्त्र के प्रयोग के द्वारा बताया ही है ।

आज के भारत के जनमानस में जो नैतिक शिथिलता आयी है उसे दूर करने के लिए चारित्र्य की दृढता आवश्यक है, लेकिन उस के साथ इन चार आयवृत्तियों का अनुशोदन करना भी उतना ही जरूरी है । क्यों कि सामाजिक सम्भाव के बिना हम आगे नहीं बढ़ सकते । और सामाजिक सदभाव का विश्लेषण कर के ही ब्रह्मविहार की ये चार भावनाएँ निश्चित की गयी ह । इन का क्रमशः चिन्तन करना बहुत ही हितकर होगा ।

(२७ मई १९६६)

व्यक्ति या समाज

“यक्ति श्रेष्ठ या समाज श्रेष्ठ ? यह सवाल सनातन काल से मनुष्य के सामने है । मानव कल्याण का हित सोचने वाले और तत्त्वज्ञानामु इस विषय में परस्पर विरोधी उत्तर देते आये हैं ।

कुछ लोगों का कहना ह कि “यक्ति ही सर्वश्रेष्ठ है । “यक्ति के लिए समाज ह । व्यक्ति ने ही स्वेच्छा से समाज बनाया ह । इसलिए व्यक्ति स्वातन्त्र्य प्रधान वस्तु ह । उसी को सर्वोपरि मानना चाहिए ।

आश्रम-व्यवस्था

आश्रम-व्यवस्था

गीता में चार वर्णों का उल्लेख किया गया है, पर किसी स्थान पर चार आश्रमों का स्पष्ट या अस्पष्ट उल्लेख नहीं है। ब्रह्मचर्य का ध्यान अनेक जगहों पर आता है। गीता में सत्यास तो सबत्र भरा है। परन्तु इन दोनों का आश्रम-व्यवस्था के साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। महाभारत में आश्रम-व्यवस्था का बहुत अधिक उल्लेख होते हुए भी गीता में वह नहीं है। अवश्य ही यह विचारणीय है। मूल में गीता महाभारत का एक स्वतन्त्र प्रकरण है, इसकी भी पुष्टि इस बात से होती है। गीता में कहा हुआ सत्यास सब मनुष्यों द्वारा सब काल में पालने योग्य जीवन-क्रम अथवा जीवन-वृत्ति है और गीता का ब्रह्मचर्य मोक्षसाधना का एक पहलू या शारीरिक तप के रूप में आता है। उसमें गुरु के घर रह कर अभ्यास करने की बात नहीं है। श्री कृष्ण ने गुरु सादीपनि के घर पर रह कर सेवा की थी, पर गीता में गुरुकुल का उल्लेख नहीं है। हाँ प्रणिपात, परिप्रश्न और सेवा इन सब का महत्त्व अच्छी तरह से बताया गया है।

गीता में आश्रम-व्यवस्था नहीं है, (गीता के ७०० श्लोकों में आश्रम शब्द तक नहीं आया है।) फिर भी हिन्दू धर्म की समाज-व्यवस्था में आश्रम धर्म का महत्त्व बहुत अधिक है। इस लिए उस पर विचार यदि यहाँ करें तो वह अप्रस्तुत नहीं माना जायेगा। आश्रम व्यवस्था सब स्मृतियों में एक समान है ऐसा कहा जा सकता है। साथ ही यह भी कि वह चार वर्णों के लिए है। लेकिन ब्राह्मण और क्षत्रियों ने ही उसे टिका रखा है—ऐसा भी कहा जा सकता है।

अभी राष्ट्रीय शिक्षा का प्रचार बहुत चल रहा है और गुरुकुल-जसी संस्थाएँ भी हैं। इस लिए यद्यपि ब्रह्मचर्य आश्रम का विचार बहुत हुआ है लेकिन फिर भी उस पर नयी दृष्टि से सत्त्वत विचार करना अभी जरूरी है।

हमें माना जाता है कि गृहस्थाश्रम माना प्रगतिमय अखिल जीवन मगर उस का ऐतिहासिक विकास किस प्रकार होता गया यह भी देखना होगा।

सत्यासाश्रम एक तरह से पूजता को पहुँची हुई व्यक्तिगत मानवता का

आश्रम ह। परन्तु अनेक बार पूणत्व गलती से गूयत्व की ओर ही जाता है क्योंकि इन दोनों में एक प्रकार की समानता है। गीता का स्यास और स्मृतियों में कहा हुआ स्यासाश्रम, ये दोनों एक-दूसरे से अत्यन्त दूर दा छोर ह। इस लिए स्यासाश्रम कृताय कठे हो सकता है? इस का भी यहाँ विचार करना चाहिए।

सब सेप हले, नाटक के विष्कम्भक की तरह बीच में आने वाला वान प्रस्थाश्रम क्या है उसे यहाँ पहले देन लें। आजकल सत्कारी लोग के मन में जहाँ-तहाँ जाति सस्या के विषय में अश्रद्धा दिखाई दे रही है। वर्ण-व्यवस्था में श्रद्धा होगी तो भी वह व्यवस्था फिर स्थापित हो सकैगी इस में विश्वास नहीं होता। आश्रम-व्यवस्था सब को सुदर लगती है। वर्ण-व्यवस्था में वर्ण विग्रह का तत्त्व प्रविष्ट हो सकता है। आश्रम-व्यवस्था के बारे में ऐसा भय नहीं, क्योंकि ये सब एक ही जावन के विभाग हैं और इसलिए कोई भी व्यक्ति अपने आप उन का उपयोग कर सकता है। यह होने पर भी आज तो ऐसा दिखाई देता है कि आश्रम-व्यवस्था भी समाज में से निकल गयी है।

आजकल कुछ लोग 'पेंशनर' लोगों को वानप्रस्थ कहने लगे हैं। 'रिगायड हजूर डिप्टी कलेक्टर' आदि किसी के नाम के आगे लिखने के बदले 'वानप्रस्थ हजूर डिप्टी कलेक्टर' लिखने का नूसखा थोड़े समय तक चला था। हिन्दू विश्वविद्यालय की कल्पना लोगों को समझाते समय पण्डित मदनमोहन मालवीय कहते थे कि "विद्वान सरकारी नौकरों को नौकरी छोड़ कर वानप्रस्थ स्वीकार करने का आग्रह कर उन की सहायता से यह विश्वविद्यालय चलाने का हमारा विचार है। परिपक्व बुद्धि और अनुभव की थोड़े खूब में सुविधा हो सकेगी ऐसी उन को आशा थी। सरकारी नौकर नौकरी में घुसने के बाद थोड़े ही समय में शक्तिविहीन हो जाते ह और पेंशन लेने के बाद तो उन का कम खर्च भी काम की दृष्टि से महंगा हो जाता है यह उस समय महामना मालवीयजी को शायद सूझा नहीं होगा।

मूल स्मृतिया में समाज-सेवा की दृष्टि से वानप्रस्थाश्रम कल्पित किया गया हो ऐसा नहीं मालूम होता। लगता है कुछ अंगों में यह पूव तैयारी का आश्रम ह। जिस प्रकार धारह वष तक तैयारी करने के बाद ब्रह्मचारी गृहस्थाश्रमी बनता था अथवा सीधा स्यास धारण करता था उसी प्रकार वानप्रस्थ आश्रम गृहस्थाश्रम की नाजुकता और आलस्य को देह-दमन से निकाल कर स्यास की तैयारी कराता था अथवा मृत्यु को बिल्कुल सरल बनाता था।

वानप्रस्थ के अन्त में सब को स्यास लेना चाहिए इस प्रकार का आग्रह

आश्रम-व्यवस्था

आश्रम-व्यवस्था

गीता में चार वर्णों का उल्लेख किया गया है, पर किसी स्थान पर चार आश्रमा का स्पष्ट या अस्पष्ट उल्लेख नहीं है। ब्रह्मचर्य का वर्णन अनेक जगहों पर आता है। गीता में संन्यास तो सबत्र भरा है। परन्तु इन दोनों का आश्रम-व्यवस्था के साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। महाभारत में आश्रम-व्यवस्था का बहुत अधिक उल्लेख होते हुए भी गीता में वह नहीं है। अवश्य ही यह विचारणीय है। मूल में गीता महाभारत का एक स्वतन्त्र प्रकरण है, इस की भी पुष्टि इस बात से होती है। गीता में कहा हुआ संन्यास सब मनुष्यों द्वारा सब काल में पालने योग्य जीवन-क्रम अथवा जीवन-वृत्ति है और गीता का ब्रह्मचर्य मोक्षसाधना का एक पहलू या दारौरीक तप के रूप में आता है। उस में गुरु के घर रह कर अभ्यास करने की बात नहीं है। श्री कृष्ण ने गुरु सादीपनि के घर पर रह कर सेवा की थी, पर गीता में गुरुकुल का उल्लेख नहीं है। हाँ, प्रणिपात, परिप्रश्न और सेवा इन सब का महत्त्व अच्छी तरह से बताया गया है।

गीता में आश्रम-व्यवस्था नहीं है, (गीता के ७०० श्लोको में आश्रम शब्द तक नहीं आया है।) फिर भी हिन्दू धर्म की समाज-व्यवस्था में आश्रम धर्म का महत्त्व बहुत अधिक है। इस लिए उस पर विचार यदि यहाँ करें तो वह अप्रस्तुत नहीं माना जायेगा। आश्रम व्यवस्था सब स्मृतियों में एक समान है, ऐसा कहा जा सकता है। साथ ही यह भी कि वह चारों वर्णों के लिए है। लेकिन ब्राह्मण और क्षत्रियों ने ही उसे टिका रखा है—ऐसा भी कहा जा सकता है।

अभी राष्ट्रीय शिक्षा का प्रचार बहुत चल रहा है और गुरुकुल-जसी समस्याएँ भी हैं। इस लिए यद्यपि ब्रह्मचर्य आश्रम का विचार बहुत हुआ है लेकिन फिर भी उस पर नयी दृष्टि से तत्त्वतः विचार करना अभी जरूरी है।

हमें माना जाता है कि गृहस्थाश्रम यानी प्रगतियम अखिल जीवन मगर उस का ऐतिहासिक विकास किस प्रकार होता गया यह भी देखना होगा।

संन्यासाश्रम एक तरह से पूणता को पहुँची हुई व्यक्तिगत मानवता का

आश्रम ह। परन्तु अनेक बार पूरुत्व गलती स सुन्दर मा ओर ह गगन है
 क्योंकि इन दोनों में एक प्रकार की समानता ह। एका का अर्थ और
 म्पतियों में कहा हुआ सयासाश्रम, ये दोनों एक-दुसरे स अलग दूर न ह
 ह। इस लिए सयासाश्रम कृताय किस हो सकता ह? एउ का न सही विचार
 करना चाहिए।

सब सेप हले, नाटक के दिक्कम्मक की तरह सब में इन सग सब
 प्रत्याश्रम क्या ह उसे यही पहले देस लें। आश्रम सम्कार सों क मन में
 जहा-तहाँ जाति सस्था के विषय में अथदा सिखाद द रहा ह। दान-व्यवस्था में
 श्रद्धा होगी ती भी वह व्यवस्था फिर स्थापित हो सकत। इस में निश्चय नहीं
 होता। आश्रम-व्यवस्था सब का सुन्दर सपनी है। दान-व्यवस्था में दर दिग्द
 का सत्व प्रविष्ट हो सकता ह। आश्रम-व्यवस्था क बारे में ऐसा न सपनी,
 क्योंकि ये सब एक ही जीवन के विभाग ह और इसी-ए-काई मा ध्येति दान-
 आप उन का उपयोग कर सकता है। यह हानि पर भी आश्रम ठा एगा सिखा
 देता ह कि आश्रम-व्यवस्था भी समाज में से निकल गयो ह।

आजकल कुछ लोग 'पेशवर' लोगों का वानप्रस्थ कहने लगे है। पेशवर
 हुजूर डिप्टी कलेक्टर' आदि किसी के नाम के आगे लिखन के बजा 'वानप्रस्थ
 हुजूर डिप्टी कलेक्टर' लिखने का नुसखा थोने समर तक चला पा। हिन्दू
 विश्वविद्यालय की कल्पना लोगों की समपाते समय पण्डित मन्मथमूर्त सन्तकोष
 कहते थे कि 'विद्वान् सरकारी नौकरों को नौकरी छोड कर वानप्रस्थ स्वाकार
 करने का आग्रह कर उन की सहायता से यह विश्वविद्यालय बनने का हमार
 विचार है। परिपक्व बुद्धि और अनुभव की धाड छत्र में सुविधा हा सकी
 ऐसी उन की आशा थी। सरकारी नौकर नौकरा में घुसने क बाद सा ह
 समय में शक्तिविहिन हो जाते ह और पेंशन लन के बाद ले उन का कम तब
 भी काम की दृष्टि से महंगा हो जाता ह यह उस समय महापना सा-वैपरी
 की शायद सूझा नहीं होगा।

मूल स्मृतिया में समाज-सेवा को नष्ट से वानप्रस्थाश्रम कल्पित किया गया
 हो ऐसा नहीं मानू होता। लगता ह कुछ अर्थों में यह पूरु तपारी का अश्रम
 ह। जिस प्रकार बारह बप तक तपारी बन के का श्रद्धाकारी गृहस्थाश्रम
 बनता था अथवा सीधा सयास धारण करता था उसी प्रकार वानप्रस्थ आश्रम
 गृहस्थाश्रम की नाशुकता और आश्रम का देह-अन से निकल कर सयास की
 तपारी कराना था अथवा मृत्यु का विलकुल सरल बनाता था।
 वानप्रस्थ के अंत में सब को सयास लेना चाहिए इस प्रकार का आग्रह

आश्रम व्यवस्था

आश्रम-व्यवस्था

आश्रम-व्यवस्था

गीता में चार वर्णों का उल्लेख किया गया है, पर किसी स्थान पर चार आश्रमों का स्पष्ट या अस्पष्ट उल्लेख नहीं है। ब्रह्मचर्य का ध्यान अनेक जगहों पर आता है। गीता में सत्यास तो सबत्र मरा है। परन्तु इन दोनों का आश्रम-व्यवस्था के साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। महाभारत में आश्रम-व्यवस्था का बहुत अधिक उल्लेख होते हुए भी गीता में वह नहीं है। अवश्य ही यह विचारणीय है। मूल में गीता महाभारत का एक स्वतंत्र प्रकरण है, इस की भी पुष्टि इस बात से होती है। गीता में ब्रह्मचर्य सत्यास सब मनुष्यों द्वारा सब काल में पालने योग्य जीवन-क्रम अथवा जीवन-वृत्ति है और गीता का ब्रह्मचर्य मोक्षसाधना का एक पहलू या शारीरिक तप के रूप में आता है। उस में गुरु के घर रह कर अभ्यास करने की बात नहीं है। श्री कृष्ण ने गुरु सादीपनि के घर पर रह कर सेवा की थी, पर गीता में गुरुकुल का उल्लेख नहीं है। हाँ, प्रणिपात परिश्रम और सेवा इन सब का महत्त्व अच्युत तरह से बताया गया है।

गीता में आश्रम-व्यवस्था नहीं है, (गीता के ७०० श्लोकों में आश्रम शब्द तक नहीं आया है।) फिर भी हिन्दू धर्म की समाज व्यवस्था में आश्रम धर्म का महत्त्व बहुत अधिक है। इस लिए उस पर विचार यदि यहाँ करें तो वह अप्रस्तुत नहीं माना जायेगा। आश्रम व्यवस्था सब स्मृतियों में एक समान है ऐसा कहा जा सकता है। साथ ही यह भी कि वह चारों वर्णों के लिए है। लेकिन ब्राह्मण और क्षत्रियों ने ही उसे टिका रखा है—एसा भी कहा जा सकता है। अभी राष्ट्रीय शिक्षा का प्रचार बहुत चल रहा है और गुरुकुल-जैसी संस्थाएँ भी हैं। इस लिए यद्यपि ब्रह्मचर्य आश्रम का विचार बहुत हुआ है लेकिन फिर भी उस पर नयी दृष्टि से उत्तम विचार करना अभी जरूरी है। हमेशा माना जाता है कि गृहस्थायुधम यानी प्रगतिमय अखिल जीवन मगर उस का ऐतिहासिक विकास किस प्रकार होता गया यह भी देखना होगा। सत्यास आश्रम एक तरह से पूणता की पहुँची हुई व्यक्तिगत मानवता का

समय आत्मचिंतन के पीछे ही व्यतीत होता है। तो भी उस वी आदत हो जाने से उस के विषय में बहुत ध्यान देना नहीं पड़ता। जिस प्रकार हाथ में माला फिरनी रहती है उसी प्रकार दिन का कार्यक्रम चरमगति से होता रहता ह और ईश्वर चिंतन के लिए मन अखण्ड रूप से आजाद रहता है।

गृहस्थाश्रम को दोपरहित करने का चाहे जितना प्रयत्न किया जाये, उस में क्रम-बदम पर पाप दिखाई देता ह। प्राचीन काल में अधिकतर लोग मासाहार करते थे। परन्तु मासाहार करते समय उन्हें ऐसा भी लगता था कि वे पाप कर रहे ह। इस पाप से बचने के लिए उन की स्वाभाविक रूप से वानप्रस्थाश्रम की ओर रुचि होती थी। गृहस्थाश्रम में दास दासियों की सेवा ले कर मनुष्य आराम में फँस जाता है। परन्तु बीच-बीच में उने यह एहसास भी होता रहता था कि इस प्रक्रिया में भी वह कुछ पाप कर रहा है। मन की इसी अकुलाहट को दूर करने के लिए वानप्रस्थाश्रम के लिए स्वावलम्बन का आग्रह रखा गया ह।

सभी सुधारो का आधार खेती पर निभर है। खेती के कारण अनाज तथा अय वस्तुओं का सग्रह बहुत होने लगा। अनाज के दो-तीन वष तक न बिगडने के कारण जीवन में कुछ सुरक्षा आयी। जमीन जोतने और खाद डालने की तदबीरों की खोज करने के बाद बस्ती को स्थायी बनाना सम्भव हो सवा। इस के कारण गाव और शहर बसे। ऐसे अनेक सुधार गिनाये जा सकत है। परन्तु खेती के लिए पशुजा को पकड कर उन्हें गुलाम बना कर उन से मार मार कर काम लेने में पाप भावना की प्रतीति भी होती रहो ह। बैल के परिश्रम का हम जो कुछ खाते है वह अस्वग्य ह यह भावना लाख प्रयत्न करने पर भी न तो दूर होती थी और न दूर हो सकती ह। ऋषि मुनियों ने अपने हाथ से चाहे जैसे जमीन को खाद कर अथवा निवार जैसा हलका अनाज हाथ से बो कर उस पर अपना निर्वाह करना शुरू किया। स्त्रियों ने इस आदश की स्मृति को ब्राह्मण रक्षने के लिए एक दिन ऋषि पंचमी के पालन के लिए रखा। वानप्रस्थानों ने भी अपने सामने यही आदश रखा। चक्को, मूसल आदि के बजाय अनाज को पत्थर से कूट कर खाना अथवा दाँत मजबूत हो तो जैसा का तैसा चबा कर खाना वानप्रस्थाश्रम के लिए निश्चित हुआ।

अनाज और साधन-सम्पत्ति का सग्रह किये बिना सामर्थ्य नहीं बढ़ता, प्रगति नहीं होती यह देव कर गृहस्थाश्रम अर्थात् समाज ने खेती कर के धनधाय का सग्रह हो सके उतना बढ़ाया। परन्तु सग्रह पापमूलक ह ऐसा पहले से ही लगता था। प्राचीन काल म पूँजी के बटने पर बडे व्यापारी छोटे

वही दिखाई नहीं देता। घर छोड़ कर वन में जाते समय आवश्यकता हो तो पत्नी को पुत्र की अधीनता में सौंप कर जाना अथवा उसे साथ में लेते जाने का विधान बताया गया है। पत्नी को घर पर छाँ जाने की प्रथा ही अधिक रुढ़ थी ऐसा लगता है क्योंकि वानप्रस्थ पति समाप्त होने के बाद पत्नी का क्या करे इस का किसी स्थान पर उल्लेख नहीं है। वानप्रस्थ पति-पत्नी के अंत तक उसी आश्रम में रह कर वन में ही दहत्याग करने के अनेक उपाहरण हैं।

हिन्दू-समाज व्यवस्था में दूसरी एक बात सूक्ष्म रूप से सवर्ण फैली हुई दिखाई देती है। सब प्रकार की प्रगति अथवा प्रवृत्ति बड़े उत्साह से करते रहने पर भी मन के एक कोने में एक भाव काम्य रहता है कि प्रवृत्ति मात्र एक प्रकार से अध पात है, असली शुद्ध स्थिति से दूर हटने-जसा है।

और यह वृत्ति मनुष्य में सवर्ण दिखाई देती है। जब बलगाडियों का उप योग होता था तब सब को पैदल यात्रा करने में अधिक काव्य और अधिक पुण्य माना जाता था। आगगाडियों और मोटरों के होने के बाद बलगाडियों का मजिल दर मजिल होने वाला प्रवास, रास्ते के क्षरणा के किनारे खुद ही बना कर बिचे हुए वनभोजन, और प्रातः काल के समय बल के गले की घटिया और पुँघुओं की आजाज आदि सब में अब काव्य का अनुभव होने लगा है। यही स्थिति मन के बारे में भी दिखाई देती है। मज के बरतन, सामबल्ला भर कर जाने की गाली अग्नि तयार करने की रीति, ये सब बिल्कुल पुरानी पद्धति के होने चाहिए। दियासलाई से अग्नि जलाने के बदले अरणी मयन से ही अग्नि जलाना चाहिए—ऐसा यज्ञविधि का आग्रह है। घातु के बरतन मिलत हा तो भी मन के लिए काष्ठपात्र ही पवित्र गिन जात है। वनभोजन के लिए जाना हो तो सारी रसोई स्वयं अपने हाथ से ही करनी चाहिए। यानी प्राथमिक कठिनाइयाँ के अनुभव में से ही आनन्द प्राप्त करने-जैसी यह बात हुई। प्रिमिटीव जीवन स्वावलम्बी होता है और उसी कारण यह विशेष निष्पाप होता है। परस्वावलम्बन प्रगति के लिए चाहे जितना पापक हो, उस में असली स्वाभ्यास कम होता है,—एसी धारणा प्रायः सब को होती है। इस लिए गृहस्थाश्रम की प्रवृत्ति में अरुचि भाटूम होने लगती है, और यह प्रवृत्ति भाररूप लगने लगती है यह केवल एक उपाधि है। इस लिए पीछे मुड़ कर मूल पद की ओर जाने की वृत्ति होती ही है। पीछे लौटना यानी आत्मा के अधिक निकट जाना—यह धारणा भी सर्वत्र रुढ़ हुई है। उपाधि के कम होने पर अपन आप ही आत्म विन्दन के लिए आवश्यक पुरस्ठ प्राप्त हो जाता है। यह बात सही है कि बिल्कुल मज प्राथमिक आवश्यकता असली पद्धति से पूरी करनी हो तब सारा

वह स्यास लेने के योग्य बनता है। कुछ असाध्यरोग हो जाने पर, केवल पानी और हवा पर ही रह कर देह छट जाने के समय तक ईशान्य दिशा की ओर चलते रहने को भी कहा गया है। ईशान्य दिशा ही क्यों पसंद की गयी इस का कारण बूढ़ना चाहिए।

वृद्धावस्था में जब हम से समाज की ठीस सेवा नहीं हो सकती है तब समाज पर बोझ रूप हो कर रहने में कुछ अर्थ नहीं है। ऐसा हर एक व्यक्ति को अहसास होना चाहिए। समाज ऐसे वृद्धों का कृतज्ञतापूर्वक पालन करे यह समाज का धर्म है। वृद्ध नौकरो को आजकल पेंशन मिलती है। वृद्ध नागरिकों को आजकल 'आरड एज पेंशन' देने की प्रथा शुरू हुई है। हमारे यहाँ तो मर जाने के बाद भी श्राद्ध के द्वारा पिण्डप्रदान मिलता रहता है। धर्मकारों ने एक ओर से ऐसा कृतज्ञता धर्म चलाया है तो दूसरी ओर से समाज के ऊपर का अपना भार हो सके तो अपने जीते-जी ही निकाल डालने का धर्म वृद्धों को सूचित किया है। दान देना परम धर्म है। ऐसा एक ओर से सूचित करके दूसरी ओर से कहा है कि दान लेने से पुण्यक्षय होता है, सत्त्वहानि होती है, उस का वध होता है। इस दूसरे उपदेश से ही समाजधर्म सम्पूर्ण बनता है।

वानप्रस्थ में गृहस्थ के सब उपभोग छोड़ देने होते हैं। परन्तु केवल अग्नि होत्र जसा कमकाण्ड प्रबलना से चालू रखना होता है। बाद में शरीर के बिल कुल धन जाने पर वेदान्त का स्मरण करके सब यज्ञों को अपने आप में ही समर्पण करना होता है।

स्त्री को साथ में रख कर वन में रहते समय दोनों को ब्रह्मचर्यपूर्वक ही रहना होता है। परन्तु भूल हो जाने पर और बालक पैदा हो जाने पर ऐसे बालक को चंडाल समझना चाहिए। ऐसा स्मृतियों ने कहा डाला है। महाभारत का पाण्डु और कुन्ती माद्री का वानप्रस्थायम और दूसरी ओर से विदुर का वानप्रस्थायम ये दोनों चिन्तन करने योग्य विषय हैं।

आज यदि पुनः वानप्रस्थायम चालू करना है तो ऊपर वर्णित आदेश फिर से देख लेना चाहिए। मृत्यु तक घर, रोजगार और धन-सम्पत्ति से विपके रहना राजाजनक है। पुत्र-पौत्रों को उन की उम्मीद के और पराक्रमों के दिनों में सब प्रकार की स्वतंत्रता और छूट देनी चाहिए। बकील, डॉक्टर, सरकारी नौकर वगैरह यदि समय पर अपने-अपने धर्म से निवृत्त नहीं होते हैं तो वे अपने पीछे आने वाले युवकों को कटि की तरह घुमने लगते हैं। जो कोई होते हैं वे सब उन का बुरा चाहने वाले हो जाते हैं। धर्म बुद्धि से रखा जाने वाला अधिकार का आग्रह वृद्धावस्था में भी यहाँ रखना चाहिए। नहीं तो मुक्ति सेना

व्यापारियों को जड़ से निवाल कर के सारा व्यापार अपने हाथ में लेने का प्रयत्न करते थे। इस प्रकार होनेवाले व्यापार के विस्तृत प्रसार को देखा कर उन की ही आँखें चकाचौंध हो जाती थी। व्यापारियों के सामने बट-बट राजा भी हतप्रभ से लगने लगे।

डमोई के पास में एक व्यापारी बड़ा मन्दिर बनवा रहा था। उस की भक्ति और कीर्ति के बारे में सुन कर एक राजा ने, यह साधकर कि उस का भी कुछ योगदान होना चाहिए, व्यापारी के पास जाकर कहा, मन्दिर बनाने में मुझ से भी कुछ सहायता लीजिए। अपन राजा की प्रतिष्ठा रखनी ही है। ऐसा सोचकर उसने कहा, ठीक है मन्दिर के लिए पत्थर, चूना वगैरह सामान जिन गाड़ियों में आता है उन गाड़ियों के पहियों के लिए पूरा तेल पहुँचाने की जिम्मेदारी आप अपन सिर पर लीजिए। पहले तो राजा को लगा कि यह व्यापारी मरी खिल्ली उड़ा रहा है, मुझे लज्जित करन का प्रयास कर रहा है। परन्तु बाद में उसे अनुभव हुआ कि इतनी जिम्मेदारी की पूरी तरह निबाहने में भी उसे बड़ी कठिनाइयाँ का सामना करना पडगा। इस तरह बड़े व्यापारियों को अदर से लगता था कि हम जिस बड़ पैमाने पर व्यापार कर रहे हैं उस में समाजद्रोह रहा हुआ है। और बाद में वे त्रत लेते थे कि एक हजार गाड़ियों से अधिक गाड़ियों का उपयोग नहीं करना है। व्यापार में अमुक पूजा से अधिक पूजा नहीं रोकनी है। इस प्रकार एक हाथ में द्रव्य बल बढ़ न जाये, अधिक संप्रभ न होने पाय ऐसा धार्मिक वृत्ति का आग्रह रहता था। सन्ध्यासियों का अपन पास कुछ भी नहीं रखना चाहिए सच्चा ब्राह्मण अयाचित वृत्ति स रहे वगरह नियमों में यही धार्मिक आदेश दृष्टिगोचर होता है। अशोक जैसे सम्राट का अथशास्त्र भी इसी वृत्ति का अनुसरण कर के बना था। वह कहता था कि 'अल्प भाण्डता साधु अल्प धन्य साधु वानप्रस्था के लिए सूचना है कि अद्वितीय नक्षत्र के होन पर पास में ही उतना निवार जसा अनाज भी निकाल डालें। नय वय में पुन पहले से सारी सुविधा करें। इस से भी कठोरता से रहना ही तो सात महीने का संप्रभ रखें अथवा तीन महीने का ही। इस प्रकार कठोर होते होते अन्त में प्रतिदिन सध्या होने पर जो कुछ पास हो वह सब दे कर साफ कर डाले। ऐसे वानप्रस्थ को सद्य प्रक्षालक नाम दिया गया है। इस शब्द का अर्थ प्रतिदिन परिग्रहण को धोने वाला होता है। गरमी के दिना में पचागिन साधन करना, शीतकाल में गीले कपड स रहना आदि तप के प्रकार देख कर के ऐसा लगता है कि वानप्रस्थ दशा में अपने शरीर से बर लेना हा हाता है। ऐसे दो चम्र तपो के बावजूद यदि शरीर बच जाये तो

युगानुसूल हिन्दू जावन दृष्टि

मुक्कों को वृद्ध गिना देना इष्ट नहीं है। सर्वांगी गिना उत्साही गिना के पास से ही प्राप्त हो सकती है। कुछ गिनाक अवस्था में वृद्ध होने पर भी उत्साह में मुक्क हों—यह बात अलग है।

इस लिए वानप्रस्थ की कल्पना बिल्कुल बगल डालनी चाहिए। निजी जीवन को संकुचिन् कर के पुत्रोत्पत्ति और धनोत्पत्ति इन दो व्यवसायों को छोड़ कर, कुटुम्ब सेवा के संकुचित क्षेत्र में से बाहर निकल कर समाज-सेवा के लिए अपना जीवन अर्पण करना ऐसा नया अर्थ कर के अब नया आदर्श बनाना चाहिए, तथा बाद में जब प्रत्यक्ष काम करने का उत्साह न रहे, तटस्थ रूप से रह कर बेचल सलाह देने जितनी ही योग्यता बाकी रह जाय तब सयास आश्रम की शुरुआत होती है ऐसा मानना चाहिए। सयास-आश्रम में पूण निराग्रही वृत्ति, सब के कयाण की दृष्टि से निस्पृह रूप से सलाह देने की शक्ति और भविष्य काल की पहचान कर प्राचीन का आग्रह कहीं छोड़ देना इसे समझने की दृष्टि से तीन वस्तुएं अत्यन्त आवश्यक हैं।

अहिंसा प्रधान हिन्दूधर्म में सबभूतानुत्पत्त्या, अद्रोह, मत्री और समानभाव इनका महत्त्व सब से अधिक है। परन्तु हमारा जीवन सब ओर से हिंसामूलक है इस लिए यह हिंसा किस प्रकार कम करते जाना इसी का हिन्दू धर्म में अखण्ड प्रयत्न किया गया है। धर्मियों को हिंसा करने ही पडती है, इस लिए कुछ नहीं तो केवल ब्राह्मणों को हिंसा से मुक्त रखा जाय ऐसा प्रयत्न हुआ और समाज धर्म के बाह्य-अधर्मों से अधिक-से-अधिक मुक्त वानप्रस्थ और सयासी तो पूण रूप से अहिंसक रहें, निर्वैर हों निष्पाण रहें ऐसा आग्रह सवत्र रखा गया। विषय लोलुपों को मार डालना, जीवन को बठोर बनाना और सब प्रकार का द्रोह छोड़ देना वानप्रस्थों का मुख्य धर्म है। इस आश्रम में परम्परावलम्बन को छोड़ कर स्वावलम्बन को स्वीकार करने की और स्वाभाविक रूप से विशेष महत्त्व है।

ब्रह्मचारी गृहस्थाश्रमी, वानप्रस्थ, सयासी, यति, शिकार गौकीन राजा, विवाहेच्छु तरुण, व्यापार के लिए जगला में सफर करने वाला वय वगैरह लोगो के सम्बन्ध में अपने धर्मशास्त्रो ने जो नियम बनाये हैं उन के एक वृत्ति देख कर मन को ग्गानि हुए बिना नहीं रहती। जीव की रक्षा करना, सकट से दूर रहना, आश्रम ढँढ़ना एसी सीखें अनेक जगहा पर हमारी नजरों में आती हैं।

ब्रह्मचारी को कहा है कि वह वृक्ष पर न चले, जलाशय में न तरे। धर्म शास्त्र में पिता को ऐसा भी कहा है कि जो बीर हो उसे अपनी पुत्री न दे। बलवान आदमी मिल जाय तो झूठ बोलने में पाप नहीं है। कठिन काल में

के सेनापति की जो दशा हुई वही दशा बूढ़ा की भी हाती है। मनुष्य अधिभार का आग्रह वदापि नहीं होना चाहिए।

जरा गौर से देखें तो वानप्रस्थाश्रम याने कुछ अंगों में निजी जीवन को समेट कर सावजनिक सेवा करने का समय होता है। मनुष्य के लिए बीच पञ्चीस वष के आस पास लग्न करना ठीक है, बीच वष के पहले करना घराब है। पैंतीस के बाद करना भी ठीक नहीं है। अपनी शक्ति क्षीण हो उस के पहले ही बड़ा पुत्र पर में कर्ता पुरुष ही जाय और घर का काम धामा अपना करके कुटुम्ब का बोझ उठाने के लिए समय ही जाय, इस तरह से मनुष्य को ब्याह करना चाहिए। ब्याह करने के बाद मनुष्य गृहस्थाश्रम के सुख का उपभोग अधिक से अधिक पन्द्रह वष तक कर। इस बीच में जो कुछ धन-सचय करना हो, इच्छत बढ़ाना हो, सगे सम्बन्धियों और मित्रों का कल्याण करना हो तो वह सब कर लेना चाहिए। और सारी गतिर्मा जब पूरे जोग में हो तभी वानप्रस्थ्य स्वीकार कर लेना चाहिए। स्मृतियों में कहा है कि पीत्र हो जाने पर मनुष्य घर छोड़ दे। यह नियम एक दृष्टि से बहुत अच्छा है। यदि सोलहवें या सत्रहवें वष में लड़के का जन्म हुआ हो और लड़का भी पिता की तरह ब्याह कर लेने की शीघ्रता करे तो ऐसा समय आ सकता है कि पैंतीस वष के अन्दर ही घर छोड़ने का अल्टिमेटम मिल जाय।

रसिकता की दृष्टि से भी विचार करने पर गृहस्थाश्रम के सुख का पन्द्रह वष तक उपभोग किया जाय तो काफी हुआ। शरीर बिलकुल निर्भीम हो जाय, तब तक विषय के पीछे ही लगे रहना विषय की हास्यास्पद कर देने के समान है। आधुनिक शास्त्रियों का ऐसा मत है कि बालक की माता के पास से जो शिक्षा प्राप्त करनी हाती है वह शिक्षा बराबर प्राप्त हो इस के लिए यह आवश्यक है कि माता में यौवन का अंश रहे। वृद्ध माताएँ अपने बालकों को सर्वांगी सस्कार नहीं दे सकतीं।

यहाँ स्त्रियों के एक विचार का स्मरण आता है। कोई एक आदमी विद्वान् हो इसा लिये उस सिखाने का काम नहीं सीपना चाहिए। विद्वान् तरण को पहले समाज सेवा में लग कर राजकीय, सामाजिक, धार्मिक वगैरह क्षेत्रों में अपना पराक्रम प्रकट कर प्रजा का विश्वास प्राप्त करने के बाद ही उसे अध्यापन के कार्य में लगना चाहिए। जिसने समाज की सेवा उत्तम रीति से की हो उसे उस सेवा के इनाम के रूप में अध्यापन का काम सीपा जाय।

इस से उलटी रीति से विचार करने पर यह भी समझ में आता चाहिए कि शिक्षा भी एक समाज सेवा है। यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि बालकों और

युवकों को वृद्ध शिक्षक देना इष्ट नहीं है। सर्वांगी शिक्षा उत्साही शिक्षक के पास से ही प्राप्त हो सकती है। कुछ शिक्षक अवस्था में वृद्ध होने पर भी उत्साह में युवक हों—यह बात अलग है।

इस लिए वानप्रस्थ की कल्पना बिल्कुल बदल डालनी चाहिए। निजी जीवन को संकुचित कर के पुत्रोत्पत्ति और घनोत्पत्ति इन दो व्यवसायों को छोड़ कर, कुटुम्ब सेवा के संकुचित क्षेत्र में से बाहर निकल कर समाज-सेवा के लिए अपना जीवन अर्पण करना ऐसा नया अर्थ कर के अब नया आदर्श बनाना चाहिए, तथा बाद में जब प्रत्यक्ष कार्य करने का उत्साह न रहे, तटस्थ रूप से रह कर केवल सलाह देने जितनी ही योग्यता बाकी रह जाय तब मन्यास आश्रम की शुरुआत होती है ऐसा मानना चाहिए। सत्यास-आश्रम में पूण निराग्रही वृत्ति सब के कल्याण की दृष्टि से निःस्पृह रूप से सलाह देने की शक्ति और भविष्य काल को पहचान कर प्राणीन का आग्रह कहीं छोड़ देना इसे समझने की दृष्टि से तीन वस्तुएँ अत्यन्त आवश्यक हैं।

अहिंसा प्रधान हिन्दूधर्म में सबभूतानुकम्पा, अद्रोह, मैत्री और समानभाव इनका महत्त्व सब से अधिक है। परन्तु हमारा जीवन सब ओर से हिंसामूलक है इस लिए यह हिंसा किस प्रकार कम करते जाना इसी का हिन्दू धर्म में अखण्ड प्रयत्न किया गया है। शत्रुओं को हिंसा करनी ही पड़ती है, इस लिए कुछ नहीं तो केवल ब्राह्मणों को हिंसा से मुक्त रखा जाय ऐसा प्रयत्न हुआ और समाज धर्म के बाह्य-बन्धनों से अधिक-से-अधिक मुक्त वानप्रस्थ और सत्यासी तो पूण रूप से अहिंसक रहें, निर्बैर हो निष्पक्ष रहें ऐसा आग्रह सवत्र रखा गया। विषय लोलुपों को मार डालना, जीवन को कठोर बनाना और सब प्रकार का द्रोह छोड़ देना वानप्रस्थों का मुख्य धर्म है। इस आश्रम में परम्परावलम्बन को छोड़ कर स्वावलम्बन को स्वीकार करने की ओर स्वाभाविक रूप से विशेष महत्त्व है।

ब्रह्मचारी गृहस्थाश्रमी, वानप्रस्थ, सत्यासी, यति, शिवार शौकीन राजा, विवाहेच्छु तरुण, व्यापार के लिए जगलो में सफर करने वाला वैश्य वगैरह लोगों के सम्बन्ध में अपने धर्मशास्त्रों ने जो नियम बनाये हैं उन के एक वृत्ति देख कर मन को ग्लानि हुए बिना नहीं रहती। जीव की रक्षा करना, सकट से दूर रहना, आश्रय ढूँढना ऐसी सीखें अनेक जगहों पर हमारी नज़रों में आती हैं।

ब्रह्मचारी को कहा है कि वह वृष पर न चढ़े जलाशय में न तरे। धर्म शास्त्र में पिता को ऐसा भी कहा है कि जो बीर हो उसे अपनी पुत्री न दे। बलवान आदमी मित्र जाय तो झूठ बोलने में पाप नहीं है। कठिन काल में

धर्मात्तर करने पर भी हमारे धर्मशास्त्र आप पर शोधित नहीं होते हैं। धर्म प्रस्था के लिए सब प्रकार की नाजुकता और कौमलता छोड़ कर के धर्म का पालन करने के लिए आवश्यक कठोरता का विकास करना होता है। और इसी लिए उसे धर्म में जा कर रहना पड़ता है। परन्तु स्मृतियों कुछ धीमी आवाज से कहती हैं कि अब कल्पियुग आ गया है जगलों में म्लेच्छ लोगों से मुठभेड़ होती है, राजा लोग हमारी रक्षा नहीं कर सकते इस लिए गाँव के आसपास किसी बगीचे को जगल मान कर वहाँ आराम से रहना चाहिए और अपने सगे-सम्बन्धियों से भिन्ना भाँग लानी चाहिए।

संयासी तो निभयता की मूर्ति होता है। उसे तो धर्म प्रचार के लिए सबत्र अकुतोभय हो कर विचरना चाहिए। धीमम पेन ने कहा है कि 'जहाँ स्वाधीनता नहीं है वही मेरा स्वदेश है। माई होम इज ह्वैअर लिबर्टी इज नॉट।' संयासी की वृत्ति इस प्रकार की होनी चाहिए। संयासी अर्थात् पाप, अनाचार आलस, प्रजापीडन, अनास्था वगैरह मानव पशुओं के सामने अपने देह की चिन्ता रखे बिना लड़ने वाला योद्धा। ऐसे व्यक्ति को स्मृति तसीहत देती है कि जहाँ के लोग नास्तिक हैं नगे हैं भिन्ना देते नहीं हैं ऐसे देश में नहीं रहना—अरे वहाँ जाना तक नहीं चाहिए। जहाँ युद्ध होता हो, मारपीट होती है, अकाल पडा हुआ हो वहाँ से संयासी को पहले से चार कदम दूर रहना चाहिए। इस प्रकार की बुद्धिमानी सिखाने के लिए शास्त्र की क्या आवश्यकता थी ?

राजा को शिकार के लिए जाने का सच्चा अर्थ ग्राम्य पशुओं से प्रजा की और उस की खेती की रक्षा करना था। परन्तु स्मृतियों का युद्ध संयानापन राजा को सिखाता है कि शिकार के लिए जाओ तो जहाँ रख उछल न जाय ऐसी सपाट जमीन देख कर या न हो तो बसी बनवा कर मधुर भुगया यायाम करना चाहिए। लड़के न हाँ तो युद्ध में नहीं जाना, इस तरह की कितनी ही बातें लिख रखी हैं, प्राण देने की चिन्ता कर के उसे छोड़ कर चलने का जो परम धर्म था उस का इस प्रकार की शिक्षाओं से लोप हो गया।

(मई १९५४)

ब्रह्मचर्याश्रम की बुनियाद—सयम और अनुभव समृद्धि

आज के रसिक लोग मानते हैं कि रसिकता और कल्पना-वैभव के विकास के लिए जीवन में भोग विलास की आवश्यकता है। मनुष्य जितना अनुभव समृद्ध होगा उतना ही उस का जीवन साक्षात्कार गहरा और बुलंद होगा।

लेकिन व भूलते हैं कि हर एक अनुभव अपनी कीमत ले लेता है। अनुभव भी निष्ठा व बिना गहराई नहीं आती।

इन्द्रियतृप्ति का अनुभव बनाया ता आत्मशक्ति के विशाल अनन्त क्षेत्र में उड्डयन करने की शक्ति क्षीण हो जाती है। इन्द्रियतृप्ति में जीवनतृप्ति नहीं आती। जीवन सकुचित हो जाता है और इन्द्रियो की शक्ति भी सूक्ष्म और तेज होने के बजाय भोयरी और ध्विर हो जाती है।

सयम भी एक पुरुषार्थ है। और गहरा अनुभव है। कोई चीज आँख पर लगाने से उसे हम नहीं देख सकते। कुछ दूरी पर रखने से ही चीज को हम अच्छी तरह देख सकते हैं। शुद्ध दर्शन के लिए और दर्शनानन्द के लिए दृश्य वस्तु को न अति दूर रख सकते हैं न अति निकट। वस्तु का स्वरूप पूणरूप से समझने के लिए चीज को नजदीक लाना जरूरी नहीं है। आँखों की दर्शनशक्ति बढ़ानी चाहिए।

सयम अनुभव का शत्रु नहीं है। योग्य मात्रा में, वैज्ञानिक ढंग से सयम का पालन करने से ही अनुभव, उन्नतिकर और कारगर अनुभव, उत्तम मात्रा में मिल सकता है।

उपनिषत्काल के सयमघा ऋषिमुनि जीवन विमुख नहीं थे। उन्होंने जीवन का गहरा चिन्तन भी किया था और आवश्यकतानुसार जीवन के विविध प्रयोग भी।

विलासिता में डूब जाने वाले लोग प्रयागवीर नहीं होते। विलासी मनुष्य में लम्पटता बढ़ती है, और लम्पटता जड़ता का ही एक रूप है। कहते हैं कि पश्चिम में जो लोग तरह-तरह की पुरानी नयी शराबों का सग्रह करते हैं और मद्यरसिकों से मतमाना दान ले कर उन्हें वैचते हैं, अपने पास बड़ बड़े दाम दे कर गराब रसिक विशेषणों को रखते हैं, जो अंधेरे में भी शराब की एक बूँद चख कर कह सकते हैं कि शराब कौन-सा है, कितनी पुरानी है, उस में मिश्रण

ह या नहीं इत्यादि। शराब का रहस्य जानने वाले ये विन शराब के आदी नहीं होते। वे कहते हैं—नित्य शराब पीने से स्वाद पहचानने की हमारी रसनेन्द्रिय शक्ति मष्ट हो जाती है। समय के द्वारा ही हम इतने अनुभवसमय रह सकते हैं। इन की बात ठीक है। समय के बिना जीवितानुभव नहीं हो सकता। और सामग्य के बिना समृद्धि कैसे हासिल हो सकती है ?

अपनी सारी हालापरायण कविता लिखने वाले कवि उमर-शुब्याम के बारे में कहा जाता है कि सारी ज़िन्दगी में उस ने शराब की एक बूँद भी नहीं चखी थी।

अच्छे से अच्छे इत्र की पहचान वे नहीं कर सकते जो अपने कपडे पर, अपनी कलाई पर और अपने कान में इत्र लगा कर चलते हैं। नाक सुगंध से भर जाने पर सुगंध की सूक्ष्म मात्रा पहचानने की और उस का आनंद छूटने की मनुष्य की शक्ति भी भोयरी हो जाती है।

संयम का सच्चा अर्थ, उस वा शुद्धस्वरूप उस की शक्ति और उस के विनियोग के बारे में मनुष्यजाति ने पूरा सोचा नहीं दीख पड़ता। नहीं तो संयम के ऊपर बड़े बड़े वनानिक ग्रंथ लिखे जाते।

नसर्गिक उपचार का शास्त्र उसे जैसे बढ रहा है, उपवास के क्षेत्र में अनेक प्रयोग हो रहे हैं और अलग अलग रोगों में, भिन्न भिन्न हालत में उपवास कितने, कैसे और किस खूबी से करने चाहिए उस के भी प्रयोग और नियम बनने लगे हैं। संयम को भी एक विज्ञान बनाने के दिन आये हैं।

अगर एक क्षेत्र में मनुष्य अपनी पूरी शक्ति बढ़ाना चाहता है तो दूसरे क्षेत्र में उसे शून्यमात्र अनुभव नहीं लेना चाहिए।

जिस किसी को सत्यवादिता की पूर्ण सिद्धि हासिल करनी है वह नहीं कह सकता कि झूठ बोलने से क्या क्या होता है इस का अनुभव करने के लिए थोड़ी मात्रा में मैं झूठ बोल कर देखूँ। महाभारतकार कहते हैं—लाचार हो कर केवल कल्याण के हेतु एक क्षण के लिए भी आप सत्य से गिर गये, सत्य का रास्ता आप ने एक सूतभर भी छोड़ दिया तो आप का रथ नीचे उतर आयेगा आप की सत्यसिद्धि मष्ट होगी। (सत्यसिद्धि के बारे में योगशास्त्र कहता है—सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाकलापयत्नम्। जिस ने सत्य की सिद्धि प्राप्त की है उस के काम और वचन निष्फल नहीं होते हैं। इसे वाचासिद्धि भी कहते हैं।)

गरज यह है कि मनुष्य झूठ बोलने का अनुभव भी करे और वाचासिद्धि की अपेक्षा भी कर यह हो नहीं सकता। वाचोपभोग का जिस ने अनुभव प्राप्त किया उसे ब्रह्मचर्य के लाभों से वंचित रहना ही पड़ता है। इस लिए उत्तम के

लिए, जीवन की साधकता के लिए क्या आवश्यक है इस का पूरा विचार कर के उसी सार वस्तु का अनुशीलन मनुष्य करे और नि सार वस्तु के लोभ में न फँसे, यही है समय का रहस्य ।

और समय के साथ सप्रमाणता का (प्रमाण संभालने का) तत्त्व आ ही जाता है । चंद बातों में अतिरेक हो ही नहीं सकता—जैसे सत्यपालन में । लेकिन दूसरी ऐसी बहुत सी बातें हैं, जिस में प्रमाण छोड़ने पर सदगुण भी दुगुण बन जाता है । अतिदानात बलिवद्ध । बलि, कण और हरिश्चन्द्र जैसे दानशूरा ने पारमिता प्राप्त की, वे पारगत हुए, लेकिन प्रमाण संभालने का मध्यममाग भूल गये । समय में मध्यममाग की निष्ठा आ ही जाती है । उस की प्रधानता होती है ।

हर चीज का विकास इष्टतम मात्रा में हो, हर चीज का निग्रह भी इष्टमात्रा में हो यही है समय का प्रधान लक्षण ।

समय के द्वारा ही मनुष्य की अनुभवशक्ति बढ़ती है, हर तरह का सामर्थ्य बढ़ता है । सार-असार का भेद समझने की सूक्ष्म बुद्धि बढ़ती है और मनुष्य जीवन-साफल्य तक पहुँचता है । समय में ही जीवन-साफल्य का पराकाष्ठा है ।

(१ दिसम्बर १९६०)

गृहस्थाश्रम का आदर्श

प्रकृति माता ने स्त्री-पुरुष का, नर-मादा का परस्पर सावभौम आकषण इस लिए रखा है कि सत्तति का सृष्टिद्रम अविच्छिन्न चले और परमात्मा की सृष्टि-उत्पत्ति का क्षण-क्षण नया चिन्तन करना न पड़े । इसी आकषण के अनुसार स्त्री-पुरुष एकत्र आते हैं, प्रजा को जन्म देते हैं और अपने सम्बन्ध को कृताय कर लेते हैं ।

यह हो गया प्रकृति की रचना । इस में अध्यात्म को पहचानने वाले मनुष्य ने अपनी ओर से चंद पवित्र तत्त्व डालकर प्रकृति को संस्कृति का रूप दिया, जिसे हम विवाहसंस्था कहते हैं । प्रकृति के घर में जो केवल लैंगिक आकषण था उसे प्रेम, समय, निष्ठा, स्वात्मापण और सेवा के द्वारा मनुष्य ने आध्यात्मिक रूप दे दिया और जो चीज केवल शारीरिक सुख की थी उसे आध्यात्मिक अद्बतानन्द तक पहुँचा दिया और सुख-दुःखात्मक जीवन को परम आह्लाद का स्रोत बनाया ।

विवाह के माना है परस्पर, अनन्य और चिरन्तन निष्ठा । पति-पत्नी ने एक

दूसरे को स्वीकार किया, इस में प्राप्ति का तत्त्व नहीं, किन्तु आत्मार्पण का तत्त्व है। जिस तरह पत्नी अपने को अर्पण करते समय स्वीकार करती है कि गुण लेने के लिए नहीं, किन्तु देने के लिए ही उस का जीवन है, उसी तरह पति को भी मानना चाहिए कि उस ने भी अपने को अर्पण किया है और गुण देने का, सेवा करने का और पिछा को मजबूत रखने का धर्म स्वीकार किया है।

इस तरह जब दो जीव एक पवित्र सत्त्व व साय विवाह-प्रति में बद्ध होते हैं तब दोनों में परस्पर प्रेम के अलावा परस्पर आदर भी उत्पन्न होता है। और उसे संभालना दोनों का कर्तव्य होता है। जब इस तरह दो व्यक्ति एक हो गये तब उन के लिए एक नया सम्मिलित कर्तव्य उत्पन्न होता है। पति और पत्नी एक-दूसरे के माता पिता के प्रति और अन्य कुटुम्बियों के प्रति आत्मीयता का विकास करें ताकि दोनों कुटुम्बा के लोग भी स्वजन बन जायें। इस के बाद जब विवाह के आशीर्वाद के रूप उन की सत्तान इस दुनिया में प्रवेश करती है तब पति पत्नी माता पिता बन कर अपना सह जीवन अपनी सत्तान के कर्माण के लिए अर्पण करते हैं।

विवाह के प्रारम्भिक रूप के लिए भृगुहरि ने सुन्दर आदेश दिया है—

एतत् काम फल लोके यद् द्वयो एकचित्तता ।

पति पत्नी के प्रेम से दोनों के चित्त और हृदय बिल्कुल एक हो जायें, यही दाम्पत्यसुख का उत्तम फल है।

जब यह दाम्पत्य सम्बन्ध सन्तान के रूप में दृढ़ होता है, तब भवभूति कहते हैं—

“सत्तान ही स्नेह की पराकाष्ठा है और माता पिता के लिए चित्त का अनुबन्धन है। पति और पत्नी के अन्तःकरण को जब प्रेम का आश्रय मिलता है, तब उन की एक सुन्दर आनन्दप्रति बनती है जिस को हम अपत्य कहते हैं।

अन्तःकरणतत्त्वस्य दम्पत्यो स्नेहसथ्यात् ।

आनन्दप्रतिघरकोऽय अपत्य इति बध्यते ॥

लोग कहते हैं कि पुत्रोत्पत्ति के द्वारा ही गृहस्थाश्रम का उद्धार होता है, और पति-पत्नी को उत्तम लोक प्राप्त होते हैं।

यहाँ उपनिषद् के ऋषि कहते हैं—

पुत्र अनुगिष्ट लोभय आहु । (व० १५ १७)

पुत्र का जब शिक्षण के द्वारा अच्छे संस्कार दिये जाते हैं और उस का जीवन सुवासित किया जाता है तभी ऐसी सत्तान माता पिता को उत्तम लोको की प्राप्ति करा देते हैं, अन्यथा नहीं।

हमारा आदर्श केवल समानता का नहीं, एकता का है। पति-पत्नी में असमानता ही यह तो असह्य बात है। असमानता तो होनी ही नहीं चाहिए। लेकिन केवल समानता से हमें सन्तोष नहीं होता। पति-पत्नी एक-दूसरे में ऐसे ओत प्रोत हो जायें कि दोनों का जीवन अभेद रूप हो जाय। ऐसा होने से बच्चा को सर्वोत्तम संस्कार मिलते हैं और कुलपरम्परा उज्ज्वल बनती है।

ऐसे सत्त्वसम्पन्न कुलो के द्वारा ही समाज की देश की और दुनिया की उत्तम सेवा हो सकती है। विवाह सम्बन्ध और गृहस्थाश्रम पवित्र इसी लिए माना गया है कि उस में सयम, परस्तरापण, त्याग, निष्ठा और सेवा के आदर्श को प्रधानता दी है।

(३१ मार्च १९१६)

विवाह और ब्रह्मचर्य

मनुष्य के मन में या शरीर में विकार पैदा हो तो कोई आश्चर्य नहीं है। जिस शरीर का जन्म ही माता पिता के विकार के कारण होता है, उस शरीर में विकारों का पैदा होना बिलकुल स्वाभाविक है। उन विकारों का पोषण करने के लिए पशु पक्षी और तमाम प्राणी एकत्र आते हैं। मनुष्य भी वैसा कर सकता था। लेकिन उस में और पशु पक्षियों के बीच बड़ा भरोसा फर्क है। प्राकृतिक प्रेरणा के अधीन होकर पशु पक्षी नर मादा एकत्र अवश्य आते हैं। लेकिन उस से उन के विकार बढ़ते या घटते हैं, यह अब तक दिखाई नहीं दिया। मनुष्य के पास कल्पना शक्ति है पुरुषतत्त्व है और अन्न का संग्रह करने की क्षमता है इस लिए वह जैसे जैसे विकारों का पोषण करता रहता है वैसे वैसे यह विकार अमर्यादित सीमा तक बढ़ते हैं। और मनुष्य का भोग भी ले सकते हैं। मनुष्य के लिए सम्भव है कि वह इन विकारों पर अक्रुश लगाकर धीरे धीरे उन्हें दबा सके या उन का सुन्दर परिवर्तन कर के उच्च रूपान्तर भी कर सके।

विवाह सस्या केवल विकार पोषण के लिए नहीं है। विकारों का पोषण करने के लिए किसी आदर्श, सस्या या साधना की आवश्यकता ही नहीं है।

प्राकृतिक विकारों में से निरपेक्ष प्रेम, अनन्य निष्ठा और सेवा के लिए स्वात्मापण जैसे उच्च परिणामों के लिए ही समाजहित चिन्तकों ने विवाह जैसे

संस्था को खोज की है। इसी लिए कहा गया है कि विवाह संस्था शुभ है, पवित्र है और उत्पत्तिकर है।

विकार पोषण की स्वाभाविक प्रवृत्ति यदि न हो तो मनुष्य की शान्ति करने का कोई अधिकार नहीं है, कोई कारण भी नहीं है। लेकिन विवाह के द्वारा विकारों को अवकाश देकर उन विकारों में से ही विवाह से कई गुने श्रेष्ठ ऐसे प्रेमसत्त्व की उत्पत्ति और विकास मनुष्य कर सकता है।

मनुष्य विवाहबद्ध होकर प्रतिभा करता है कि जो कुछ भाग भोगना है वह विवाह मर्यादा में रह कर ही भोगेगा। विवाह बाह्य भोग सबका त्याग्य मानेगा।

विवाह के अंदर भी कुछ समय का पालन करना पड़ता है। एक दूसरे की तदुत्पत्ति, इच्छा और प्रतिकूल संयोग में विकार पोषण की इच्छा को दवाने का आदर्श प्रेम के कारण ही सम्भव होता है। उस में दूरदर्शिन भी है।

सम्भोग के कारण जो बच्चे होंगे उन के पालन-पोषण का भी विचार मन में रखना पड़ता है। बच्चा के हित में बाधा डालें ऐसे भोग गृहस्थाश्रम के लिए योग्य नहीं है।

विवाह जीवन के द्वारा ही कुटुम्ब-जीवन की उत्पत्ति होती है और उसी में से सामाजिक जीवन बनता है। इस लिए कौटुम्बिक जीवन का हित और समाज का कल्याण, इन दो महान् और सनातन आदर्शों का स्वीकार कर के उन की मर्यादा भी विवाह बंधन में आ जाती है।

इन मर्यादाओं से जितना आगे का विचार करना पड़ता है उतना ही पाछे का भी सोचना पड़ता है। अपत्यसेवा के साथ बूढ़ों की सेवा भी विवाह पथ में आ जाती है। बुजुर्गों के सम्पर्क से समय सुलभ होता है। उन की सेवा में कुल परम्परा के अनेक सद्गुणों की भी दीक्षा मिलती है। और परम्परा का पालन करने से संस्कृति मजबूत और समृद्ध बनती है।

पति पत्नी को एक दूसरे में समा जाना चाहिए यह आदर्श, विवाह संस्था रखती है। किन्तु एक दूसरे में ओत प्रोत होना सर्वोच्च आदर्श नहीं है। क्योंकि एक दूसरे में ओत प्रोत होना पर भी और एक दूसरे के लिए हर तरह का स्वाध त्याग करने पर भी दम्पति में हम दो' की स्वाधवृत्ति बढ़ सकती है। इसलिए एक दूसरे में ओत प्रोत हो कर भी वह जीवन बुजुर्गों की सेवा में, अपत्यों की सेवा में, समाज के हित में अपना करने का आदर्श विवाह संस्था में रखा गया है।

इस आदर्श की वजह से सम्भोग मर्यादा में रहता है। और इस मर्यादा के कारण ही जीवन की उत्कृष्टता और परस्पर निष्ठा पदा होती है। आरोग्य अच्छा

रहता ह, बालसगोपा में मदद मिलती है और समाज सेवा में कम बाधाएं आती ह ।

इस तरह जो चीज प्राकृतिक है उस पर प्रेम, निष्ठा, समाजसेवा और धार्मिकता के पुट चढ़ा कर उस को कमोवेश दिय बनाया गया है । उस की सशबू भित्त भित्त समय में समाज में फैलती ही ह, इतना ही नहीं उस की स्मृति भी पुस्त दूर पुस्त फल कर आशीर्वाद रूप बनती ह । अकेले रामचन्द्रजी का जीवन कई कवियों को प्रेरणा द सका और हर जमाने में असह्य लोगो को एक आदर्श की दीशा देता रहा ।

विवाह जीवन सम्भोग से उत्पन्न होते हुए भी और सम्भोग को मायता देते हुए भी, सम्भोग को उत्तेजन नहीं देता । लेकिन उस को घममर्यादा में ला कर कल्याणकर, नियमित और उध्वगामी बनाता ह और अंत में सम्पूण समय की ओर ले जा कर मनुष्य को आत्मोपम्य और विश्वात्मैक्य सिखाता ह ।

ब्रह्मचय का आदर्श भी उसी जीवन शिखर की ओर मनुष्य को ले जाता है । यदि यह आदर्श नजर के सामने न हो तो ब्रह्मचय स्वाथ का ही एक प्रकार माना जा सकता ह । एक विषय विकार को छोड देंगे तो सब झसटों से बच जायेंगे, समाज की या किसी की टीका के पात्र बने बिना यत्किगत स्वाथ का उपभोग कर सकेंगे, यह आदर्श मन में रख कर अगर कोई ब्रह्मचारी रहे तो—भले उस में कोई विकृति या दोष पैदा न हो—तो भी वह घममाय आदर्श नहीं ह । ब्रह्मचय एक भय आदर्श ह, उस में से दिय जीवा निष्पन्न हाना ही चाहिए ।

जो विराट ह, भूमा ह—बहुत, बृहत्तर और बृहत्तम ह उस को प्राप्त करने के लिए जो उच्च आचरण रचा गया ह वही ब्रह्मचय ह । ब्रह्मचय के मानी है, ब्रह्मप्राप्ति के लिए आचरण या साधनामय जीवा ।

ब्रह्मचय की भूमिका में ऐसा विचार या अनुभव ह कि भोगवासना या कामविकार जैसे मनुष्य के लिए स्वाभाविक ह उसी तरह उस पर सम्पूण विजय प्राप्त करना भी मनुष्य के स्वभाव में ही रही हुई चीज ह । प्रथम जिम उन्न में विकार दिखाई दें तब से ही, या उस के बाद जब से सूजे तब से ही दड सकल्प कर के विकारो पर विजय पाने की सीधी साधना ही क्यों न करें ? ओत प्रीत बनने के लिए विकारो की प्रेरणा जरूरी है, ऐसा नहीं है । इस प्रेरणा को मर्या दित उत्तेजन भी क्या दें ?

आदर्शविहीन ब्रह्मचय में सिफ स्वाथ समाया हुआ रहने का डर ह । उसी तरह परस्पर निष्ठा से स्वीकृत विवाह बंधन में भी काई बिनाल आदर्श सामने

न हो तो पति पत्नी एक दूसरे में ओज प्रोत होने पर भी समाज के प्रति कोई भी जिम्मेवारी न पहचानने तक का अध्यापन भी उन में आ सकता है। सतति नियमन के द्वारा यह सन्तुचितता आसानी से सिद्ध हो सकती है। मनुष्य अगर सततिनियमन न करे और प्रजोत्पत्ति होने दे और अपने सामने कोई आदर्श भी न रखे तो पति पत्नी की परस्पर निष्ठा तक या उस के साथ अपत्यनिष्ठा तक आ कर आदमी रुक सकता है। आजकल की मानवजाति में, कई कुटुम्बोजना में केवल इतनी ही तरक्की दिखाई देती है। ऐसे कुटुम्ब त्रिष्ट लाग जिष्ट जाति, जमात, समाज या राज्य के होते हैं उन के प्रति उन्हें कुछ निष्ठा स्वीकारनी या दिखानी पड़ती है। लेकिन हृदय का उतना विकास न होने के कारण महज स्वाय, सुरक्षा या सजा के डर से ही उन्हें उस निष्ठा को स्वीकारना पड़ता है मजूर करना पड़ता है। जो चीज हृदय तक पहुँची ही नहीं है उस का हृदय में पैदा होना कबे सम्भव है? लेकिन आज मानवजाति ने इतना समझ लिया है कि ऐसी व्यापक निष्ठा को मायता दिये बिना अब चारा नहीं है।

अब निष्ठा एक ऐसी चीज है जो क्रमशः फैलती है, फलनों चाहिए। उस में मोटापन या पतलापन आ जाता है। लेकिन उस की मर्यादा बंध जाना निष्ठा के अनुकूल नहीं है। व्यक्तिगत स्वाय, दाम्पत्य स्वाय, कौटुम्बिक स्वाय, जातिगत स्वाय, जमात का स्वाय, वग का स्वाय और राष्ट्रीय स्वाय जसी मर्यादाओं का उल्लंघन कर के निष्ठा जब बढ़ती है तब आदमी भूमा (सब) के साथ ओत प्रोत बनता है। और इस में विघ्न डालने वाले किसी भी बाधन को स्वीकार करने के लिए वह तयार नहीं होता। इस प्रकार का आदमी स्वार्थी वासनाओं को अ सामाजिक बनने नहीं देता। वह विचारों पर विजय पाता है, सन्तुचित सगठन के अभिमान को तिलाजलि देता है और भूमा के साथ अपना ऐक्य अनुभव करने के लिए ब्रह्मचर्य के आदर्श को स्वीकारता है।

ऐसे आदर्श युक्त लोग अपने आप को विवाह बाधन में न बाँधें यह स्वाभाविक है। और विश्व के साथ का सेवा सम्बन्ध के प्रसन्नता से स्वीकारते हैं। अपनी ब्रह्मचर्य धृति दृढ़ बनाने के लिए साधनाकाल तक वे समाज से अलग रह सकते हैं पर उन का समस्त जीवन सारे समाज में ओत प्रोत और सेवा-परमण रहता है।

इस प्रकार का जीवन बिताने वाले आदमी को, चूँकि वह खतरे में न फसे इसलिए कुछ मर्यादाओं को स्वीकार करना पड़ता है। किसी भा स्त्री के साथ एकांत में न रहना अपनी कोई 'इस्टेट' न रखना सेवा करते समय व्यक्ति, समूह या संस्था से ममत्व न बाँधना, समष्टि के साथ के ऐक्य में जो बाधक हो

सकती है ऐसी जिम्मेदारियां से अलग रहना आदि मर्यादाओं का स्वीकार करना पड़ता है। 'यह मर्यादाएँ मेरे लिए नहीं हैं' कह कर जो आदमी मुक्त होने का दावा करता है वह समाज की शक्ति का पात्र बनता है और खुद को खतरे में डालता है।

भाषोजी ने ब्रह्मचर्य की जो व्याख्या की है और जो आदेश हमारे सामने रखा है वह, प्रथम मर्यादाओं को स्वीकार कर के आहिस्ता आहिस्ता उन में से निकलने का है। उ होने कई बार कहा है कि बाड़ा में फँसने वाला ब्रह्मचर्य का आदेश मेरा आदेश नहीं है। सेवामय समाज जीवन बिताते समय स्त्री-पुरुषों का जो स्वाभाविक सम्बन्ध उत्पन्न होता है जो सहजीवन का विकास होता है उस का शुद्धता से और सुरक्षितता से संभालने में ब्रह्मचारी को दिक्कत महसूस नहीं होनी चाहिए। और समाज को ऐसे प्रयोगों के योग्य परिस्थिति और अनुकूलता पैदा कर देनी चाहिए।

जिस प्रकार दो मित्र एक दूसरे के निकट आ कर एकत्र रह या जी सकते हैं, वे वृत्तों जिस प्रकार सहजीवन बिता सकती हैं उसी प्रकार एक स्त्री और एक पुरुष भी किसी प्रकार के विकारी सम्बन्ध के बिना एकत्र रह सकते हैं। यह चीज समाज को माय करनी चाहिए और उस दिशा में प्रयत्न हाने चाहिए। लेकिन यह प्रयत्न समाज का विश्वास और आशीर्वाद प्राप्त कर के ही होना चाहिए।

कुटुम्ब में माँ बेटा, पिता बेटा, भाई बहन या देवर भाभी जिस प्रकार निमलता से रह सकते हैं उसी प्रकार कौटुम्बिक सम्बन्ध के बिना भी स्वाभाविक तौर से एकत्र जाये हुए स्त्री-पुरुष भी किसी भी प्रकार के विकारों के बिना एकत्र रह सकते हैं। इस आदेश को समाज को माय करना ही चाहिए इतना ही नहीं बल्कि परलवित-पुण्डित भी करना चाहिए। इस डर से कि इस से अनिष्ट पैदा होगा उस आदेश का प्रयोग न करने देना मानवजाति के विकास में बाधा रूप है।

स्व० विशोरलाल भाई जैसे एक चेतानवो उद्वर देंगे। और आज की परिस्थिति में यह स्वीकारन योग्य है। वे कहते हैं कि एक स्त्री और एक पुरुष अगर मित्रता का ही जीवन बिताना चाहते हों तो उन लोगों का परस्पर सम्बन्ध ऐसा होना चाहिए कि वे निविकारिता सभाष न सकें तो सामाजिक नियमों के अनुसार व पादा करें। ऐसे प्रयोग करन देने में कोई हर्ज नहा है।

पति पत्नी परिणीत स्थिति में चाहें तो शुद्ध और सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन कर सकते हैं। उस में उन्हें सफ़रता न मिले और एकान्त में विकारों का बनीभूत

बन तो समाज की दृष्टि से कोई हानि नहीं है। गृहस्थ-जीवन को भी उस में कुछ हानिकारक नहीं है। इसी तरह ऊपर का आदम भी होना चाहिए। प्रकृत इतना ही है कि प्रथम विकारक होकर बाद में विवाहवद्ध होने की स्थिति में स्वीकार कर, विकारक होंगे ऐसा महसूस होती ही प्रथम विवाहवद्ध हो जाये यही सामाजिक निमलता की दृष्टि से और मानवीय प्रतिष्ठा की दृष्टि से भी अच्छा और योग्य है।

हमारे देश में ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा लोगों के मन पर बैठाने के लिए उस की इतनी तारीफ़ की गयी है कि वह आदम है, उस से भी ज्यादा कठिन लगता है। और उस आदम तक पहुँच हुए और उस का सफलतापूर्वक पालन करने वाले लोगों की प्रतिष्ठा इतनी ज्यादा बढ़ गयी है कि उस आदम तक पहुँचने का ढोंग करने का लालच कई लोगों में पैदा होता है और समाज में दम्भ का पोषण होता है। जहाँ ऐसी असाधारण सामाजिक प्रतिष्ठा पैदा होती है वहाँ समाज का कुछ हिस्सा पूजा करना चाहता है और दूसरा हिस्सा ईर्ष्या करता है। इस से भी ब्रह्मचर्य का आदर्श बिना किसी कारण के मुश्किल बन गया है।

जाड़े के दिनों में कुछ लोग गरम पानी से नहाते हैं और कुछ ठंडे पानी से। बेग़क ठंडे पानी से नहानेवाले लोग मुक़ाबले में ज्यादा सहनशील हैं। लेकिन उन को इसी वजह से लोकोत्तर या अबतारी पुरुष कोई नहीं कहता। और चुपके गरम पानी से नहा कर बाहर भी ठंडे पानी से स्नान करता है, बता कर अपने को कोई बहादुर नहीं साबित करना चाहता न ठंडे पानी से स्नान करने वालों की कोई उच्च अलग श्रेणी मानी जाती है। यही हालत अपर ब्रह्मचर्य और गृहस्थाश्रम के सम्बंध में ही तो समाज में ब्रह्मचर्य के आदर्श की तालीम देने में काफ़ी मदद मिलेगी।

ब्रह्मचर्य का पालन करते समय भी किसी को यह भूमिका नहीं लेनी चाहिए कि वह अति कष्ट साध्य है फिर भी हम उस का पालन कर रहे हैं। अति कष्ट से जिस का पालन होता है वह ब्रह्मचर्य आरोग्य की और आध्यात्मिक दृष्टि से कहीं तक पोषक है इस बात की भी खोज होनी चाहिए। समाज को देखना चाहिए कि ऐसे अनधिकारी प्रयत्न भी समाज में न होने पायें और इसी लिए ब्रह्मचारियों को चाहे तब गृहस्थाश्रम में प्रवेश पाने की इजाजत मिलनी चाहिए। मनुष्य का स्वभाव परिस्थिति और आदर्श यदि अनुकूल है और प्रयत्न की दृष्टता भी हो तो विकास के लिए ब्रह्मचर्य अत्यंत पोषक चीज़ है। ब्रह्मचर्य से शरीर सुन्दर बनता है। मानसिक शक्तियों का सुन्दर विकास होता है सेवा के

द्वारा विश्वात्मैक्य साधने का आदर्श सुलभता से ग्रहण होता है और ऐसे जीवन की सुगन्ध असस्य लोगो को प्रेरणा देती है ।

गृहस्थाश्रम में से ही कुटुम्ब सस्था उत्पन्न होती है । और वही एक ऐसी सस्था है जिस की परम्परा सतत, अखण्ड और अटूट टिक सकती है । मगर इस के मानी ये नहीं हैं कि कुटुम्ब-सस्था का विघटन हो हा नहीं सकता । उस का विसर्जन भी करने का अधिकार मनुष्य को है । कायरता से उस का कोई विसर्जन करे तो वह कोई उत्तम काम नहीं गिना जायेगा । लेकिन कुटुम्ब में जब हर तरह की हीनता और विकृति पैदा होती है तब कुटुम्ब-सस्था का विसर्जन करना जरूरी होता है ।

प्राचीन काल में हम ने अविभक्त कुटुम्ब का आदर्श अपने सामने रखा था । उस के लिए जो परस्पर सहकार, आत्मीयता और उदारता आवश्यक थी वह जब तक कायम थी तब तक अविभक्त कुटुम्बा ने बड़े पराक्रम करके दिखाये । इन आवश्यक सद्गुणा के अभाव से जब पुरुषाय क्षीण हुआ तब अविभक्त कुटुम्ब के आदर्श ने कुटुम्ब सस्था को किसी न किसी तरह स्थिर बनाने के लिए भारी सहायता दी थी । लेकिन आगे चल कर जब यह दिखाई दिया कि कुटुम्ब वृत्ति के ही नष्ट होने के बाद अविभक्त कुटुम्ब की श्रायम करने के प्रयत्नो से नरक के जसी परिस्थिति पैदा हुई है तब लोग उग्र गये और अविभक्त कुटुम्ब-पद्धति की ही टीका करने लगे और उसे करीब-करीब छोड़ ही दिया । इस से सामुदायिक जीवन निमल तो जरूर हुआ, लेकिन कुछ थोछ सद्गुण भी उस के साथ क्षीण हो गये ।

अविभक्त कुटुम्ब पद्धति में एक ही व्यक्ति का आधिपत्य हो और बाकी लोगों को कुछ भी अधिकार न हो, ऐसी पुरानी रचना थी । यह दोष दूर किये बिना अब बड़े कुटुम्बों की स्थापना नहीं हो सकती । लेकिन अब बड़े कुटुम्ब स्थापित करने के बदले समाजसत्तावादी राज्यपद्धति अमल में लाने की तरफ मानव जाति बढ रही है । यह अच्छा ही है ऐसा कहना मुश्किल है । लेकिन आज की हालत में वह अपरिहाय मालूम होता है । हालांकि नये आदर्श को लेकर सव-सत्तात्मक संयुक्त कुटुम्ब पद्धति का पुनर्जीवन करना अधिक इष्ट है । और भिन्न भिन्न व्यवसाय वाले अनेक कुटुम्बों का राजसत्ताविहीन कौटुम्बिक समाज स्थापित करने का प्रयोग करने योग्य अवश्य है ।

(मई १९६३)

आपद्धर्म या प्रधान धर्म

इन दिना कई अमेरिकन मनीपिया से व्यावहारिक हिन्दू धर्म के बारे में चर्चा होती रहती है। बड़े चाव से सुनते हैं और भावों के सवाल भी पूछते हैं। अभी अभी चन्द लोगों ने एक सवाल पूछा, सन्तति नियमन के बारे में हिन्दू धर्म की दृष्टि क्या है ?

मैं ने कहा, 'हम लोग इस सवाल को नतिक दृष्टि से सोचते हैं। आप के रोम कथलिक धर्मगुरु जिस 'धार्मिक दृष्टि से इस धार में निणय दते हैं, वैसा हमारा रख नहीं है।

उपनिषदों की अगर हम अपने धर्मग्रन्थ कहें तो एक उपनिषत् के मिलवाण्ड म (परिशिष्ट मे) जो नसोहत है उसे पढ़ते कहना पडगा कि हमारे ऋषि तत्त्वतः स तति नियमन क विरुद्ध नहीं थे। वहाँ बताया है कि पति-पत्नी अगर सन्तति की इच्छा करते है तो मिलन के समय अमुक ढग से प्राणायाम करें और अगर पति-पत्नी चाहें कि मिलन के फलस्वरूप सन्तति पैदा न हो तो दूसरे अमुक ढग से प्राणायाम करें। यह जो तरीका बताया है वह कारगर है या नहीं यह देखने का काम हमारा नहीं है। हमारे लिए इतना बस है कि उपनिषत् के ऋषि को सन्तति नियमन का तत्त्व माय था। और वे उस के लिए अपने खयाल के अनुसार कुछ रास्ता भी बताने के लिए तयार हुए थे।

मुझे इतना ही कहना है कि हिन्दू धर्म हमेशा जीवन के प्रति बानानिक दृष्टि रखता आया है। खरी इतनी ही है कि हमारा विज्ञान केवल भौतिक नहीं, किन्तु भौतिक के साथ-साथ अथवा भौतिक से अधिक आध्यात्मिक विज्ञान की दृष्टि से हमारे ऋषि सोचते थे और सलाह देते थे।

उन्होंने देखा कि केवल जीना यही जीवन का उद्देश्य नहीं हो सकता। जीवन जीते कुछ शारीरिक और मानसिक सुख मिलना अवश्य है। लेकिन ऐसा

यह तय किया और ऐसे आदर्शों को पुरुषाय का नाम दिया। धर्म, अथ, नाम और मोक्ष ये हैं चार पुरुषाय। धर्म में स्यास दृष्टि रखी जाती है सामाजिक जीवन की। सामाजिक जीवन अगर सफल रहा तो व्यक्ति और कुटुम्ब ही नहीं, सारा मानव वश सुखी होगा। और परम उत्कृष्ट तब पहुँच सकेगा। इस लिए सफल सामाजिक जीवन के लिए जिन जिन सद्गुणों का विकास करना चाहिए और जिन जिन वृत्तियों का समय करना चाहिए उस का विस्तार कर के उसे नाम दिया धर्म और कहा कि मनुष्य को स्वच्छन्द नहीं बनना चाहिए। धर्मतंत्र क अधीन रहना चाहिए। मनुष्या में जो कामवासना है और अथप्राप्ति की लालसा है दोनों को धर्म के मातहत जीना चाहिए। तभी मनुष्य का परम कल्याण होगा।

इस लिए आप देखेंगे कि कामवासना कुदरती है इस लिए जीवन में उसे पूर्ण अवकाश मिलना ही चाहिए ऐसी अर्धनानिक दृष्टि है दो धर्म की नहीं है। काम की प्रेरणा कुदरत ने इतनी शबरदस्त रखा है, इस लिए कि प्रजातनु का व्यवच्छेद न हो, नाश न हो। लेकिन साथ यह भी वचन है—

एतत् कामपुं लोके यद् द्वयो एकचित्तता।

दो व्यक्तियाँ अधिक से अधिक एकचित्तता उत्पन्न करने के लिए ही विवाह-सम्बन्ध की कल्पना की है। गृहस्थ धर्म, दाम्पत्यधर्म इस लिए पवित्र है। उस में दो जीवों का मिलन समाज के उत्कृष्ट के लिए है। सम्भोग और समय भोग और त्याग दोनों का समन्वय उस में है।

इस लिए वृत्ति के समय को ही प्रधानता दी गयी है। जो योग समय का महत्त्व नहीं समझते वे भी पति पत्नी के बीच परस्पर निष्ठा की अपेक्षा तो रखते ही हैं। इस परस्पर निष्ठा की उत्कृष्टता समय के बिना सिद्ध नहीं होती। विवाह सम्बन्ध में सेक्सलाईफ और लवलाईफ—यौन-सम्बन्ध और प्रेम सम्बन्ध—दोनों का एकत्र खयाल किया होता है। और प्रेम सम्बन्ध को उत्कृष्ट बनाने की ओर पूरा झुकाव रखा है। यौन-सम्बन्ध को गौण बनाना प्रेम-सम्बन्ध को सर्वोपरि मानना और दोनों को धर्म की मर्यादा में रखना यही है मानवता का तकाजा और यही है मानवता का उत्कृष्ट। इस आदर्श तक समाज को ले जाना और अन्त में हर तरह की दासता दूर कर के जीवन को कृतार्थ करना यही है—मोक्ष का आदर्श। धर्म की प्रधानता न रही तो मोक्ष असम्भव है। (यहाँ धर्म के मानी हिन्दू, यहूदी, मुस्लिम, ईसाई इत्यादि सम्प्रदाय नहीं किन्तु इन सब धर्मों को धर्म बनाने वाला जो परम धर्म है, जो शुद्ध धार्मिकता है उसी से मतलब है।)

गीता में कहा है—‘धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतपुत्र ।’ जो काम धम का द्रोह नहीं करता वही विभूति का स्थान प्राप्त कर सकता है ।

जहाँ मनुष्य प्रधान धम का, उत्तम धम का पालन करने में समर्थ नहीं है, वहाँ उस के लिए, उस के स्वभाव और परिस्थिति के अनुरूप आपदधम बताया जाता है । हिन्दूधम में आपदधम के लिए अवकाश है । लेकिन साथ साथ यह भी कहा है कि जो व्यक्ति प्रधान धम के पालने के लिए समर्थ होते हुए भी आपदधम का आश्रय लेता है उस का जीवन निष्फल होता है और उसे धमपालन का समाधान नहीं मिल सकता ।

आजकल की सतत नियमन की प्रवृत्ति आपदधम को प्रधान धम का स्थान देती है, यही है उस की सबसे बड़ी कमजोरी । प्रेमधम और समाजधम की बसोटी पर जो खरा उतरे वही है उत्तम धर्म । दुबलता के कारण जहाँ कुछ गौण रास्ता ढँदा जाता है वह है आपदधम । प्रेमधम और समाज धम का जिस में द्रोह है वह है अधम ।

(१४ फरवरी १९६६)

त्याग और सयम

गये, पुराने सभी तत्त्व कहते हैं कि त्याग और सयम ये दो तत्त्व मानव सस्कृति की बुनियाद हैं । लेकिन जब किसी समाज का त्याग और संयम का स्वीकार करने की मूचना की जाती है तब लोग कहने लगते हैं कि हम कोई साधु महात्मा नहीं हैं, हमें समाज में रहना है । ईमानदारी से रह कर एहिक सुगम का उपभोग लेना है । हमें स्यासी के समान अरसिक नहीं रहना है ।

अब बाद लोग यह भी कहने लगे हैं कि स्वर्ग-नरक हम कुछ नहीं जानते । इस दुनिया में ही जो कुछ स्वर्ग या नरक अनुभव करेंगे वही हमारा लिए सही है । और मृत्यु के बाद अगर स्वर्ग-नरक होंगे ही तो वह नरक टालने जितनी तयारी हम इस जन्म में करेंगे । लेकिन मरने के बाद के स्वर्ग-नरक के लिए इस जन्म में तयारी मरी विदगी जीने के लिए हम तयार नहीं हैं । हमारा ईश्वर, हमारा स्वर्ग और हमारा पनजन्म इसी दुनिया में है । और उस हम प्रामाणिक रूप से 'सनातन मनुष्य-समाज' का नाम से पहचानते हैं । हम लोगों को त्याग और सयम का अर्थ न जान पर भा उन को यह तत्त्व मान्य नहीं है ऐसा नहीं

लगता । उन के सामने जैसा आदर्श ही बस शब्दा में और उतने प्रमाण में अगर उन को त्याग और सयम सिखाया जाय—सुझाया जाय तो उन के मन में विरोध पैदा नहीं होता ।

सामान्य लोग जब कहते हैं कि मोक्ष प्राप्त करने के लिए सत्यास लेना ही चाहिए, तब उन की मोक्ष की कल्पना प्रायः गलत होती है । और गलत न हो तो भी बिल्कुल सङ्कुचित होती है । और सत्यास शब्द का अर्थ भी बिल्कुल अङ्गिप्रस्त हो गया है । मोक्ष यानी छुटकारा, सत्यासी यानी दुनिया की झल्लट से ऊब कर जीवनरह टालने वाला पलायनवीर और उस का मोक्ष यानी फिर से यह झल्लट पीछा न करे ऐसी शून्य स्थिति ऐसा लोग समझते हैं । ये लोग कहते हैं कि जीवन में सुख दुःख दोनों हैं । दोनों क्षणजीवी हैं । दोनों तुच्छ हैं । लेकिन ऐसा होते हुए भी इसी जीवन में उच्च हेतु से अनाथा के लिए लड़ना, अन्यायी जनता का अज्ञान दूर करने के लिए अखण्ड मेहनत करना और ज्ञान क्षेत्र का विस्तार करने के लिए अखण्ड खोज करते रहना इन सब में जो जीव नानुभूति सुख और दुःख दोनों के द्वारा समृद्ध बनती है वह कोई त्याग्य पदार्थ नहीं है । कायरता और निठल्लापन ही अगर विरक्ति का लक्षण हो तो वैसी पलायनवीर कामचोर विरक्ति हमें नहीं चाहिए । जानीपासना, ज्ञानप्रचार और अत्याय का प्रतिकार इस त्रिविध जीवन सेवा में जो कुछ आनन्द प्राप्त होगा वही निर्दोष और पवित्र समझ कर उस को हम स्वीकार करेंगे और जो-जो धृतिर्या इम त्रिविध सेवा के माग में आयगी उन का त्याग करेंगे ।

ऐसे लोग से कहना चाहिए कि इस से अधिक हम कुछ चाहते भी नहीं हैं । समाज यानी अपनी छोटी-सी या बहुत बड़ी टोली है ऐसा अर्थ मत कीजिए । अपना जाति, अपना राष्ट्र या अपनी संस्कृति तक ही अपना समाज सीमित है ऐसा न मानते हुए अशेष मनुष्य समाज को अपना कहने से और इस मनुष्य समाज को सहकारिता में जिन पशु-पक्षियों को हम ने शामिल कर लिया है उन सब को अपना कहने से समाज की कल्पना शुद्ध बनती है । और ऐसे समाज का हित केवल वर्तमान पीढ़ी की दृष्टि से न देखते हुए सावकालिक हित की चिन्ता करने से जीवन अपने आप शुद्ध बनता जाता है और समृद्ध भी बनता है ।

ऐसे इस सम्पूर्ण समाज की पहचान के लिए या उस की सेवा करने के लिए अगर हम दुनिया भर इधर-उधर भटकने लग जायें तो जीवन कृताय बनने के बजाय पागल्पन ही पल्ले पडगा ।

इसलिए सम्पूर्ण समाज को पहचानने के लिए उस समाज की आत्मा पहचाननी चाहिए । सरकार को जो कर देने का होता है वह हम कहीं भी हो तो

भी नज्दाक के खजाने में भर देने से जिस प्रकार सरकार के पास पहुँच जाता है उसी प्रकार विराट सनातन समाज की आत्मा को पहचानने के बाद उस के अनुसार बरतते हुए कहीं भी जो कुछ भी प्रभावप्रति कर्म स्वधर्म के रूप में उपस्थित हो जाय उस का पालन करना विराट सनातन समाज की सम्पूर्ण सेवा करने के समान ही है। पारिभाषिक शब्दों में कहना हो तो व्यक्तिगत स्वधर्म एकांगी धर्म नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण स्वधर्म की ही वह एक विभूति होती है।

ऐसे समाज की सेवा करने के लिए समाज की आत्मा का साक्षात्कार होना आवश्यक है। इस साक्षात्कार के लिए जो कुछ पूर्व तैयारी करनी पड़ती है उसी को त्याग और समर्पण कहते हैं। साक्षात्कार होने के पहले त्याग और समर्पण मनुष्य की माध्यात्मता होता है। पूर्ण साक्षात्कार के बाद यही तत्त्व उस का सहज स्वभाव बन जाते हैं। दुनिया छोड़ कर भाग जाने वाले लोगों को तामसिक सुख मिलता होगा। गायब वह सात्त्विक सुख भी साबित होगा। लेकिन उसे कतई भोग नहीं कहा जा सकता। समाज हित और अपना हित यह द्वन्द्व जिस के जीवन में समाप्त हुआ उस मनुष्य का सम्पूर्ण विकास हुआ। इस विकास के लिए अपना शरीर, अपना मन अपनी आदतें और अपने सम्बन्ध शुद्ध कर के योग्य रूप में दृढ़ करने का जो कार्यक्रम, उसी को साधना कहते हैं। जीवन का आदर्श शुद्ध होने पर ही यह कार्यक्रम, जीवनक्रम या साधना साध्य होते हैं।

कौई धरणी वासनाश्रा पर विजय पाने के लिए सत्कार त्याग कर बन में जाता है। वहाँ पर भी एक स्थान पर नहीं रहता। मन विकारी होगा इस लिए स्त्रियों का सम्पर्क भी होना नहीं देता। स्यात् पर विजय पाने के लिए नीरस अन्न खाने की आदत डालता है। अधिकार मद् पैदा न हो इस लिए अधिकार के स्थान छोड़ देता है। इष्य प्राप्त करना उस का सपना करना और उस का उपभोग करना इन तीनों बातों से वह अशान्त रहता है। और इस प्रकार विजयी हो कर सुग-शांति अलितता और जीवन-गुण्डि प्राप्त कर लेता है।

जीवन-गुण्डि प्राप्त होने के बाद भी वह अपनी यह साधना छोड़ना नहीं चाहता।

एक मनुष्य का जीवन शुद्ध होता है या गूँथ उस का विचार उसे अपने ध्यान करना होगा। हमें उस का साक्षात्कार नहीं करना चाहिए। उस का अनुभव उस को आ कुछ कहना पड़े नहीं। उस का जीवन-साधना हमें बाधनी मानना नहीं होगा अशान्त होगा, लज्जा होगा। कुछ भी है उस के जानने को चर्चा नहीं करना है टोका होगा।

हमारे यहाँ क्षत्रिय के आदश के रूप में पहचानी जाने वाली एक साधना है। आदश क्षत्रिय कहता है कि सुखोपयोग अगर मेरे हिस्से में आये तो सदाचार के अनुसार जो कुछ भी सुखोपयोग आयेंगे उन का मैं निश्चयन कर स्वीकार करूँगा। मात्र इतनी सावधानी जरूर बरतूँगा कि वह मुझे घेर न बैठे, मुझ पर हावी न हो जायें।

उसी प्रकार कितना ही दुःख मुझ पर क्या न आ पड़े और वह मुझे दीघकाल तक क्यों न सहना पड़े मैं उस से नहीं दबूँगा। दारुण दुःख के सामने भी मेरा चारित्र्य अभाग रहे ता ही मैं सच्चा क्षत्रिय हूँ। तपस्वी बन कर मैं दुःख को व्यर्थ यौता नहीं दूँगा। तपावृद्धि के नाम से दुःख को ही सुख मानने की साधना मैं नहीं अपनाऊँगा। दुःख को दुःख मानूँगा और सुख को सुख। लेकिन दुःख के कारण मेरे कतव्य-मालन में छोटा भाग फ़क नहीं आयेगा और सुख-सेवन के कारण मेरे चारित्र्य में ढिलाई पैदा नहीं होगी इस बात की सावधानी मैं अक्षण्ड रखूँगा।

यह आदश जो सम्पूर्ण दृष्ट से सागापाग समझा है और जिसे वह माय्य ह उस से विशेष कुछ कहने का बाकी रहता ही नहीं। जितना त्याग और समय वह इष्ट समझता है उतना ही उस के लिए इष्ट है। त्याग और समय का आदश वरागी के पास से नहीं, बल्कि सच्चे वीर के पास से—सच्चे क्षत्रिय के पास से सीखना चाहिए।

दूसरे षट्क लोग कहते हैं कि वैरागियों का सत्यास युग जिस तरह बीत चुका उसी तरह कमर में तलवार लटका कर अनाथों का रक्षण करने के लिए दश भर में भटकते रहने वाले क्षत्रिया का युग भी अब बीत चुका है। हम अब आप का धान-युग मानते ही नहीं हैं। वह आदश ही गलत है। मुट्ठीभर लाग दुःख निवारण का घ घा करें और अधिकांश जनसमाज अनाथ बन कर ऐसे क्षत्रियों का भूँह ताकते रहें यह हमें माय्य नहीं है। हर एक को अपना रक्षण करना सीखना चाहिए। अगर यह मुमकिन न हो तो सब मिल कर सब का रक्षण करें। यही सच्चा धर्म है। एक के लिए जिस तरह दूसरा कोई मोहन नहीं कर सकता (पितरों के लिए ब्राह्मण भोजन करते हैं उन को क्षमा है), एक के लिए दूसरा सो नहीं सकता उसी तरह पानोपासना और आभरण क धारे में दूसरो पर निर्भर रह कर स्वयं इस मन्त्र के क्षेत्र में अकर्म्य रहना ठीक नहीं है।

इसलिए हम अपने सामने कबल प्रामाणिकता का आग्रह रखते हैं। न तो क्षत्रिय का, न सत्यासी का ही।

इस धार्मिक के साथ हमारा कोई झगड़ा नहीं है। प्रामाणिकता का आत्म बिल्कुल साथ और जीवा मान्य हुआ तो भा उग में सब कुछ आ जाता है।

प्रामाणिक मनुष्य को इनाम ही पुरस्कार होगा कि अगर आप के पुरस्कारों ने पाप-पचास लोगों को उग कर पाप-मुक्ति दिया हो और उग का निरगा आप को मिले तो यह पाप का पीछा आप हट्टम कर बैठेंगे या उग का त्याग करेंगे ? और आप भी आप के व्यवहार में अगर पार छोड़ा के सहकार से आप को धन प्राप्ति हुई या प्रतिष्ठा मिली तो उग का योग्य हिसा—प्रामाणिक हिसा अपने साधोदारों को देंगे या नहीं ? प्रामाणिक मनुष्य को जो आत्मनिर्भर बमानी पकती है वह यरागी स बग दर्जे की नहीं होती और उग की ऐतद्विना दानियों से बम हो ता भी काम नहीं चल सकता। सभी सद्गुण एक ही हैं। शुद्ध रूप में उन के नाम और भूमिकाएँ भिन्न भिन्न हों तो भी सब का मूल एक ही होगा। दुनिया में जो बरागी होते हैं ये आप मत धिए। यत्र, नियम मत कीजिए। शानिय धन कर अचाय का पीछा करने का द्रष्टा पाएँ आप मत कीजिए। लेविन जहाँ कहीं भी हों, प्रामाणिकता से जीना प्रारम्भ करते ही हर रोज, बदन-बदन पर समय और त्याग के प्रसंग उपस्थित होने लगे हैं।

शुद्ध जीवन आसान जीवन नहीं है। मन में उठने वाली भिन्न भिन्न असा माजिक धारणाओं को दूर करके बिना समाज में प्रामाणिकता से बरतना मुमकिन नहीं होता। और ऐसी धारणाएँ पैदल दवाने से काम नहीं चलती। उन का पूरा नाश करने से ही हम निश्चित होकर समाधान स जी सकते हैं। अर्थात् समय स्वामाविक और सुवचर होने पर ही प्रामाणिकता की साधना सिद्ध हुई एगा वह सकते हैं।

और समाज सभी कुटुम्ब के सब व्यक्तियों के हित का महत्व पहचान कर माय से हरएक का हिस्सा हरएक को देना ही तो त्याग है।

बसे देखा जाय तो आजकल के लोगों के मन में त्याग और समय शब्दों के बारे में ही घणा पैदा हुई है। इन शब्दों की बुनियाद में जो शुद्ध तत्व है उन के लिए सज्जनों के मन में आदर भाव की कमी नहीं है। और जिस का कारण भी स्पष्ट है। सयासी बरागियों ने और साधुओं बाबाओं ने त्याग और समय का ठेका अपने पास रखा और वह आदश बरवाद किया। परम्परागत रूढ़ियों को छिछलने और अथविहीन निष्पयोगी नहर में से इन सद्गुणों का प्रवाह उहाँने पहले बहने दिया। आगे चल कर यह प्रवाह बहना भी बन्द हो गया। और उसे एक छोटे स छोलर का रूप मिला। फिर लोगों को उस में स बदनू न आवे तो और क्या होगा ?

जो सच्चे समाजसेवी त्यागी और सयमी हो उन को चाहिए कि वे दुनिया से अलिप्त न रहें। अपनी रहन-सहन दुनिया से भिन्न बना कर अपनी एक अलग जाति पैदा न करें। ऐसे लोगो को सिन्दूर लगा कर देव बना कर अपने समाज में से एक तरफ रखने की कला समाज को साध्य है। हम आप को पूज्य कहेंगे, आप का आदर करेंगे, लेकिन आप हमारे व्यवहार में दखल मत दीजिए' इस तरह समाज वही नज़रता से लेकिन साफ़ साफ़ कहता रहता है। "आप ठहरे महात्मा लोग। आप के लिए जो सम्भव है वह हमारे लिए कैसे सम्भव होगा?" इस तरह बार-बार कह कर समाज यही चाहता है कि ये लोग सामाजिक आदश सुधारने की कोशिश न करें। भक्ति करेंगे आप के आदश की, लेकिन आचरण होगा भिन्न आदश का इस तरह के वर्ताव का समाज आती हो गया है। इसलिए समाज-सर्वक को चाहिए कि वह अपनी शुद्धि की रक्षा कर समाज में दस लोगो में घुल मिल कर रहने की कोशिश करे। और दस लोगो में रह कर भी त्याग और सयम का पालन किस प्रकार चुपचाप हो सकता है यह बतावे। इसी तरह ये आदश समाज में घुस कर समाजत्यापी बनेंगे और आखिर सारे समाज का उद्धार होगा।

त्याग और सयम को आप आदश कहिए या सामाजिक वृत्ति कहिए, समाज की बुनियाद ही उन पर आधारित है। इतना ही नहीं बल्कि जीवन का सच्चा आनन्द भी इन पर ही निर्भर है।

कबीर ने एक जगह कहा है कि त्याग गौतल होना चाहिए आक्रोशयुक्त नहीं। त्यागी मनुष्य का मुखभाव भूखे मनुष्य की तरह न हो, बल्कि अपने बच्चे के लिए सब तरह का त्याग कर के सन्तोष मानने वाली माता के समान प्रसन्न होना चाहिए। सच्चे त्याग सयम के यह एक कसौटी ही है।

(१२ अगस्त १९२८)

नया वानप्रस्थ

हमारे चार आश्रमों में से वानप्रस्थ आश्रम का चिन्तन इन दिनों नहीं हो रहा है। वहीं भी देवें गृहस्थाश्रमी लोग तो सब जगह होते ही हैं। सयासी इन दिनों पढ़ते की अपेक्षा कम पाये जाते हैं। लेकिन वे भी हैं सही। वानप्रस्थाश्रम, गृहस्थ और सयास का बीच का एक विषममक है। उस जीवन का वगन

अनेक स्मृतियों में धीरे-धीरे इतिहास-पुराणों में पाया जाता है। लेकिन उस का पूरा चिन्तन द्वा दिया नहीं हो रहा है।

गुजरात में सेवानिवृत्त पण्डितों के लिए वागप्रसन्न गुरु मठों का विचार ले चला कर देना, लेकिन यह चला नहीं।

स्मृतियों में और पुराणों में वागप्रसन्न जीवन के बहुत गूढ़ धर्म आते हैं। उस पर से जो अनुमान निकलते हैं उस का हम पहले विचार करें।

ब्रह्मचर्य आश्रम विद्या और संस्कृति की पूज्य संपत्तियों के तौर पर है। वागप्रसन्न आश्रम संस्थाओं की संपत्तियों के लिए है। बाकी मनुष्य के सामाजिक जीवन का और सब पुरुषार्थ का प्रधान समय गृहस्थाश्रम ही है। जब शरीर विरोगी और मजबूत होता है, दृष्टियाँ चमकती हैं और तन होती है, उन्हीं समय मनुष्य को चाहिए कि वह सब तरह का पुरुषार्थ करे। आपु के इस समय प्रभावशाली काल को संस्कृत में 'व्यस्ययसु' कहा है। इस उम्र में धन, कौशल प्रतिष्ठा आदि का कर और अच्छा को उच्च शिक्षा और संस्कार दे कर जब मनुष्य कृताप होता है, तब स्वाभाविकतया वह आराम तल्प बनता है सब तरह के सुख प्राप्त कर के संतुष्ट होता है समाज की सेवा कर के प्रतिष्ठा पाता है और बाकी के दिन सुख, सातोप और निश्चित अवस्था में व्यतीत करना चाहता है।

जिस तरह यौवन का उमाद होता है वैसा ही पुरुषार्थ पराश्रम का भी उमाद होता है जिसे महत्वाकांक्षा कहते हैं। जब इन का अन्तर पूरा होता है, तब मनुष्य आराम ढूँढ़ने बैठता है, कुछ गिथिल भी होता है। लेकिन यह अवस्था काफी दिन तक मनुष्य को पसन्द नहीं आती। आराम और सुख अच्छे हैं, लेकिन शिथिलता अच्छी नहीं है। मनुष्य जरा-सा नाजुब बदन होते ही घबड़ा जाता है और चाहता है कि मैं फिर से हट्टा-कट्टा और सहनशील बनूँ।

सुखोपभोग की मात्रा बढ़ने पर कुछ तन हो कर मनुष्य चाहता है कि अब मैं फिर से सातोप की ओर मुड़ जाऊँ। और तीसरी बात इस से भी अधिक महत्त्व की है। मनुष्य सोचता है कि अब जब मैं धन नहीं कमाता हूँ तब घर वालों की और समाज की सेवा लेने का मुझे अधिकार क्या है? जिस ने धन कमाना छोड़ दिया उसे चाहिए कि वह अपना स्वर्चा भी कम कर दे और लोगों की सेवा लेने की अपेक्षा स्वावलम्बन से ही अपना शेष जीवन व्यतीत करे।

ये तीनों आदर्श मन में रख कर सामाजिक जीवन से मुक्त हो कर निवृत्त जीवन का अनुभव करने की मनुष्य को इच्छा होती है जिसे हमारी संस्कृति ने संन्यास का नाम दिया है।

संन्यास जीवन आसान नहीं है। बुढ़ापे में यात्रा करते रहना, भिक्षा माँग

कर पेट भरना और मन का सांसारिक धाता में से लींच लेना आसान काम नहीं है। इस की पूव तयारी करनी ही होती है। वही है वानप्रस्थ आश्रम।

जब लोग बारह-बारह घरस घर धर धर और छह वेदांग का रटन करते थे, गृहस्थाश्रम में घर में अग्नि रख कर हवन करते थे, तब का वानप्रस्थ आश्रम अलग था। आज उसे कोई भी सजीवन नहीं कर सकता। यज्ञ-संस्था अब हमारे सामाजिक जीवन में से हट गयी है। ऐसी हालत में वानप्रस्थ आश्रम को क्या ही रूप देना होगा।

जब मनुष्य इस तीसरे आश्रम में प्रवेश करता है तब वह अपने को धन वमान व भार से मुक्त करता है। साथ-साथ घर का व्यवहार चलाने का भार अथवा अधिकार उस छोड़ देना चाहिए। उस को आत्राविका चलाने का कतव्य समाज का है और उस का कतव्य है समाज का हित करने वाली संस्थाएँ चलाने का और जब समाज माँगगा, उसे सलाह देने का। वानप्रस्थ आदमी का आर्थिक भार किसी एक संस्था पर न रखत हुए अगर सारे समाज ने उस का प्रबंध कर दिया तो ज्यादा अच्छा होगा। फिर उस की योग्यता और समाज का गरज के अनुसार समाज उस से काम ले सकता है अथवा वह स्वयं अपनी अभिरुचि के अनुसार समाज-सेवा का कोई-न-कोई काय पसंद कर सकता है।

समाजसत्तावाद (Socialism) में अक्सर सम्पत्ति की मालिका समाज की होती है। वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करने वाले सब लोगों का जीवन समाज को अर्पित हाता है।

इस तरह से व्यक्तिगत जीवन का पूरा सकोच कर के जब मनुष्य अपने जीवन के द्वारा पूरा-पूरा सामाजिक बनता है, तब सामाजिक सरकार चलाने के लिए जा नतिक भूमिका आवश्यक होती है समाज को आसानी से मिलती है।

अपने शरीर द्वारा और परिपक्व अनुभव द्वारा समाज की सेवा करते-करते जब मनुष्य का शरीर और मन एक जाते हैं और चित्तवृत्ति अलिप्त हो कर निवृत्त जीवन की इच्छा करती है तब मनुष्य चाहे तो संन्यास आश्रम में प्रवेश करे और सब सामाजिक बंधन छोड़ कर दुनिया के सब मनुष्यों को और प्राणी मात्र को अपनी ओर से अमयदान दे कर ऐसा भूमिका पर आरूढ़ हो कि मानो वह सब प्राणियों के दादा का दादा है। मन में वह कहे कि 'ये सब मेरे ही बच्चे हैं। इन में अपना और पराया ऐसा भेद कैसे बहूँ? मैं न किसी का पाप कहूँगा, न किसी को सजा। मेरा हृदय विश्व हृदय बन गया है। सब के लिए समा सब के लिए करुणा और सब के प्रति आत्मीयता प्ररित मन्त्रीभावना यही अब हो गयी है मेरी चित्तवृत्ति।

वानप्रस्थ आश्रम ऐसे 'वसुधैव कुटुम्बकम्' वाली सत्यस्त वृत्ति की पूव तैयारी होगी । उस म निष्काम कमयोग परिपक्व होगा ।

(१६ जून १९६४)

सन्यास आश्रम या वृत्ति ?

महात्मा गांधी ने सत्यास-आश्रम और सत्यासी वृत्ति की ओर ध्यान खींचा और कहा कि सत्यास-आश्रम को हिंदू धर्म म महत्त्व का स्थान ह । विश्व कल्याण की योजना में सत्यास-आश्रम अपना महत्त्व रखता ह । लेकिन सत्याग्रहाश्रम की स्थापना चार आश्रम की व्यवस्था के लिए नहीं ह । गीता में जनक आदि राजाओं की जिस वृत्ति की प्रशंसा की ह वही वृत्ति आश्रम को अभीष्ट है । सत्यास-आश्रम में जिस ने प्रवेश किया उस से हर तरह की सेवा लेते हिंदू समाज सकोच करता ह, इस लिए आश्रमवासी के लिए गेखवा वस्त्र पहनना इष्ट नहीं ह । सेवा धर्म म जो चीज बाधक होती ह, उस से दूर रहना चाहिए— यह थी गांधीजी की मायता ।

गांधीजी की दृष्टि को स्वीकार करने पर भी सत्यास-आश्रम में प्रवेश करने की पुरानी इच्छा मर नहीं गयी थी । जब अतमुख हो कर चित्तशुद्धि का प्रयत्न किया तभी निश्चय हुआ कि सत्यास आश्रम के लिए आवश्यक त्याग, वराम्य और उपशम की साधना अधूरी ह । इस लिए भा सत्यास की बात छोड़ देनी चाहिए ।

साधक के रूप में रहना, जीवन के तरह-तरह के प्रयोग करते रहना और जीवन विषयक तत्त्वज्ञान परिपक्व होने देना यही सच्चा मांग ह । इस के लिए जितनी स्वतंत्रता आवश्यक ह उतनी स्वतंत्रता रखकर ही मनुष्य प्रगति कर सकता ह ।

यह भी अनुभव हुआ कि जिस तरह समुद्र में ज्वारभाटा का बुदरती नियम ह उसी तरह जीवन में भी नियतकालिक नहीं किन्तु किसी अनात प्रकार से साधना में भी ज्वारभाटा आ जाता ह । साधनाक्रम कभी उत्कट होता ह, कभी झीला होता ह । उप्रति की दृष्टि से दोनों के लिए स्थान ह । अगर जटदबाजी से भागे बने तो कच्चापन दूर करने के लिए कुछ पीछ भी जाना पड़ता ह । जितनी प्रगति पक्की हुई, उतनी ही जीवन विकास की सच्ची बुनियाद मानी जा सकती है ।

व्ययनस्पति को जिस तरह सुदरत मदद करती है उसी तरह उम्र भी मनुष्य को उस की साधना में मदद करती है। ऋतु चक्र के परिवर्तन के अनुसार जिस तरह हम दिनक्रम में आहार विहार में और कपडे विस्तर में परिवर्तन करते हैं, उसी तरह बचपन, जवानी, बुढापा आदि अवस्था के अन्तर के अनुसार हम जीवन के आदर्श और प्रवृत्ति में परिवर्तन करते जायें तो वह हर तरह से सहायक और पोषक होता है और चित्तवृत्ति हमेशा के लिए प्रसन्न रहती है।

जवानी के दिना में जैसे प्रवृत्ति, पराक्रम और पुरुषार्थ का विस्तार बढ़ाया जाता है, उसी तरह उत्तरावस्था में भी मनुष्य को अपनी प्रवृत्ति का यथाक्रम सक्रोच करना चाहिए और वह सब इतनी सुदरता से और प्रसन्नता से करना चाहिए कि जब दुनिया से विदा होने का क्षण आयेगा, मनुष्य को सूखी स्तारिक के समान आसानी से गिर जाना चाहिए। (यह अन्तिम उपमा महात्माजी के मुख से सुनी हुई थी।) भारतीय आदर्श भी इसी ढंग का है और वस्तुनिष्ठ है।

निवृत्ति समय पर लेना इसी में बुद्धिमानी है। लेकिन मनुष्य को उस की पहचान आसानी से नहीं होती। निवृत्त होने में कभी जल्दबाजी होती है, कभी देरी होती है। और उस की कीमत देनी पडती है।

आजकल के कमप्रधान जमाने में कहा जाता है, कि जब तक हम जिंदा हैं, कुछ-न-कुछ सेवा करनी चाहिए। निवृत्त होने का मनुष्य को अधिकार ही नहीं है। काम करते करते जब मनुष्य मरता है तब अंगरेजी में उस की कदर करते हुए कहते हैं—He died in harness—अत तक काम करते रहने का आदर्श अच्छा है। हाथ-पैर चलते दुनिया से उठ जाना भाग्य का लक्षण है। लेकिन किसी ने कहा है कि जीन कसो हुई हालत में मरना घोडे के लिए ही अच्छा है। असली बात यह है कि हरेक अवस्था का कार्य अलग होता है। पहलवान भी बुढाप में कुश्ती के अखाडे में नहीं उतरता, लेकिन दूसरो को कुश्ती की खूबियाँ सिखाने लगता है। गायक भी किसी दिन महफिल में गाना छोड देता है। इसी तरह सेवा के क्षेत्र में भी समयाचित परिवर्तन करना आवश्यक होता है। नहीं करने से काम बिगडता है। उत्तराधिकारिया को यथासमय मौजा नहीं मिलने से उन में मायूसी आती है मनुष्य की उत्तरावस्था जो सौरभमय होनी चाहिए कल्पित हो जाती है।

रघुवश के प्रारम्भ में ही कालिदास ने भारतीय राजाका वा जीवनक्रम सुदर रूप में प्रस्तुत किया है। वह बचपन में विद्याध्ययन की लालसा रहती थी। यौवन-काल में तरह-तरह के विषय जीवन के क्षेत्र और नये नये प्रदेश बढ़ाने की महत्वाकांक्षा के रखते थे। बुढावस्था में राजा मननगील हो कर

निवृत्ति का सेवन करते थे और सादगी से रह कर समाज पर अपना बोझ कम करते थे। और अन्तकाल नजदीक आने पर योगयुक्त हो चाला छोड़ देने थे।

इस तरह जीवन परिवर्तन करते रहने से सारी जिंदगी सुखमय, प्रसन्न और सुवामित्त होती है और समाज को ऐसे व्यक्ति से पूरा-पूरा लाभ मिलता है।

वदिक काल में चार आश्रम की जीवन रचना क्व शुरु हुई यह कहना मुश्किल है। बीच में सत्यास आश्रम की कठिनाई ध्यान में ले कर और कच्चे मन्थास से जा विकृति पैदा होती है, उसे सोच कर भारत के मनोपियों ने सत्यासआश्रम का कल्पवृक्ष कह कर बंद कर दिया था। बौद्ध जैन आदि सम्प्रदाय ने भिक्षु जीवन का महत्त्व बढ़ाया और श्री गणराचाय को भी सत्यासआश्रम की पुनर्स्थापना करना आवश्यक मालूम हुआ। गौरांग प्रभु ने भी भक्तिमार्ग के माध्यम सत्यास को चलाया। हमारे जमान में स्वामी विवेकानंद ने सत्यास-आश्रम की प्रतिष्ठा बलापी और सत्यासो-जीवन में सेवा करते रहने का आदर्श खूब उत्साह से प्रचलित किया। महात्मा गांधी ने सत्यास आश्रम के प्रति आदर व्यक्त करते हुए सत्यास आश्रम की अनावश्यकता बताया और सद्यस्त वृत्ति से रह कर जनासक्त भाव से विचारमय जीवन लोक सेवा में व्यतीत करने के आदर्श को प्रतिष्ठित किया है।

गांधीजी ने पुराने आदर्शों का आदरपूर्वक स्वीकार कर के उन में जो परिवर्तन किये उस में सत्यास-आश्रम और सद्यस्त वृत्ति का जीवन इस का भी सिद्ध होना चाहिए।

(११ मार्च १९१९)

सत्यासिनी आश्रम

‘राजा जनक आदि गृहस्थाश्रमी लोगों ने जिस सत्यासवाग का अनुपालन किया और जिस सत्यास योग का श्री गीता ने भी प्रतिष्ठित किया है वह तो एक सावभौम वृत्ति अथवा साधना है। वह खोज ही अलग है। हम आप से प्रश्न करना चाहते हैं कि चार वाग का साथ चार आश्रम का जा व्यवस्था हिन्दू सभ्यता में पायी जाती है उस का मायता आप दत्त है या नहीं? आज तक आप ने इस बार में जा किया है हम पर तो हम इतना ही समझे हैं कि सत्यास आश्रम के

बारे में आप के मन में सामायतया आदर है किन्तु सयास आश्रम की आज की परिस्थिति में आप आवश्यकता देखते नहीं। क्या यह बात सही नहीं है ?

“सवाल इस लिए उठा कि आप ने स्वामी विवेकानन्द के बारे में लिखते कहा है कि इन दिनों स्त्री-स यासिनी के स्वतंत्र बग की आवश्यकता है।”

प्रश्नकर्ता ने ठीक ही पूछा है। मैं ने गांधीजी का अभिप्राय स्पष्ट बताया है। उन के मन में सयास आश्रम के बारे में आदर था। तो भी वे नहीं चाहते थे कि समाजसेवक गेरुआ वस्त्र धारण कर समाजसेवा करने निकल। क्योंकि गेरुआ लिबास सेवा में विघ्नकारक है। सामाय लोग गेरुआधारी से सेवा नहीं लेते। सयासों की सेवा लेने में अधम समझते हैं। समाज की सेवा परिणीत भी कर सकते हैं और अपरिणीत भी कर सकते हैं। मानसिक सयास कोई ले तो कोई उसे मना नहीं करेगा। किन्तु सेवक सयास आश्रम की पोशाक न पहनें तो अच्छा।

जीवन के अनुभव से मेरी भी राय वही है। लेकिन मैं ने यह भी देखा है कि वृत्ति में त्याग वैराग्य आने के बाद उसे दृढ़ करने में गेरुआ कपड़े का उपयोग बहुत कुछ है। मनुष्य के सवल्प में दृढता होनी चाहिए। खास कर के वैराग्य में। लेकिन मनुष्य में कभी-कभी शिथिलता आ जाती है। वैराग्य में ज्वार भाटा पाया जाता है। ऐसे समय गेरुआ कपड़े की सामाजिक प्रतिष्ठा मनुष्य को मजबूत रखती है।

शीतकाल के दिनों में जिस तरह घर का वायुमण्डल गरम रखने के लिए अंगीठी की ज्वरत हाती है उसी तरह समाज के चारित्र्य की मात्रा उज्ज्वल रखने के लिए सत सत्पुरुष, महात्मा और साधु का बग जरूरी है। हम ने देखा है कि आश्रम में ब्रह्मचारी, सयमी, गृहस्थी और सयस्त वृत्ति के लोग तो थे ही, किन्तु ऐसे कोई अलग अलग बग बंध हुए नहीं थे। युवा ब्रह्मचारी आजम ब्रह्मचय का सवल्प करने के बाद भी अगर देव कि उस के लिए दाम्पत्य जीवन आवश्यक है तो वह वैसा कर सकता था। कोई कहता नहीं उस का उस में पतन हुआ है। सयमी गृहस्थाश्रमी के बारे में भी आश्रम में यही वृत्ति रहती थी। इस का एक लाभ यह था कि आश्रम के ब्रतों का पालन सदस्यों के लिए सहज था और आश्रमों की प्रतिष्ठा का बोझ ले कर किसी को चलना नहीं पड़ता।

इस मुक्त वातावरण के कारण शिथिलता के खिलाफ कोई दीवाल नहीं रहती थी। इसे आश्रम जीवन का दोष भी कह सकते हैं और गुण भी।

ऐसे सार अनुभव के परिणामस्वरूप मेरा अभिप्राय अब तटस्थ है। कोई

आदमी ठीक समझे तो गेरुआ वस्त्र धारण करे और उसे निभाने की पूरी-पूरी कोशिश करे। बच्चे वैराग्य के साथ स्यास लेना और फिर पछताना चारित्र्य सिद्धि के लिए अच्छा नहीं। कहते हैं कि भतहरि ने कई बार स्यास लिया और अपने को दुबल पा कर गृहस्थाश्रम में लौटे।

बौद्धों में स्यासिया को अपने गुरु से आना पा कर स्यास आश्रम छोड़ने की इजाजत है। उन का प्रधान सिद्धान्त है कि अगर दिल से वैराग्य समाप्त हो गया तो गेरुआ वस्त्र धारण करने में उस आश्रम का उपहास ही है।

हमारे जमाने में बौद्ध साधु श्री धर्मानन्द कोसम्बी अपने गुरु से इजाजत लेकर फिर से गृहस्थाश्रम में आये थे। राहुल साहृत्यायन ने भी रशिया जा कर विवाह किया था। दोनों के बारे में समाज ने तनिक भी क्षोभ नहीं प्रकट किया।

में समझता हूँ सनातन हिन्दू समाज के लिए इन दिना कोई निश्चित नीति तय नहीं हो सकती। रामकृष्ण मिशन के स्यासी समाजसेवा का और धर्मप्रचार का काय करते ही हैं। दूसरे भी करते हैं।

एक बात स्पष्ट है। स्वामी विवेकानन्द जैसे उज्ज्वल उदाहरण के साथ जब कोई मिशन या सघ स्यास आश्रम को चलाता है तब स्यासिया की प्रतिष्ठा भी रहती है और परम्परा का सेज भी रहता है। बाकी स्यास का और सस्या का तत्त्वतः सम्बन्ध बंध नहीं सकता। चन्द स्यासी किसी भी सस्या या मठ के साथ सम्बन्ध न रखते हुए अपनी तेजस्विता कायम रख सकते हैं और समाज की अच्छी सेवा भी करते हैं। और चन्द स्यासी तो गेरुआ कपड़े का नाम आगे कर के भिक्षा मागते सकोच अनुभव नहीं करते। अपने तीन लडकों को गुम्बुल में या ऋषिकुल में दाखिल कराने की अर्जों ले कर आये हुए ब्रह्मचारी भी मैंने देगे हैं।

यह हो गया पुरुष स्यासी के बारे में। स्त्री स्यासिनो का वग हो या नहीं इस बारे में प्राचीन काल से दो मत हैं। एक मत कहता है कि स्त्री स्वभाव में आत्यन्तिक वैराग्य नहीं है। कृदरत ने ही स्त्री को ऐसा काय दिया है जिस के कारण उस के स्वभाव में पुशपाश्लम्बिता हमेशा पायी जाती है। लोग बड़ी-बड़ी प्रभावशाली स्त्रियों का उदाहरण देते हैं और कहते हैं कि उन को किसी न किंगा ढंग से पुण्याँ का प्रोत्साहन अथवा सहारा आवश्यक हुआ था।

बुद्ध भगवान् तत्त्वतः मानते थे कि स्त्रियों को निर्वाण प्राप्ति का उतना ही अपिभार है जितना पुण्याँ को है। ता भी ये स्त्रियाँ को प्रशंसा देने को राजी नहीं थे। स्त्रियों का संघ में लन में सतरा दमत थे। गिम्पोत्तम आनन्द व आर्य के कारण उहाँन स्त्रियों का संघ में लिया अवश्य, लेकिन आज घालोन

में हम देखते हैं बौद्ध भिक्षुणियाँ का संघ नहीं है। पूछने पर कहते हैं कि स्त्रियों को दीक्षा कोई स्त्री ही दे सकती है और हमारे यहाँ इस वक़्त कोई बौद्ध भिक्षुणी नहीं है।

स्वामी विवेकानन्द ने बड़े उत्साह के साथ सन्यास आश्रम को नये ढंग से चलाया। उन की पिप्या भगिनी निवदिता से प्रेरणा पा कर रामकृष्ण मिशन ने सन्यासिनियों का आश्रम चलाया है। मैं मानता हूँ कि स्त्री-जाति के लिए ऐसे आध्यात्मिक प्रासाहन की विशेष आवश्यकता है। पुरुष के ऊपर तनिक भी आश्रित हुए बिना और ससार चक्र में फँस बिना निष्काम सेवामय जीवन व्यतीत करने का मौक़ा स्त्री-जाति को मिलना चाहिए। और ऐसे जीवन को समाज की ओर से बाकायदा मान्यता भी मिलनी चाहिए।

यूँ देखा जाय तो जिन स्त्रियों ने आजम वैधाय का पालन करना स्वीकार किया है वह अब एक तरह से सन्यासिनियाँ ही हैं। हिन्दू समाज में ऐसी कई विधवाएँ हैं जिन्होंने अपने तेजस्वा शीतल बरग्य के द्वारा अपने वैभव को उज्ज्वल कर के दिखाया है। समाज के अनेक स्त्री-पुरुषों को उन के द्वारा आश्वासन, प्रोत्साहन और प्रेरणा मिली है। लेकिन अधिकांश विधवाएँ तो बेघारी समाज की और कुटुम्ब की उपेक्षित आश्रिता ही हैं।

इन से भिन्न अपने त्याग बरग्य की शीतल तेजस्विता के द्वारा और समाज गुद्धि के लिए समाजसेवा के नियमित कार्यक्रम चलाने वाली सन्यासिनियों को समाज को आज आवश्यकता है। सौ दा सौ बरस इस का प्रयाग करने के बाद समाज फिर से विचार कर सकता है कि सन्यासिनियों का आश्रम लाभदायक है या नहीं।

इस प्रयोग के लिए कोई समाजमाय नियम बनाना जरूरी होगा। स्त्री सन्यासिनी की पोगाक कसो हो, रहन सहन कया हो, उन के रहने का और आजीविका का प्रबन्ध कया हो? यह सब पूण रूप से सोच कर समाज को तय करना होगा जिस से उस आश्रम की दुदशा न हो।

जिन का अधिकार है वे ही इस दिगा में प्रारम्भ कर सकते हैं।

(१ जुलाई १९६३)

■

श्रद्धा और विवेक

श्रद्धा, भोला विश्वास और पाखण्ड

विज्ञान (Science), तत्त्वज्ञान (philosophy) और अध्यात्म (Spirituality) तीनों सत्य की खोज करने के लिए निकले हुए यात्री हैं। तीनों के प्रस्थान अलग-अलग हैं। लेकिन तीनों का प्राप्त्य एक ही है। एक ही त्रिकोण पर चढ़ाई करने वाली लेकिन भिन्न भिन्न दिशा से प्रारम्भ करने वाली ये तीन क्रिस्म की सेनाएँ हैं। इन की दिशा भिन्न हो सकती है। चढ़ाई का तरीका अलग-अलग हो सकता है। लेकिन तीनों का उद्देश्य और तीनों का प्राप्त्य तो एक ही होना चाहिए।

जिस तरह युद्ध में मिलिट्री, समुद्री बेड़ा और वायु-सेना तीनों के महत्त्व अलग अलग होते हैं उन की लड़ाई की पद्धति भी अलग अलग होती है तो भी तीनों एक ही युद्धमन्त्री के इशारे से चलती हैं। तीनों का परस्पर सहयोग होता है। तीनों एक दूसरे की पूति करती हैं। विजय तो तीनों के पुरुषार्थ के समुच्चय से ही होती है।

अगर इन तीनों अलग अलग दलों के नेता आपस में ईर्ष्या करण लगेँ और कहने लगेँ कि सारा सामर्थ्य हमारा ही है, औरों की काय-पद्धति शल्लभ है तो उन का कहना हास्यास्पद होगा। तीनों की परस्पर होड़ खतरनाक साबित होगी। और विजय तो दूर की दूर ही रह जायेगी।

पिछली शताब्दी में विज्ञान ने बहुत जोरों से प्रगति कर दिखायी और उस के अभिमान में विज्ञान कहने लगा कि सत्य तो हमें ही प्राप्त है। धर्म और तत्त्वज्ञान सिर्फ ढकोसले हैं। उन दिना पदार्थविज्ञान (Physics) को natural philosophy कहते थे। एक विज्ञानशास्त्री ने कहा कि फिलॉसफी-तत्त्वज्ञान दो क्रिस्म के होते हैं—natural philosophy और unnatural philosophy, प्राकृतिक तत्त्वज्ञान और अप्राकृतिक तत्त्वज्ञान। Physics है natural philosophy है। वस्तु जो कुछ philosophy गिनी जाती है वह सब unnatural philosophy है। फेंक देने के योग्य है।

समाजशास्त्र की यूरोप में नीव डालने वाले Auguste Comte को यही भूमिका थी। उस ने घम, अध्यात्म और दार्शनिक तत्त्वज्ञान तीनों को भ्रामक बता कर सिर्फ विज्ञान को ही सत्यसमर्थ बताया। और विज्ञान की पद्धति को POSITIVISM का नाम दिया।

अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी का यह अभिमान, यह जानज्वर बहुत कुछ उतर गया है। विज्ञान की प्रगति के कारण ही विज्ञान शास्त्री अब कहने लगे हैं कि हमारी विजय की मर्यादा है। विज्ञान ने अपनी अज्ञानमूलक संवत्सरा अब छोड़ दी है। अब गहरे ज्ञान के कारण उस में अपनी मर्यादा का भ्रान हुआ है। और उस में नज़र आयी है। उस की ज्ञान-मूलक अनेयवादिता अब उसे शोभा ही नहीं किन्तु बल दे रही है।

जो हालत विज्ञान की हुई वही हालत इन दिनों अर्थशास्त्र यानी सम्पत्ति शास्त्र की है। यह शास्त्र कहता है कि मनुष्य के समस्त इतिहास का रहस्य अर्थशास्त्र से ही मालूम हो सकता है। मनुष्य का इतिहास, उस का घमविकास, साहित्य और कला की निर्मिति इतना ही नहीं, किन्तु मनुष्य का जावनोद्देश्य भी उस की आर्थिक परिस्थिति का फल है। उसी का परिणाम है।

जीवनशास्त्री कहते हैं कि मनुष्य का जीवन एक अत्यन्त गूढ़ तत्त्व है। जिस तरह सगीत में सा, रे, ग, म, प, ध, नि, सा ऐसे उत्तरोत्तर चढ़ते हुए स्वर हैं और मानव सगीत ऐसे तीन सस्रका का बना हुआ है, इसी तरह जीवन के तत्त्व को पहचानने वाले कहते हैं कि एक ओर बिल्कुल जड़ सृष्टि और दूसरी ओर मनुष्य हृदय में रहने वाला अन्तर्यामी और सारे विश्व में पाने वाला परमात्मा या परब्रह्म तत्त्व और इन दोनों के बीच पायी जाने वाली असंख्य सीढ़ियाँ मिल कर के यह सारी सृष्टि बनती है। इन में अनन्त प्रकार की विविधता होते हुए भी सब में अद्भुत याने अलण्ड अद्भुत भरा हुआ है।

अब सवाल यह आता है कि सब से नीचे का स्तर जो जड़ विज्ञान का है उसी को हम बुनियाद मानें या सब से ऊपर का स्तर जो परब्रह्म परमात्मा है उसे ऋत्रमूलम् अथ ज्ञान के हिसाब से बुनियाद मानें। जड़ विज्ञान के सिद्धान्तों को सही मानकर उहाँ के अनुसार वनस्पतिविज्ञान, प्राणीविज्ञान, मनोविज्ञान आदि शास्त्रों के सिद्धांत सिद्ध करने का एक माग है। दूसरा माग इस के विपरीत है। मानव जीवन में जो अध्यात्म पाया जाता है वही मुक्त रूप में प्राणि जगत में भी पाया जाता है या नहीं, और प्राणि जगत में जो अध्यात्म हम पा सकते हैं वही जड़ जगत में अनुमान से हम सिद्ध कर सकते हैं या नहीं यह देखने का दूसरा तरीका है। सच्चा जानोपासक दोनों रास्ते जाना पसंद करेगा।

ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर। दोनों ढग स आने-जाने से ही पान सर्वांगीण होगा।

जो लोग जड़ विज्ञान के मामूली सिद्धांतों की बघौटी बनाकर आध्यात्मिक अनुभव कस कर देते हैं वे कहते हैं कि आध्यात्मिक अनुभव वैश्व भ्रम है। तन्त्रशास्त्री, विज्ञानशास्त्री और वैद्यशास्त्री अकसर यही कहते हैं कि हमारा न आत्मा पर विश्वास है न परमात्मा पर। न धार्मिक सिद्धान्तों पर। आप के आत्मा और परमात्मा दोनों अगर हमारे प्रयोगशाला में आ जायें और टेस्टट्यूब में बठने को तयार हो जायें तब हम उन के बारे में सोच सकते हैं।

जब विज्ञानवादियों की यह भूमिका बालिश साबित हुई तब अध्यात्मवादी भोले भक्तों ने दु-दुभी बजाना शुरू किया कि देखिए विज्ञान हार गया है। जिन आध्यात्मिक चमत्कारों का ये सायटिस्ट इनकार करते थे वे सब सच्चे हैं, भ्रममूलक नहीं हैं इस का मवाही नये बानिक ही दे रहे हैं। अब किस की हिम्मत है कि हमारे दबी चमत्कारों को कोई अस्वीकार करे ?

जहाँ जड़ विज्ञान की पहुँच नहीं है ऐसे चमत्कार इस सृष्टि में हो सकते हैं इस बात को मानने को हम तैयार हैं। मानव मन और जड़ सृष्टि दोनों एक ही दुनिया के तत्त्व हैं। इन दोनों में द्वैत नहीं है। मानसिक जगत और पार्थिव जगत परस्पर विरोधा, एक दूसरे से भिन्न और पृथक् अलग दुनिया नहीं है इतना तो सब को माय करना ही पड़ता है। लेकिन अगर जड़ विज्ञान को आध्यात्मिक अनुभव और उन पर से बने हुए आध्यात्मिक सिद्धांत मानने ही पड़ते हैं तो आध्यात्मिक अनुभव और उन पर से बनाये हुए आध्यात्मिक सिद्धांत इन दोनों को जड़ विज्ञान की सामान्य कसौटी भी माननी चाहिए। अगर जड़ विज्ञान सिद्ध करे कि कोई एक छान अनुभव भ्रममूलक है तो उस का यह निणय कबूल करना चाहिए। लेकिन अगर जड़ विज्ञान कहे कि अमृक अनुभव को हमारी कसौटी पर कसते हम इस निणय पर पहुँचे हैं कि हमारी कसौटी ही अपर्याप्त है, अमृक आध्यात्मिक अनुभव को कमन में हम असमथ हैं तो उस चीज की कसौटी मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक क्षेत्र में जा कर करनी होगी।

माता मरियम के प्रताप से लूड के झरनों में कोई लोकोत्तर शक्ति आयी है और वहाँ पर असाम्य भौतिक रोग भी देखते-देखते दूर हो सकते हैं ऐसा बयान नोबल प्राइज विजेता डा० अलेक्सिस कॅरल ने दिया है। उस के साथ हमारा झगडा नहीं है। लेकिन हम अभी भूले नहीं कि कुछ दिन के पहले आरिसा में अनुगुल के पास एक नेपाली युवक प्रकट हुआ था जिस ने जो हाथ में आयी वह जड़ी बूटी दे कर कई लोगो के रोग मिटाये थे। नेपाली बाबा की कीर्ति

हिन्दुस्तान में सब जगह फैल गयी। मोले विश्वासी, थडालू मरीजों का वहाँ ताता लगा। सचमुच वहाँ कुछ शक्ति है या नहीं, किसी ने देखा भी नहीं। लोगों की भीड़ बढ़ी हजे का प्रादुर्भाव हुआ और कई लोग दलित-देवते मर गये।

मोले जनता हर चीज पर विश्वास करने की आदी होती है। थडा अच्छी चीज है। अथडा की अपेसा थडा अच्छी है। लेकिन बेवकाली की अपेसा तो अथडा ही अच्छी है। और जहाँ बुदबू लागे को ठगने की तरह-तरह की युक्तियाँ धूत लोग चलाते हैं, वहाँ पर थडा का दुष्प्रयोग होने की सम्भावना भूलना नहीं चाहिए। जड़बिनास, मनोबिनास और अध्यात्म तोना का सतत सहयोग ही तारक है।

(अप्रैल १९१२)

थडा और विवेक

मामूली कित्ताव और घम-ग्रय में बडा अंतर रहता है। मामूली कित्ताव हम चाक से भले पडे, विरोध आदर से नहीं पडते। मन कहता है कि देखें तो सही इस में क्या लिखा है। अच्छा हो तो ग्रहण करेंगे, नहीं तो रम देंगे, और अच्छा लगा तो भी ग्रहण करने का सक्त्प उठना ही चाहिए ऐसा भी नहीं।

घम ग्रयों की बात अलग है। हम उसे पडते ही थडा से हैं। मन की तैयारी रहती है कि इस की सब बातें अच्छी हा है। हम ऐसा नहीं सोचते कि इस में कुछ अच्छा हो तो लेंगे। हम इतना ही सोचते हैं कि इस में से जो बात जेंचे उस का स्वीकार करने की तयारी या योग्यता हम में है या नहीं। ऐसे ग्रयों में जा वान नहीं खेंचती उस के बारे में भी हम तुरत नहीं कहते कि यह बात बुरी है। हम कहते हैं कि इस की खूबी ध्यान में नहीं आयो। हमारी ही कुछ अपुणता हागी। या कहते हैं कि जिस जमाने में यह सब लिखा गया उस के लिए यह अच्छी हागी। अब जमाना बदल गया। अब ये बातें काम की नहीं हैं।

काग। कि हम सब के सब अच्छे ग्रयों के बारे में ऐसी ही मन की अनुबूल्ता अपना उदारता रम सबें। किसी ने सही कहा है कि घम ग्रय उछो सद्भाव से पन्ना चाहिए जिस सद्भाव से वह लिखा गया। मैं तो कहूंगा कि केवल घम-ग्रय के बारे में ही नहीं किन्तु सब के सब गम्भीर या अच्छे ग्रयों के बारे में हमारी सही वृत्ति रहनी चाहिए।

अब एक दूसरी बात है कि घम ग्रन्थ हम थदा से पढ़ें यह तो अच्छा और जरूरी है ही। लेकिन थदा के साथ विवेक तो होना ही चाहिए। अथ-थदा अथदा से कम खतरनाक नहीं है। और दोनों के मूल में सत्य निष्ठा की कुछ कमी पायी जाती है।

अभी एक सत्या की संचालिका से मेरी बातचीत हुई। उन के यहाँ धार्मिक वायुमण्डल स्थापित करने के लिए 'तुलसी रामायण' की पढ़ाई होती है। मैं ने कहा कि शिष्या की दृष्टि से बढ़ कर दूसरा कोई ग्रन्थ मैं सोच ही नहीं सकता। लेकिन इस से पढ़ाते समय थदा और विवेक दोनों की मदद एक ही लेनी चाहिए।

अपनी बात समझाने के लिए मैं ने एक उदाहरण दिया। मैं ने कहा कि न आप ईसाई हैं न मैं ईसाई हूँ। तो भी हम दोनों के मन में ईसा मसीह के प्रति और उन के उपदेश के प्रति आदर है। अगर हम अपनी सत्या में बायबल या उस के कुछ हिस्से पढ़ाने बठें, तो हम अपने विद्यार्थियों को कह सकते हैं कि इस में से इतनी बातें अच्छी हैं। हम खुशी से ले सकते हैं। बाकी की अमुक बातें उन के समाज की दृष्टि से लिखी हैं। हम वसी की-वैसी नहीं ले सकते। हमारे जीवन के अनुकूल वे नहीं हैं क्योंकि हमारी संस्कृति का रंग अलग है।

पूरी थदा रखते हुए हम इस तरह से विवेक से काम लेते हैं। तो क्या तुलसी रामायण पढ़ाते हम यही दृष्टि कायम नहीं रख सकते? तुलसी रामायण में जो उपदेश हैं वे सामान्य तौर पर ग्राह्य हैं ही। जिस ढंग से वे रखे गये हैं सीधे हृदय तक पहुँचते हैं। तुलसी रामायण को हम ने अपना घम ग्रन्थ बनाया है। क्योंकि उस में भयादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र की उपासना बतायी है। तो भी हम कह सकते हैं कि स्त्रियों के बारे में तुलसीदास ने जो लिखा है वह सब का सब हमें वसा ही नहीं लेना है। बन्धु भक्ति का जो आदर्श राम चरितमानस में पाया जाता है वह रामचन्द्र के प्रति भले ही ठीक हो, लेकिन दो भाइयों के बीच इस आदर्श को हम निभा नहीं सकेंगे। हम पसन्द भी नहीं करेंगे। नौकरों के लिए तुलसीदास ने जो आदर्श पेश किया है उस के बारे में भी आज हम यही कहेंगे।

गरज यह कि तुलसीदास ने राम के हृदय में जो वायुमण्डल तैयार किया है उस वायुमण्डल के साथ हम उस के सब वचन धमकवन के तौर पर गायद पसन्द कर सकते हैं। लेकिन आजकल की दुनिया में तुलसी के वचन हम वसे के-वैसे नहीं ले सकते। हमारे बच्चों का भी यह बात समझानी चाहिए। नहीं तो हमारे बच्चे उन के मुग्धकाल में इन सब बातों को अधरश ठीक समझेंगे

और कहेंगे कि हमारे शिक्षक तो ऐसे नहीं चलते। हमारे माँ-बाप भी नहीं चलते। समाज में जो लोग अच्छे गिने जाते हैं उन का भी आचरण तुलसीदास की नमोहत से भिन्न दीख पड़ता है।

ऐसा सोच कर उन के मन में ग्रथों के बारे में, बड़ों के बारे में और आदर्शों के बारे में अथवा पैग होती है जो बच्चा की शिक्षा के लिए खतरनाक है। जिस नतीजे पर उन का आना ही पड़ता है, उस के बारे में हम अगर साफ-साफ अपना अभिप्राय पहले से कह दें, तो उन के मन की परेशानियाँ टल जाती हैं और नतिक जीवन की जड़े सुगुन बनती हैं।

(जुलाई १९५८)

श्रद्धा बनाम भोलापन

मेरे एक आदरणीय व्यक्ति ईश्वरनिष्ठ थे। ईश्वरनिष्ठा के कारण उन में चारित्र्य की दृढ़ता और तेजस्विता तो आयी ही थी, लेकिन साथ साथ अत्यन्त नम्रता और निराग्रहीता भी। स्वभाव भाला था। जरा भी अनुकूल घटना हो गयी तो कहते थे कि ईश्वर कितना अनुकूल है, कृपालु है। बाद में जब पता चला कि घटना का बयान ही गलत था, कहने वाला गलत समझा था और सचमुच घटना अनुकूल नहीं थी, तब वे तुरन्त कहने लगे कि ईश्वर प्रतिकूल दीख पड़ता है। हमारी कुछ गलती हुई होगी, इस वास्ते घटनाचक्र हमारे खिलाफ हो गया है।

वे ने उन से कहा कि अनुकूलता प्रतिकूलता हम अपनी दृष्टि से तय करते हैं। कोई चीज हमें पसन्द न आये दुःखदायक भी हो, लेकिन वही हमारे हित की हो और ईश्वर ने वह दुःख हमारे हित के लिए ही दिया है। और वह हमारे किसी दोष के कारण नहीं हमारे कल्याण के लिए ही आया होगा। हम निष्पक्ष कैसे कर सकते हैं? जहाँ हमारी जानबारी ही अल्प है वहाँ हम कायबारेण सम्बन्ध भी कैसे पहचान सकते हैं?

कोई चीज हमें मिले हमारा काम सफल हुआ हम राजी हुए तो क्या उस में ईश्वर की अनुकूलता ही है? ईश्वर की भेजो हुई चीज अगर हमारे हित की न हो ईश्वर ने केवल कसौती के लिए ही भेजी है। हमारी धमबुद्धि यामबुद्धि निमित्त हुई हम भगवान की भेजो हुई चीज देग कर प्रसन्न हुए, हम ने उसे

भगवान् की अनुकूलता माग ली और चीज को रोजीवार कर के हम गिरे, हमारे चारित्र्य में निबिलता आ गयी और आग जा कर उग पना के लिए हमें भुगतना पड़ा। भुगतने के लिए जो गन्ना भगवान् न भेजी उग में भगवान् की शोयत हमें गुपारा की हो तो उग में भगवान् की अनुकूलता ही हम देगनी चाहिए।

यह गारा घटगायत्र गूढ़ है। इस में तुरन्त कार्यकारण सम्बन्ध हम दग नहीं सक्ते और उस पर से अनुमान भी नहीं लगा सकने। आस्तिकता हमें इतना ही कहती ह कि परिस्थिति हमार लिए हमारी दृष्टि स, अनुकूल हो या प्रतिकूल, हमें थडा कायम रखनो चाहिए कि ईश्वर जो कुछ भी करता है, हमारे भले के लिए हो।

हमारा धम परिस्थिति के न अनुकूल बनने वा है न प्रतिकूल। धर्मनुद्धि जागृत रग कर जित यज्ञत जो आरण योग्य हो सदाचार के लिए अनुकूल हो, वही करना चाहिए। कदम-कदम पर ईश्वर की अनुकूलता की कगीगी करने हम न बटें। अगर हम पाप में स घब गये तो यह ईश्वर की कृपा है। अगर हम लालच न पस गये तो यह हमारी गलती है। उस के लिए ईश्वर स हम दामा मागें और हमें चारित्र्य की दृढ़ता देने के लिए भगवान् से प्रार्थना करें।

हम ने सुना ह कि जब आगाद्यान महल में पू० कस्तूरबा का देहान्त हुआ और उन के देह की अग्निसंस्कार किया गया तब ती० दिन के बाद दता गया कि चिता की अग्नि से उन की काँच की चूडियाँ न टूटी थी न गली हुई। वैसी-की वैसी थी। इसे हम समत्वार् कह सक्ते हं। कब लोग कहो लगे कि कस्तूरबा के सतीत्व की यह निशानी है। हो सक्ता है।

लेकिन सयाग यह उठता है कि हरेक सती के चिताभस्म में काँच की चूडियाँ ऐसी जसी की कमी मिलेंगी या मिरुनो चाहिए ?

अथवा जिन जिन स्त्रियों के चिताभस्म में से उन की काँच की चूडियाँ सलामत नहीं निकली, उन के सतीत्व के बारे में कुछ सामी या कमी समझनो चाहिए ?

ऐसा त्रिकालबाधित नियम होता तो लोगो ने उम का क्य का निरीक्षण किया होता और इतिहास न लिख कर रखा होता।

जब शरीर से प्राण निकल जाता ह तब हम कसौटी कर के माग लेते हैं कि प्राण सचमुच शरीर को छाड गया ह। हम साँस देखते ह। नब्ब चलती ह या नहीं यह देखत हैं। शरीर गरम ह या ठडा ह यह भी देखते है। जलरत पडने

पर दूसरी भी कसौटियाँ आजमाते हैं और निर्णय पर आते हैं कि अब शरीर को प्राण छोड़ गये हैं।

क्या इसी तरह काँच की चूड़ियों का सलामत रहना या न रहना सतीत्व या असतीत्व की निशानी है ?

अगर ऐसा नहीं है तो ऐसे किस्मा की चर्चा कर के हम लोगों को भ्रम में क्यों डालते हैं ?

महाराष्ट्र में मगळवेढा गाव में रहने वाले सत दामाजीपत की कथा प्रचलित है। मगळवेढा के बहुत से अकालप्रस्त लोग दामाजी के पास आये। दामाजी बिजापुर के बादशाह के कमचारी थे। उन के पास सरकारी अनाज की कोठिया भरी हुई थीं। उन्होंने किसी से पूछे बिना कोठियों का सब अनाज अकालप्रस्तों को बाट दिया। सिक्कायत बिजापुर के बादशाह तक पहुँची। दामाजीपत को सख्त सजा देने के लिए बिजापुर बुलाया गया। दामाजी चले। जानते थे कि मृत्यु दण्ड मिलेगा।

इतने में भगवान ने हरिजन कासिद का रूप ले कर बिजापुर के बादशाह को एक चिट्ठी दी और साथ-साथ धन भी भेजा। चिट्ठी में लिखा था कि सरकारी कोठी में इतना अनाज था। उस के पसे इतने होते हैं। पसे ले कर रसीद कासिद के पास दीजिए और दामाजी को मुक्ति का खत दीजिए। दोनों चिट्ठियाँ मिल गयीं। इधर दामाजी रास्ते में दुपहर को नहा कर गीता पढ़ने बैठे तो पुस्तक में बादशाह की दोनों चिट्ठियाँ उन्हें मिल गयीं। दामाजी समझ गये कि भगवान ने ही मेरे कारण हरिजन कासिद का रूप धारण किया। उन्होंने बिजापुर जा कर बादशाह को सब हाल सुनाया और नौकरी से इस्तीफा दे दिया। बादशाह को बड़ा अफसोस हुआ कि वे भगवान को पहचान न सके।

सन्त दामाजी की यह कथा पीढ़ी दर-पीढ़ी हम सुनते आये हैं।

अब ऐतिहासिक सशोधन से पता चला कि इस में कोई अमत्कार नहीं था। एक हरिजन जमींदार ने दामाजी का सक्ट सुन कर अपनी तरफ से सरकार को पैसा दे दिया और दामाजी को बचाया। इस के बारे में उस समय के दफ्तर में जो सतपत्र हुए थे वे भी अब मिल गये हैं।

इस ऐतिहासिक घटना से हमारी श्रद्धा दृढ़ होती है कि सज्जना का सक्ट देव कर दूसरे सज्जनों की उदारता जागृत होती है और वह सक्ट के समय दौड़ कर मदद करता है। श्रद्धा के लिए ऐतिहासिक घटना काफी है। उसे

धमत्कार का रूप देने से अद्भुत रस उत्पन्न मिलता है, लेकिन धमश्रद्धा मजबूत नहीं होती ।

यथा हर एक सत इतनी अपेक्षा रखे कि दामाजी को जसे मदद मिली वैसी उसे मिलेगी ही ? क्या अनुमान निकालें कि सच्चे सतों को मदद मिलनी ही चाहिए ? न मिलने पर उस का सतपन बच्चा है ? अथवा भगवान जब जी में आता है तब किसी की मदद करता है जी में नहीं आया तो नहीं करता है ? भगवान् को चंचल मन का भक्तवत्सल बनाना काय की दृष्टि से आसान है, सुदूर है, लेकिन धमश्रद्धा के लिए पोषक नहीं है । सबके के समय अकल्पित ढंग से मदद मिलने पर भोले लोग जो अनुमान निकालते हैं, धमश्रद्धा के लिए हमें गामददगार ही होते हैं, ऐसा नहीं है ।

(२१ जुलाई १९१६)

धम-ग्रन्थों का प्रामाण्य किस लिए ?

माँ-बाप बच्चे को जन्म देकर परिवार में उस को स्थापना करते हैं । धीरे धीरे उस का सम्बन्ध आस पास के समाज से बढ़ने लगता है । सभी से उस जान, कौशल्य और सस्कार मिलते हैं । और वह इस सारे सम्बल को लेकर जीवन जीने का अनुभव और आनन्द लेता है और नये-नये प्रयोग भी करता है ।

पुराने अनुभव से बंध न जाना नये-नये प्रयोग आजमाना और अज्ञात के क्षेत्र में आगे बढ़ने की हिम्मत करना मनुष्य का स्वभाव है ।—व्यक्ति का भी और समुदाय का भी । इसी की प्रगति कहते हैं ।

सारे समाज के अनुभवों को मनुष्य अगर समझ नहीं लेगा, उस को स्वीकार नहीं करेगा और केवल अंधे प्रयोग करेगा तो प्रगति नहीं होगी । पुराने अनुभवों के बाहर जाना ही नहीं, अनुभवों के प्रति ही निष्ठा रख कर के केवल जीवन यापन करना, एसा अगर तय किया तो भी प्रगति नहीं होगी । जड़ता ही आवेगी । जड़ता में स्थिरता नहीं होती, किन्तु परागति और विकृति आ जाती है । इस लिए मानव के कल्याण के लिए और समाज के हित के लिए ध्य और प्रगति दोनों को यथाप्रमाण अवकाश (गुंजाइश) होना चाहिए ।

समाज की व्यवस्था संभालने के लिए बाहरी जीवन के कानून बनाये जाते हैं और आंतरिक और बाह्य दोनों तरह के जीवन के विकास के लिए धमशास्त्र

रखे जाते ह । एक दफा बने हुए कानूनों में और घमशास्त्रों में बार-बार परिवर्तन नहीं हो सकता । और हर किसी को परिवर्तन करने का अधिकार भी नहीं होता । मामूली समाज जब एक व्यवस्था का आदी बनता है, तब वह राज्य के कानूनों में, समाज की रूढ़ि में और घमशास्त्र के विधि निषेध में परिवर्तन चाहता भी नहीं । मूदम रूप से परिवर्तन होते जाते ह उह वह बरदाश्त करता है । कानूनों के क्षेत्र में समय-समय पर कानून बनाने का अधिकार जिन का ह, उन के मन में क्या था यह सोचने का काम 'यायाधीन' का नहीं । कानूना का जो भी अर्थ होता हो, उस के अनुसार ही उसे चलना ह । कानूनों की भाषा स्पष्ट न हो, अथवा उस के अर्थ होते हो तो उस से लाभ उठाने का अधिकार यायाधीश अपने हाथ में लेता ह । और उसे कोई रोक नहीं सकता । कानून की भाषा का अर्थ कभी व्यापक, कभी सकुचित कर के थोड़ी-बहुत प्रगति करना 'यक्ति के लिए और समाज के लिए अपरिहाय बनता ह और समाज में अक्सर बसा किया भी जाता ह ।

कानून बनाने का अधिकार या तो राजा को होता है या उस के नियुक्त अधिकारी को अथवा प्रजा को ओर से नियुक्त प्रतिनिधियों से बनी हुई सदसभा को । राजा अथवा सदसभा कानून के बारे में सबसमर्थ होते हैं । कानून बनाना, बदलना या रद्द करना—सारे अधिकार उहीं के होते ह ।

(कर्तुम् अन्तुम् अयथाकर्तुम् सव्य-समर्थ ।)

अब घमशास्त्र की बात कुछ अलग होती है । पुराने जमाने में समाजमाय ऋषिमुनि ही घम का विधान करते थे । राजा अगर सबसमर्थ माना गया तो घमकार ऋषिमुनिया को 'सर्वहितकारी और सबन' मानना जरूरी ही गया । उन्होंने जो कहा ह वही योग्य है, उस का उल्लंघन नहीं हो सकता, ऐसा जब समाज स्वीकार करता ह, सभी समाज का धार्मिक जीवन सम्पन्न होता ह । घमकार ऋषिमुनि की भी आदत थी कि समाज के नियंत्रण के लिए नियम बनाते हुए पुराने बड़ों के बचनों का आधार देना अथवा जा रूढ़ि सनातन काल से चलती आयी ह उसी का समर्थन करना ।

घम के दो हिस्से माने गये । समाज की उन्नति के लिए अम्युदय और नि ध्येय के लिए जा हितकर है वह बताने वाला घम स्मृतियों में पाया जाता था । और जम मरण के बंधन से छूट कर निर्वाण या मुक्ति पाने की साधना को मोक्षघम कहत ह । ऐसा मोक्षघम बताने वाले के बारे में कहा जाता ह कि या तो वे सबन थे, या प्रत्यक्ष भगवान् ने ही, उन के द्वारा ये आदेश दिये हैं ।

धर्ममर्थों का प्राभाण्य किस लिए ?

जो भी हो, व्यक्ति और समाज अपने को ऐसे श्रुति-स्मृति ग्रन्थों से और उन के वचनों से बंधे हुए मानते थे। सब ईसाई बायबल के वचनों से बंधे हुए हैं। सब मुसलमान कुरान की आला से बंधे हुए। सब हिन्दू श्रुति स्मृतियों से बंधे हुए—ऐसा रिवाज शुरू हो गया। हर एक घम और प. व. के लोग मानते हैं कि उन का घम ईश्वर की प्रेरणा से ही चला है। अब अगर सब का ईश्वर एक ही है तो ईश्वर की प्रेरणा परस्पर विरोधी नहीं हो सकती। ईश्वर को प्रत्येक जमाने का, हर एक देश की परिस्थिति का और हर एक समाज की सांस्कृतिक योग्यता का बराबर खयाल होने से वह अपनी प्रेरणा बदलता रहेगा। हमें इसके लिए और सब के लिए एक ही प्रेरणा भगवान् क्यों देना? निरुपाधिक परिपूर्ण सत्य भले ही एक रूप और सावभौम हो, लेकिन घमों के सिद्धांत, रस्म-रिवाज और आग्रह समय-समय पर बदलते ही रहेंगे। जिन घमों में ऐस परिवर्तनों की गुंजाइश नहीं है उन में शास्त्राथ के झगड़े चलेंगे और शब्दच्छल को बढ़ावा मिलेगा। कानून में भी यदि शब्दच्छल चलता है तो घमशास्त्र में अधिक चलेगा।

इंगलैंड में पहले Case Law चलता था। यानी कानून न बताते हुए, पुराने 'यायाधीशों' ने जो निणय दिये होंगे उन्हीं में सब कानून आ जाते हैं, ऐसा माना जाता था। 'यायाधीश' के सामने कोई विवाद आया तो पुराना कौन-सा 'केस' यहाँ लागू होता है, यह देखने का काम 'यायाधीश' का था। (उस की भूमिका यह रहती थी कि 'मैं कोई नया कानून नहीं बना रहा हूँ। जिस किसी पुराने केस के साथ यह विवाद नजदीक का हो, उन्हीं का निणय यहाँ लागू करता हूँ। परस्पर विरोधी दो 'केस' सामने आने पर 'यायाधीश' को कहना पड़ता था कि 'इस विवाद में वह कस नहीं कि तु यह केस लागू है। इस में सूत्र शब्दच्छल को और तक वितक को जगह रहती ही थी। विवाद का निणय होने के बाद यह नया निणय स्वतंत्र और प्रमाणभूत माना जाता है। अंगरेजी में इसे Legal fiction कहते हैं।)

अब घमशास्त्र की बात लीजिए। ईसाइयों के लिए तौरात और इजिल (Old Testament and New Testament) प्रमाणग्रन्थ हैं। तौरात हिन्दू भाषा में है और इजिल ग्रीक भाषा में। इन के अनुवाद चाहे जितने हो सकते हैं। प्रमाणभूत तो मूल ग्रन्थ। अनुवाद नहीं। इंगलैंड के राजा जेम्स ने विद्वान् घमगुरुओं को बठा कर बायबल का अनुवाद करवाया तब इंगलैंड की घमसंस्था चर्च ने मान लेने का निश्चय किया कि अनुवाद करते समय अनुवादक ईश्वर प्रेरित थे इस लिए यह अनुवाद प्रमाणभूत माना जाये और मूल ग्रन्थ को पर रख कर, अंगरेजी अनुवाद को ही ईश्वर प्रेरित ग्रन्थ माना जाये। अब अनुवाद

शुद्ध है या नहीं यह देखने की भी बात न रही। बायबल के उस अनुवाद को Authorised Version कहते हैं।

हमारे यहाँ भगवद्गीता वैदिक धर्म का एक पौराणिक प्रकरण है जिस में वेदवाद के प्रति आदर नहीं है। सत्यस्तवृत्ति का तो समादर है किन्तु सन्यास आश्रम की उपेक्षा ही है। इस प्राचीन पौराणिक ग्रंथ को हम ने अपना प्रधान ग्रंथ बनाया। वेदार्थियों के लिए और आज के हिन्दुओं के लिए अधिक-से-अधिक माय ग्रंथ यही है। इस गीता को सर्वोपरि, सर्वमाय प्रामाणिक ग्रंथ मानने पर उस का अर्थ समझने की बात महत्त्व की बनी। शांकर मत के अनुयायी कहेंगे “शांकर भाष्य का अर्थ ही सही है। दूसरे अर्थ माय नहीं है।”

महाराष्ट्र के पुराने-से-पुराने सतत ज्ञानदेव ने शंकराचार्य के भाष्य की मदद ले कर अपना कायमय विस्तारण भाष्य मराठी में लिखा—जिस का नाम है ‘भावाय दीपिका’। अब ज्ञानेश्वर के भक्त कहते हैं कि ‘हमारे लिए मूल सस्कृत गीता नहीं किन्तु ‘मा ज्ञानेश्वरी श्रीमद्भगवद्गीता का भाष्य अवश्य है किन्तु हमारे लिए अंतिम प्रमाण ज्ञानेश्वरी ही है। मूल गीता से भी बड़ कर।”

हमारे जमाने की बात है। महात्मा गांधी ने भगवद्गीता का गुजराती अनुवाद तयार किया और आधमवासियों को दिखा कर उन की सूचना के अनुसार शुद्धि-वृद्धि कर के प्रकाशित किया। उस का नाम है ‘अनासक्तियोग’। उस की भूमिका में गांधीजी ने अपनी दृष्टि पेश की है और अनुवाद के बीच बीच में टिप्पणियाँ दी हैं, जिन में भी उन्होंने अपनी दृष्टि विशद की है।

जब अनासक्तियोग के साथ मूल सस्कृत गीता छापने का प्रस्ताव आया तब गांधीजी ने उसे पसन्द नहीं किया। उन्होंने मुझ से कहा कि ‘गीता के उपदेश के अनुसार जोने के खालीस बरस के सतत प्रयत्न से जो जीवनदृष्टि बनी है वही इस अनासक्तियोग में दी गयी है। गीता का अनुवाद होते हुए भी इसे एक स्वतंत्र ग्रंथ मानना चाहिए। जो इसे पसन्द करते हैं उन के लिए यह एक मौलिक और प्रमाणभूत जीवनदर्शन माना जाये।

श्री विनावाजी न शंकराचार्य, ज्ञानेश्वर और महात्माजी से प्रेरणा पा कर गीता का अपना स्वतंत्र मराठी अनुवाद तयार किया और उस के साथ चिन्तनिका और प्रवचन भी दिये। उस में उन का अपना जीवनदर्शन व्यक्त होता है। उन का कहना है कि “पूर्वाचार्यों से विरोधी नहीं किन्तु कई भिन्न वस्तुएँ उस में पायी जायेंगी। प्रगति की यह निगानी है।”

एक ही ग्रंथ में से जीवनदर्शन की अनक गाथाएँ निकल आती हैं। इन शाखाओं से प्रगाढ़ा और उपशाखाएँ निकलेगी ही।—जसा वृक्ष में हाता

धमग्रन्थों का प्रामाण्य किस लिए ?

है वैसे जीवात्मन में भी पाया जाता है। प्रायः प्रकृति ही है। जातमान हर एक का उस की श्रद्धा, विना और अनुभव पर आधार रगता है। इस तरह हम केवल एक प्राय या एक शक्ति पर आधार ग रगते हुए प्रेरणा गद आता पुर्या से और आता प्रथा से हैं। (यही आता का अर्थ होता है विनात्मन और आत्म के योग्य।) और अंत में अती दुः श्रद्धा, शीघ्र का गरा अनुभव और उस पर का अकट विना—इस प्रथी पर आधार रगें। केवल प्राय हो पर फल तो जीवन उपत गही होगा। जड़ता और विरति ही जीवन का घेर लेगी।

मैं ने नमूने के तौर पर पाठ से उदाहरण दिए हैं लेकिन जीवा के तमाम क्षेत्रों में यही बात है। जीवा है ही शीघ्र प्रयोगों के लिए। एक भी आत्मों का जीवन व्यय नहीं है। भगवान् का विश्वास रग कर जीवा प्रयाग का मोता हर एक को दिया है। उस विश्वास क योग्य बन कर हमें अपना जीवन पार मार्ग बनाना चाहिए। पारमार्थिक यानी गम्भीर—जीवा उपहास नहीं है हृदी-भजात्र अथवा शुल्क वामा में बरबाद करन के लिए गही है। 'शुद्धामात्र नेप्यते'। तुच्छ हेतु के लिए नहीं है।

(११ शिखर १११)

व्यक्तिनिष्ठा बनाम तत्त्वनिष्ठा

व्यक्तिनिष्ठा बनाम तत्त्वनिष्ठा यह सवाल बहुत पुराना है। और उस की सृष्टि देखते यह सवाल दोषकाल तक चलनेवाला है। जिस सवाल का हल केवल सिद्धांत की दृष्टि से न कभी हुआ है न होनेवाला है। व्यक्तिनिष्ठा और तत्त्वनिष्ठा दोनों पक्ष एक-से सबल हैं समय है और मनुष्य मानस को हमें गा घेरे हुए है।

बुद्धि कहती है 'सत्य तो तत्त्वनिष्ठा का ही अनुकूल है। जो चीज सत्य है, जानानुकूल है, सबकल्याणकारी है यामूलक है उसी को तत्त्व कहते हैं। तत्त्व वही है जो सत्य है सारभूत है। बुद्धि हृदय और भावना ने सदा के लिए जो पसंद किया है मान्य किया है वही तत्त्व है। उस के प्रति निष्ठा रखना मनुष्य का धर्म है। इस तरह की तार्किक व्यक्तिनिष्ठा के लिए हो नहीं सकती। माता पिता के प्रति आदर, बड़े के प्रति आदर मनुष्य के लिए स्वाभाविक है। बुद्धि का असाधारण तेज देखकर मनुष्य हृदय बुद्धिमानों के प्रति आत्म से चुकता हो

ह। जिस के हाथ के नीचे काम करने के लिए हम तैयार हुए हैं उस की आना का पालन करना हमारा स्पष्ट धर्म है ही। वही आनापालन जब हम उत्साह से, आदर और भक्ति से करते हैं तब उस को व्यक्तिनिष्ठा कहते हैं। अपनी बुद्धि की अल्पता ध्यान में आने से मनुष्य नष्ट हो कर दूसरे की बुद्धि, होशियारी और व्यापक दृष्टि के सामने झुक जाता है। इसी में से व्यक्तिनिष्ठा पैदा होना है। लेकिन किसी भी व्यक्ति के सबन, सबमय और पूण पुण्य होने की सम्भावना नहीं है। इस लिए व्यक्तिनिष्ठा में हमारी साहायतया समृद्धि होने की सम्भावना मान कर भी व्यक्तिनिष्ठा का हम सर्वश्रेष्ठ नहीं कह सकते। इस में से नौ दफे व्यक्तिनिष्ठा लाभदायी हुई तो भी दसवी दफे व्यक्ति की अपूणता के कारण हम खतरे में आ सकते हैं। और खतरे की बात पर रख कर भी हम कह सकते हैं कि अपूण व्यक्ति को, स्थूलनगील व्यक्ति का अपने लिए शिरोधार्य बनाना, आत्मा का अपमान करना है। केवल तत्त्व ही, सम्पूर्ण, सर्वहितकारी याथ्य सत्य ही हमारी निष्ठा का आधार और भाजन बन सकता है। इस से कम किसी भी चीज के सामने सिर झुकाना अज्ञानता है, जड़ता है और सब पूजे तो गुलामा है। इसलिए "व्यक्तिनिष्ठा को गौण बना कर तत्त्वनिष्ठा को ही श्रेष्ठ और प्राह्य मानना चाहिए।"

तत्त्वनिष्ठा के पक्ष में की हुई यह दलील अनाद्य है। बुद्धि, हृदय और भावना तुरत इस दलील को और इस के पीछे की शुद्ध दृष्टि को स्वीकार करता है।

तत्त्वनिष्ठा व पक्ष में और भी एक दृष्टि या दलील है।

अपूण मनुष्य अपनी बुद्धि से पूण सत्य को अथवा अतिम तत्त्व का प्राप्त करता आया है ऐसा अनुभव नहीं है। जिस चीज को आज हम सत्य मानते हैं वह कल असत्य असत्य या विकृत और कल्पित सत्य साबित हो सकती है। इस से डरने का कोई कारण नहीं है। जिस क्षण जो चीज हमें अतिम सत्य मालूम होती है उसी के पीछे हिम्मतपूर्वक हम चलें। जिस क्षण मालूम हुआ कि हमारा सत्य पूण सत्य नहीं है उधा क्षण, उस सबल सत्य को छोड़ कर नवप्राप्त शुद्ध सत्य को अपनी निष्ठा अपण करते जब तक हम हिचकिचाते नहीं तब तक हमारी सत्यनिष्ठा और तत्त्वनिष्ठा अबाधित है। (एक राजनिष्ठ मत्लबी मनुष्य ने ऐसी ही दलील की थी। वह कहता था, मेरी राजनिष्ठा व्यक्तिनिष्ठ नहीं है। जिस क्षण राजा राजपद से हटाया जाय उसी क्षण मेरी राजनिष्ठा उते छोड़ देती है और उस की जगह जा भा व्यक्ति राजगद्दी पर विराजमान हो आय उस के प्रति मेरी निष्ठा अधित हो जाती है। इसलिए हम लोग कभी कभी अपनी निष्ठा को राजनिष्ठा न कह कर गद्दी निष्ठा कहते हैं।)

व्यक्तिनिष्ठा बनाम तत्त्वनिष्ठा

सच्ची तत्त्वनिष्ठा में लेगा मतलबोपा नहीं होगा। क्योंकि गृहीनिष्ठ मनुष्य अधिचार का साधेनार होता है। और अधिचार में नीतिव श्रेयता होती है एसा कोई कह नहीं सकता। तत्त्वनिष्ठा में जो सर्वोप्यी मर्यादा हाती है यह नीतिवतम होती है। इमीलिण सता ने सत्य को ही पम कहा है और परब्रह्म भी कहा है। (सत्या परता नाहीं पम सत्य तेषि परब्रह्म। सत्यापार्गी पुगोसम, सथकाळ तिष्ठत—एवनाय।)

यह हो गयी तत्त्वनिष्ठा की बात। अब व्यक्तिनिष्ठा को दृष्टि भी समझनी चाहिए। व्यक्तिनिष्ठा कहती है—

जिस सत्य की बात हम करते हैं जिस की शोध में हम हैं और जिसे हम अपनी निष्ठा अर्पण करना चाहते हैं वह $2 + 2 = 4$ जमा गणित-मत्य नरी होता। गणित का मत्य तटस्य तत्र का सत्य और पन्नायविज्ञान दास्त्र (फिजिक्स) जमे तयक्कग भौतिक विज्ञान के सत्य अलग होने हैं। उन के प्रति सत्य की निष्ठा अपरिहाय हाती है। इसी को याद कर के श्री आद्य गकराचार्य ने कहा था कि अग्नि पीतल है एसा सी-सी वेदवचन भी अगर हमें कहें तो भी हम उसे मान नहीं सकते। वही गकराचार्य ज्वरर कह सकते हैं कि श्रुति का वचन (वेद का वचन) अन्तिम प्रमाण है। बुद्धि और तर्क का आश्रय ले कर वेदवचनो की मोमासा करने बठना नास्तिकता है।

यक्तिनिष्ठा का प्रतिनिधि कहता है कि हम चाहे जसे तुच्छ व्यक्ति के प्रति निष्ठा रखने की बात करते ही गयी। हमारी व्यक्तिनिष्ठा में सुयोग्य व्यक्ति के प्रति निष्ठा रखने की ही बात है। इतना स्पष्ट करने क बाद हम कहेंगे कि तत्त्वनिष्ठा भी अततोमरवा किसी-न किसी व्यक्ति के निणय पर ही आधार रखती है।

अब अगर कविल कणाद, जैमिनी जैसे महान् ऋषियो को सत्य का दशन अलग अलग हुआ और सोच विचार कर निणय कराने को आकलन गविन ऋषियो की जसी हमारी न रही तो हम क्या करें? इन ऋषियो के विवाद सुन कर बुद्धि ङिडमूड होती है और जीवन में कुछ-न-कुछ निर्णय पर आना ही पडता है। ऐसी हालत में हम अल्पन और विकासहीन लोग अपनी बुद्धि की अतिम निणय करने का अधिकार दें तो वह तत्त्वनिष्ठा नहीं किन्तु स्वयक्तिनिष्ठा (आत्मनिष्ठा) ही होगी।

इसलिए हम कहते आये हैं कि सामाय तौर पर व्यक्ति के निणय को महत्त्व नहीं देना चाहिए समाज के अभिप्राय को ही प्रमाणभूत मानना चाहिए। अनेक जमाने में मानव व्यक्तियो ने जो अनुभव प्राप्त किया उसी को निर्णयक

सत्य मानना मनुष्य के लिए हितकर है। किसी भी हालत में व्यक्ति की अपेक्षा समाज श्रेष्ठ है ही। (इसी को व्यक्ति समष्टि याप कहते हैं।)

यह हुई सामान्य व्यवहार की बात। किंतु कभी-कभी कोई लोकोत्तर विज्ञानवेत्ता अथवा अध्यात्म का अधिकारी जब कोई नयी बात लाता है तब उस की बुद्धि का, उस के अनुभव का और उस की लोकोत्तर श्रद्धा का नाप हमारे पास न होने से हम केवल उस की व्यक्तिगत महानता का आदर करते हैं और उसी को अपनी निष्ठा समर्पित करते हैं।

गणित का सत्य तर्कशुद्ध होत हुए भी मानिक होता है। उस का सबाल हम दोनों, एक ओर रख दें। किंतु जीवन का सत्य लचीला होता है, प्राणपूर्ण होता है, परिस्थिति बदलने पर अपना रूप भी बदलता है। उसे न पहचानना जड़ता है। जो लोग केवल तर्कधीन रहते हैं उन को बाज़ दफ़े समाज तक परतत्र अथवा तकजड़ कहता है। ऐसे लोगों के हाथ में समाज अपने का सुरक्षित नहीं मानता। (क्या हम नहीं जानते कि इस युग के महापुरुष गांधीजी हर एक सिद्धांत को व्यवहार की शुद्ध कसौटी पर कसन में मानते थे ? और एक दफ़े व्यवहार को मान लिया तो या तो बड़ों के वचना पर आप को आधार रखना पड़ता है अथवा हर एक व्यक्ति को अपने निणय के अनुसार चलने का अधिकार दे कर समाज विघातक अराजकता माननी पड़ती है।)

जब हम सुयोग्य व्यक्ति के प्रति अपनी निष्ठा अर्पण करते हैं तब उस की धार्मिकता, धायपरायणता और सवहितकारिता की ओर ही दन्वते हैं। जिस चीज़ को हम जीवन का सत्य मानते हैं उस में परस्पर विरोधी अनेक तत्त्वा के बीच समझौता करना पड़ता है, लाभ हानि का विचार करना पड़ता है, जिसे अंगरेजी में *balance of expediency* कहते हैं। (कुत्ते ने पानी से भरे हुए मिट्टी के बरतन में मुँह डाला तो पानी फेंक कर बरतन को तोड़ डालने की बात शास्त्रा ने बताया है। उसी जगह धातु का बरतन हो तो पानी फेंक कर बरतन माँजने पर शुद्ध होता है ऐसा कहा है। और बरतन में अगर धो रहा और उस में कुत्ते ने मुँह डाला तो ऊपर-ऊपर का धो निकाल कर फेंक देना और बाकी का शुद्ध समझ कर ला लेना ऐसा शास्त्रों का विधान है। इस में केवल एक ही दृष्टि है कि कितनी हानि सहन हो सकती है और कितनी नहीं। सबनाश होने का प्रसंग प्राप्त होने पर मनुष्य आधे को छोड़ देता है, खाने को तयार होता है। सबनाश सहन करना मुश्किल है।)

ऐसी-ऐसी बातों की व्यवहार की बातें कहें या शास्त्रवचन कहें व व्यक्ति निष्ठा की ही बातें हैं। फिर मन मनाने के लिए हम इष्ट व्यक्ति का प्रामाणिक

और सवन कहते हैं, त्रिकालन कहते हैं, पूण पुण्य कहते हैं और आग्निरक्षार उमे ईश्वर की विभूति अथवा अवतार भी कहते हैं। शास्त्रों में सत्य जानने वाले सवहितकारी, निष्पक्ष व्यक्ति को आप्त कहा है। आप्त याने विद्वान्मत्त, अल्पमीन।

धर्मशास्त्रकारों ने और आज के न्यायालयों में भी अंतिम नियम जजों के यानी आप्त व्यक्ति के हाथ में रखा है। न्यायव्यवहार में बहुत सी चीजें हम अनिर्णीत नहीं रख सकते नियम के ही आगे बढ़ना पड़ता है। इसी लिए शास्त्रों में धर्मतत्त्वों का विवचन करने के बाद कहा है कि कम-से-कम दस ब्राह्मणों को अथवा विद्वानों को इकट्ठा कर के उन से नियम मांग लेना। यह कौरव का रिवाज था। कम-से-कम दस की परिषद् को दशावरा परिषद् कहते थे। दस न मिलने पर धर्मन सीन यक्तियों के कौरव (Quorum) को त्रयवरा परिषद् कहते थे।

क्या यह सब व्यक्तिनिष्ठा के नमूने नहीं हैं? हम कहेंगे कि व्यक्ति यानी अनेक अच्छे मान्य सिद्धांतों का जीवित रूपरंग। व्यक्ति में केवल बुद्धि नहीं होती केवल मान्यबुद्धि से वह नियम नहीं देता मान्य के साथ बल्याण-बुद्धि भी मिला देता है जिसे अंगरेजी में Equity कहते हैं संस्कृत में इसे समम कहते हैं। व्यक्ति नियम करते समय बुद्धि, भावना उदारता, दया क्षमा, सवहित कारिता और मागत्य आदि सब तत्त्वों का एक साथ प्रयोग करता है। सवमान्य शास्त्रों का भी अर्थ तो पूज्य व्यक्तियों से ही हम मांग लेते हैं। इस लिए यह स्पष्ट है कि प्राणधारी, शरीरधारी मनुष्य समाज के आवन के लिए सत्य का और सारभूत तत्त्व का नियम व्यक्ति पर ही छोड़ना पड़ता है। अर्थ मान्यनिष्ठा से धर्मन व्यक्ति का नियम अधिक गुंथ होता है। इस लिए हम नियम तो आग्निरक्षार व्यक्ति पर ही छोड़ेंगे और अपनी सारी शक्ति ऐसे व्यक्ति को पसंद और मान्य करने में सच करेंगे।

लेकिन यह भी हमेशा सम्भव नहीं होता। भारत और पाकिस्तान का जब बंटवारा हुआ तब कौन सा मुल्क किस राज्य के पास जाय इस का मुख्य नियम हाने के बाद बाकी का विवादास्पद नियम दोनों पक्षों ने एक अंगरेज के हाथ में सौंप दिया और उस का नियम जो भी हो मान्य करने का प्रथम बचन दिया। मनुष्य-व्यवहार में ऐसा करना ही पड़ता है।

और इस के आगे जा कर नियम तत्त्व और सिद्धांत पर नहीं व्यक्ति पर भी नहीं किंतु रूपया या पसा हवा में उछाल कर वह जमीन पर जसे पड़गा उस के अनुसार किया जाता है जिसे अंगरेजी में toss कहते हैं। यह बड़े राष्ट्रीय और

मान्तरराष्ट्रीय महत्त्व के सवाल का निणय इसी तरह दवाधीन करना पड़ता है ।

यह सारा विवचन इस लिए किया है कि इस के बाद जा चर्चा हम करेंगे इस में दोना पक्षों का खयाल हमारे सामने है, दोना पहलुआ का महत्त्व हम जानते हैं, स्वीकारते हैं सो तो है ही लेकिन यह भी है कि समस्त मनुष्य जाति भी दोनों पक्षों का अनुभवसिद्ध महत्त्व मजर कर के ही चलती है ।

साधारणतया सोचने वाला कोई भी आदमी कहेगा कि "व्यक्तिनिष्ठा गौण चीज है तत्त्व ही श्रेष्ठ है । व्यक्ति आज है, कल नहीं होगा । व्यक्ति में अनेक तरह के दोष होते हैं कमजोरियाँ होती हैं, स्वाधयग हो कर या अभिमान से व्यक्ति पाप करने को प्रवृत्त होता है । ऐसे व्यक्ति के प्रति निष्ठा रखना किस काम की ? व्यक्तिनिष्ठा में गुलाम-वृत्ति को ही पोषण मिलता है । डरपोक, कायर या मतलबी मनुष्य ही व्यक्तिनिष्ठा के बच होगा । मनुष्य के लिए तत्त्वनिष्ठा ही योग्य है, इत्यादि ।" लेकिन मनुष्यजीवन केवल तत्त्वों का बना हुआ नहीं रहता है । कभी कभी व्यक्तिनिष्ठा ही जीवन का सार सर्वस्व बनती है । स्त्री की पतिनिष्ठा व्यक्तिनिष्ठा ही है । लेकिन उसी के आधार पर गृहस्थायम चलता है, दाम्पत्य-जीवन सुखी होता है और उसी में से पति पत्नी की अपत्यनिष्ठा फलित हो कर कौटुम्बिक जीवन कृताय होता है । फौज में सेनापति की आना का पालन करना एक तरह से व्यक्तिनिष्ठा है, दूसरी तरह में उसे हम तत्त्वनिष्ठा भी कह सकते हैं । वचननिष्ठा—अपने गद्दों की कदर कर के दिये हुए वचन के लिए जखूरत पडने पर सबस्व का त्याग करना—व्यक्तिनिष्ठा भी है और तत्त्वनिष्ठा भी ।

हर राष्ट्र का अपना स्वभाव होता है । भारत के लोग स्वामी निष्ठा के लिए शुरू से मशहूर हैं । दूसरे किसी राष्ट्र के लोग अपनी तत्त्वनिष्ठा पर नाज रखते हैं ।

अंगरेजों के बारे में कहा जाता है कि वे होते हैं समय साधु—अवसरवादी । अपने स्वाय के लिए बड़े जागृक होते हैं । लेकिन ऐसे चतुर होते हैं कि हर समय किसी न किसी सिद्धांत को आगे करते हुए अपने को तत्त्वनिष्ठ घोषित करते हैं । उही के लेखक बरनाड गा ने अंगरेजों के इस स्वभाव का मजाक उड़ाया है ।

गहराई से सोचने पर लगता है कि किसी भी राष्ट्र जाति या जमात के बारे में सावत्रिक सिद्धांत बनाना खतरनाक है । हर एक समाज में तरह तरह के व्यक्ति होने हैं । समाज का स्वभाव भी एक सा नहीं रहना । अंगरेज लोग वगालियों को बाचाल और सायर कह कर उन को खिल्ली उड़ाते थे । लेकिन

वगभग के वाद वगालियो ने ऐसी वीरता दिखलायी कि अंगरेज स्वय प्रभावित हुए और उहान पुरानी नि दा छोड दी ।

साररूप यही वह सक्ते ह कि -यक्तिनिष्ठा और तत्त्वनिष्ठा दानो म आयता होते हुए भी उन का अतिरक पागलपन बन जाता ह । एक राजा अच्छा हो तो उस का काय सिद्ध करने के लिए मनुष्य स्वामिनिष्ठा के नाम पर चाहे सो बलि दान दे सकता ह । लेकिन उसी के लडके के लिए बसी ही निष्ठा रखना और अध हो कर उसी के पीछे चलना कभी कभी राष्ट्रद्रोह बन जाता ह । -यक्तिनिष्ठा हो या तत्त्वनिष्ठा हो, उस का भाव अबल होशियारी से समझना चाहिए । निष्ठा मे अधत्व के लिए गुजाइश नहीं होनी चाहिए । बडे बडे काम तो साथियों की परस्पर निष्ठा से ही सफल हो सकते ह । किंतु हमारे देश में हर एक निष्ठा को अध हो कर पकड रखने की आदत हो गयी ह । धमनिष्ठा अच्छी चीज ह । किन्तु वही जब रुढिनिष्ठा अधवा अभिमान का रूप धारण करती ह तब वह दोषरूप बनती ह । शास्त्रग्रन्थ के वचनो को पकड कर चलने का अधत्व दुनिया के सब देशो में और सब धर्मों में पाया जाता ह । इसी के कारण झगडे चलते रहते ह और असली मानव हित का द्रोह होता ह और सच्ची तत्त्वनिष्ठा ही गायब हो जाती ह । परिस्थिति को समझना और जिस वकन जो बात योग्य ह उसी को दढ़ता से करना यही ह सच्चा रास्ता । मनुष्य को समझसक्ति जब दुबल होती है तब कोई भा नियम उस के लिए घातक बन ज ता ह । हर एक समाज के नेताआ का अनुभव ह कि लोगा में समझ कम और अधापन अधिक होता ह । और ऐसा अधापन बहुत धार निष्ठा का रूप और नाम धारण करता ह ।

व्यक्तिनिष्ठा निष्ठा क रूप में चाहे जितनी अच्छी और अनतिकर भले ही क्यों न हो उस में एक बडा दोष आता ह । व्यक्तिनिष्ठ आदमी स्वय सोचता नहीं । व्यक्तिनिष्ठ राष्ट्र तो अधा बन कर किसी एक आदमी के पीछे चलता ह । इस से लाभ हुआ या हानि यह सोचने का होग भी उस में नहीं रहता और जिसे निष्ठा अधण की उत के चले जान के बाद सारा राष्ट्र किंतव्य विमुक्त बनना ह स्वय सोच नहीं सकता और बाज दफे एमे राष्ट्र के टुकड हो कर हर एक टुकटा अपने अपने नेता के पीछ चल कर राष्ट्र का ही नाग कर दता है । राष्ट्र क हर एक व्यक्ति में साचने की शक्ति तो होनी ही चाहिए, दूसरा हलाक नहीं है ।

(१८ मार्च १९६०)



मन्दिरों का सुधार

मन्दिरों का सुधार-१

हमारे देश में मन्दिर, मस्जिद और गिरजाघर बहुत हैं। पता नहीं कि अथवा देशों में इन की तादाद हम से अधिक है या कम। लेकिन इतना तो हम महसूस करते ही हैं कि हमारे यहाँ पूजा और इबादत के ऐसे मकान हृदय से ज्यादा हैं। हमारे लोग पहले जितने मन्दिर बनाते थे उतने अब नहीं बनाते हैं, यह बात सही है। लेकिन पहले मन्दिरों की जितनी हिक्काजत होनी थी गिरे हुए मन्दिरों का जितना जीर्णोद्धार होता था उतना अब नहीं होना है इस लिए बेकार मन्दिरों की संख्या बढ़ती जाती है। गाँव के लोग उत्सव के समय अथवा ऐसे ही किसी मौके पर मन्दिर में इकट्ठा अवश्य होते हैं लेकिन हमारे मन्दिर अब पहले के समान सामाजिक जीवन के केन्द्र नहीं रहे हैं।

जब अंगरेजों का राज्य था तब उन की नीति थी कि महत्त्व की बातों में हमारा स्वातंत्र्य छीन लिया जाये लेकिन गौण बातों में हमारे प्राचीन रिवाज, संस्था या प्रणाली का बड़ी ही तत्परता से रक्षण किया जाये। धार्मिक और सामाजिक जीवन में कोई सुधार करने निकले तो सनातनी लोग उस का विरोध करते थे लेकिन अंगरेज भी हमारे जीवन में हस्तक्षेप नहीं करने के अपने सिद्धांत की दुहाई देकर रुढ़िवादियों की ही मदद करते थे।

इस कारण संस्था के तौर पर मन्दिरों में कोई सुधार नहीं हो सकता था। अब रुढ़िवाद का रक्षण करने वाली कोई परायी सरकार नहीं रही है। अब हरेक समाज के नेता लागू लोकमत तयार कर के जरूरी सुधार कर सकते हैं। इस लिए अब मन्दिर सुधार की बात हमें सोचनी चाहिए। जो बात मन्दिरों के बारे में सोची जायेगी वही बात मुसलमान समाज अपनी मस्जिदों के बारे में सोच सकेगा।

मेरा पहला सुझाव यह है कि क्योंकि मन्दिर आदि संस्थाएँ आराधना की महत्त्व की जगह रोकती हैं इस वास्ते उन पर टक्स लगाया चाहिए। यह टक्स दो प्रकार का हो। मन्दिर कितना जगह रोकता है मन्दिर बनाने के

लिए वित्तना सार्ना हुआ है और मन्दिर चलाने के लिए कुछ मिला कर वादिक पक्ष वित्तना होना है यह सब सोच कर एक टैक्स लगाना चाहिए जिसे, हम वास्तु कर या Site tax कह सकते हैं। और दूसरा कर मन्दिरों की कुल आय पर होना चाहिए। जिस मन्दिर को कोई आय ही नहीं और जिस का उपयोग भी जनता नहीं करती है और जिस के लिए Site tax भी देना तयार नहीं है उस मन्दिर को या तो तोड़ देना चाहिए या कोई एतिहासिक या कलात्मक महत्त्व होना पर सरकार के पुराना वस्तु संरक्षण विभाग को सौंप देना चाहिए और यह जाहिर करना चाहिए कि उस पर अब उस धर्म पक्ष के लोगो का कोई अधिकार नहीं रहा है। जो मन्दिर रक्षारी के रास्ते पर हैं और बाह्यादि व्यवहार को रोकते हैं उन पर रजामा tax लगाना चाहिए और उस आमदनी से राहगोरों को सहूलियतें दनी चाहिए। अगर जाता ऐसा टैक्स देने को तयार नहीं है तो एसे मन्दिरों की जगह बदलन का हम म्युनिसिपालिटी का रहना चाहिए।

धनारस प्रयाग गोषण आदि स्थानों पर छोटे-बड़े मन्दिरों की इतनी तात्पर्य है कि धनारस में वही कहो गिर्बलिंग का उरमाग कृत्ता को करने में ने देता है। ऐसी लज्जाजनक स्थिति को सुधारने के लिए समाज का चेतावनी देनी चाहिए कि मन्दिरों की हिफाजत समाज नहीं कर सकता है ता उन को हटाया जायेगा और मन्दिर की विह्वलना बाद की जायेगा। अगर समाज ऐसे मन्दिरों की भी रक्षा ही चाहता है तो उस के खर्चों के लिए उस समाज के पास से योग्य टैक्स लेने का सरकार को अधिकार होगा। हिफाजत के लिए कम से कम क्या क्या करना होगा यह बताने का अधिकार सरकार के हाथ रहेगा। जिस मन्दिर को व्यवस्था अच्छी नहीं होगी उसे जुरमाना किया जायेगा। पूर्व अफ्रिका में मैं देख आया हू कि वहा के गहरो में मकान के इदगिद का बगोचा अगर अच्छी हालत में न रखा तो म्युनिसिपालिटी तुरत मकान में रहनेवाले को या मकान मालिक को दण्ड करती है। दण्ड छोटी मात्रा में रहता है और वह भी तुरत देना पडता है। अगर हम अपने शहरों का और गाँवों का स्वच्छ निरोमी और सुन्दर रखना चाहें तो हमें भी ऐसे कानून बनाने ही चाहिए। यह तो मानी हुई बात है कि केवल कानून से कुछ नहीं होता है। समाज के नताआ को हा इस बात में ऊचे आदश रखन चाहिए। जहा जहाँ नयी वस्ती तयार की जाती है, वहाँ-वहाँ आदश के नियम बना कर स्पष्ट करना चाहिए कि जा लोग इन नियमों का पालन करने को तयार हों उही को वहा जगह मिलेगी।

मन्दिर प्रवेश के कानून ता सरकार ने बनाय ही है। साथ साथ सामाजिक

शांति के नियम भी बनाने चाहिए। जिस से सारी रात भजन के नाम से मन्दिर में कोलाहल न चले और पडासियों की निद्रा का भंग न हो। हमारा सामुदायिक धार्मिक जीवन नियमवद्ध होना चाहिए।

(सितम्बर १९५०)

मन्दिरों का सुधार-२

मन्दिरों के सुधार के बारे में लिखे मेरे लेख को पढ़ कर भागलपुर से श्री गोपालकृष्ण मल्लिकजी ने कुछ सुझाव भेजे हैं। उन का सारांश नीचे दिया जाता है।

“(१) अगर किसी मन्दिर, देवालय या पोखरे पर किसी व्यक्ति या परिवार का ही अधिकार हो और उसे अच्छी हालत में रखन की हसियत उस व्यक्ति या परिवार की न हो तो उस की सारा व्यवस्था वहा के समाज क सुपुद करने के लिए उन्हें बाध्य किया जाये।

(२) जिस पुराने मन्दिर और मसजिद की व्यवस्था का सतोपजनक प्रबन्ध न हो उस के लिए कानूनन कुछ तुरत प्रबन्ध करना या करवाना चाहिए।

यवस्था सम्बन्धी सुधार के साथ नतिक सुधारों का भी आग्रह रखना चाहिए।

(३) जिन महान् मन्दिरों की प्रतिष्ठा के कारण दशका की सख्या हमेशा बढन रहती है उन मन्दिरों क प्रबन्धकार बडे करने चाहिए। अन्दर दृवा और प्रकाश पूरी माना में मिल सके इस के लिए भी खिडकियों का प्रबन्ध करवाना चाहिए।

(४) जगन्नाथपुरी, भुवनेश्वर कोणाक, बल्लूर, इल्लेशोड आदि मन्दिरों में जो बीभत्स मूर्तियाँ जगह जगह पर पायी जाती हैं उन को नष्ट करवा देना चाहिए (म इस सुझाव से पूणतया सहमत नहीं हूँ। बीभत्स मूर्तियाँ को न तोडते हुए वही के वही मिट्टी या चान आदि के नीचे दबा देना चाहिए जिस से समाज के स्त्री-गुरुपों की नजर उन पर न पडे। एक जमाने के पतन का यह सबूत बिलकुल नष्ट हो जाये यह नायद समाजशास्त्रियों का पसन्द नहीं होगा। बेहतर तो यह होगा कि कई मूर्तियाँ क फोटो ले कर बाद में उन को नष्ट विया जाय।)

(५) केवल कुतूहल की दृष्टि से जो लोग मन्दिर में जाता चाहते हैं उन पर वह टकस नहीं लगाया जाये जो यात्रा के हेतु मन्दिर जाननाले भक्तों से किया जाता है ।

(६) 'जो बात मन्दिर के लिए है वह मसजिद के लिए भी है ।'

इस तरह के कई सुझाव पेश किये जा सकते हैं । स्वराज सरकार का यह आवश्यक बतव्य है कि मन्दिर, मसजिद गिरजाघर और क़ब्रस्तान आदि जगहों के बारे में सोचनेके लिए उन उन समाजों की एक एक समिति बह नियुक्त करे और उन को सरकार की सामान्य नीति बताया जाये । जिन स्थानों की हिफाजत नहीं हो सकती और जिस का महत्व अब कुछ रहा नहीं है उन्हें समाप्त कर देने का काम उस समाज का है । जो स्थान संभाल कर रखने हैं उन की सुरक्षा के लिए समाज अपनी ओर से धंदा इकट्ठा करे और इस बारे में सरकार के जो कानून हों उन का पालन करे । स्वच्छता, सदाचार गिष्टाचार और आवश्यक शान्ति की दृष्टि से सारा प्रबंध सुधारने का काम समाज के नेताओं के सुपुद किया जाये ।

जिन जिन स्थानों के प्रति समाज को विशेष श्रद्धा है उन के प्रबंध के नियम बनाये जायें और सब धर्मों के प्रतिनिधियों की एक समिति बनायी जाये जो सब सामान्य नियम बनाये और उन के पालन पर अपनी निगरानी रखे ।

अगर ऐसी समिति में मतभेद पैदा हुआ तो सरकार का नियम सब को मान्य करना ही चाहिए ।

मेरा सुझाव है कि मन्दिरों में भात रोटी आदि ऐसी चीजें नहीं चनायी जायें जिन में स्पर्शास्पृश या दृष्टि श्लेष का सवाल उठ सके ।

(अक्टूबर १९६७)

जीर्णोद्धार या विसर्जन

जसा कि और प्रांतों में भी हो रहा है महाराष्ट्र में चंद सेवक अपनी बुद्धि-शक्ति के अनुसार सच्ची ग्रामसेवा कर रहे हैं । अभी एक भाई मिले जिन्होंने अम्बर चरख का और मद्य-पान निषेध का अच्छा काम किया है । युवकों के मन पर प्रभाव डाल कर वे उन से तरह-तरह के अच्छे काम कराते हैं । कही उहाने

देखा होगा कि नदी किनारे एक मन्दिर और घाट बहुत बुरी हालत में है। उन्होंने नवयुवकों की सहायता से घाट पर का और इद गिद का कूड़ा करकट दूर किया। लोगों का नहाने की अच्छी सहायता हुई। उन्होंने मन्दिर भी साफ करवाया और किसी से पैसा माँग कर मन्दिर की दीवारा को चूना भी लगवाया।

अपने ऐसे अच्छे अनुभव के बल पर उन्होंने एक सम्मेलन में प्रस्ताव रखा कि अगर इस तरह अपने अपने विभाग में स्वयंसेवक मन्दिरों का जीर्णोद्धार करें तो बहुत बड़ी सेवा होगी। सैकड़ों मन्दिरों की दशा सोचनीय है। अगर नव युवक सोचें, तो सब के सब मन्दिर स्वच्छ हो सकेंगे।”

जब कभी मन्दिरों के जीर्णोद्धार की बात आती है तब कई सनातनी आत्मा ऐसे कर्मों के प्रति आकर्षित होते हैं और चढ़ा दे कर उत्साह के साथ कार्यक्रम अपनाते हैं।

मैं ने देखा कि इस कार्यक्रम के बारे में कुछ स्पष्ट बात करना जरूरी है। जिस भाई ने नदी किनारे का मन्दिर और घाट नवयुवकों की मदद से साफ किये उन का अभिनन्दन करते मैं ने कहा कि जिन मन्दिरों के प्रति उपासकों की भक्ति जागृत है अथवा जो मन्दिर स्थापत्य कला की दृष्टि से मनोहर और रक्षणीय हैं ऐसी की सूची बना कर दश के सामने सुधार के लिए रखनी चाहिए। लेकिन सब के सब, भले-बुरे मन्दिरों की हिफाजत का बोझ हम नहीं उठा सकते।

मत्स्य-हृदयों के उत्साह के कारण और पुण्यलोलुप या कीर्तिलोलुप धार्मिकों के छोटे बड़े पुरुषाय के कारण देश में मन्दिरों की संख्या इतनी बढ़ी है कि सब के सब मन्दिरों के जीर्णोद्धार का कार्यक्रम हम बनाएँ तो समाज सेवा के सब काम छोड़ कर पचास-साठ बरस तक यही काम करना पड़ेगा। और तब तक सुघरे हुए मन्दिर भी फिर से जीर्ण होने लगेंगे और फिर से मरम्मत के अधिकारी बनेंगे।

जब अंगरेज राज्यकर्ता इस देश को छोड़ गये, तब उन्होंने इस देश में जगह-जगह पायी जाने वाली गारों की श्मशानभूमि (cemetery) का भी विचार किया। उन्होंने तय किया कि सब की सब श्मशान भूमियाँ भी हिफाजत करना नामुमकिन है। इस लिए महत्व की चढ़ श्मशान भूमियों की हिफाजत का उन्होंने प्रबंध किया और बाकी के सब कब्रस्थान कुदरत को लौटा देने का उन्होंने निश्चय किया। इस तरह जिन कब्रस्थानों का विध्वजन किया गया, वहाँ की दीवारें टूट जायें उन के पत्थर और स्मारक पत्थर भी काई उठा कर ले जाये तो कोई निकायत नहीं करेगा।

सारे समाज को इकट्ठा कर के हम लोग कभी ऐसा निणय नहीं करते।

सब-नाश का इतना माहा तैयार करने के बाद देश में अगर परतंत्रता आ जाये तो इस में आश्चय ही क्या है ?

मन्दिर प्रवेश की ही बात हम सोचें। उन्होंने पूजा का अधिकार सिद्ध ब्राह्मणों और पुजारियों के हाथ में ही रखा। हरिजनों को तो मन्दिर प्रवेश निषिद्ध ही कर डाला। लेकिन मैं ने एक ऐसा भी सनातनी मन्दिर देखा है जिस में मन्दिर में प्रवेश पानेवाले सब हिन्दुओं को आज भी शम नहीं है कि जहाँ ये सब पुरुष दशन के लिए जा सकते हैं वहाँ तक उन की माताओं को, बहनों को, पत्नियों को और लड़कियों को प्रवेश का अधिकार नहीं है। क्योंकि वे स्त्री जाति हैं।

दुवला का दमन करने वाले इस रुढ़िवाद की विदेशी राज्यकर्ताओं के सामने कुछ न चली। भिन घर्मी राजाओं के राजकर्मचारी इन सनातनी रुढ़िवादियों की मर्यादा छोड़ ही मान्य रखनेवाले थे। कई बार भिन घर्मी राजकर्मचारियों ने मन्दिरों में जा कर तहकीकात की है। तब ये निर्दोष रुढ़िवादक असमजस में पड़े कि अर क्या किया जाये। गाय की विष्टा और मूत्र से मन्दिर को पवित्र कर सकते थे। लेकिन अगर इस से भी चिढ़ कर राज्य कर्मचारी सजा करें तो ?

रुढ़िवाद का बुद्धिबल कभी हारा हुआ नहीं है। उस ने घमशास्त्र की मदद ली और कहा— 'ना विष्णु पृथिवीपति' पृथ्वीका मालिक राजा मनुष्य होते हुए भी प्रत्यक्ष विष्णु ही है। इस वास्ते वह तो मन्दिर में आ ही जायेगा।

राजा का यह अधिकार मान्य करने के बाद इन पापरो ने युक्तिवाद चलाया कि राजा मन्दिर में राजा के सब कर्मचारी भी आ जाते हैं। महाँ तक कि कोई पुस्तक भी आ जाये तो वह भी राजा का प्रतिनिधि होने के कारण नररूपेण सदा रहने वाला वह एक बड़ा देवता ही है।

इस तरह चाहे किंगी भी घम का हो राजा उम के कर्मचारी और उत की पुस्तकों को मन्दिर प्रवेश की इजाजत घमशास्त्र से ही गिद्ध हुई। राज्यकर्ता के साथ राज्यकर्ता के घम के सब स्थाणों का भी एक तरह की प्रतिष्ठा देन का इन्कार मानात्म रुढ़ि के पास है।

गुजरात में अगर कोई घम मानण्ड ब्राह्मण हरिजन को पूजा तो इस महाभाग का शायद-बस रुढ़िवाद के अनुगार ही तरह न हो सकता है। या तो वह मानात्म घमनिष्ठ पुरुष अपने कण्ठ उगार कर भिगा ले और स्वयं मग निगारत स्नान कर ल या प्रमग दुनना तबनीय करणान न हो सफ ता रिषी मुमुक्षुस के जा कर लूँगे। सब पान उतर जाता है। जब महाभाग गांधी लूक-लूक के तिनों में प्रत्यापना निवारण के लिए गुजरात में दौरा करने थे तब

कभी-कभी उन के साथ मुहमदअली शीकतअली भी जाते थे । सनातनियों ने यह अच्छा मौका पाया । सभा में खूब आने लगे । जब तक सभा में अलीबघु जैसे विशालकाय मुसलमान हैं तब तक अस्पृश्यता का डर बिलकुल नहीं था । जब यह बात महात्माजी के ध्यान में लायी गयी तब उन्हें इस का स्पष्टीकरण करना पडा ।

सनातनियों की एक दूसरी खूबी ह । अगर किसी कुत्ते ने मिट्टी के घड के पानी में मुँह डाला तो वे कहेंगे कि पानी फेंक दो और घडा तोड दो । मगर धातु के बरतन में कुत्ते ने मुँह डाला तो कहेंगे कि पानी फेंक दो और बरतन बाग पर रख कर गरम करो तो गुड हो जायगा । लेकिन अगर किसी कुत्ते ने धी के कनिस्तर में मुँह डाला या थोडा चाट भी लिया ता ऊपर-ऊपर का थोडा सा धी फेंक देने से काम चल जायेगा । कनिस्तर और कनिस्तर का धी अगुद नहीं माना जायेगा । इसी तरह अगर बडे मेल में सकडा और हजारों लोग इकट्ठा हुज और उन में अनजान में हरिजन आये और उन का स्पश हुआ तो ऐसे समय पर 'स्पशास्पष्टिन विद्यते,' छुआछूत है नही ।

ऐसा कह कर वे रोजमर्रा के जीवन में छुआछूत कायम रख देते हैं । अगर किसी ब्राह्मण को लाचारी से किसी ब्राह्मणेतर के साथ एक पत्नि में बठना पडे तो पक्तिभोजन का दोष टालने के लिए वह चुपचाप कोयले की एक लकीर दोनों के बीच खीचेगा । और कहेगा कि लकीर के कारण एक पक्ति को दो पक्तिया हो गयी । इस वास्ते पक्तिदोष नहीं रहा । भोजन करते करते अगर पडोस के आदमी का स्पश हुआ तो गुस्से में आकर ब्राह्मण यात्री छोड कर चला जायेगा, लेकिन अगर ऐसा नहीं कर सकता ह तो पानी का स्पश अपनी दो आँखों से कर के गुद हो जायेगा और आराम से खायेगा ।

यह सब कहन का अर्थ इतना ही ह कि आबरण में छुआछूत से चाहे जितनी तबदीली करवाइए छुआछूत का भेद वह दिल मे हटने नहीं देगा । अगर बिहार के मुख्य मंत्री श्रीबाबू हरिजनो को ले कर दवागढ के मन्दिर में गये तो सनातनी कहेंगे कि वे तो राजपुरुष ह—प्रत्यक्ष विष्णु के अवतार । उन के साथ जितने भी लोग आयेंगे उन के दगन और स्पश से उस वकत के लिए पवित्र हागे ।

ऐसी लचीली रुढि को तोटना आसान नहीं है । मन्दिर के पडे-मुजारी एक सर इतने लोभी और अवसरवादी होते हैं कि उन का दवाने से वे दब तो जाने हैं, लागूलचालन करने के लिए भी तयार होते ह । लेकिन मौका मिलते ही अपना पुरानी चाल कामम रखते हैं ।

इस लिए सच्चा उपाय यही है कि जिद्य तरह सिम लोग ने गुम्बारा शिरोमणि प्रबन्धक सभा कायम कर के सत्याग्रह के बल पर अपने अपने गुम्बाराओ का बन्धन ले लिया उसी तरह शुद्ध सनातनियों को इन मंदिरों का बन्धन हट्टिवादिमों से छीन लेना चाहिए और मंदिरों की व्यवस्था में आमूलग्र परिवर्तन करना चाहिए ।

स्वराज्य के दिना में सत्याग्रह करने की आवश्यकता नहीं है और शिरोमणि सभा के जसी किसी एक जमात के हाथ में मंदिर का बन्धन देने की जरूरत नहीं है । जिस तरह मद्रास की ओर Temple's Endowment Act हुआ है और मंदिरों की ओर से होने वाले खर्चों का प्रबन्ध मुबारर किया है इसी तरह सारे देश में मंदिरों की सम्पत्ति का विनियोग सुव्यवस्थित हा जाये एसा इलाज करना चाहिए ।

सब से पहले यह तय होना चाहिए कि मंदिरों पर किसी व्यक्ति विनियोग का स्वामित्व न रहे । सारे समाज का स्वामित्व रहे । इस में हरिजन भी गुमार हो । और मंदिरों की प्रबन्धक समिति में चमार या भगी म स कोई-न कोई एक सदस्य अवश्य हो ।

दूसरी बात यह तय हो कि मंदिर में कोई पुजारी न हो । भक्त लोग पहले से इजाजत ले कर अपना क्रम और समय तय करें । और उस समय जा कर मंदिर में पूजा करें । मंदिर की साफ सफाई का और उत्सवों का प्रबन्ध प्रबन्धक समिति के द्वारा हो । मूर्त्ति को अभिषेक करने का और नवेद्य चढ़ाने का अधिकार हरिजन आदि सब जातियों को रहे ।

मंदिर में जो नवेद्य या भोग चढ़ाया जाता है उस में भात रोटी आदि कच्चा रसोई के पदार्थ बिलकुल न हों । सूखामवा ताजामेवा और मिठाई आदि सबग्रह्य चीजों का ही भोग लगाने का नियम हो ।

मंदिर में नामस्मरण या कीर्तन के नाम शोरगुल और कोलाहल करने की इजाजत किसी की न हो । मंदिर में शांत, गम्भीर पावन और प्रसन्न वायु मण्डल रखा जाये और वहाँ पर अगर सगीत का प्रबन्ध रहा तो वह भी सात्त्विक ढंग का हो । मंदिरों में रणभेरी आदि जगी वाद्यों के लिए अथवाश नहीं होना चाहिए ।

उत्सवों के दिन सब लोगों को मंदिरों में बुलाया जाये और शुद्ध सात्त्विक भक्ति का और मानवोचित सदाचार का उपदेश भी हो या सन्त साहित्य का पारायण चले ।

मंदिरों की सम्पत्ति में स सत्सृष्ट भाषा का अध्ययन विना किसी भेदभाव

के सब लोगों का सुलभ किया जाय। सस्कृत में पाली अथवागधी आदि भाषाएँ भी आ जाती हैं। मन्दिर के साथ एक पुस्तकालय भी अवश्य हो जिस में लोगों का धर्म का नाम और धार्मिक पुस्तकें पढ़ने का अवसर मिले।

मन्दिर के साथ एक पशु चिकित्सालय भी अवश्य होना चाहिए। जिस के चरिये गाय, बैल, घोड़ा, कुत्ता आदि सब ऐसे पशुओं की सेवा हो जिन की सेवा मनुष्य हमेशा लेता आया है।

इस तरह मन्दिरों के द्वारा धर्मोचित समाज सेवा के अनेक प्रकार हम चला सकते हैं। आजकल मन्दिरों में जा अनाचार चलता है देवदासियों को मन्दिरों में रखा जाता है वह सब तुरंत बन्द होना चाहिए। सब के सब मन्दिर धर्म प्रधान सस्कृति के जीवित केन्द्र बनने चाहिए।

हमारे मन्दिरों में जहाँ तहाँ धर्मवचन लिखने या खुदवाने का प्रयत्न नहीं होना चाहिए। ऐसे वचना से मन्दिरों का वायुमण्डल जसा चाहिए बसा नहीं रहना। धर्मवचनों के लिए एक अलग कमरा या कक्ष रखना चाहिए जिस में धर्मवचन की अनेक शिलाएँ पारी-पारी से रखी जा सकती हैं।

मन्दिर जो आज जड़ जरठ छुत्वादि के किले बन गये हैं उन्हें जीवित, प्रगतिशाल मानवता के विकास के केन्द्र बनाना चाहिए। और उन का प्रबंध समाजमाय सदाचारी लोक सेवकों के हाथ में रखना चाहिए।

श्री विद्योबा के ऊपर जो घातक आक्रमण हुआ उस के फलस्वरूप अगर मन्दिरों की व्यवस्था में इतना परिवर्तन हो जाय तो वह एक बड़ा लाभ ही होगा। सत्ता के कष्ट का लाभ समाज को पूरा-पूरा मिले यही इष्ट है।

(नवम्बर १९११)

खानगी मन्दिरों को हम ठीक करें

जब से अस्पृश्यता निवारण के कानून देश में सर्वानुमति से स्वीकृत होने लगे तब से जगह-जगह मन्दिरों के ट्रस्टी लोग कानून की बारिकियाँ ढढ़ने लगे हैं कि वचने का कोई उपाय है या नहीं।

वे क्यों नहीं जानते कि जहाँ महात्माजी जैसे पुण्यपुरुषों की और धर्मप्राण व्यक्तियों की प्रेरणा से सारे राष्ट्र ने और समस्त हिन्दू समाज ने तय किया है

खानगी मन्दिरों को हम ठीक करें

कि अस्पृश्यता का कलक दूर करना ही है तब कानून को खामियाँ ढेंढ़ना मिथ्या प्रयत्न है समय का, धन का और बुद्धि का केवल दुर्प्रयोग है ?

बकीला को और वॉरिस्टरा को लडने पर दोनों तरफ से लाभ ही है । वे तो "स्वस्ति रामाय, स्वस्ति रावणाय" कहेंगे ही ।

मंदिर के अथलोभी ट्रस्टी लोग डरते होंगे कि हरिजनो के मंदिर में आने से रुद्धिप्रिय सनातनी लोग मंदिर में कम आयेंगे और मंदिर की आमदनी कम होगी । कई मंदिरों का अनुभव इस से उल्टा ही हुआ है । दक्षिण में मदुरा की तरफ के एक मंदिर के बारे में मैं जानता हूँ कि वह मंदिर हरिजनो के लिए खुला होते ही चंद ब्राह्मणों ने उस मंदिर में जाना छोड़ दिया । जब ब्राह्मणों को इस बात का पता चला तब वे खमूसन इसी मंदिर में दशन के लिए जाने लगे । वही पर दक्षिणा देने लगे । फल यह हुआ कि इस मंदिर पर जो पुराना वर्जा या वह तो नयी आमदनी से दूर हो ही गया, मंदिर के ट्रस्टियों ने मंदिर के इंद गिद नये मण्य और कमरे बना दिये और आज उस मंदिर को हालत ईर्ष्या करने लायक है ।

जहाँ देखें मंदिर के ट्रस्टी कहते हैं कि हमारा मंदिर सावजनिक नहीं है । मट्टीभर खानगी लोगों के स्वामित्व का यह खानगी मंदिर है । इस में कानून हरिजन प्रवेश की जबरदस्ती नहीं कर सकता ।

ऐसी परिस्थिति में हमारा सुझाव है कि हम कानून का अर्थ स्पष्ट करने के लिए मुकदमा तयार कर कोर्ट में न जायें । ऐसा नया कानून बनाने की कोशिश भी हम न करें कि मंदिर—सावजनिक हो या खानगी—जहाँ बहुत सी जनता या कोई बड़ा बग दशन के लिए जा सकता है उस मंदिर में हरिजनो का प्रवेश होना ही चाहिए । हम इस से एक आसान रास्ता सुझाते हैं । सरकार निम्नलिखित योजना अमल में लावे—

१ सरकार सब मंदिरों के ट्रस्टियों से पूछे कि आप का मंदिर सावजनिक है या खानगी ? खानगी मंदिरों का एक रजिस्टर बना कर सरकार स्पष्ट करे कि इतने मंदिर आज से खानगी गिने जायेंगे ।

२ इस के बाद सरकार स्पष्ट करे कि जो मंदिर खानगी है उन को Charitable Endowment Act जने कानूनो का लाभ नहीं मिलेगा । याने ट्रस्ट रजिस्टर बनाना होता है तब रजिस्ट्रेशन भी माफ होनी है या कम ला जातो है इस का लाभ उन को नहीं मिलेगा । शहर नगरपालिका की तरफ से पानी का बिजली का अथवा ऐसी दूसरी सेवा का टैक्स अगर मंदिरों को कम देना पडता है तो एमी सहूलियत भी बंद की जाय ।

जब हम अस्पृश्यतामूलक भेदभाव मिटाने पर तुल हैं तब ईसाई, मुसलमान
 आदि समाजा में भी दंगना चाहिए कि किस हद तक भेदभाव अब भी जारी है
 और उसे दूर करने की प्राणपण से कोशिश होनी चाहिए । समाजसेवा और
 राष्ट्रीय सरकार दोनों सफल करें कि इस एक दोग को हम पाँच बरस के अन्दर
 समूल दूर करेंगे ।

(१२ मार्च १९६१)

साधु और समाज

साधु और समाज

किसी ने कहा कि हमारा साधु हमारे समाज का आदर्श पुरुष नहीं है। इस बात को सुन कर हमारे एक मित्र कुछ घबरा गये और उन्होंने मुझे लिख कर पूछा कि इस में मेरी राय क्या है।

यह जमाना अथ सत्य का है। लोग थोड़ा कुछ सोचते हैं, कुछ नतीजे पर आते हैं और अपने खयाल को ऐसे शब्दों में रखते हैं कि मानो वही परम सत्य है। अगर मैं जवाब दूँ कि हमारे साधु हमारे समाज के लिए आदर्श हैं भी और नहीं भी तो इस से क्या बच होगा ?

हिंदुस्तान में सब तरह के साधु हैं। जितने लोग साधु का बेश पहनते हैं। साधु की भाषा बोलते हैं साधु की गद्दी चलाते हैं, वे सब के सब साधु होते ही हैं ऐसा नहीं है। लेकिन सबाल यह नहीं है। सबाल यह है कि क्या समाज उस आदर्श को अपना सकता है जो साधुओं के लिए बतलाया गया है ? अगर सारा समाज उन्हीं के ढंग पर चलेगा तो क्या समाज का हित होगा ? थोड़ी मिसालों को हम सोचें।

मैं ने एक साधु देखा है जिस ने अपना दाहिना हाथ मूय भगवान् का गौन दिया था। उस हाथ को वह हमेशा अपने गिर पर ही रखता था। सारा काम बायें हाथ से ही करता था। नतीजा यह हुआ कि उस का दाहिना हाथ कुरीद-कुरीद सूख गया था। अगर उसे हिलाने का साधन तो भी दिला नहीं गया। व्यक्ति को हमारी दुनिया साधु ही बहेगी। मैं उस समाज का भक्त और प्रयोगकर्ता कहूँगा। प्रयोगकर्ता में परिणाम देखने की और साधने की शक्ति शर्तों चाहिए। वह उस में होती तो वह अपने प्रयोग का पूरा आश्वासन के बाद छुड़ देता। बुद्ध भगवान् सच्चे प्रयोगकर्ता थे। उन्होंने कई बातें आश्वासनों और छोट दीं। रामकृष्ण परमहंस ना प्रयोगकर्ता थे। प्रयोजन पूरा होते ही वे अपने जीवन में परिवर्तन करते गये।

त्रिनिश—इतिहासों द्वारा सब तरह की कठिनाइयाँ मरुत करनी और अपनी

सब यमजोरिया हटाकर इद्रियों पर विजय पाता—यह है साधुता का प्रथम लक्षण । मामूली आदमी भ जो सहन शक्ति नहीं होती है वह साधुओं में पायी जाती है । लेकिन वही शक्ति उच्च समाज सेवका में और गुरवीरों में पायी जाती है । जो लोग साधु का वेग ले कर बंठते हैं वे शायद तितिक्षा का अतिरेक करते हैं लेकिन उन के पास से समाज इतना तो सीख ही सकता है कि सादगी, समम और परोपकार के बिना हम जीवन के आदश तक नहीं पहुँच सकते हैं । जो लोग औरों को बचाने के लिए अपनी जान खतरे में डालते हैं वे भी तो साधु पुरुष हैं । जो लोग समाज सेवा करते करते अपनी सारी जिन्दगी गला डालते हैं वे अगर साधु नहीं तो साधु ही कौन ?

अक्सर साधुआ की तीन बातें सारा समाज ग्रहण नहीं कर सकता है । साधुओं को धन का लोभ नहीं होता है । उन की जिन्दगी बिलकुल सादी होती है । जीने के लिए उन्हें बहुत थोड़ी चीजें काफी होती हैं । ऐसी हालत में साधु लोग अपनी रोजी बमाने में समय नहीं खरचते हैं । साधुआ के द्वारा समाज की सच्ची या मानी हुई इतनी सेवा होती है कि साधुआ को वह खिलाना पिलाना समाज के लिए बोज़ रूप नहीं होता है । बेशक, सच्चे और अच्छे साधु की यह बात है । दूसरे साधु भी होते हैं जो झुकने वाली दुनिया को झुकाने में बड़े उस्ताद होते हैं ।

साधु लोग समाज की सेवा कर के—नतिक और तबोबी सेवा करके—थाड़ा कुछ दान लेते हैं और वे समाज के आश्रित माने जाते हैं । इधर डाक्टर भी समाज की भली-बुरी सेवा कर के मनमानी फीस लेते हैं वे आश्रित नहीं माने जाते हैं । वे तो स्वाश्रयी ही नहीं हिन्दु कमाने वाले समाज के उद्धारक माने जाते हैं ।

सच्चा साधु गाँव के लड़ने वाले दो भाइयों को बुला कर उन के बीच समझौता करा देता है और दिल सफाई भी कर देता है । वकील और बैरिस्टर अदालत में जा कर भाइयों के झगड़े में मदद करता है । समझौता नहीं लेकिन बोरे इन्साफ़ की बात वह साबता है ।

तो भी इतना तो कहना चाहिए कि साधु जिस तरह अपनी आजीविका के लिए समाज पर निर्भर रहता है वैसे मामूला लोग नहीं रह सकते । इस दरजे साधु समाज का आदश नहीं बन सकता ।

मेहात कर के अपनी रोजी बमाने वाले साधु कभी नहीं ये सो बात नहीं । बबीर जुगहा था । गाराबा कुमार था । रदास चमार था । सदन कसाई था । खिस्ती धम को व्यदम्पित रूप दन वाला सेट पाल तम्बू बना कर अपना पेट

भरता था। इतना ही नहीं किन्तु अपनी मेहनत से अपने हिजरती सिष्यो को भी खिलाता था।

हमारे देश में हमारे साधु समाज सेवा करने के लिए बाध्य नहीं थे। समाज भी उन से सेवा लेते सकीच करता है। लेकिन सच्चे साधु हमें किसी-न किसी प्रकार की समाज-सेवा करने में लगे ही रहते हैं। ऐसी हालत में अगर हम साधुओं के आदेश में इतना सुधार करें तो काफी है कि साधु अपनी रोजी कमाने के लिए या समाज सेवा करने के लिए मेहनत-मजदूरी करें तो वह अच्छा ही है। जो साधु मेहनत मजदूरी कर सकते हैं उन्हें ऐसी मजदूरी से रोकना और दान पर ही जीने के लिए उन्हें ललचाना, पुण्य का काम नहीं है इतना अगर हमारे लोग समझ जायें तो हमारे साधु समाज के लिए आदेश पुरप बन सकते हैं।

हमारे देश में ही नहीं किन्तु दुनिया भर में हर धर्म के साधुओं में ब्रह्मचारी और गृहस्थी ऐसे दो भेद हैं। रोमन कैथोलिक मक और हमारे सन्यासी ब्रह्मचर्य का व्रत लेते हैं। कई समाज-सेवक धार्मिक प्रेरणा से नहीं किन्तु समाज-सेवा की उत्कण्ठता के कारण अविवाहित रहते हैं। बड़े बड़े सशोधक और चानोपासक भी एकाग्रता बढ़ाने की दृष्टि से अविवाहित रहते हैं। सारा समाज इन का अनुकरण नहीं कर सकेगा। लेकिन इस लिए हम यह नहीं कह सकते हैं कि ब्रह्मचर्य का जीवन समाज के लिए आदेश नहीं है। आदेश तक हर आदमी नहीं पहुँच सकता है यह तो मानी हुई बात है। लेकिन क्या इस लिए हम कह सकते हैं कि सामान्य कोटि का जीवन आदेश है ?

कम से-कम हिन्दूधर्म ने तो आदेश ब्रह्मचर्य और आदेश गृहस्थाश्रम ऐसे दो आदेश समाज के मामले रखे हैं और भारपूर्वक कहा है कि दोनों एक ने श्रेष्ठ है। आदेश गृहस्थाश्रमी भी समाज के लिए आदेश पुरप हो सकता है। और आदेश ब्रह्मचारी भी।

महात्मा गांधीजी के मत के अनुसार अखिल मनुष्य जाति के लिए एकमात्र आदेश ब्रह्मचर्य का ही है। मनुष्य जाति का जीवन मोक्ष के लिए है। पूण निर्विकारिता के बिना मोक्ष प्राप्ति असम्भव है। इस लिए मनुष्य विवाहित हो या अविवाहित उसे पूण निर्विकारिता के लिए ही कोशिश करनी चाहिए। आगे जा कर उन्होंने ऐसा भी कहा है कि केवल सत्तान उत्पत्ति के एकमात्र उद्देश्य से ही गृहस्थाश्रमी, धर्म के अनुसार सम्भोग कर तो उसे भी ब्रह्मचर्य ही समझना चाहिए। लेकिन मोक्ष के मान ही निर्विकारिता है। यही उन की भूमिका थी। उन की साधना भी वही थी।

समाज के आदश में और साधुओं के आदश में और भी एक पक् है। साधु कहते हैं कि "भले ही हमारा जीवन एकांगी गिना जाये, किंतु हम सिर्फ नतिक उन्नति के प्रयत्न में ही दिलचस्पी रखेंगे। अपनी सारी शक्ति अपनी निजी व समाज का नतिक व आध्यात्मिक उन्नति के लिए ही लगायेंगे। सासारिक पान की खोज में और उस के विस्तार में हम अपना समय व्यतीत नहीं करेंगे। दवा दे कर रोग का निवारण करना हमारे में से चन्द लोगों को प्रवृत्ति बन गयी है। लेकिन सचमुच वह हमारे क्षेत्र के बाहर की चीज है।" संगीत, चित्रकला, कविता आदि कलाओं में कई साधुओं की दिलचस्पी होती है। धर्म व नीति के प्रचार में उन को बहुत कुछ मदद हो सकती है इसलिए साधु लोग कभी-कभी इन कलाओं का अनुशीलन भी करते हैं। लेकिन वह भी उन का क्षेत्र नहीं गिना जाता है।

सामाजिक आदश कहता है कि मनुष्य का विकास सर्वांगीण और प्रमाणवद्ध होना चाहिए। ऐसे अनेक साधु हो गये हैं जिन्होंने जीवन विकास के एक भी अंग को उपेक्षा नहीं की है। भविष्य में ऐसे साधु को ही सच्चे और सवश्रेष्ठ साधु कहा जायेगा।

साधु को चाहिए कि वह परलोक परायण हो वने, इस लोक के धारे में उस के मन में उपेक्षा ही रहनी चाहिए—यह या साधुओं का पुराना आदश। सब साधुओं ने इसे मान्य नहीं रखा था। आज भी इस धारे में दो मत हैं।

सारांश यह कि साधुओं के आदश अनेक हैं। सामाजिक जीवन के आदश भी अनेक हैं। आध्यात्मिक क्षेत्र में जो साधु नये नये प्रयोग करते हैं उन में कम या अधिक एकांगिता रहेगी ही। तो भी हम कह सकते हैं कि आदश सामाजिक पुरुष का चित्र और आदश साधु का चित्र दिन पर दिन एक दूसरे के नजदीक आ रहे हैं।

(निसम्बर ११५०)

सार्वजनिक जीवन और साधु

स्वतंत्रता, समता और बंधुता ये मानव के लिए इस युग के महान् आदश हैं। इन तीनों में बंधुता सर्वश्रेष्ठ है। बंधुता अगर सिद्ध हो गयी तो स्वतंत्रता और समता का झोह नहीं हो सकेगा।

अब हम समता के बारे में सोचें। पश्चिम की, युरोप अमेरिका की गोरी जाति ने माना और दावा किया कि गोरो का वंश ही श्रेष्ठ वंश है। बाकी के वंश उन से हीन होने के कारण उन के मातहत ही रहने चाहिए। उन्होंने सारी दुनिया में अपना राज्य और अपना आतंक फैलाया। उन के मन में कुछ भी हो, आज उन्होंने अपना पुराना ढाँचा छोड़ दिया है। सफ़ेद, पीले, काले और गेहूँवे तथा लाल रंग के सब वंश शिक्षा-दीक्षा में बराबर हाते हुए भी तत्त्वतः समान हैं और एक से आगे के अधिकारी हैं। यह बात आज दुनिया में सबमाय हुई है।

एक ज़माना था जब स्त्रियों को पुरुषों से गौण और हीन माना जाता था। स्त्रियाँ की राजनीतिक अधिकार नहीं मिलते थे। शिक्षा-सभ्यता में प्रवेश नहीं मिलता था। आध्यात्मिक क्षेत्र में भी उन्हें बिल्कुल ही हीन या गौण मानते थे। अब स्थिति सुधर गयी है। स्त्री-पुरुष के अधिकार सम-समान हो गये हैं। जहाँ अधिकार समान नहीं है, वहाँ पर भी तत्त्वतः उन की समानता का कोई विरोध नहीं करता।

धर्मों के बारे में तो हर एक धर्म ने अपनी श्रेष्ठता का दावा जोर शोर से चलाया, इतना ही नहीं, हर एक धर्म दुनिया के सामने घोषित करता आया है कि 'पूरा सत्य मेरे ही पास है। लोकेश्वर की शक्ति सिर्फ मुझ ही में है। बाकी के धर्म असत्य से भरे हुए और भ्रान्त हैं।'

धर्मों की यह अहंमत्ता ही अब तक चालू ही है। लेकिन अब वे मानने लगे हैं कि धर्मों के आपस के झगड़ों से लाभ उठा कर अधम आगे बढ़ रहा है और सब के सब धर्म दिन पर दिन क्षीण हो रहे हैं। इस लिए धर्म अब सोचने लगे हैं कि बेहतर तो यह होगा कि अपनी-अपनी श्रेष्ठता का दावा बजाना छोड़ कर और परस्पर ईर्ष्या को भूल कर सहयोग का वातावरण पैदा करना चाहिए। सब धर्म मिलकर अधम के खिलाफ मोर्चा बाँधें यही आत्मरक्षा का उपाय है।

हमारे देश में हम लोगों ने चार वंश की समाज-व्यवस्था चलायी। तीन वंश मिल कर अपने को द्विज कहलाने लगे और शूद्रों को सब से निचला स्थान दे कर उन्हें सब अधिकारों से वंचित किया। आगे जा कर तीन वंशों में भी उच्च-नीच भाव घुस गया। इस का दुर्दैवी इतिहास यहाँ दोहराने की जरूरत नहीं। अब जनतायुग स्थापित होने के कारण और चुनाव में सक्षमावल का महत्व बढ़ने के कारण चार वंश समान हो गये हैं। नानबल तपोबल, गरीरबल बौद्धिक और द्रव्यबल इन सब बातों में भिन्नता होने पर भी सब वंश एक समान भूमिका पर आ गये हैं। सब की मान्यता एक है सब के अधिकार एक हैं।

राधो को हर तरह की गिना और उपाधि के हर तरह के मोते तक से प्राप्त होने चाहिए, इस को स्वोच्छृति मिल चुकी है। अस्पृश्यता निवारण के प्रयत्न आन्दोलन के कारण भी व्यक्ति मात्र की समानता सिद्ध हो चुकी।

हमार यहाँ की जाति-अवस्था ऊँच-नीच भेद की बुनियाद को माय रगती आयी है। लोगों में वर्णभेद से भी अधिक आप्रह रहा है जातिभेद का। और जातिभेद एक ऐसी सामाजिक सीढ़ी है, जहाँ पर चढ़ना उतरना करीब-करीब असम्भव सा है। लेकिन यहाँ पर भी मानवता-गुण ने अपना अक्षर डाला ही है। अब सब जातियाँ तत्त्वतः एक ही दर्जे की हो गयी हैं। वर्णों की और जातियों की समानता महाभारतकालीन धृष्टि मुनिया ने भी वर्णभेद की बुनियाद पर स्वीकृत की थी। भारतीय संस्कृति के लिए जितना उच्च-नीच भाव स्वाभाविक है उतना ही स्वाभाविक है सब का समानभाव।

अब रहा चार आधर्मों का सवाल। ब्रह्मचारियों का आश्रम तो करीब खतम हुआ है। वानप्रस्थ भी अब कम पाये जाते हैं। बाकी रहे गृहस्थ और साधु। इन साधुओं में संन्यासी, भिक्षु, सत, महत्, महारत्ना याया, वीरागो, गद्दीपति और आध्यात्मिक गुरु सब आ जाते हैं। समाज इन को अपन से थोड़ा मानता है क्योंकि ये लोग अक्सर शादी नहीं करते, धन नहीं बचाने धर्म का अध्ययन कर के उस का पालन करने की कोशिश करते हैं। लोगों को उपदेश करने का ठेका उन्हीं का होता है। ऐसे लोगों को समाज आदर की निगाह से देखे यह स्वाभाविक है। लेकिन जब ये लोग स्वयं समाज में अपनी थोड़ा ले कर घूमते हैं, अपना विशेष अधिकार चलाने का आप्रह रखते हैं और आदर आदर ईर्ष्या असूया से जलते रहते हैं तब उन का उच्चता का दावा हास्यास्पद होता है। हरएक के नाम के सामने श्री कितनी बार लिखा जाय यह भी उन के मन महत्त्व की बात होती है। कोई होता है श्री १०८ तो कोई होता है श्री १००८। राजा महाराजा, राजाधिराज ऐसी श्रेणी जसी पायी जाती है अथवा उपाध्याय महोपाध्याय, महामहोपाध्याय और आचार्य की तरह विद्वानों में श्रेणी होती है वसी ही साधुओं में पायी जाती है। ऐसे भेद के कारण षगडे और छून तक हुए हैं। ब्रह्मर्षि क्षत्रियर्षि का भेद ले कर षसिष्ठ विश्वामित्र के बीच जो बड़ा झगडा हुआ था सो तो सब जानते हैं। भगवान् बुद्ध और भगवान् महावीर स्वामी के दिना में भी थोड़ा का यह षगडा काफी पाया जाता है।

अब वे दिन आ गये हैं जब गृहस्थी और संन्यासी दोनों में समानता स्वीकार की जाये। विलायत में House of Lords में शिकार और विलास

के शौकीन सरदार लोग और धर्माचार्य विशय आदि धममातण्ड एक सदन में बैठते ह और अपने को House of Commons से ऊँचा मानते हैं। लेकिन यह भेद भी अब कृत्रिम-सा हो गया ह। हमारे यहाँ वर्णभेद तो बहुत-सा मिट गया ह। जब कोई ब्राह्मण वैश्य के घर पर रसोई बनाने का काम करता है, तब उसे घर के लोग महाराज भी कहते ह और नाराज होने पर गालिया भी देते है। अन्नशय में भिक्षा पाने वाले सभ्यासियों को नारायण कहने का रिवाज है। जब वे साते हैं तब कहा जाता ह कि स्वामीजी समाधि में पड़े है। लेकिन अन्नशय के कमचारी ऐसी आदर की भाषा बोलते हुए भी अपना यथाथ भाव प्रकट कर ही देते है।

यक्ति की श्रेष्ठता उस के चारित्र्य के कारण या प्रभाव के कारण स्वीकृत होती ह, लेकिन कोई आदमी साधु दल का सदस्य ह, इस लिए उस की महत्ता मानने के दिन अब नहीं रहे। जब साधु साधु ह इस वास्ते ऊँचे मंच पर बिठाये जाते ह और लोग उन्हें देख कर साधुआ के रेवड का झिक्क करते ह तब स्पष्ट होता ह कि यह आदरभाव बिल्कुल कृत्रिम ह। कम से कम साधुओ को तो इस का आग्रह नहीं रखना चाहिए।

और जब साधु लोग उच्चासन का आग्रह रखते ह और आदर आदर तर-तम भाव से दरबारी भेद की अपेक्षा रखते ह तब तो वह सारा प्रकार बाल ग्रस्त होने से हास्यास्पद बनता ह। पुरानी सस्त्रुति में से आदर के साथ सग्रह करने लायक दूसरी बहुत-सी चीजें हैं। ईर्ष्याजनक उच्च नीच भाव को तो तिलाजलि ही देनी चाहिए।

इस धमविमुख कलिकाल में अपनी प्रतिष्ठा को और उच्च धार्मिकता की ऊदर नहीं होती ह, ऐसा देख कर कई साधुओ ने सावजनिक सभान्सम्मेलनो का त्याग ही किया था। कौन किसे पहले अभिवादन करे इस का निणय आसान नहीं होने के कारण कई सभासी और शकराचार्य एक दूसरे से मिलते भी नहीं थे। लेकिन अब उन्होंने देख लिया है कि इस तरह स्वेच्छावहिकृत होने से कुछ लाभ नहीं और समाज अपने रास्ते जाता ही ह, तब साधु-सभासी, सत महद, एक-दूसरे से मिलने लगे ह, सहयोग की बात सोचने लगे ह और सगठित भी होने लगे ह। गृहस्थाश्रमी समाज नेताओ के साथ वे समान भाव से पेश आने लगे ह और पार्लियामेंट के सदस्य भी होने लगे है। उन्होंने उच्च-नीच भाव बहुत कुछ छोड़ दिया है और मानवता के हिसाब से समानतामूलक प्रचलित शिष्टाचार का स्वीकार करने लगे ह। यह सब अभिन इनीय है। जो लोग इस बदले हुए जमाने को अभी तक समझ नहीं पाये ह, उन को संभाल लेना समाज

का वतव्य है। सावजनिक जीवन में हिंसा लेने के लिए उन्हें प्रोत्साहन देना और उन के विफल जीवन को सफल बनाने में सहायभूत होना समाज का कर्तव्य है।

(२६ नवम्बर १९६७)

विकास की दिशा

साधु लोग सगठित होने लगे हैं, धर्म चर्चा और धर्मोपदेश के साथ कुछ सेवा का कार्य भी करेंगे, यह तो अच्छा है ही, लेकिन सब से बड़ा लाभ इस में यह है कि साधु लोग जो आज तक एक-दूसरे से अलग रहते थे एक-दूसरे से परिचय बढ़ायेंगे, सहयोग के लिए तयार होंगे, मतभेद को धरिस्त करने लगेंगे और शास्त्राय के वायु मण्डल से ऊपर उठ कर उच्च भूमिका पर समावय करेंगे।

अहिंसा के उपासक अब सघटित होने लगे हैं, अहिंसा शोषपीठ अथवा विश्वधर्म सघ नाम से कुछ प्रवृत्ति करेंगे, इस से भी बड़ा लाभ होगा। आज तक शास्त्र वचन की चर्चा चलती थी। प्राणिहत्या टाल कर व्यक्तिगत जीवन निर्याप बनानेकी अभिलाषा थी। साधु लोग अहिंसा का पालन वहाँ तक करें गृहस्थाश्रमी धनपरायण लोग किन नियमों का पालन कर स तोप करें इसी का बोल वाला था। अब समाजशास्त्र में अध्यात्म का वायुमण्डल ला कर उसे ध्येय परायण और सजीव करना पडगा और ऐसे नवजीवन प्राप्त समाजशास्त्र की प्रेरणा से अहिंसा को सामाजिक जीवन में विकसित करना होगा। मनुष्य मनुष्य के बीच वग-वग के बीच और वग-वश के बीच जो ईर्ष्या, द्वेष और सघष अनहद बढ़ रहा है उस से दुनिया के छोटे-बड़े सब राष्ट्र नियत और चिन्ता कुल हुए हैं। उन्हें रास्ता दिखाने का काम केवल राजनीति का नहीं है, अथ शास्त्र का भी नहीं है। वह थोड़ा काम तो समाजशास्त्र ही कर सकता है और समाजशास्त्र में यह शक्ति सभी आयेगी जब वह विश्वकल्याणकारी अध्यात्मदृष्टि से पुनीत होगा।

जब हमारे साधु पण्डित और आचार्य समाजशास्त्र का गहरा अध्ययन करेंगे और उस पर अपनी अध्यात्म-परम्परा का प्रकाश डालेंगे, तब उन में यह शक्ति आयगी। जब व इस तरह नये क्षेत्र में पणपण करेंगे और एक ओर सिष्यभाव से इतिहास, लोकजीवन और समाजशास्त्र का अध्ययन करेंगे और

दूसरी ओर धमगास्त्र की सञ्चित बालप्रस्त रूढ़ियों से मुक्त हाने, तभी वह सशोधन की दिशा समन सवेंगे।

और जब यह पूव सयारी होगी, तब भारतीय प्रतिभा के बल पर वे दुनिया को नया रास्ता दिख सवेंगे।

इस काम के लिए पुराने ढग के प्रगाढ़ पाण्डित्य की आवश्यकता कम है। बुनियाद में जा कर सत्व को पकडने की पैनी दृष्टि की आवश्यकता अधिक है। लोकसेवा के जो अनेक प्रयोग इतिहासकाल में हो चुके और आज भी देश विदेश में हो रहे हैं उन का अध्ययन किये बिना लोकहित का दृष्टि पूरी तरह से प्राप्त नहीं होगी।

इस काम के लिए केवल धमगास्त्र और दशनशास्त्र का बारह बरस का अध्ययन पर्याप्त नहीं है। तार्किक बुद्धि यहाँ पूणरूप से मदद नहीं दे सकेगी। मानसशास्त्र का गहरा अध्ययन इस में चाहिए। इतिहास के अध्ययन से बड़े-बड़े समाजों के जीवन परिवर्तन का खयाल मज्जर के सामने होना चाहिए। आधुनिक विज्ञान ने क्या-क्या शक्तियाँ मनुष्य के हाथ में ला दी हैं, इस का भी कुछ खयाल सशोधक को होना चाहिए। इतनी तैयारी के बाद ही, प्राध्यात्मिक आदग अपने तार्किक दशनिक कारावास से मुक्त होंगे और समाज हित की सेवा में प्रस्तुत हाने।

इस में भी अनेक प्रस्थान हैं, अनेक पय हैं, अनेक दृष्टियाँ हैं। उन का भी परिचय होना जरूरी है ताकि गलत रास्ते ले जाने वाली विचारधाराएँ सशोधक पहचान सके और उन्हें टाल सके। बुनियाद बहुत गहरी, बहुत ही व्यापक और मजबूत होने पर ही सशोधन की शक्ति प्रकट होगी और रास्ता दिखने पर लोगों को समझा कर उन के दिल में अनुकूलता पैदा करने की शक्ति और शैली सशोधक में और सेवक में आ जायेगी।

सुनता हूँ कि साधु सगठन के बाद अब योगिया का सगठन भी होने वाला है। यह भी इष्ट है। योगविद्या की परम्परा बहुत पुराना है। उस की फलयुति बड़ी ही लुभावनी है। हर जगह आज भी ऐसे लोग पाये जाते हैं जिन्होंने इस विद्या में कमोवेश प्रत्यक्ष प्रयोग कर के कुछ अनुभव पाया है और कुछ उपयोगी या चमत्कृतिजनक शक्ति भी हासिल की है। लेकिन इस क्षेत्र में अनुभव बहुत कच्चा है। जितना दावा किया जाता है उस की पूरी-पूरी ससोटी हो नहीं पायी है। जो विनोप जानते हैं उन की गूढ़भाषा से पूरा बोध नहीं होता। और इन सब कारणों के लिए लोग असमजस में पड जाते हैं। क्या सचमुच यह कोई उपयोगी विद्या है या सिर्फ ढकोसला ही है? यहाँ पर भी शरीरशास्त्र,

रानी की। यह लोग अपना स्वर्ण क्यों छोड़े? कई बार वह भाग गयी और
 जगदी ही बार भौंस्टल कोट निष्ठापूर्वक उसे वापस ले आया। वैश्याघम और
 निष्ठापूर्वक के डण्ड या समाजे में वह हारने को तयार नहीं था।

विश्व की सेवा करने वाले साधु लोग, भगवान् की प्रेरणा से पतितों का
 उद्धार करने वाले साधु लोग ब्रह्माचारियों को अपनी बहनों या अपनी लड़कियाँ
 समझ कर उन के उद्धार का काम अपने हाथ में ले सकते हैं। अपने ढग से वे
 कोई रास्ता भी निकाल सकते हैं। इस काम में पतन का जो खतरा है उसे चठा
 कर भी यह पवित्र सेवा करने का शकल्प कर सकते हैं। लेकिन हमारे उदात्त
 सस्ते समाजशास्त्रियों के ढग से नहीं।

(१ दिसम्बर १९१६)



अवतारवाद

हम फिर से सोचें, हमारा अन्तिम आदर्श कौन-सा ?

अवतारवाद हिन्दू सस्कृति का एक प्रधान अंग है। बौद्धों ने कल्पना की कि कोई मामूली जीव प्रयत्नपूर्वक उत्तरीकामी सुदुर्गों में पारमिता प्राप्त करते-करते बोधिसत्व होता है और बोधिसत्व अपनी साधना चराने चलाते जब सब तरह की पारमिताओं में प्रतिष्ठित हो जाता है, तब वह अह्न अथवा बुद्ध बनता है। बुद्धों में भी चन्द ही अपने ही लिए बुद्ध बनते हैं जिन्हें प्रत्येक बुद्ध कहते हैं। ऐसे बुद्ध जब विश्व का उद्धार करने योग्य बनते हैं, तब वे तथागत बनते हैं सम्पूर्ण सम्बुद्ध बनते हैं।

जीव-दशा में प्रगति करते-करते जीव बुद्धत्व प्राप्त करता है।

अवतार की कल्पना इस से भिन्न है।

स्वयं परमात्मा मानवजाति के कल्याण के लिए जीव का रूप धारण कर के नीचे उतर आता है। उतर आने को ही अवतार कहते हैं। परमात्मा जीव का रूप ले कर मनुष्यों के बीच काम करता है और अपना अवतार काय पूरा होने पर वापस चला जाता है। बोधिसत्व में विकासवाद—Evolution की कल्पना है। अवतार की कल्पना में यह नहीं है।

निब विष्णु देवी गुरु आदि सब देव दैवियों के अवतार होते हैं। पुराणों में कही-कही त्रिष्णु के चौबीस अवतार बताये हुए हैं। लेकिन पता नहीं क्या विष्णु के दस अवतार ही लोकप्रिय हुए। शिवजी के अवतार इतने लोकप्रिय नहीं हुए हैं। देवों के अवतारों का हिसाब हमारे पास नहीं है। गुरु के अवतार आज भी होते होंगे।

इस वक्त हम बुद्ध भगवान का चिन्तन कर रहे हैं। बौद्ध कल्पना के अनुसार सुमेध अथवा ऐसा ही कोई जीव प्रयत्न करते करते गौतम बुद्ध की स्थिति तक पहुँच गया। उस ने जगत उद्धार का रास्ता बताया। निर्वाण प्राप्त गौतम बुद्ध को फिर से जन्म नहीं लेना है। हम हिन्दुओं ने गौतम बुद्ध को अपनाया और उसे

हम फिर से सोचें, हमारा अन्तिम आदर्श कौन-सा ?

३५५

विष्णु का तम अवतार बताया। इस तरह बौद्ध और गायत्री दोनों के लिए बुद्ध भगवान् एक-से पूजाह बनाये।

भारत में समन्वय का जो युगकाय हम करना चाहते हैं, उस के लिए बुद्ध की यह समयावधि स्थिति सब तरह से सामंदायी है।

विष्णु के दस अवतारों का जब चिन्तन करता हूँ तब अनेक विचार मन में आते हैं। मत्स्य पूम, वराह और नृसिंह—ये चार अवतार विज्ञानवाद—Evolution के सूचक हैं।

विज्ञानवाद कहता है कि पृथ्वी का गोल जल कुछ टटा हुआ तब पहले समुद्र बने। जीवसृष्टि का प्रारम्भ भी पानी में ही हुआ। मात्र हम पानी को जीवन कहते हैं यह सब तरह से उपपन्न ही है। पानी में जलचरों की जीवसृष्टि पैदा हुई, इसलिए हमारा प्रथम अवतार मत्स्य है। बाद में पानी के जीव पानी में रहते हुए जमीन पर भी जाने लगे। हवा में रास लेना उन के लिए उच्छरी हो गया। जलचर और भूचर अवस्था का प्रतिनिधि हूँ बछुआ। इसलिए हमारा दूसरा अवतार हुआ कच्छप—पूम।

पानी छोड़ जमीन पर कायमी वास्तव्य करने वाले पशुओं में उत्पन्न हुआ हमारा तीसरा अवतार वराह जो अपने दन्तगूल से पृथ्वी को ऊपर उठा सकता है। दन्तगूल मानो उस का हल ही है। सब से पहला हलधर वराह ही था।

अब पशुओं में अगर मनुष्य पैदा हुआ हूँ तो आधा थोड़ा पशु और आधा मनुष्य, ऐसा एक अवतार चाहिए ही। वह ही गया नृसिंह।

हमारे पौराणिक देव-देवियों के मण्डल में अथवा परिवार में हनुमान् हूँ गण्ड हूँ, लेकिन किसी पक्षी को हम ने भगवान् का अवतार नहीं बनाया उस का चाहन बनाया। इस का कारण क्या होगा? पशुओं में मनुष्य थोड़ा पशु हूँ। लेकिन मनुष्य आसमान में उड़ नहीं सकता। मुर्गा बतख और मोर से ले कर गरुड तक सब खेचर आसमान में कमोवेश उड़ सकते हैं। बुद्ध ने मनुष्य को यह शक्ति नहीं दी इसलिए क्या हम लोगों ने पक्षियों में से किसी को अवतार नहीं बनाया?

वामन, परशुराम राम और कृष्ण, ये सब मानव रूपधारी हूँ और मानवी शक्तियों का उत्कृष्ट बताते हूँ। इन में बटु वामन की पूरी जीवनकथा हमारे पास नहीं है। वामन का रूप धारण कर के भगवान् विष्णु ने त्रिविक्रम किया। विष्णुत्रयेया त्रिक्रमे। वामन अवतार का यह एक ही काय पुराणों में पाया जाता है।

नृसिंह वामन, परशुराम, राम और कृष्ण य पाँच अवतार साधुओं का रक्षण करने के लिए और दुराचारियों का दमन करने के लिए हुए थे। मनुष्य समझ सके और उस से लाभ उठा सके ऐसे थे उन के जीवनकाय अथवा अवतारकाय।

राम और कृष्ण दोनों गृहस्थाश्रमी थे। दोनों की जीवनकथा में सत्यास का कोई स्थान नहीं है। बमिष्ठ और विदवामिन्न स्त्रीसंग से परे नहीं थे। वाल्मीकि के आश्रम में लडके और लडकियाँ साथ रहते थे और साथ पढ़ते भी थे। राजा जनक तो स्यासी भी जिन से सबक सीख सकें ऐसे, आदश गृहस्थाश्रमी थे।

रामावतार पर कुछ विशेष विचार करें। राम ने स्वयं गृह के साथ दोस्ती की, शबरी की भक्ति की इदर करते हुए उस के चचे हुए जूठे बर भी खाये। जटायु सुग्रीव, हनुमान् नल, नील, जाबवान आदि आदिवासियों के साथ आदर का व्यवहार रखा। समानभाव से उन से व्यवहार किया। सुग्रीव के साथ की दोस्ती निभाने के लिए उस के भाई वाली के साथ ऐसा व्यवहार किया जिस का बचाव करत रामभक्त थक जाते हैं। राम क मन में आय-अनाय का भेद नहीं था। वनवास के दिनों में उन्होंने सब वयजातियों का जीवन व्यवहार सहानुभूति पूर्वक देखा था।

तो भी राम ठहरे मर्यादा-पुरुषोत्तम। उन्होंने जिस मर्यादा का पालन किया, वह उन की हृदय की बतायी हुई आय मर्यादा नहीं थी, किंतु आय वश ने सकुचिन भाव से जो अपनी श्रेष्ठता मान ली थी, उस की मर्यादा थी वह। ऐसी मर्यादा की आत्मा पालन करते हुए उन्होंने निरागस, तापसी शम्भूक का वध किया गुरु के कहने से एक स्त्री की हत्या की और समाज की मर्यादा की रक्षा के लिए उन्होंने अपनी ऐसी स्त्री का त्याग किया जिस की पवित्रता से बड़े-बड़े तीर्थ भी अपने की पावन बनाते थे। उस समय का समाज मले प्रसन्न हो कर रामचंद्रजी को पुरुषोत्तम कहे। पुरुषोत्तम तो बुद्ध और कृष्ण भगवान् थे जिन्होंने उत्तमता का खमाल और आदश समाज से नहीं किन्तु अपने आय हृदय से लिया। धर्माचरण का अतिम प्रमाण है 'आमनस् तुष्टिरव'। यह व जानते थे।

मेरे मन में अवतार-परम्परा में बुद्ध को कहा रखें इस का निश्चय नहीं होता है। विष्णु का अवतार सृष्टि के पालन के लिए है, समाज-व्यवस्था सम्भालने के लिए है। और बुद्ध भगवान तो भिक्षुओं के सघ बना कर उन्हें निर्वाण का रास्ता बताने वाले हैं। ससार का नाश कर के मोक्ष का रास्ता दिखलाने वाले तो शिवजी हैं। तब हम बुद्ध को शिवजी का ही अवतार क्यों न मानें ?

राजा भनहरि शिव उपासक था। ऐसा भी माना जाना है कि वह बौद्ध भी हम फिर स साचें, हमारा अतिम आदश कोन-सा ?

विगाडा, सो कल्कि सुधार देगा । सृष्टि की घटमाल चलती रहती ह । ससार और निर्वाण, जन्म और मृत्यु, पाप और पुण्य, सज्जनता और दुजनता, सत्ययुग और कर्तियुग सब कुछ इस दुनिया में रहेगा, रहना चाहिए । कायमी सुधार और अन्तिम निष्पाप पवित्रता कभी जाने वाली नहीं, होने वाली नहीं । ऐसे शिथिल श्रद्धावादी लोगो ने ही पौराणिक सस्कृति के चित्र बनाये दोष पडते हैं । ऐसा नहीं हाता तो, बुद्धावतार को भ्रमोत्पादक नहीं कहा जाता और बुद्ध के बाद कल्कि की अपेक्षा नहीं की जाती ।

(१५ जून १९६४)

पुराने और नये अवतार

घर क बरतन काम में लाने स अपवा यँही रखने से गदे हो जाते ह । उन पर जग भी चढता ह । इस लिए समय-समय पर बरतना की माँजना पडता है । कभी सिर्फ पानी स धाते ह, कभी मिट्टी या राख स साफ करते हैं । इतने से काम न चला तो इमली, नीवू आदि खटाईं से जग उतारते ह और इतने से भी बरतन साफ न हुआ तो उस तेजाब से साफ करते हैं । बरतन बसे भी हा, समय समय पर उन्हें साफ करना ही पडता ह ।

बरतन की बात ही क्या ? हमारा शरीर भी राख रोज गदा हाता ह । चमडी के छेद पसीने से और मिट्टी से बढ हो जाते हैं । शरीर को उपेसा की तो शरीर स दुगध हो निकलती है । इस लिए स्नान कर के शरीर को साफ करना ही पडता ह । गन्दा हाना शरीर का स्वभावघम है जिसे प्रकृति भी कहने ह । और गदे शरीर को स्नान के द्वारा साफ करना आत्मघम अथवा सस्कृति ह । स्वभावघम याने प्रकृति और आत्मघम याने सस्कृति । दोनो मिल कर जीवनघम बनता ह । प्रकृति की उपेसा की तो उस में से विकृति पदा होती ह । फिर तो बडे प्रयत्न से विकृति को दूर कर क सस्कृति की ओर जाना पडता ह ।

समाज शरीर का भी ऐसा ही ह । लोगो की जहता के कारण, आलस्य, उपेसा और अधोगामी प्रवृत्ति के कारण जब समाज म दोष आते हैं, सदाचार शिथिल होता ह तब सस्कृति धुरीणों की और ऋषि मुनिया का समाज-शुद्धि के लिए मेहनत करनी पडती ह । समय-समय पर नहाना जिस तरह मनुष्य शरीर

के लिए जरूरी है, आत्मशुद्धि के लिए प्रयत्न करना समाज के लिए भी जरूरी होता है।

मामूली नहाने के लिए पानी पयाप्त है। चमड़ी के छेद अथवा रध्र साफ़ करने के लिए शरीर मलना जरूरी है। ठंडे पानी से जब पूरी सफाई नहीं होती तब गरम पानी हम उपयोग में लाते हैं। इस के आगे जा कर तेल की मालिश कर के साबुन लगा कर गरम पानी से नहाते हैं। शरीर की चमड़ी मुलायम बनाने के लिए बेसन भी काम में लाते हैं।

इसी तरह समाजशुद्धि और समाज की उन्नति के लिए समाजसेवक, धर्म प्रचारक, सत्त महन्तो की सेवा काम में लानी पडती है।

किन्तु जब मनुष्य के आदर्शों में ही सुधार करने की आवश्यकता होती है, महान अय्यायो का इलाज करना पडता है और युग-परिवर्तन का दिन आता है तब जिन पवित्र, तेजस्वी मनीषियों के ऊपर समाज का नेतृत्व करने का भार आता है उन की तरफ समाज विशेष आदर और श्रद्धा का नजर से देखता है। उन के काम की और उन की दृष्टि की कमियाँ भी समाज बरदास्त करता है और उन का कायकाल समाप्त होने के बाद उन को अवतार का इलवाव भी दता है। महात्मा गांधी ने अनासक्ति योग (गीता) की प्रस्तावना में लिखा है— 'अवतार से तात्पर्य है शरीरधारी विशेष पुरुष! जीवमात्र ईश्वर का अवतार है, परन्तु लौकिक माया में सब को हम अवतार नहीं कहते। जो पुरुष अपने युग में सब से श्रेष्ठ धर्मवान् है उसी का भावी प्रजा अवतार रूप से पूज्यता है। जिस में धर्म जागृति अपने युग में सब से अधिक है वह विशेषावतार है।'

भागवत में भी लिखा है, 'हे ऋषियो जैसे अगाध सरोवर से हजारों छोटे छोटे स्रोत निचलते हैं वैसे ही सत्त्वनिधि भगवान् के अक्षर्य अवतार हुआ करते हैं। श्रुति, मनु दैवता, प्रजापति, मनुष्य और जिनन भी महान् शक्तिशाली व्यक्ति हैं व सब के सब भगवान् के ही अंग हैं। (भागवत १३ २६ २७)

भगवान् की अवतार पहचानाई की मर्यादा नहीं है। अवतार हर जमाने में हर देशों में, हर तरह के धर्मों में होते आये हैं और हान रहेंगे। भगवान् का ही वचन है कि 'मर एव विस्तार का अंत नहीं है। न अस्ति अतो विस्तरस्य मे।

यह मानना कि हमारे हिन्दू धर्म में ही अवतार होने हैं, और धर्मों में ही नहीं अवतार की कल्पना का विलक्षण संकृषित करना है। पुराण-शास्त्रों में साफ़-साफ़ कहा है कि एषा एक भी दग नहीं और एषा एव भा जमाना

नहीं, जिस में लोगो को आगाह और खबरदार करने के लिए हम ने अपने नबी नहीं भेजे हैं।

कहते हैं कि ईसाई धर्म में भी ऐसे ही विचार की स्थान है।

हमारे हिन्दू धर्म को हम सनातन धर्म कहते हैं। हिन्दू नाम तो सिंधु नदी पर से आया है और यह नाम हमारे लोगो के लिए और हमारे धर्म के लिए विदेशी लोगो के द्वारा दिया हुआ है। हमारे धर्म का अपना निजी नाम है—धर्म अथवा सनातन धर्म।

लेकिन सनातन धर्म, एक विशाल, व्यापक, जागतिक धर्म है। आय धर्म, बौद्ध धर्म, जैन और सिख धर्म, शाक्त और वैष्णव धर्म ये सब सनातन धर्म की ही शाखाएँ हैं। इतना ही नहीं इसलाम, यहूदी धर्म और ईसाई धर्म भी हिन्दू धर्म जसो सनातन धर्म की शाखाएँ हैं। ईसाइयो का ख्रिस्ती धर्म और सिख धर्म सबमुच ही एक ही शाखा है। यह कैसे, इस पर हम जरा विचार करेंगे।

ईश्वर के नाम रूप अनन्त है। दुनिया के लोगो ने जितने भी देव-देविया की माना है, सब भगवान के ही अलग अलग रूप हैं। देव-देवियों की सख्या चाहे जितनी हो, आखिरकार वे एक ही अद्वितीय भगवान् के रूप ही हैं। असली भगवान् से अलग कोई भगवान नहीं है।

हमारे यहाँ जो अनेकानेक देव देवियों की सख्या पायी जाती है उस में कुछ व्यवस्था लाने के लिए हिन्दू धर्म ने पाँच देव मुख्य माने। जितने भी देव देवियाँ हैं, इन पाँच के ही अवतार हैं। अपने जिस किसी देव की पूजा करनी है उसे क्षेत्र में रख कर बाको के चार दशर में रख कर पाँचों की एक साथ पूजा होनी चाहिए। इसे कहते हैं 'पंचायतन पूजा'।

पंचायतन पूजा के द्वारा सब देवा का समन्वय हो गया। भगवान् की एकता समझ में आयी और कम से कम बड़ पाँच महान् पथ एकत्र आ गये। सामाजिक और सांस्कृतिक एकता दृढ़ करने का काम सब से प्रथम पंचायतन पूजा के द्वारा ही सिद्ध हुआ।

अब इन पाँच के पंचायतन में भगवान् का एक छठा रूप दाखिल करना जरूरी हुआ। यह है 'नानदाता, मोक्षभाग बताने वाला गुरु'। इस तरह से पंचायतन की जगह हमारे धर्म में पञ्चायतन पूजा होनी चाहिए।

गुरु के द्वारा भगवान् को पहचानना और गुरु की ही भगवान् कहना यह भी सनातन धर्म की ही एक साधना है। इस तरह भगवान् जरयुस्त की मानने वाले पारसी नानक आदि दस गुरुओं की मानने वाले सिख और भगवान् ईसा

को मानने वाले विन्तो छटे गुद-आपता के हैं। बौद्ध और जैन भी इसी के अन्तर्गत आ सकते हैं।

जिस तरह हम कपिल महामुनि, गणभद्र, बुद्ध भगवान् को अवतार मानते हैं, उसी तरह भगवान् ईसा को भी हम ईश्वर का अवतार मान सकते हैं। हम इतना ही कहते हैं कि आदर यथा है ता गव गविया के परिवार की ओर इज्जत की निगाह से दगना चाहिए।

भागवत में जो शक्ति अवतार बताए हैं उन में श्रीकृष्ण को अलग बताया है। बाकी मानव अवतारों में कपिल गणभद्र, परशुराम, यम्यग यन्त्राम, बुद्ध ये नाम छाय घ्या गीते हैं। ये सब ऐतिहासिक पुरुष मान जाते हैं। सब जरपुत्र, हजरत मुसा, इशाहीम, गुद गाव ईगामगीह कानुदयग बगवन्तर, महावीर आदि को भी हम अवतार क्यों न कहें? साधनो मानस इम में आरति नहीं उठायेगा। इन सभी ने जो धर्म या पथ चलाय वे सब सनातन धर्म की ही गताएँ हैं। जिस को जो पथ पसन्द आवे उस की गायना करगा और चलायेगा, ऐकिन सब के प्रति आदर और पूज्यभाव रयेगा ही।

ऊपर की सूची में हम मुहम्मद पैगम्बर को भी रखा पसन्द करेंगे। ऐकिन हमार पुराने दोस्त मुहम्मदअली ने आपत्ति उठाते कहा कि, 'आप लोग अवतारी पुरुषों को ईश्वर कहते हैं हम किसी भी आदमी को ईश्वर के साथ शरीक नहीं करते। मुहम्मद पैगम्बर आदमी थे उन को भगवान् कहना हमें मजूर नहीं है।' मैं ने उन से दलील करते कहा 'आदम को सुना मत कहो आत्म सुदा नहीं ऐकिन सुदा के नूर से आदम जुदा नहीं।' ता भी उन्हें सतोप नहीं हुआ। अंत में मैं ने सर्वा सतम करते उन्हें कहा कि, 'आन ने मुहम्मद पैगम्बर का टेका लिया है यह मजूर किये बिना चारा नहीं। इस लिए आन की मुखालिफत मैं नहीं करूँगा।'

हिन्दू धर्म की दृष्टि से सब नाम ईश्वर के ही हैं। हम सब ऋषिमुनि, अवतार नबी प्रोफेट आदि को मानते हैं। सब धर्म प्राचा को पवित्र वाणी गिनते हैं, और सब धर्मों को इज्जत की निगाह से देखते हैं। हम जानते हैं कि मनुष्य अपनी योग्यता प्रगति और अभिवृद्धि के अनुसार अलग-अलग साधनाएँ पसन्द करेगा। एक को जो साधना मदद करती है दूसरे को सायद मदद नहीं करेगी। एक के लिए अन्नत मुफीद है, दूसरे के लिए द्वैत। कोई भगवान् को 'मा' कहेगा, कोई कहेगा 'पिता', तो कोई कहेगा 'गुरु'। हमारे सनातन धर्म में सब साधनाओं के लिए अवकाश है।

अगर हर एक पथ की आप अलग अलग धर्म कहेंगे तो सावभौम सनातन

धम को हम धमकुटुम्ब अथवा धमपरिवार कहेंगे। इस सनातन धम में ईश्वर को मानने वालों के लिए भी जगह है और 'ईश्वर को हम पहचान नहीं सकते', ऐसा कहने वालों के लिए भी स्थान है। नास्तिकों के प्रति और सशयवादी लोगों के प्रति दया बता सकते हैं। किंतु उन को सनातन धम में से बहिष्कृत नहीं करेंगे। जो कोई अपने जीवन में उन्नति चाहता है और सब के प्रति आत्मोपमा बढ़ाने की कोशिश करता है, उसे विराट और सावमीय सनातन धम में स्थान है ही।

किसी ने कहा, "अवतार तो दस हैं, आप बाईस और चौबीस अवतार कहा से ले आये?" मैं ने कहा, "अवतार दस और बाईस नहीं किंतु अनंत हैं। बाईस अवतारों की फेहरिस्त और षण्ण भागवत के पहले ही स्कंध में है।" दस अवतारों का श्लोक भी हमें मालूम है।

मत्स्य कूर्मो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामन ।

रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्ध कल्की च ते दश ॥

भारतभर में यही दस नाम और यही क्रम सवमाय है। लेकिन श्रीकृष्ण को अवतार न कह कर अवतारी माने परब्रह्म मानने वाले लोग कृष्ण की जगह बलराम को देते हैं और ऊपर के श्लोक में तीसरा चरण या बनाते हैं 'रामो रामश्च रामश्च' पहला है परशुराम, दूसरा है दशरथी राम और तीसरा है बलराम। भागवत में जहाँ बाईस अवतार दिये हैं वहाँ कृष्ण और बलराम दोनों अवतार माने गये हैं।

इन अवतारों नामों में और उन के क्रम में कोई खास व्यवस्था नहीं है। तो भी हम ने विकासवाद की खूबी इस में देखी है। विकासवाद के हिसाब से जीवसृष्टि का प्रारम्भ पानी में हुआ। प्रथम जीव सूक्ष्म कीट थे। बाद में जमीन पर और पानी में भी वनस्पति का प्रादुर्भाव हुआ। उस के बाद आये पशु और पक्षी। पानी के अन्दर की सृष्टि को अगर हम जलचर कहें तो जमीन पर की सृष्टि को कहेंगे 'भूचर और आकाश में उड़नवाला को कहेंगे 'खेचर'।

जलचर, भूचर, खेचर प्राणियों के बाद आया मनुष्य। जो बुद्धि के विकास के कारण कम कौशल्य के कारण और धमभावना के कारण ईश्वर की विशेष सृष्टि माना गया है। (और चन्द लोगों का कहना है कि, भगवान् ने मनुष्य को पैदा कर के हाथ धो नहीं डाले हैं। मनुष्य से भी अधिक योग्यता के प्राणी सृष्टि में आयेगे अथवा आज हागे भी। लेकिन इस की चर्चा में हम नहीं उतरेंगे।)

सृष्टि की उत्पत्ति पानी में हुई तब का अवतार है 'मत्स्य'। जब चन्द

प्राणी पानी में भी रहने लगे और जमीन पर आकर, साँग लेने लगे तब का अवतार है, 'वच्छिप अथवा वृम'। जमीन पर रह कर बीच के साय दोम्बी करने वाला अवतार है 'वराह'। फिर हम आते हैं मनुष्य और पशु के बीच का रूप धारण करने वाले 'रसिह' के पास। उस के बाद जब पूरा मनुष्य पशु हुआ तब वह बाल्यावस्था में था। उस का अवतार ह वामन। उस को क्या पौराणिक ह। उस में से कोई साय बोध हमें नहीं मिलता। अथम का नाग कर के घम की स्थापना करने के लिए अगर भगवान् मनुष्य का रूप लेते ह तो वामन अवतार का रहस्य क्या ह? जिस बलि को वामन अवतार ने पाँच के नीचे दबाकर पाताल भेजा उस बलि में हम कोई अथम, पाप, दुराचार या दुष्टता देख नहीं सकते। ऊँच-नीचभाव और श्रेष्ठ-अनिष्टभाव शायम रगन के लिए, अयाय अत्याचार करने वाले लोग समता, प्रगति और जीवनशुद्धि पसन्द नहीं करते। ऐसे लोग शून्य का रोख नहाना और साफ़ बपड़े पहनना भी पसन्द नहीं करते। गद्दों के पास सम्पत्ति रहे यह भी वे बरदाश्त नहीं करते। उन के बरतन भी टूटे फूटे हा, वे घोड पर या दूसरे किसी वाहन पर बठ कर चलें इतना भी इन घर्माभिमानी लोगों को पसन्द नहीं है। उन को तो वामन और कल्कि अवतार ही पसन्द आयेंगे। उन की बात यहाँ छोड दें और बाकी के ऐतिहासिक मानवी अवतारों का थोडा स्वरूपचित्रन करें।

परशुराम, राम कृष्ण और बुद्ध ये चार ह मानवी ऐतिहासिक अवतार।

परशुराम ने ब्राह्मण होते हुए भी सात्र घम को स्वीकार करते हुए क्षत्रियो को इक्कीस बार हराया। तब क्षत्रियो ने जमाना पहचान कर अपना सगठन बनाकर एक राजा को सम्राट बनाया और बाकी बने उस के माण्डलिक राजा।

परशुराम ने कुल्हाडी लेकर जगली को काटा और ग्राम-नगर के लिए जमीन तयार की। इस परशुराम के बाद आता ह राम। इस की पत्नी थी 'अयोनि सम्भवा'। याने—

जमीन में हल चलाने से जो हलाई या लीक बनती ह उस में से पैदा हुई थी। जनक राजा भी बडे किसान थे। खेती के प्रारम्भ का ही वह जमाना होगा। जनक प्रजा के राजा थे। इस लिए उन का हल सोन का था। लकिन बारिग के पहले सब से प्रथम हल चलाने का अधिकार राजा जनक का था। जनक ने हल चलाया तो बाद में प्रजा भी हल चलाती थी। दक्षिण में जिस जमीन में हल चलता नहीं था उस जमीन को अहल्या कहते थे। ऐसी अहल्या भूमि का राम ने उद्धार किया। याने वहा खेती शुरू की।

कृष्णावतार में बलराम ने हल चलाया और कृष्ण ने गाय और बैल का पालन कर के उन की वृद्धि की। बड़े भाई कहलाये 'हलर' और छोटे का नाम हुआ 'गोपाल'।

इस तरह कृषि सस्कृति का विस्तार हुआ, लेकिन साय साय जमीन के स्वामित्वके लिए झगड़े होने लगे। जो क्षत्रिय थे वे ही क्षत्रिय बनकर आपस में लड़ने लगे। खेती तो सहयोग से हाती ह। झगड़े में होते हैं युद्ध। युद्धों के कारण नसा सहार होता ह इस का अनुभव आयाजाति ने महामारत युद्ध के द्वारा किया। इस के बाद हिंसा से ऊँची हुई जनता अहिंसा को आर ही मुड़ेगी। जंगल तोड़ कर, पशुओं को मार कर और लहू का कीचड़ बनाकर जो यन होते थे और युद्ध चलते थे उस का निषेध किये बिना सस्कृति का आगे बढ़ना नामुमकिन था। इस लिए बुद्ध और महावीर के युगकाय की महत्ता ब्रवूल किये बिना चारा नहीं था। इस लिए हमारे लोगों ने लोकप्रिय बुद्ध भगवान् को अवतार माना। लेकिन यन और युद्ध छोड़ने को भी वे तैयार नहीं थे। इस लिए उन्होंने कहना शुरू किया कि भगवान् ने धमविरोधी लोगों को बहकाने के लिए बुद्ध का अवतार लिया था। (भला भगवान भी कभी बहकाने का घघा कर सकता ह ? अघम को प्रोत्साहन दे सकता है ?)

लेकिन बुद्ध भगवान का अवैर का अहिंसा का सन्देश जा स्वीकार न कर सके उन्होंने चलाया कि अब दसवाँ अवतार आयेगा, जो घोड़े पर चढ कर हाथ में तलवार ले कर दुष्टा का सहार करेगा और पुराने धर्मों को फिर से स्थापित करेगा।

भगवान् समय-समय पर अवतार लेता है यह कल्पना सुंदर ह। जिस के बारे में जनता का विश्वास होता है कि यह पुरुष धमपरायण ह मानवजाति का हितकर्ता ह और इस ने युगपरिवर्तन किया ह उस की इपुञ्जत करने के लिए जनता उसे अवतार होने की प्रतिष्ठा देती ह। मैं तो हर एक के जीवन में और हर एक के हृदय में भगवान् कमोवेश अवतार लेता ही ह। पुराने जमाने में धम के ठेकेदारोंने अवतार की कल्पना का दुरुपयोग किया है। आयदा भी करेंगे, लेकिन इस कल्पना को छोड़ देने को जरूरत नहीं है। यह कहना कि भगवान् भूतकाल में ही अवतार लेता था अब नहीं लेता, और नहीं लेगा, भगवान् की शक्ति को मर्यादित करना ह।

गीता में भी नहीं लिखा कि "जब तक भारत में सस्कृत भाषा का प्रचलन रहेगा सब तक ही मैं अवतार ले सकता हूँ।" भगवान् ने यह भी कभी नहीं कहा कि, मैं अवतार लूँगा तो भारत में ही लूँगा।'

मनुष्य हिन्दू धर्म, इस्लाम धर्म, ईसाई धर्म, यहूदी धर्म, पारसी धर्म आदि किसी न किसी धर्म के हो सकते हैं, लेकिन भगवान् तो हिन्दू, श्रिम्तो अथवा इस्लामी नहीं है । भगवान् सब धर्मों का है । सब धर्म भगवान् के हैं । भगवान् किसी भी धर्म के अन्दर पराधीन नहीं होता । भगवान् तो स्वतन्त्र ही रह सकता है ।

अवतार की कल्पना अगर जीवित रहनी है तो सोच-समझ कर असंख्य लोग जिन की धर्म प्रेरणा मानते हैं उन को हमें अवतार के तौर पर स्वीकार करना ही चाहिए ।

(१ जनवरी १९६६)



वहम का साम्राज्य

फलज्योतिष के बारे में

ज्योतिष में मेरा विश्वास कहीं तक है, इस सवाल के जवाब में कुछ विस्तार से लिखना पड़गा। सूर्य, चंद्र, ग्रह-उपग्रह, धूमकेतु और आकाश के अनगिनत तारों के बारे में मुझे दिलचस्पी बहुत है। स्पुटनिक में बैठ कर वहाँ जाने के सवाल से नहीं, किंतु लाखों बरसों से हमारे आसपास व घूमते रहते हैं, हमें प्रकाश और उष्णता देते हैं और न जाने और भी क्या-क्या देते हैं। इस लिए उन के बारे में जानने की जो चाहता हूँ।

मैं तो कहूँगा कि और कुछ दते हो या न हों आनंद गति और उल्लास तो ये सब देते ही हैं। इस लिए आनंद बढ़ाने के हेतु तारों का वाक्य समझ लेना जरूरी है। इन ज्योतिषियों का आयुष्य कितने करोड़ बरसों का है—कितने करोड़ नहीं—कितने पराघ बरसों का है यह समझने की इच्छा जरूर होती है। लेकिन जब कोई इन तारों से पूछ कर मेरी आयु कितनी बाक़ी है यह बताने की आशा दिखाता है तब उस में मुझे दिलचस्पी नहीं है।

मैं जानता हूँ कि तुम्हारा सवाल तारों के काय के बारे में नहीं है गणित ज्योतिष के बारे में भी नहीं है। जिसे हमारे लोग फल-ज्योतिष कहते हैं उसी के उपलक्ष्य में तुम ने सवाल पूछा है।

लोग जब पूछते हैं कि क्या तारों का और ग्रहों का हमारे नित्य के जीवन पर कुछ असर हो सकता है? तब मुझे वैज्ञानिक दृष्टि से कहना पड़ता है कि इस विश्व में हर चीज़ का हर चीज़ पर असर होता ही रहता है। अगर चंद्र का मुझ पर असर होता है तो मेरा भी चंद्र पर जरूर कुछ-न-कुछ असर होता ही होगा। पृथ्वी के करोड़ों लोगों पर जैसे चंद्र का असर होता रहता है, वैसे ही इन करोड़ों लोगों में से हर एक का असर चंद्र पर होने वाला है। चंद्र को किसी फलज्योतिषी के पास जाकर जरूर पूछना चाहिए कि इन-उन लोगों का मुझ पर क्या असर होता होगा। चंद्र की आयु हम से ज्यादा है। उस बेचारे पर मेरे पुत्रपौत्रों के पुरखाओं का भी असर हुआ होगा। अब चंद्र पर असर करने का

गोता मुगे मिला है। ज्योतिषियों ने ग्रूप सिद्धांत में स दोष निकाल कर ग्रहों का गांधीजी पर क्या-क्या अंतर हुआ उस का मूदम यगन दिया है। गांधीजी जमे महात्मा का इन ग्रहों पर जम्बर कुछ-न-कुछ अंतर हुआ ही होगा। यह सब बतानेवाला कोई चांद्रसिद्धांत या मानवसिद्धांत अभी तक कियो के हाथ में नहीं आया ह।

मान लिया कि ग्रहों का अंतर आदमी पर हाता होगा। लेकिन ठीक अंतर क्या होता है, कम होता है, वहाँ तक हाता ह, इस का सही विगान किसी के भी पास नहीं ह। ज्योतिषी जो बतते ह, उस में यनानिक्ता कितनी ह, यह तो हम नहीं जानते। याकी रहता ह सिफ अधविश्वास। उस ले कर हम क्या करें ?

अगर ज्योतिष का ही बात ह तो ग्रहों के द्वारा होने वाले अंतर को हम बदल तो नहीं सकते। बहुत हुआ तो जान सबेग कि क्या-क्या अंतर होने वाला है। जानने से कुछ इलाज भी कर सकेंग। हम जानते हैं कि दिसम्बर जनवरी, फरवरी में जाडा बढ़ता ह, इस लिए पहले से हम गरम कपडे धरीद लेते हैं। कुछ लोग पाक भी खाते ह। यह सब आहार विगान और शारीरिक विगान के अनुसार निश्चित होता ह।

लेकिन ज्योतिषशास्त्र के साथ मन्त्रशास्त्र आता ह। शनि का अगर मेरे जीवन पर कुछ बुरा अंतर होन की बात ज्योतिषी ने समझायी तो वह यह भी समझायेगा कि शनि की पीडा दूर करने के लिए दानो देवीरभोष्टे इत्यादि वैदिक मन्त्र का जाप मैं कहे अथवा दानिणा देकर किसी ब्राह्मण से करवाऊँ तो शनि की पीडा दूर होगी। इस मन्त्र के प्रारम्भ में ग और न ये दो अक्षर आते ह इतना ही इस मन्त्र का शनिमहाराज से सम्बध ह। मन्त्र का अर्थ देखते शनि के साथ उस का वास्ता तनिक भी नहीं ह। लेकिन मन्त्रशास्त्र में बुद्धि चलाने की मनाही ह। यह तो बबूल करना ही पडेगा कि मन्त्री का अमुक अंतर होता हो ह ऐसा अगर सिद्ध हुआ तो उसे मानना पडेगा। लेकिन आनकल के वैज्ञानिक लोग जिस निश्चित रूप से कायकारण सम्बध दिखा सकते ह वसा निश्चित सम्बध मन्त्रशास्त्री बता या दिखा नहीं सकते। अमुक समय ऐसा हुआ, अमुक को ऐसा लाभ हुआ एसी कयाए बहुत सुनाते ह। नहीं मानोगे तो तुम को मुकसान होगा ऐसा डर भी दिखाते ह। लेकिन किसी ने भी मन्त्र धोल कर या रट कर स्पुटनिक को जाकाग में आज तक नहीं भेजा ह। मन्त्रशास्त्र, फलज्योतिषशास्त्र, विज्ञान के साथ अपनी तुलना कर के अपनी बात सिद्ध नहीं कर सकता।

हम उदार हो कर बहुत तो इतना कहेंगे कि ये विगान तो ह, लेकिन अभी

चे ह । भौतिक विधान भी जब कच्चा था तब घमड़ी ज्यादा था । १८वीं
 शती के विधान ने अध्यात्म, धर्म और मानसशास्त्र की भी हँसी उड़ायी थी ।
 नये विज्ञान अगर हृदय से ज्यादा दावा करते जायें तो उन्हें बच्चे समझ कर
 न की बातें हम बरदास्त करेंगे और कहेंगे कि श्रद्धा विश्वास के साथ आगे
 बढ़ते जाओ, किसी दिन परिपक्वता आ जायेगी तब तक बड़ बड़े दावे छोड़ दो
 अच्छा ह ।

फल-ज्योतिष में जो बातें आज बल बतायी जाती ह उन में बहुत से
 ज्योतिषी सूक्ष्म गणित तक जाते ही नहीं । स्थूल मान से कुछ कुछ कह देने ह,
 बस पर स्वयं उहाँ को विश्वास नहीं होता ह । जो ज्योतिषी स्थूल गणित
 करते ह उहाँ के मुँह से सुनना चाहिए कि स्थूल गणित वाले कभी लीला चलाते
 । किन्तु सूक्ष्म गणित का फल भी निश्चित रूप से मिलता ही नहीं । और
 फल-ज्योतिष के गणित के सिद्धांत किन आधार पर बनाये ह यह भी कोई कह
 ही सकता । कदम-कदम पर अंधविश्वास रखने की ही बात आती है ।

फल-ज्योतिष के पीछे लगने वाला के बारे में मेरी शिकायत कुछ और ही
 है । जो लोग ज्योतिष सामुद्रिक या शकुन के पीछे पड़ते ह उन की बुद्धि धीम
 होती है । सकारणशक्ति, अनुमानशक्ति ऐसी सब शक्तियां दुबल बनती है । मनुष्य
 कदम-कदम पर डरता रहता ह, धबराया हुआ मालूम पड़ता ह । जहाँ उस्ताह
 काम करना चाहिए निडरता से सत्काय का सदन करना चाहिए वहाँ मनुष्य
 आत्मविश्वास खा बैठता है । जिस न फल-ज्योतिष का सहारा लिया वह गीता
 की नसीहत भूल ही जाता है—'कमण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।'
 जितने भी लोग मैं ने फल-ज्योतिष का सहारा लेते हुए देखे वे सब के सब
 अस्वस्थ चित्त के मालूम हुए । इस लिए मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि ज्योतिष
 की बातें प्रायः अपटंग होती ह । कौन-सी बात सही होगी और कौन-सी नहीं
 इस का निणय करने का पैमाना किसी के पास नहीं होता और मनुष्य का
 चित्त ही विकृत हो जाता है । इस लिए मैं सब को सलाह देता हूँ कि ज्योतिष
 के पीछे न पड़ें ।

जिन्हें शुद्ध प्रयोग की दृष्टि से सत्य समझने की इच्छा हा वे प्रयोग कर के
 देखें और प्रयोग का फल जाहिर भी करें । लेकिन लोगों को तो अपने जीवन म
 से फल-ज्योतिष को निकाल ही देना चाहिए ।

(३ मार्च १९६६)

भाग्य या अदृष्ट

एक सज्जन ने भाग्य के बारे में खूब सवाल पूछे हैं। ऐसे सवाल पूछने का एक रिवाज हो गया है। एक ही विषय पर अनेक दृष्टि के अनेक जवाब पढ़ने से विचार-वैचित्र्य का परिचय तो होता ही है और विचार के भिन्न भिन्न प्रस्थान—startling points ध्यान में आते हैं।

अपने विचार स्पष्ट करने का और थोड़ में लिखने का मौका देने वाले ऐसे प्रश्नों का मैं स्वागत ही करता हूँ।

‘क्या भाग्य में आप का विश्वास है?’

इस प्रश्न का जवाब देने से पहले ‘भाग्य’ शब्द का अर्थ स्पष्ट होना चाहिए। गीता में किसी काय के अनेक कारण ढूँढने के बाद जो कारण ध्यान में नहीं आ सकते उन को ‘दैव’ कहा है। इस से भी अच्छा शब्द है ‘अदृष्ट’—जो हमारे देखने में नहीं आया। जिसे देखने की सम्भावना नहीं, वह है अदृष्ट ऐसा कारण भी अपना काय तो करता ही है लेकिन उस का हिसाब हम नहीं कर सकते। इस लिए जब काय कारण सम्बन्ध का हम हिसाब लगाते हैं तब ‘अज्ञात’ और ‘अज्ञेय’ (unknown, unpredictable) का भी सोचना ही पड़ता है।

जो लोग काय कारण सम्बन्ध ढूँढने के आदी होते हैं ऐसे वैज्ञानिक वृत्ति वाले लोगों को क्रम-क्रम पर अदृष्ट का अनुभव होता है। वे कहते हैं कि पूरा पूरा हिसाब जब नहीं हो सकता, तब निश्चयार्थक अनुमान न निकालते हुए ‘अदृष्ट’ के लिए अवकाश रखना ही पड़ता है। और हम निष्पत्तिका नहीं बोल सकते।

ये सारे हुई वैज्ञानिक बातें। लेकिन सामान्य लोग नसीब, तनदीर, भाग्य, दैव आदि शब्दों से कुछ ज्यादा अर्थ निकालते हैं। वे मानते हैं कि दैव नाम की कोई गूढ़ शक्ति है, व्यक्ति है जो कभी हमारे विरुद्ध होती है और लग्न बोलियों करने पर भी हमें कामयाब नहीं होने देती। और कभी अनुकूल होने पर ऐसे फल भी देती है, जिस के लिए हम ने पूरी मेहनत न की हो अथवा बिलकुल ही प्रयत्न न किया हो। ऐसा नसीब’ कभी-कभी हमारे पीछे पड़ता है और सफलता पाने ही नहीं देता।

एक आदमी बगल गलत कर के गहर में गया। दस-बारह आदमियाँ से अलग अलग जगह उभे मिलना था। मुझ से लेकर साम तक वह घूमा। एक भी

आदमी उस नहीं मिला। सारी मेहनत निष्फल गयी। वह कह सकता है कि मेरी तकदीर हो खराब थी। लोग कहते हैं कि “न जाने आज सुबह किस का मुँह देखा था, मेरा कुछ भी काम न हो सका।”

यह सरासर वधम है। लेकिन ऐसा आदमी कभी कहता हूँ, भगवान् जाने मैं कैसे मुहूर्त पर निकला था कि आज मेरा एक भी काम न हो सका।’ ज्योतिष के मुहूर्त की बात हम छोड़ दें। लेकिन मुहूर्त जैसी चीज है अवश्य। हर एक आदमी का मिलने का समय अगर पहले से पूछ रखा होता और लोगो से मिलने का क्रम भी सोच कर रखा होता तो आदमी सब से मिल सकता। हिसाब से पहले या देरी से निकलने से सारा काम अवश्य बिगड़ जायगा। हिसाब से अनुकूल समय को मुहूर्त कहते हैं। हमारे पुराने शास्त्रों में लिखा है—राक्षस मुहूर्त को नहीं जानते। देव जानते हैं इसलिए कामयाब होने हैं। यहाँ भाग्य की बात नहीं है लेकिन अशुभ और दूरदेशी की बात होती है। अच्छा किसान बीज बोने का मुहूर्त जानता है, खाद का प्रमाण जानता है। समय पर सब मेहनत करता है। अच्छी फसल पाता है और भाग्यशाली कहलाता है। लेकिन इस में मौसम की अनुकूलता अदृष्ट होती है। जब मौसम का विज्ञान काको बड़ेगा तब वह अदृष्ट या भाग्य नहीं रहेगा। अनुभव, बुद्धि, समयाना और रचनाकौशल जैसे बढ़ते जाने हूँ वैसे ही अदृष्ट का—तकदीर का क्षेत्र कम होता जाता है। इन सब बातों को बगाना—यही एव तरीका है भाग्य बदलने का।

यह सब हो गयी बाह्य परिस्थिति या साधनों की अनुकूलता या प्रतिकूलता। साथ साथ मानसिक उत्साह, प्रयत्नता शुभाशंसा (आशावादिता) और सर्वोदय वृत्ति यह भी आंतरिक और बाह्य सफलता के लिए आवश्यक बातें हानी हैं। इन सब बातों का जब समुच्चय होता है और उन का चरम काटि तक विश्वास और उत्कर्ष होता है, तब उसी को ईश्वररूपा कहते हैं। ईश्वर को ही भाग्य कहना गलत बात है। भाग्य अच्छा माना गया है। चञ्चल माना गया है। ईश्वर के बारे में हम विश्वास नहीं कह सकते। ईश्वर का कृपा कब मिलेगी कसे मिटेगी, इसे हम नहीं जानते। लेकिन ईश्वर को कृपा किस हालत में प्राप्त नहीं हो सकती, सो तो हम अवश्य जानते हैं। जो सदाचारा नहीं है, दूर तक जो नहीं देखता, जो प्रमादी है, उस पर ईश्वरीय कृपा नहीं बरसती। ईश्वरीय कृपा भले ही अनेक हो किसी ने उसे अंधी नहीं कहा है।

अब रही ज्योतिष की बात। बारिश कब होगी, गरमी कब बढेगी, जाड़े के दिन कब आते हैं, कितने साल के बाद सूर्यग्रहण चन्द्रग्रहण फिर फिर आते हैं और उन का असर फसल पर क्या होता है, यह सब ज्योतिष, विज्ञान और

भीसम विनाश ग्राह्य से हम कमोवेश समझ सकते हैं। इस अर्थ में काय-कारण भाव बूढ़ने में ज्योतिष की मदद होती है। चंद्र की कलाओ का समुद्र के ज्वार भाटा से सम्बन्ध होता है, वैसे ही आकाशस्थ ज्योतिषा का हमारे जीवन पर कुछ-न कुछ असर होता ही होगा। लेकिन उन का काय कारण सम्बन्ध हम नहीं जानते। आज ज्योतिष के बारे में जो दावे किये जाते हैं वे अधिकांश भ्रामक ही हैं—गलत साबित हुए हैं। लेकिन भाखिरकार वह विनाश का सवाल है, तर्कदीर या भाग्य का नहीं। जब तक उसे हम नहीं जानते, उसे अदृष्ट या देव कह सकते हैं।

जो लोग भाग्य पर विश्वास रखते हैं, वे ज्यादातर अकर्मण्य और पुरुषार्थ विहीन बनते हैं। वे अर्थ विश्वासी ता होते ही हैं। इसलिए पुरुषार्थ होने पर भी उन का भविष्य छतरे में ही रहता है। और उन का मानस जुगारी का मानस बनता है।

इन सब बातों को सोचने के बाद हमारे पुरखा में से किसी ने कहा—

पौरुषात् जायते सिद्धि पौरुषात् धीमता क्रम ।

दव आश्वासनामात्र दु सपेलवबुद्धियु ॥

पौरुष—पुरुषार्थ या प्रयत्न के बिना सिद्धि नहीं हो सकती। धीमान् लोग—बुद्धिगाली लोग—पौरुष के आधार पर ही अपना जीवनक्रम चलाते हैं। हारे हुए दु खी लोगों के कमजोर मुलायम दिलों को आश्वासन देने के लिए ही 'दव' की कल्पना की है।

यहाँ इतना लिख देना आवश्यक है कि लोकोत्तर पराक्रमी लोग कभी-कभी अन्त करण के दववादी होते हैं, और दववाद के कारण ही उन में असाधारण दृढ़ता और निष्ठा आ जाती है। लेकिन ऐसों की दववादिता ईश्वरनिष्ठा का ही एक पहलू हाता है।

(१ अक्टूबर १९५६)

नयग्रहों की पीडा

ईश्वर की सृष्टि में हम हैं। हमारे सब ओर दुनिया फैली हुई है। हम स्वयं दुनिया का एक अंग हैं। दुनिया का चिंतन करने वाले चंद्र लोगों का ध्यान है कि दुनिया के एक-एक अंग में सारी दुनिया सूक्ष्म रूप में भरी हुई है। पेट की

दहनी का एक टुकड़ा काट कर हम बोते ह। उस में से एक सारा पूरा वृष पैदा हो जाता ह। आश्चर्य चकित हो कर कवि गाता ह—‘एक बूँद से मानव जैसे पुतले बनाये हजारों।’ सचमुच यह सारा विश्व एक गूढ़ातिगूढ़ वस्तु है। कल्पना कर के थक जाने पर कविया ने वह दिया कि भगवान् तो अनंत कीटि ब्रह्माण्ड के नायक हैं। पुराणकारों ने ब्रह्माण्ड की कल्पना का स्थलकाल में विस्तार कर के दिखाया ह। किंतु यह सारा नान वहाँ से आया सो तो बताया नहीं। लोग कहते ह कि योगविद्या से ऋषि-मुनियों ने यह सब पाया। योग विद्या के ग्रंथ हैं उन में उस विद्या की साधना और प्रक्रिया बताया ह। उस के अनुसार चलने वाले कई लोग देखने में आते ह। उन का स्वभाव, उन की सिद्धियाँ और उन का नान देखते कई बार दुःख होता ह। कभी भी सन्तोष या उत्साह नहीं होता। योगविद्या का माहात्म्य बताने वाले बहुत हैं, सिद्धि बताने वाले बहुत कम। उन की आखिरी दलील इतनी ही होती है कि जिस चीज को तुम नहीं जानते उस को इनकार करने का तुम्हें अधिकार क्या है? लेकिन उन से भी एक प्रश्न पूछा जा सकता ह कि आप को जिस का न ज्ञान है, न अनुभव उस के बारे में कुछ भी कहने का और केवल कल्पना पर बड़े-बड़े महल खड़े करने का अधिकार आप को भी वहाँ से मिला? क्या अनान किसी विचार परम्परा की बुनियाद हो सकती ह?

गूढ़वादी लोग इस तरह चर्चा में परास्त होने के बाद अपना पतरा बदल देते हैं और कहते हैं कि, यह चर्चा का विषय नहीं ह, अनुभव का ह। हम अपने अनुभव के बल पर कहते ह। वे जानते नहीं कि अनुभव का नाम लेना अपने को, अपने पक्ष को और भी कमजोर करना ह। सामान्यतया दुनिया के सब सज्जन ऐसे ‘अनुभववादियों’ से चर्चा करना छोड़ देते हैं। मन में कहते हैं आप के अनुभव की कदर करने वाले आप को बहुत से आदमी मिलेंगे। आप अपना सम्प्रदाय चलाइए। आप का अनुभव हमारे काम का नहीं ह। अनुभव की भी तो कसौटी होती ह। भोले लोगो की अपनी एक अलग दुनिया होती ह। उस में हमें प्रवेश नहीं करना ह। हमें जिस चीज का अनुभव होता है उस का हम सबूत भी दे सकते ह और अनुभव भी करा सकते ह।

पुराणों में चन्द्रलोक की बातें आती हैं। आजकल के खगोलशास्त्र में भी चन्द्रलोक की बातें आती हैं। खगोलशास्त्र का अनुभव दूरबीन के द्वारा, गणित और पदार्थ विज्ञान के द्वारा हम सब को करा सकते ह। रूसियन और अमेरिकन योमयात्री खगोलशास्त्र के और विज्ञान शास्त्र के बल पर आकाश में घूम आये। उन्होंने चन्द्र के पष्ठभाग के फाटो भी लिये। खगोलशास्त्री दूरबीन की मदद से

घटाने की कोशिश करते हैं उन को प्रगति हम देखते हैं। केवल सांसारिक और भौतिक प्रगति ही नहीं, आध्यात्मिक प्रगति भी दीख पड़ती है। और उन का अच्छा असर आसपास फग हुआ भी स्पष्ट दीख पड़ता है। और जो लोग दावा ही-दावा करते रहते हैं उन का भी असर फलता है। वह किस किस का होता है यह भी हम देखत आये हैं।

मेरे वचन में लोग कहते थे कि सूर्यग्रहण या चंद्रग्रहण के समय कुछ भी खाना नहीं चाहिए। खाने पर भस्मरोग होता है। (भस्मरोग क्या थला है इस की तलाश करने पर मालूम हुआ कि आदमी की भूख अनहद बढ़ती है। वह जो खायेगा भस्म हो जाता है। न कभी उस की तृप्ति होती है न उस की शक्ति बढ़ती है।) ग्रहण के समय खाने का विचार मनुष्य को सूचना नहीं चाहिए। ग्रहण रोज नहीं होते इस लिए ध्यान से उन्हें देखना चाहिए यहा तक मैं सहमत हूँ। अगर कोई कहे, जसा चंद सनातनी लोग विज्ञान की दुहाई दे कर दलील करते हैं—कि ग्रहण के समय सूर्य की किरणें हमारे शरीर तक नहीं पहुँचती, इस लिए हमारी पाचनशक्ति क्षीण होती है, इस लिए ग्रहण के समय नहीं खाना चाहिए तो मैं सुनने को तैयार हूँ। लेकिन सुन कर अनुभव करने को भी जो चाहेगा। रात को सूर्य की किरणें हम तक नहीं पहुँचतीं, तो भी लोग मखे से खाने हैं। किसी को अजीण या भस्मरोग नहीं हुआ। मैं ने तो एक दो दफे सूर्यग्रहण और चंद्रग्रहण के रहते खा कर देखा। मुझे कोई भस्मरोग नहीं हुआ। दूसरा भी कोई नुक्सान नहीं हुआ। लाभ इतना ही हुआ कि किसी ने अज्ञात का डर दिखाया तो मान जाने की जो कमजोरी मनुष्य में होती है वह दूर हुई। अच-अचालु लोगों की आग्रही बातें मान लेने की और हजम करन की शक्ति क्षीण हुई। जिस चीज को हम नहीं जानने उस को हम स्वीकार करें कि हम नहीं जानते इतना काफी है। जो लोग गूढ अनुभव का दावा करते हैं और उस के बल पर हम पर सवार होना चाहते हैं उन को बातों की या तो हम उपेक्षा करें या जाँच करें। उन के बताये हुए डर को हम शरण न जायें।

किसी ने मुझसे पूछा कि फलितज्योतिष मानते हो ? मैं ने कहा कि मैं कैसे कहूँ कि आकाश के ग्रहों का तारों का और अथ ज्योतिषों का मुझ पर या किसी पर असर होता ही नहीं ? होता होगा। उस असर के होते हुए भी मेरा जीवन क्रम ठीक चल रहा है और जो लोग फलितज्योतिष पर विश्वास करते हैं और ग्रह गति के मात्र बोलते हैं और दान देते हैं उन के जीवन में कोई खास सुधार हुआ देखने में नहीं आया। अगर कोई आ कर मुझ से कहे कि आप का स्वास्थ्य आप को अच्छा लगता है, लेकिन कल आप को एक भयानक बीमारी होने वाली

ज्ञान के लिए जरूरी गणित और विज्ञान का परिचय पा लिया। इस के कारण मेरा काव्यात्मक बड़ा और भगवान् के प्रति भक्ति में एक नयी ही पुष्प प्रतिष्ठित हुई। मैं स्वयं कल्पना में एक विराट पुरुष बना कर सूर्य के ग्रह अपने-अपने चन्द्रों को साथ ले कर सूर्य के इद गिद वैसे घूमते होगे, शनि के वलय का रूप कैसा होगा, इन अनेकानेक चन्द्रों के कारण तरह-तरह के ग्रहण कैसे हात हागे और सूर्य के इद गिद पृथ्वी के भ्रमण के कारण दिवस रात्रि और ऋतु कैसे पैदा होते हैं और समुद्र में ज्वारभाटा का दबासोच्छवास कैसा चलता है इस का प्रत्यक्ष दशन में करने लगा। इस के बाद अति विराट बन कर असह्य तारे, उन की नीहारिकाएँ और आकाशगगा के विशालतम जगन का विश्वरूप दशन भी मैं ने कल्पना की आँखों से किया। और तारों का विज्ञान (Stellar physics) के बारे में पढ़ कर एक एक तारे के पैट में उष्णता कितनी है और तप्त धातुओं का तापत्व कैसा चलता है इस का भी अद्भुतरम्य साक्षात्कार किया। तारों की जन्म देने वाले हिरण्यगर्भ की भीहारिकाओं में प्रवेश करने की कल्पना की भी हिम्मत न हुई। तब—दिनों न जाने न लभे च शम।' कह कर वापस आना पडा। सबकपा कल्पना भी जहाँ थक जाती है ऐसे अनंतकोटि ब्रह्माण्डों का स्याल करना यह भी एक वेदान्त की अद्भुत साधना ही है और बहिक ऋषि अधमपण कहते हैं कि ऐसी साधना से पाप धुल जाता है। यह तब होगा जब ज्योतिष के विराट विश्वरूप दशन के साथ ऋत और सत्य का साक्षात्कार हो।

भौतिक ज्योतिष और गणित ज्योतिष के साथ मानव जाति ने फलित ज्योतिष की ओर भी प्रयत्न चलाया है। लेकिन हम कह रही सकते कि इस क्षेत्र में मनुष्य-जाति ने प्रयत्न की पराकाष्ठा की है। ग्रहा का और तारों का मनुष्य जीवन पर असर हो सकता है इतना अनुमान करने के बाद उन्होंने इन सब ग्रहों की जीवित पुरुष मान कर उन्हें व्यक्तित्व प्रदान कर के उन ग्रहों की जाति करने के उपाय केंडे।

जब हम देखते हैं कि सूर्य चन्द्र का असर समुद्र के पानी पर होता है और बनस्पति की लसा में पटने-बड़ने वाले रसों पर भी होता है, तब हम कैसे कहें कि ग्रहों का हमारे शरीर पर कुछ भी असर नहीं हो सकता। हम जिस ऋतु में जन्म लेते हैं उस ऋतु का असर हमारे शरीर के सप्तधातुओं पर कुछ-न-कुछ होता ही है। बाव दित्त-बफ पर भी ऋतु का असर हो सकता है। यह जितना सत्य है इतना ही यह भी सत्य है कि अशरों की बैज्ञानिक साध-सात्र अभी तक नहीं हुई है। ऋषि-मुनियों के अज्ञात्रिय साधनामय की दुहाई दे कर हम लोगों ने केवल कल्पना, अज्ञानिक अनुमान और गूढ़ बहमों का बचाव गहड़ों करगों

तक किया और लागा की अश्रद्धा का और अथविहीन लोभ और भीति का पोषण किया। लेकिन न हमारे ज्ञान में कुछ वृद्धि हुई न जनता के स्वास्थ्य और कल्याण में कुछ फक हुआ।

फलितज्योतिष के धारे में लोग जब विश्वासपूर्वक जोर जोर से कहते हैं तब उन पर तरस आता है और ऐसे लोग भी हमारी वृत्ति को अश्रद्धा और नास्तिवता कह कर जनमानस को हमारे खिलाफ बनाने की कोशिश करते हैं। यह लीला हमेशा चलने वाली है ही।

जन्म पत्रिका तयार कर के जन्म लग्न के अनुसार फल बताने वाले और उस पर विश्वास रखने वाले बहुत लोग हमने देखे हैं। जैसे भूतों पर विश्वास रखने वाले लोगों की बातें जनता विश्वास के साथ सुनती है, वैसे ही ग्रहों के असर की बातें लोग विश्वास रखने के आग्रह के साथ सुनते हैं। अविश्वास करने पर आप पर ग्रहों का शाप उतरेगा ऐसा डर बताने वाले लोग तो होते ही हैं।

कहते हैं चन्द्र के आसपास कोई वायुमण्डल नहीं है। वहाँ गरमी और सर्दी धीमे धीमे नहीं बढ़ती, चन्द्रक ऊपर सूखे महासागर हैं। मरे हुए ज्वालामुखी भी हाने। जिस किस्म की जीवसृष्टि को हम पहचानते हैं वैसे जीवसृष्टि चन्द्रके ऊपर नहीं है, हो भी नहीं सकती। ऐसे निर्जीव और निष्प्राण चन्द्र में मनुष्य के जस रागद्वेषादि होते हैं ऐसा मानना हमारे लिए आसान नहीं है। जो मान सकते हैं उन की श्रद्धा उन्हें मुबारक।

जब लोग कहते हैं कि हमारे जीवन पर चन्द्र का असर होता है तब मेरे मन में तुरत विचार आता है कि मैं सजीव, प्राणवान्, चैतन्यमूर्ति हूँ। मेरा असर चन्द्र पर अवश्य होता होगा। उस का हिसाब करने वाले ग्रन्थ हमारे पास क्यों नहीं? खरूर कोई कह सकता है कि ऐसे ग्रन्थ चन्द्रलोक में अवश्य होंगे। मैं ऐसे लोगों से वाद विवाद नहीं करूँगा।

फलितज्योतिष के ग्रन्थ पढ़ कर जो लोग ग्रहों के हमारे जीवन पर होने वाले असर की बातें करते हैं उन पर मेरा विश्वास नहीं है। काकतालीय ग्रन्थ से उन की वही चन्द्र बातें सही निकलें तो भी उन पर विश्वास रखने के लिए मैं तयार नहीं हूँ।

पचांग में एक अवकहडा चक्र दिया जाता है। उस चक्र की विनारो पर प्रोक वणमाला के अक्षरों के जैसे कई अक्षर लिखे हुए पाये जाते हैं। ज्योतिषी लोग इस अवकहडा चक्र की मदद से नये जन्मे हुए बालक के नाम का आद्यसार

बताते हैं। और धातुक का गण देव, मनुष्य या राक्षस है यह भी बताते हैं। इन की चर्चा और इन के भविष्य काफी मुनने के बाद मेरा निश्चय हो गया है कि ये सारे ढकोसले हैं। जन्मपत्री देख कर सादियाँ तय करना यह भी बिल्कुल फिज़ूल बात मालूम होती है। जो लोग ज्योतिष को पूछ कर लडके-लडकियाँ की शादी कराते हैं और जो लोग पूछे बिना कराते या कराते हैं उन के अनुभव से स्पष्ट होता है कि ज्योतिष की, नक्षत्र और जन्माक्षर की अनुकूलता देख कर किये हुए विवाह अधिक सफल हुए हैं ऐसा कहीं भी अनुभव नहीं है। वर और कन्या के दोनों खानदान का स्वभाव, उन के रस्म रिवाज तथा उन के पारिवारिक इतिहास की देख कर और वर और कन्या के स्वभाव का खयाल कर सादियाँ तय हानी चाहिए। ग्रहयोग की बात बीच में ला कर माँ बाप और दूसरे लोग अपनी सच्ची जिम्मेवारी भूल जाते हैं और मानते हैं कि हम ने प्रहा की अनुकूलता देख ली अब दूसरी बातें देखने की जरूरत ही क्या ?

बालक के जन्म के साथ उस की जन्मपत्री बनाना और उस पर से भविष्य तय करवा कर उस पर विश्वास रखना सचमुच जीवनद्रोह है। अब हो कर विश्वास रखना और बच्चा के बारे में पहले से अभिप्राय बाँध लेना बालकों के प्रति अन्याय है।

वारिश कब होगी इस का कुछ अंदाज़ देने वाला एक विज्ञान है जिसे अंगरेज़ी में मेटेओरालॉजी (meteorology) कहते हैं। हमारे देश में किसानों ने दीर्घकालीन अनुभव के बाद और कुछ नये-नये अनुमान उस में जोड़ने के बाद अपना एक भोला ग्रहमान विज्ञान बनाया, जिसे सहदेव भडली-वाक्य' कहते हैं। भोले युग की यह वैज्ञानिक प्रवृत्ति थी। उस की कदर करनी चाहिए। लेकिन जब कोई किसान गाँव के ज्योतिषी से पूछ कर खेत में अनाज बोता है तब वह बुद्धिमानों का काम नहीं करता। विवाह के लिए मुहूर्त ढूँढ़ना, यात्रा के प्रस्थान के लिए ज्योतिषी से मुहूर्त पूछ आना यह एक बहम का ही अंग है।

आसाम के इतिहास में हम ने पता था कि लडाईं करने चलो फौज के साथ एक ज्योतिषी भी रहता था। उस से पूछे बिना फौज कुछ नहीं कर सकती थी। एक दफ़े सेनापति लालितफूकन ने देखा कि सत्रुपर घावा बोलने का अनुकूल अवसर आ गया है। और उस ने ज्योतिषी से पूछा। जोशी महाराज ने मीनमेघ गिन कर कहा, इस वक़्त मुहूर्त नहीं है। ग्रह अशुभ हैं। बड़ा नुकसान होगा।' सेनापति सयाना था। उस ने जोशी महाराज की घमका कर कहा कि अभी के अभी मुहूर्त निकाल कर द दो। नहीं तो तुम्हारा सिर उड़ा दूँगा। जोशी

महाराज समझ गये कि ग्रहों के असर से भी बढ़ कर हू सेनापति की तलवार का असर। उन्होंने झट मुहूर्त निकाल दिया। सेना उसी क्षण निकल पड़ी।

फलित-ज्योतिष, सामुद्रिक और शकुन आदि वहमों के पीछे कुछ सत्य है या नहीं ऐसे प्रश्नों का उत्तर देना फिजूल है। मैं तो सब से बड़ता हूँ कि ऐसे वहमों पर विश्वास रखने वाले लोगों के मन पर ग्रहों का बहिष्कार या वहमों का बहिष्कार, बहुत बुरा असर होता है। वे अपनी निष्पत्ति को खो बैठते हैं। परिस्थिति पहचानने का अपना कृतव्यय वे भूल जाते हैं और अंधविश्वास बलने से उन का व्यक्तित्व दया और तिरस्कार का पात्र बनता है। फलित-ज्योतिष के पीछे पढ़ने वालों का पारावार नुकसान होता है। उन की मनोरचना दयापात्र बनती है और उन के बारे में आदर रखना मुश्किल होता है। ऊपर जिन दो ज्योतिषियों का जिक्र मैं ने किया है उन्होंने शुद्ध गणित कर के और फलित-ज्योतिष के ग्रह देख कर अष्टग्रहयोग शुरू होने के पहले ही जाहिर किया था कि अष्टग्रहों विलकुल मामूली ढंग का एक सामान्य योग है। न वह अनर्थसूचक है, न उस योग में ऐसा सामर्थ्य है कि मामूली छोटे-मोटे सकट भी पैदा कर सके। अगर जनता ने उन की यह बात मानी होती तो हवन कर के घों जलाने के पीछे हजारों रुपये बरबाद नहीं होते। लेकिन अगर मैं जनता से कहूँ कि इन दो ज्योतिषियों के निष्पत्ति पर और उन की भविष्यवाणी पर विश्वास रखें तो मेरी सारी भूमिका ही टूट जायेगी। मैं ने गणित किये बिना और ज्योतिषग्रन्थों से पूछे बिना स्पष्ट किया था कि मैं नहीं मानता कि इस अष्टग्रहयोग के कारण कुछ सास बनने वाला है। फलित-ज्योतिष आदि प्रवृत्ति से हमारे समाज का बड़ा ही नुकसान हुआ है। इस प्रवृत्ति को छोड़ ही देना चाहिए और मनुष्य को वैज्ञानिक ढंग से जीने का निश्चय करना चाहिए।

लोग कहते हैं कि ज्योतिष में शायद कुछ होगा। हम कहते हैं कि शायद नहीं भी होगा। प्रयोग कर के हर चीज को कस कर के देखना चाहिए। अश्रद्धा से मनुष्य जाति का जितना नुकसान हुआ है उस से हजार गुना नुकसान अंध श्रद्धा से हुआ है। सब से बड़ा नुकसान तो यही है कि वहमों पर विश्वास करने वाला आदमी छोटा बनता है, डरपोक बनता है। निष्पत्ति करने की शक्ति का बढता है और समाज को भी नीचे खींचता है।

जिस किसी को ऐसे विषयों में दिलचस्पी है उस को चाहिए कि वह पहले तकशास्त्र और अनुमानशास्त्र अच्छी तरह सीखें। डिडकटीव लाजिक और इटक्टीव लाजिक—निगमनिक तक और आगमनिक और हेत्वाभास तीनों का

अच्छी तरह से अध्ययन करे और उस के बाद वैज्ञानिक निष्ठा से हजारों और लाखों उदाहरणों की जाँच कर के निणय पर आवे और लोगों के सामने पूरा मसाला रजू करे । अगर कोई बात सही भी हो तो भी जब तक उस की जाँच पढताल नहीं हुई है वह वहम ही है और उस का स्वीकार अज्ञानता से करना खतरनाक है ।

(१ नवम्बर १९६१)

■

भारत का अध्यात्म

भारत का अध्यात्म

प्रश्न—विदेशी से जो चुनिन्दा लोग आते हैं वे कहते हैं कि “भारत में एक वातावरण है जो और कहीं नहीं है। हम तो भौतिकवादी बन कर बहुत गुमराह हुए हैं जीवन के सभी गूढ़ और मौलिक तत्त्व खो बटे हैं। हमारे पास न चैन है, न शान्ति। तुम्हारे पास चैन और शान्ति दोनों हैं। इसीलिए आखिर भारत पर जमी हुई है। तुम क्यों हमारे पीछे चले हो? भारत अगर अपना अध्यात्म खो बठा, तो हम बाकी दुनिया का क्या होगा?”

उत्तर—जब तक भारत आजाद नहीं था तब तक यह सवाल पूछने वालों की समस्या कम थी। हमारे अध्यात्म को लोग एवाव कहते थे, खत कहते थे, हवाई तरंग कहते थे और कभी-कभी जीवनद्रोही परलोक-परायणता भी कहते थे।

बद साम्राज्यवादी खुल्लमखुल्ला हमें कहते थे कि, “यह श्रमविभाग अच्छा है तुम नाक पकड़ कर प्राणायाम और ध्यान कर के अध्यात्म की बात सोच लो। हम तुम्हारे देश में राज करेंगे। तुम्हारा रक्षण करेंगे। और जिस की तुम्हें परवा नहीं है उस धन को इकट्ठा करेंगे।”

और भी एक पक्ष था जो आपस में कहता था कि, “भारत के लोगों को उन के सुख-स्वप्न से जगाना हमारा काम नहीं है। हम उन के अध्यात्म को भुँह भर के स्तुति करें तो वे राजी होते हैं हम पर विश्वास रखते हैं और फिर भारत में राज करना हमारे लिए आसान होता है।”

हमारे यहाँ और भी एक वर्ग के लोग आते थे जिन्हें भारत का अध्यात्म भारत का योग, भारत की मात्र शक्ति और यहाँ की गूढ़ विद्या आवश्यक लगती थी। जीवन के सिद्धांत के तौर पर नहीं किन्तु जिज्ञासा और कुतूहल के तौर पर ही वे यहाँ की बातों की खोज करते थे। उन्हें यह भी आगा रहती थी कि भारत की इस प्राचीन विद्या में से हम ज़रूर कुछ ऐसा निकाल सकेंगे जो यहाँ के लोग नहीं जानते हैं। फिर तो हम इन लोगों के देश पर ही नहीं, इन के

बाहरी जीवन पर ही रही किन्तु इन के हृदय पर भी राग्य कर सकेगे । ऐसे लोग भी भारत की विरासत के धारे में गौरव की धारें बहते हैं ।

जब से भारत स्वतंत्र हुआ है, यूरोप अमेरिका के लोगो का एक ही चिन्ता है कि इतना बड़ा देश वही साम्यवादी कम्युनिस्ट बन जाय । रशिया, चीन और भारत में तीन ही ऐसे देश हैं जिन की लोकसङ्घमा असोम है । अगर ये तीनों साम्यवादी बन गये तो बाक़ी दुनिया की परिपत नही । इन में से दो तो साम्यवादी बन चुके । भारत साम्यवादी बनने से आज इनकार करता है । उसे रशिया का जडवाद पसन्द नही । इसलिए इसी पर जोर दे कर भारत का अध्यात्म हम को वापस रखना चाहिए । रशिया के खिलाफ़ जो दीवार खड़ी करनी है उस में भारत के अध्यात्म का उपयोग सब से ज्यादा है ।

जो लोग केवल देशाभिमान के कारण अध्यात्म का नाम रत हैं उन से कोई मदद मिलने वाली नही । जो सचमुच अध्यात्मवादी हैं उन्हो की शक्ति बढ़ानी चाहिए ।

यह हो गयी इस सवाल की एक तस्वीर । अब दूसरी ओर देखें । चाहे जिस उद्देश्य से वही हो अगर इन लोगो की बात सही है और भारत सचमुच अध्यात्म-परायण है तो उसे बढ़ावा देना ही चाहिए । हमारे गन्तु भी हमारी जिस बात पर हमारा ध्यान केन्द्रित करना चाहते हैं उसे खतरनाक समझ कर उसे छोड़ देना यह होगा पश्चिम का अध और विपरीत विवृत अनुकरण । इस से भी हमें बचना है ।

जब तक यूरोप धर्म के शिखर पर था तब तक उन की संस्कृति से और उन की जीवन दृष्टि से हम चकित हुए थे । अब देखते हैं कि उन की यह संस्कृति सघनमूलक है और विनाश का ओर जा रही है । इसलिए उन का अध अनुकरण तो करना ही नही ।

हम यह भी सोच रहे हैं कि क्या पश्चिम का इतिहास पढ़ने के बाद हम उन का पुरपाथ और अपने अध्यात्म का संयोग नही कर सकते ? क्या अध्यात्म के लिए विज्ञान और उस से मिलने वाली सहूलियतें छोड़ ही देनी चाहिए ?

हम और भी सोचते हैं कि अगर हम में विदेशी लोगो को आकर्षित करने वाला और परम शक्ति देने वाला अध्यात्म है तो हमें उस का अनुभव क्यों नही होगा ? हमारा आल्स्य हमारी जडता हमारी परावलम्बिता, आपस-आपस की धुंध ईर्ष्या, पंगुओ के समान अघी सत्तान बुद्धि और निम्न कोटि तक पहुँचा हुआ जीवनस्तर क्या वही हमारा अध्यात्म है ? अगर हम में अध्यात्म है तो उस की सुगंध हम क्यों नही अनुभव करते ?

हमारी सामाजिक व्यवस्था में जो अत्याय, उत्पीड़न और शोषण चलता है वह तो अध्यात्म नहीं है। चन्द जातिर्षा हमेशा के लिए दबी रहती है यह भी अत्यात्म नहीं है। घर्माभिमान के नाम जो अत्याचार होते हैं वह तो अध्यात्म हरगिज नहीं। दुनिया कभी भी चले हम अपने भक्तिस्तोत्र गाते रहेंगे। नाक पकड़ कर प्राणायाम करेंगे और गूढ़ शक्तियों की बातें करते ही जायेंगे तो क्या हमारा अध्यात्म सुरक्षित रहेगा ?

जापान चीन और भारत जब अपनी सादगी में और अपने अध्यात्म में सन्तुष्ट थे तब ये पश्चिम के लोग हमारे बीच आये उन्होंने अपने हाथ-पैर फैलाये और हम पर अपना आधिपत्य जमा लिया। तब हमारे अध्यात्म ने हमारी रक्षा नहीं की। २०० ४०० साल हर तरह की विडम्बना सहन की और उन को हम पहचानने लगे। जो-जो चीजें वे यहाँ ला कर बेचते थे वह सब हम यहाँ अब तयार करने लगे। तब उन की पकड़ कम हो गयी।

अगर हम रेल, मोटर, बस और साइकिल पर सवार होना छोड़ दें तब तो हमारा अत्यात्म शायद सही होगा। साइकिल से ले कर हवाई जहाज तक का व्यवहार तो हम बढ़ा रहे हैं। तब अध्यात्मवादी हम लोग ये चीजें दसगुना दाम पर विदेश से खरीदें या अपने देश में ही बनावें ? दसगुना दाम दे कर जब हम विदेश से यन्त्र आदि खरीदते हैं तब उन चीजों के साथ हम परावलम्बन भी खरीदते हैं और परावलम्बन कोई आध्यात्मिक चीज नहीं है। “स्वातंत्र्यत लभते परम्” हर बात में जब हम स्वाश्रयी स्वतंत्र होंगे तभी हमारा अध्यात्म खिलेगा।

इस सारी दलील का मतलब यह नहीं कि हम पश्चिम का ही अनुकरण करें। इस का अर्थ इतना ही है कि हम आँखें खोल कर, परिस्थिति देख कर, अपनी बुद्धि चलाकर तय करें कि हमारे लिए क्या अच्छा है।

अध्यात्म की भी युगानुरूप नया आवृत्ति हो सकती है। समाज के नेता और अध्यात्म के प्रयोगवीर स्वेच्छा से अविचन बनें तपस्या करें अन्न-वस्त्र का उपयोग कम से कम करें यह बात तो समझ में आती है। लेकिन सामान्य लोगों में अगर अकाल और भुखमरी रही तो अध्यात्म तो क्या मामूली सदाचार भी उन में नहीं रहेगा। इसी लिए गांधीजी कहते थे कि रोटी ही भूखे का भगवान है। करोड़ों के लिए रोटी का प्रबंध करना यही आज का सच्चा अत्यात्म है।

जिस तरह आरोग्य यौवन, आत्मविश्वास पराक्रम आदि का अनुभव

मनुष्य को अन्दर से होता रहता है इसी तरह अध्यात्म की भी बात है। हमें अपना अध्यात्म दीख न पड़े और विदेशियों को वह दीख पड़े यह नामुमकिन बात है।

हाँ, जो चीख हम ने हज़म की है, जो चीख हमारे खून में है, हृदयों में है, हमारा स्वभाव बन गयी है उस की ओर हमारा ध्यान नहीं जाता, विदेशिया का जा सकता है। ऐसी चीखों को खोने पर ही हम उस का महत्व महसूस करने लगते हैं। और अगर अघापा आ गया, जड़ता और बधिरता आ गयी तो कीमती वस्तु खोने पर भी वह बात हमारे ध्यान में नहीं आवेगी।

हमें हमारी अध्यात्म की पूँजी खोनी नहीं है। योग से प्राप्त होने वाली सिद्धियाँ अध्यात्म नहीं हैं। विज्ञान के प्रयोग से मिलने वाली सिद्धियाँ और नान ध्यान के योग से मिलने वाली सिद्धियाँ एक ही अन-आध्यात्मिक हैं।

अध्यात्म की सच्ची बुनियाद है सदाचार, काव्य, प्रेम सेवाभाव और विश्वात्मव्य। इस में से त्याग और बलिदान समय-समय पर अपने-आप प्रकट होते हैं, और क्योंकि अध्यात्म-द्वी तेजस्वी शक्ति है, इस लिए उस में से कुछ सिद्धियाँ भी अपने आप पदा हाती हैं।

हमारी जनता में हम मानते हैं इस से अधिक ईश्वरनिष्ठा है, सतोप है क्षमावृत्ति है, जीवदया है। यह सारा अध्यात्म के लिए बहुत ही कीमती कच्चा मसाला है। इसी के जोरो महात्माजी निराश राष्ट्र में उत्साह और आत्म विश्वास पैदा कर सके। उसे त्याग और बलिदान तक ले जा सके। इसी के जोरो वे देश के बुद्धिमान् लोगों को सेवा की दीक्षा दे सके।

लेकिन यह कहना कि पश्चिम की विद्या पा कर हम जड़वादी बन गये अथ सत्य ही है। हम ऊपर से अध्यात्मवादी और अन्दर से केवल भौतिकवादी ही नहीं किन्तु जड़वादी बने तभी तो हम परतंत्र बने, तभी तो विदेश के लोग यहाँ आ कर अधिकार जमा सके। हमारे राष्ट्रीय दुगुण अंगरेजों के पहले ही नहीं किन्तु पठान मुगल आदि के पहले भी काफी बढ चुके थे। और अबुद्धि का दुगुण तो सार समाज में फला हुआ था ही। इसी लिए हम राष्ट्रप्रेम खो बढे, स्वजनो का द्रोह करने को तयार हुए और अनानमूलक जड़ता के कारण देश का नेतृत्व खो बढे।

अब भगवान् की कृपा से और महात्माजी की शिक्षा से हम आजाद हुए हैं। अब हमें हमारा सामाजिक जीवन अध्यात्म की बुनियाद पर हमारी राष्ट्रीय आवश्यकता के अनुसार तयार करना होगा। गानोपासना, कौशल्य और निपुणता मनुष्यप्रेम, अण्ड उद्योगिता सादगी और निभय अहिंसा यह हैं आज का

हमारा अध्यात्म । विदेश के लोग अगर ये बातें हमारे राष्ट्रीय जीवन में, लोक जीवन में देखते ह तो वह खुशी की बात है ।

ध्यान, चिंतन, हृदयशुद्धि, वराग्य और आत्मोपम्य इन बातों का महत्त्व सर्वोपरि ह । ऊपर बतायी हुई दो किस्म की तैयारी होने के बाद, सेवायोग और ध्यानयोग की बुनियाद पर हम पूणयोग की ओर जरूर जा सकते ह ।

हम नहीं मानते कि बाकी की सारी दुनिया अध्यात्मविहीन है और भारत ही अध्यात्म का खजाना ह । इस में शक नहीं कि हमारी विरासत सब से बड़ी ह लेकिन उस का खोया हुआ अधिकार हमें फिर से पाना है । आज की शिक्षा में बाकी अनेक शिक्षा मिलती ह । अध्यात्म की भयानक उपेक्षा हो रही ह इस में शक नहीं । राष्ट्र को चाहिए कि वह शिक्षा की बुनियाद ही बदल दे ।

(१६ मार्च १९५७)

अध्यात्म और चमत्कार

बचपन का बहुत बरसों का मेरा अनुभव ह कि जहा जहाँ बहुत दिन तक बारिश नहीं हुई हो, मेरे जाने से बारिश हो जाती थी । बचपन से मुझे यात्रा का बड़ा शौक था । इस लिए ऊपर का अनुभव एक नहीं अनेक जगहों का और अनेक बरसों का ह ।

लोग मेरा अभिनन्दन करते कहते थे कि 'आप का आगमन बड़ा गुप्त ह मुबारक है । आप के आने से ही बारिश हो गयी । हम बड़े परेशान थे कि बारिश कब होगी । आप सरीखों के पुण्य आगमन से हमारा दु ख दूर हो गया ।

ऐसी बातें सुन कर अच्छा लगता था । लेकिन न बचपन में न आज उन का कयन मुझे सच्चा लगा ह । लोग की भोली श्रद्धा देख कर हँसी आती थी । श्रद्धा की तो म कदर करता हूँ । लेकिन जहाँ न बुद्धि का उपयोग होता ह न तर्क का, न दीधकामीन अनुभव का ऐसी चीज को मैं श्रद्धा कहने की तयार नहीं हूँ । वह निरा भोलापन ह, उस की कोई नतिक क्रीमत नहीं ह । और उस में खतरा तो बहुत रहता ही है । इस लिए ऐसे भोलेपन को मैं ने कभी निर्दोष नहीं माना ह ।

मैं ने यह भी देखा ह कि हमारे देश के अनेकानेक बुजुर्गों के जीवन में ऐसी भोली श्रद्धा काम करती ह और वे कभी-कभी नाहक छुट्टी में आते ह और

उतने ही नाहक मायूस भी हो जाते हैं। और जो लोग ऐसी अंधी श्रद्धा को नहीं मानते उन को अति-बुद्धिवादी और करीब-करीब नास्तिक माना जाता है।

इस में शक नहीं कि इस सृष्टि का व्यापार जिन कानूनों से चलता है उन की पूरी जानकारी हमें नहीं है। पदार्थविज्ञान के और भौतिक शास्त्रों के सब कानून भी हम नहीं जानते। और भौतिक विज्ञान में दुनिया का समस्त ज्ञान आ जाता है यह भी बात नहीं है। इस लिए दुनिया में असह्य घातें हैं जिन्हें हम नहीं जानते या जिन की भीमासा हम नहीं कर सकते। लेकिन जहाँ-जहाँ हम कुछ समझ नहीं पाते वहाँ तुरंत अध्यात्म देखना, गवी या दवी शक्ति का अनुमान करना गुढ़ जड़ता है। इस में शक नहीं कि ईश्वर ही सब कुछ करने कराने वाला है। लेकिन इसी सिद्धान्त की अगर हम रट लगायें, तो न हम दुनिया को समझ सकेंगे, न विज्ञान में आविष्कार कर सकेंगे। बारिश क्यों हुई? ईश्वर ने चाहा इस वास्ते!

किसी माता ने गांधी भगवान् से प्रार्थना की कि मुझे एक बच्चा हो जाय। उसे बच्चा हुआ। उस ने बच्चे को ला कर गांधीजी के पाँवा पर रखा और गांधीजी के खादा काय के लिए कुछ दक्षिणा भी दी। गांधीजी ने खादीकाय के लिए मदद तो ली, लेकिन माता को समझाया कि उन में कोई ऐसी करामात नहीं है, जिस से लागा का बच्चे मिल जायें। लेकिन ऐसी बातों में लोग महात्माजी के शब्द भी लेने को तयार नहीं होते। महात्मा लोग हमें चमत्कार का इन्कार करते हैं। लेकिन दुनिया का अनुभव है कि जहाँ महात्मा हैं वहाँ चमत्कार होते ही हैं।

थक इस का दूसरा पहलू देखिए। महात्माजी किसी गाँव में गये और वहाँ उन्होंने असुखता निवारण का जोरों से उपदेश किया। गांधीजी के उत्साही अनुयायियों ने सहभाजन का कार्यक्रम भी रखा जिस में ब्राह्मणों से ले कर हरिजनों तक बहुत से लोग न साय बठ कर भोजन किया।

घाटे ही जिनों में उस गाँव में छूत्र का रोग उभर आया और बहुत से लोग मर गये। फिर तो पूछना ही क्या? बुद्धिवादी सनातनी लोग बहने लगे, यह दगिए आन के महात्मा के आन्दोलन का फल! उद्धान लोगों को अधम सिगाया और तुरन्त उस का फल मिल गया। कतिपय हुआ तो भी क्या? भगवान् साया हुआ नहीं है। इस हाय से करो, और उस हाय से भुगत लो। अगर हमारे लोग बेवकूफ बन कर सहमोज नहीं करत, सब गोलकार नहीं करते तो गाँव के इतने लोग क्या मर जाते? महात्माजी का महात्म्य रोब एय चमत्कारों का कसौटी पर क्या जाता है।

बिहार में बड़ा भूचाल हुआ। और जानमाल का नुकसान कल्पनातीत हुआ। गांधीजी का बिहार, श्रद्धालु बिहार, उसी पर यह आफत क्या आ पड़ी ?

लोग कुछ भी कहें उस के पहले महात्माजी ने घोषणा की कि भारत में अस्पृश्यता का पाप ब्रह्म इसी लिए भूचाल आ गया। लोग गांधीजी का वचन—महात्माजी का वचन श्रद्धा से सुन गये। लेकिन गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर से रहा न गया। उन्होंने स्पष्ट तौर पर गांधीजी के वचन का विरोध किया और लोगों में एक वहम चलाने की गांधीजी की इस कारवाई के प्रति अपना विरोध प्रकट किया।

मैं ने भी गांधीजी के पास अपने डग से शिकायत की। उन्होंने मुझे एक ही सवाल पूछ कर मेरा मुँह बंद कर दिया कि क्या तुम मानते हो कि भगवान् की इस दुनिया में भौतिक जगत अलग है और नैतिक जगत अलग है और दोनों का कुछ परस्पर सम्बन्ध नहीं है ? दुराचार का कुछ भी असर भौतिक जगत पर नहीं हो सकता ?

मैं जानता हूँ कि लोगो के मन में ईर्ष्या, द्वेष बढ़ने से उन के पेट में ग्रन्थ होते हैं और पेट का दद शुरू होता है। मैं जानता हूँ कि जिन के मन में सब के प्रति सदभाव है उन के ऐसे स्वभाव का उन के स्वास्थ्य पर अच्छा असर पड़ता है। लेकिन नैतिक और भौतिक जगत की एकता को मानना अलग चीज है और झट झट अंधे अनुमान निकालना अलग बात है।

जब गांधीजी ने 'भारत छोड़ो' आन्दोलन शुरू किया तब देश में महँगाई बढ़ी, बगाल की ओर असह्य लोग अकाल से मरे। तब कई 'श्रद्धालु' लोग कहने लगे कि अगरेज सरकार का पुण्य क्षीण नहीं हुआ है। इस सरकार का आत्यंतिक विरोध गांधीजी ने किया, इसी लिए यह सारी आफत आ पड़ी है। गांधीजी का आन्दोलन भगवान् की मजूर नहीं है।

अब नयी बात लीजिए। श्री विनोबा भावे काश्मीर पहुँचे और अभूतपूर्व बाढ़ काश्मीर में आयी। खेती का नुकसान हुआ। मवेशियों का नुकसान हुआ। लोग परेशान हो गये। तब किसी ने कहा कि सन्त पुरुष के आते कल्याण होना चाहिए था। उस की जगह यह अकल्याण हुआ। विनोबाजी का आना शुभ नहीं है। लोगो के मन ऐसे अनुमान—कसे भी अनुमान मानने की तयार होते ही है। विनोबाजी का उपदेश लोक-कल्याणकारी है या नहीं इस का बुद्धि से, अनुभव से या हृदय से विचार करने का खयाल लोगो ने छाड़ दिया और वे वहम का शिकार हो गये।

विनोया समय सूचक ह ही । उहोने कहा, 'मैं ही एव बाढ़ हूँ । मेर सामने यह छोटी बाढ़ कुछ नहीं ह ।'

अगर सन्त का नाम लेने से, उस का स्पर्श करने से, उस के आगीर्वाण पाने से भला हो सकता ह, तो सन्त-समागम से अगर बरबानी होती हो तो सन्त के उपदेश की भी कोई कीमत नहीं रहती ।

लोगा में वहम और अबुद्धि फली ह । स्वायवग उन्हें प्रथम नहीं देना चाहिए और उन से मिलते तात्कालिक लाभ के लोभ में नहीं पडना चाहिए ।

हमारा दुःख अभिप्राय ह कि अध्यात्म की बातों के साथ, धम की बातों के साथ चमत्कार और करामात का सम्बन्ध नहीं जोड देना चाहिए । धम में गूढ बातें अवश्य होती ह । हमारे लिए ये नयी बातें नहीं ह । हजारों बरसों का हमारा अनुभव ह । गूढ बातें सामने रख कर लोगा की श्रद्धा बढ़ाने की कोशिश से होने वाले लाभ हानि दोना हमारे आजमाये हुए ह । उस पर से हम कह सकते हैं कि इन चीजों से लाभ कम होता ह, नुकसान ज्यादा । सब सन्तों ने भी कहा ह कि जो चमत्कार के पीछे पडता है वह साधु भी गिरता है और समाज भी ।

(८ सितम्बर १९१६)



प्रकीर्ण

क्या हम अध्यात्मवादी हैं ?

'पश्चिम के लोग जडवादी हैं भारत के लोग अध्यात्मवादी हैं—ऐसा अक्सर कहा जाता है। इस में आप की राय क्या है ?' ऐसा मुझे विदेश में जगह-जगह पर लोग पूछते थे। मैं उन्हें कहता था कि भारत आज तक परतंत्र रहा। आज भारत पेटभर खाने के लिए अन्न नहीं पैदा कर सकता। लेकिन अन्न खानेवाली प्रजा को बढ़ा रहा है। देश में रोग बहुत हैं। उन का परा निवारण नहीं हो रहा। झूठ, खून, चोरी, ज़ारी, दगाबाजी आदि गुनाहों की सख्या और देशों की अपेक्षा भारत में कम नहीं है। भारत में चन्द लोग दूसरे लोगों को दबाकर अपना उल्लू सीधा करते हैं। ज्ञान का प्रचार जितने जोरों से होना चाहिए, उतना नहीं हो रहा है। यह सब देखते हम किस मुँह से कहें कि हम जडवादी नहीं हैं, अध्यात्मवादी हैं ? और देश के लोग जैसे होते हैं, वैसे ही हम भी हैं।

फक इतना ही है कि हमारे देश में चन्द अध्यात्मवादी उच्चकोटि के हो गये। उन की परम्परा अबाधित रही है और सत्तवाणी के नित्य प्रचार के कारण लोगों के कानों तक सदाचार की महत्ता और अध्यात्म की श्रेष्ठता पहुँचती रही है। हम अगर पुरुषाय में कुछ गिथिल हैं तो सत्ताप बन्धि के कायल भी हैं।

इस लिए जब कोई अध्यात्मवीर या तेजस्वी पुरुष त्याग, बलिदान, समय और आत्मगुण्डि की बात करता है तो हमारे लोग उस के प्रभाव में आकर उस की बातें मानने को तयार हो जाते हैं।

अध्यात्म की बातें नित्यपरिचय की होने के कारण उन बातों को समझना हमारे लिए आसान है और जब कोई श्रेष्ठ महात्मा या सन्त हमारे सामने कोई कार्यक्रम बताता है तब हम उस की बातें मानने को तयार हो जाते हैं। स्वभाव की यह अनुबलता हमारे पास है। इस की क्रूर अगर दुनिया करे तो वह ठीक होगा। लेकिन सामान्य चारित्र्य में हम औरो से श्रेष्ठ हैं ऐसा दावा हम हरगिज नहीं कर सकते।

दूसरी एक बात सोचने लायक है। तपस्सा, ध्यान, मन्त्र-साधना और योग

क्या हम अध्यात्मवादी हैं ?

आदि आध्यात्मिक साधना में हमारे कई लोगो ने भले-बुरे अनेक प्रयोग कर देखे हैं। इस क्षेत्र में चन्द लोगों ने सिद्धि पायी, तो चन्द लोगो ने सिद्धि का दावा कर के लोगों को ठगने का घ-घा चलाया। अध्यात्म-साधना हमारे देश में अनेक 'यक्तिया' ने चलायी है। उन की शक्ति का परिचय कभी-कभी मिलता है। उन का उपशम और उपशम से दब होने वाला चारित्र्य दुनिया को चकित कर सकता है। पश्चिम के लोगो के पास अगर किसी चीज का अभाव है तो वह है उपशम का। उन का पुष्पाथ और उन का वासना प्रकोप उन्हें उपशम के पास आने नहीं देता। लेकिन अब वे उपशममूलक चारित्र्य और उपशम मूलक सस्कृति की कदर करने लगे हैं। इस लिए वे भारत की ओर कुछ कुतूहल से, कुछ श्रद्धा से और कुछ लाभ से देखने लगे हैं। इस में चन्द लोगो का भ्रम दूर हुआ है। चन्द लोगो की अनुभवमूलक श्रद्धा बढ़ी है और वे हमारी सस्कृति की हद से ज्यादा तारीफ करते हैं। हम तो उपशम और पुष्पाथ दोनों का समन्वय करना है और वह केवल व्यक्तिगत जीवन में नहीं, किन्तु सामाजिक पैमाने पर और बैधानिक ढंग से। लोगो की स्तुति और अवास्तव श्रद्धा हमारे लिए पोषक नहीं बन सकेगी। हमारी एकाग्रता तो हमें दूर करनी ही चाहिए और लोकनृति के आदर्श में शिथिल नहीं होना चाहिए।

(३० सितम्बर १९५८)

निर्वैर या निर्दोष

हमारे धर्मशास्त्रों में हरेक व्यक्ति के लिए, हरेक वर्ण के लिए और हरेक प्रसंग के लिए सूक्ष्म नियम और नसीहतें हैं। व्यवहार-दृष्टि और धर्म दृष्टि दोनों का उन में ऐक्य दोष पड़ता है। भारतीय समाज शास्त्र के अध्ययन के लिए इन स्मृतिग्रन्थों का मसाला बहुत कीमती है।

लेकिन इन में कभी कभी एक वृत्ति देख कर चित्त को ग्लानि होती है। जगह-जगह पर नसीहतें पायी जाती हैं कि छतरे को ढाल दो, किसी आश्रय का सहारा लो जान बचा लो, चाहे आम-तेज का कुछ भी हो। यह नसीहत ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ और सयासी-यति सभी को दी गयी है। मृगया शील राजा विवाहेच्छु तरुण, तिजारत के हेतु जंगल की यात्रा करने वाला वणिक् सभी को बताया गया है कि जान छतरे में न डालो।

कहा गया है कि ब्रह्मचारी (विद्यार्थी) को पेड़ पर नहीं चढ़ना चाहिए, जलाशय में तरना नहीं चाहिए ।

क्या के पिता को नसीहत देते हुए घमशास्त्र कहता है कि जिस के दिल में बराग्य भरा है ऐसे से लडकी की शादी नहीं करनी चाहिए । यह तो ठीक । लेकिन आगे बढ़ कर कहा गया है कि जो शूर है उसे भी क्या नहीं देनी चाहिए । किसी अवरदस्त ने रास्ते में पकड़ लिया तो झूठ बोल कर बच जाने में कोई हर्जा नहीं है । सफ्ट में फँसने पर कोई धर्मांतर बरे तो भी घमशास्त्र प्रतिकूल नहीं जायेगे ।

गृहस्थाश्रम के भोग विलास के कारण जीवन में जो कमजोरी आ जाती है उसे दूर करने के लिए और व्रतपालन की दृढ़ता बढ़ाने के लिए वानप्रस्थ की योजना है । सत्यास की वह पूव तैयारी है । ऐसे वानप्रस्था को भी स्मृति सलाह देती है कि ये कलिपुग के दिन हैं । जगल में जा कर रहने पर कोई म्लेच्छ राजा तकलीफ देगा । स्वदेशी राजा रक्षण नहीं कर सकेगा । इस लिए अपने गाँव के आसपास के किसी बगाचे को अरण्य मान लेना और वहाँ आराम से रह जाना और अपने रिश्तेदारों से ही भिदा माग लेना ।

अथ सत्यास घम ले लें ।

सत्यासी तो निभयता की मूर्ति । घम प्रचार के लिए उसे निभय हो कर सब जगह पहुँचना चाहिए । अमेरिकन राष्ट्रसेवक टॉमस पेन ने कहा था । 'My home is where Liberty is not' जहाँ आजादी नहीं है वही मेरा स्वदेश है । यानी उसे स्वतंत्र करने के लिए मर मिटना ही मेरा स्वधर्म है ।" सत्यासी में ऐसी वृत्ति होनी चाहिए । सत्यासी याने पाप, अनाचार प्रजापीडन, आलस्य अनास्था इत्यादि मानवशत्रु के खिलाफ प्राणों की परवा किये बिना लड़ने वाला मोझा । ऐसों को स्मृति कहती है—“जिस प्रदेश के लोग नास्तिक हैं, उद्दण्ड हैं जहाँ भिशा मिलना मुश्किल हो गया है, ऐसे प्रदेश में नहीं रहना चाहिए वहाँ जाना भी नहीं चाहिए । जहाँ लड़ाई चलती हो, हत्याकाण्ड चलता हो अकाल पड़ा हो, वहाँ सत्यासी को नहीं जाना चाहिए ।”

क्या इस तरह का देहरखा घम सिखाने के लिए घमशास्त्र की जरूरत है ?

शांति के दिनों में राजा लोग मृगया करते थे । उस का असली हेतु था लोगों की खेती और उन के मवेत्तिया का रक्षण करना । इस बारे में भी घमशास्त्र का विवेक कहता है कि अगर गिकार के लिए जाना है तो जहाँ रथ उलट न जाय ऐसी समान भूमि देख कर या बनवा कर वहाँ मधुर मृगया व्यायाम करना चाहिए । राजा को अगर पुत्र स तति नहीं है तो उसे लडने नहीं जाना

चाहिए। ऐसी फेहरिस्त वहाँ तक बढ़ायें? अपनी जान खतरे में डालने के परम धर्म का हम तरह लोप ही हो गया। निर्भय निर्वैरता का आदर्श टूट गया और निर्वायता आयी।

(जनवरी १९६०)

सारी बुनिया कब्रस्तान न बन जाय

जब अंगरेज यहाँ से अपना राज छोड़ कर गये तब शुरू से हर बात को सोच कर, वे व्यवस्थित रूप से ठीक कर गये। मसलन सरकारी दफ्तरों में गुप्त पत्रव्यवहार था उसे या तो उन्होंने नष्ट किया या उस अपने साथ ले गये। जो लोग पीछे रहे उन को भी बात उन्होंने सोच ली। जिन को पेशान आदि मिलती थी उन का भी प्रबंध किया। रेलवे चलाने वाले यूरोपियन कम्पनियों ने अपने हित का प्रबंध किया। बड़ी-बड़ी व्यापारी कम्पनियों ने अपनी दुकानें बँच डाली। कहीं भी मक़बरा नहीं होने दिया।

यहाँ तक कि जाने समय उन्होंने अपने लोगों के कब्रस्तान की बात भी सोची। और उसे सोचते तनिक भी कठमल्लापन प्रदर्शित नहीं किया। उन्होंने अपने कब्रस्तानों को फेहरिस्त बनायो। उन में से जो जो हिफाजत के लायक थे उन की रक्षा के लिए अपनी ओर से प्रबंध किया और जिन की हिफाजत वे नहीं कर सकते थे या उन को उचरी नहीं लगी उन के लिए उन्होंने तय किया कि उन को फिर से खुदरात का रूप लेने दिया जाये—*They should be allowed to revert to nature*—यानी वहाँ के पत्थर हटाये जायें अथवा कोई उठा कर ले जाय ता उस का परवा न की जाये। कब्रस्तान की जगह एक दफ़ छोड़ दो फिर उस का कुछ भी हो। उस में हल धरा कर कोई खेती कर काई वहाँ पर मकान बना दे कुछ भी करे।

हम लाग भा ऐसा ही करत हैं लेकिन बिचारपूर्वक नहीं। मात्र अताम्या से सब कुछ हाने देते हैं। काई समय-युम कर करने जाये ता उस का घोर विरोध करने हैं। या दया जाय तो दिल्ली के इन्विड राजधानिया का ही एक बड़ा कब्रस्तान है। जहाँ स्वर्दे कब्रस्तान की इटें पायी जाती है। बनारस में ही नहीं बनक जगह पर शान्ति-मोदते मंदिर पाये जाते हैं। वहाँ के पास पवनार में भी ऐसा हुआ है। मैं एक ऐसा जगह जानता हूँ कि जहाँ के हिन्दू मंदिर

गिर गये थे। वह जगह मुसलमानों ने खरीद ली। मन्दिर के पत्थर हटाकर वहाँ पर उन्होंने एक मदरसा बनाया। आसपास के सब लोग जानते थे कि यहाँ मन्दिर था। जिस के गिर जाने के बाद मुसलमानों ने यह जगह खरीद ली है और मन्दिर की जगह एक मदरसा शुरू किया है। यह भी नहीं कि वहाँ मुसलमानों का राज था और हिन्दू दबे हुए थे। वहाँ एक हिन्दू राजा का ही राज था। ऐसे स्थान पर किसी के दिल में आ जाये तो हिन्दू-मुस्लिम झगड़ा पैदा करना कोई कठिन बात नहीं है। कई मुस्लिम क़र्रस्तान ऐसे हैं कि जो अनास्था से धीरे-धीरे टूट जाते हैं। लोग उस की इट्टे फँक दते हैं। दस-बीस बरस के अन्दर उन का नामोनिशा भी नहीं रहता है। लेकिन अगर कोई सोचे कि उस क़र्रस्तान की हिफ़ाज़त तो नहीं हो रही है, कोई इस का मालिक नहीं है, नाहक़ ज़मीन रूकी हुई है, और उन पत्थरों को हटा दे तो तुरन्त झगड़ा शुरू हो जायेगा और शायद दो चार खून भी हो जायेंगे। ऐसा झगड़ा होने के बाद चर्चा किया जायेगा, उस क़र्रस्तान की मरम्मत होगी और वह पीर की जगह कहलायेगी।

मैंने सुना है कि गोवा में जब रोमन कैथलिक पादरियों का जोर था तब कई दुराचारी ईसाई लोग हिन्दुओं पर सितम बाते थे और अगर हिन्दुओं ने, तग आ कर उस दुराचारी को मार डाला तो तुरन्त कैथलिक पादरी उस आदमी को धर्मात्मा—शहीद बना कर उस के मृत्यु की जगह एक क्रॉस खड़ा कर दते थे और उस आदमी का नाम को सन्तमास्त्रिका में जोड़ दते थे।

कुछ भी हो अब हमें इस बात को सोचना चाहिए कि मरे हुए लोगों के नाम कितनी जगह रोक़ी जाये? एक तरीका यही है कि सब क़र्रस्तान, स्मशान भूमि पर टक्स लगाया जाये। अगर टक्स देने वाला कोई समाज या व्यक्ति न मिले और सरकार को भी वह चीज़ महत्त्व की न लगे तो उस स्थान को तुरन्त प्राकृतिक रूप में परिवर्तित किया जाना चाहिए। लावारिस जगह का बाज़ा समाज पर नाहक़ का नहीं रहने देना चाहिए।

यह विचार नया है मूलगामा है। नया है इसीलिए चर्चा लोगों को विचित्र सा लगेगा। इस का अमल होने पर लोगों को अच्छा लगेगा और फिर लोग आश्चर्य करने लगेंगे कि ऐसी चीज़ हमें इस से पहले क्यों न सूना।

(दिसम्बर १९१०)

प्रश्न—श्राद्ध के बारे में आप के क्या विचार हैं ? कहते हैं कि बड़ी धाम में ब्रह्म-कपाल शिला पर एक बार श्राद्ध करने से सब पितरों को मुक्ति मिलती है और दुबारा श्राद्ध करने की आवश्यकता नहीं रहती । आप को 'हिमालय की यात्रा' में भी इस बात का जिक्र है । कुछ लोग वहाँ श्राद्ध करने के बाद भी श्राद्ध करने में मानते हैं । आप का अभिप्राय हम जानना चाहते हैं ।

उत्तर—मैंने चार धामों की यात्रा की थी, उसे अब चालीस पनालीस साल हो गये । उस समय बड़ीमाहात्म्य वगैरा बहुत सारे ग्रन्थ इकट्ठा कर के पढ़े गये थे । गया माहात्म्य भी पढ़ा था । अब वह सब याद नहीं है । आयु भी पचहत्तर साल हो गयी है ।

इस के अलावा मुख्य बात यह है कि सनातन धर्म पर तात्त्विक थोड़ा निष्ठा कायम होत हुए भी उस धर्म की मेरी मायताओं में काफी परिवर्तन हुआ गया है । श्राद्ध के रूढ़ प्रकार मुझे माय नहीं हैं । कौए की (जिन्हे या दम के) खोज से पिण्ड पर प्रहार करवाना आदि प्रकार अब मुझे बालिग मालूम हात हैं । शास्त्रधर्म के साथ उन का सम्बन्ध नहीं है । अनाथों के कई गिवाज आयों ने ले लिये, और लोक समुदाय को 'धार्मिक' मायताओं को सनातन धर्म में म्यान दिया । उस समय यह सब ठीक ही हुआ । अब धार्मिक रिवाजों का सुदृढीकरण होना चाहिए । नियमित रूप से धर्म का अध्ययन करते रहना, धर्म को जागृत रखने वालों की सहायता करना, पूजकों की सदाचार की परम्परा को कायम रखना और मनुष्य के आश्रय से रहने वाले पशु-पक्षियों का जीवन निभय और सुखी बनाने के लिए प्रयत्नशील रहना, इसी को मैं स्वर्गीय पितरों का श्राद्ध कहता हूँ ।

ब्रह्म-कपाल पर जा कर श्राद्ध करने के लिए मैं नये लोगों को सिफारिश नहीं करता ।

पुरानी निष्ठा के लोगों से मैं कहूँगा कि अगर बड़ीनारायण में ब्रह्म-कपाल पर आप न श्राद्ध किया है, तो अब स्वर्गीय पितरों के नाम से मन्त्रों या दंड श्राद्ध न करें । पूजना के बारे में आदर और स्मरण कायम रखने के हेतु हरि

जन आदि पिछड़ी जातियों के कल्याण के लिए कुछ सत्कृत्य करें और दानधर्म भी करें।

मैंने अपने आस-पास के लोगों से कह रखा है कि मेरे पश्चात् मेरा श्राद्ध करने का वृथा धर्म कोई भी न करे। मैं उस की आवश्यकता महसूस नहीं करता। मैं यह भी नहीं चाहता कि मेरे बाद मेरी स्मृति कायम रहे। मेरे हाथा अगर कुछ सत्कृत्य हुए हों, तो वे सत्कृत्य और उन के सुपरिणाम कायम रहें। लेकिन उन के साथ का मेरा सम्बन्ध टूट जाय और नष्ट हो जाय।

अपना व्यक्तित्व समाज की स्मृति में कायम रहे, इस प्रकार की लक्ष्यपणा और पुनर्पणा मोक्ष के आदर्श के लिए बाधक है।

(२६ सितम्बर १९५६)

पुनर्जन्म प्रचार के भयस्थान

सनातन धर्म के नाम से हड्डियों की उपासना करने वाले लोगों की जड़ता भयावह होती है। अभी-अभी मुझे उस का शिकार बनना पड़ा है।

किसी ने बात फलायी कि 'काकासाहेब पुनर्जन्म पर विश्वास नहीं करते। मेरे धार्मिक विचार जिन को मालूम है वे आश्चर्यचकित हो कर मुझ से पूछने लगे, 'क्या बात सच है, काकासाहेब, कि आप पुनर्जन्म पर विश्वास नहीं करते? हम ने तो कभी आप के मुँह से ऐसा नहीं सुना। अगर ऐसी कोई बात हाती तो जरूर आप हमें कहते। और हम आप से चर्चा भी करते।'

मैं ने कहा, आप से चर्चा तो जरूर करनी है लेकिन पहले ही साफ़ कह दूँ कि पुनर्जन्म और पुनर्जन्म पर मेरा पूरा विश्वास है। मोक्ष मिलने पर पुनर्जन्म के शकट से हम मुक्त होते हैं यह सही है, लेकिन सत्त मत को स्वीकार कर के मैं भगवान् से प्रार्थना करता हूँ कि अगर हर जन्म में सत्तसग मिलने वाला ही तो है भगवान् हमें आप खुशी से गमवास में डाल सकते हों "तुका म्हणे गमवासी सुखें घागवें आम्हासी"। महायान बौद्ध पंथ वालों के साथ मैं भी कहता हूँ, अकेले अकेले भाक्ष पाने में कौन सा मजा है? मुक्त हुए तो सब को साथ ले कर ही मुक्त क्यों न हो जायें? अगर नित्य-मुक्त भगवान् नीचे उतर कर अवतार ले सकते हैं तो मेरी सनातन आत्मा भगवान् का काय करने के लिए और मुक्त जीवन का आनन्द लेने के लिए, बार-बार जन्म लेते सकोच क्या करगो!

‘अब आप दख सकेंगे कि पुनजम पर मेरा विश्वास ह इतना ही नहीं, किंतु अपुनभव, मोक्ष का मैं इतना लालची नहीं हूँ कि पुनजम के प्रति मेरे मन में अरुचि हो।

‘गीता के साथ और बौद्धों के साथ मैं भी मानता हूँ कि यह लोक अनित्य और अमुख यानी दुःखमय ह। (गीता ९ ३३) लेकिन विश्वसेवा करते जो भी दुःख भुगतना पड़े, नित्य और आनंदमय भगवान् की भक्ति के जोरों उसे बरदाश्त करते आनंद ही आयेगा। बार बार जन्म लेना पड़े इस का डर हम ने कभी मन में रखा ही नहीं। जन्म लिये बिना ही अगर सारे विश्व के साथ एकता का अनुभव होता हो और विश्व की सेवा भी होती हा तो बात अलग ह। केवल इन्द्रिय मुग्ध के लिए और उस के साथ जो जलन भी आती ह उस के स्वाद के लिए जन्म लेने की इच्छा नहीं ह।’

मुख्य बात इस तरह बिलकुल साफ करने के बाद अब कहूंगा कि पुनजम की बात दिन रात करने वाला के साथ मेरा थगडा कहां ह।

मेरी भूमिका के अनुसार इस सृष्टि में, विश्व चतय ने अपने आनंद के लिए अथवा लीला के लिए जीव का रूप धारण किया ह और विविध रूप से जीवन का विस्तार कर के विश्वात्मक्य की साधना के लिए गुजाइश पैदा की ह। इसे मैं भगवान् की गलती अथवा उन का प्रमाद नहीं मानता। उन की ऐसी लीला का एक अंश बनना अथवा साथी बनना यही मेरा काम ह।

जीवन की हस्ती, उस का विश्वास और उस का आदर दिखाई देने वाला काय-धारण का सावभौम नियम समझने के लिए केवल ब्रह्मपरम्परा का काय पर्याप्त नहीं ह। अपने जन्म के साथ मैं ने अपने माँ बाप से असह्य सस्कार प्राप्त किये। और हम सब लोग अपने समाज से असह्य सस्कार प्राप्त करते हैं, इस में कोई शक नहीं ह। लेकिन इतने स जीवन के सब सवाल हल नहीं होते। इस लिए और हर एक व्यक्ति की विशेषता समझने के लिए पुनजम को माने बिना चारा ही नहीं। मनुष्य पशु-पक्षी, कृमि कीट, जलचर खेचर सब प्राणियों में और वनस्पति और कीटाणुओं में जा एकर है उस का अनुभव करने के लिए और रहस्य पान के लिए ब्रह्मपरम्परा का सिद्धांत और विश्वासवाद का सिद्धांत भी पर्याप्त नहीं है। इस लिए पुनजम का माने बिना दूसर किसी भी प्रकार से विश्व-व्यवस्था का समझन नहीं हो सकता।

त्रिन लोका को आत्मा के अनुभव का अस्वीकार करना ह, उन को शायद भौतिक विश्वासवाद और ब्रह्मपरम्परा के सम्बन्ध से सन्तोष होता होगा। आत्मा

को बीच में लाये बिना जीवन व्यवस्था को समझाने वाले बौद्धों को भी केवल 'संस्कार-समुच्चया का पुनजन्म' मानना पड़ता है ।

हम तो आत्मा के और पुनजन्म के अस्तित्व के लिए प्रमाण ढूँढना ही अनावश्यक मानते हैं । किसी-न किसी रूप में आत्मा का अनुभव हर एक को होता ही है । और मृत्यु का निरपवाद अनुभव होते हुए भी हमारी नित्यता का अनुभव (कोई इसे भले ही भ्रम कहे) हम छोड़ नहीं सकते । और हम मान नहीं सकते कि एक ही जीवन के अनुभव में जन्मग्रहण का हेतु पूर्णतया सफल होता है । जन्म लेने का प्रयोजन गहरा है और जन्मांतरों का अनुभव माँग लेता है ।

तब सनातनधर्मी हृद्धिवादी लोगों के साथ हमारी कहाँ नहीं बनती ? इस का जवाब अवश्य देना चाहिए ।

जीवन में काय-कारण का सम्बन्ध हमेशा ढूँढना पड़ता है । भौतिक विज्ञान, मानसविज्ञान और समाजविज्ञान की सब गात्ताएँ हर एक घटना का कारण पूरी गहराई से ढूँढने लगीं तब से समस्त विज्ञान न अद्भुत प्रगति की है । 'अकाट्य प्रमाण और सतोपकारक सबूत मिले बिना किसी भी चीज को हम स्वीकार नहीं करेंगे' ऐसी प्रतिज्ञा कर के विज्ञानवादी प्रयागवीर शोध करने लगे इस लिए ज्ञान के क्षेत्र में इतनी प्रगति हुई । अब हमारे हृद्धिवादी सनातन धर्मी जब लोग खोज करने की ओर प्रमाण ढूँढने की तकलीफ न उठाते हुए हर एक बात में पुनजन्म का बीच में ले आते हैं । फलान् आदमी के स्वभाव में फला विचित्रता कैसे आयी ऐसा सवाल उठते ही पट कह दिया, 'अजी वह तो पुनजन्म के संस्कार की बात है' । इतना कह दिया और छुट्टी पायी । इस में केवल बौद्धिक आलस्य है, पुरुषार्थ का अभाव है । ऐसी जड़ता को हम आस्तिकता का नाम देने को तयार नहीं हैं । हम कहते हैं कि "आज की इस दुनिया के और इस जीवन के सब तत्वों की हम छान बीन करें और हर एक घटना का छिपा हुआ कारण ढूँढ निकालें । खोज करने के पुरुषार्थ के मामले कोई भी चीज दीर्घकाल तक गूढ़ और अज्ञात रह नहीं सकती । कम-से-कम पुरो-पुरी छान बीन किये बिना हमें सतोप नहीं होगा । ऐसा पुरुषार्थ करने के बाद ही पुनजन्म के क्षेत्र में प्रवेश करें ।"

(हर एक अधिकारी को विशेष अधिकार दिये होते हैं जो सक्क के समय अथवा असाधारण परिस्थिति में काम में लाने के हाते हैं । कमचारी अधिकारों की योग्यता इस पर नापी जाती है कि हाथ में विशेष अधिकार हाते हुए भी जहाँ तक हो सके वह उन का प्रयोग नहीं करेगा । अगर वह अधिकारी मान

बड़ेगा कि मैं दिमाग क्यों चलाऊँ, विशेष अधिकार मेरे पास है ही और वे हैं तो काम में लाने के लिए ही, उन का कदम-कदम पर प्रयोग क्यों तो मेरा सारा काम आसान होगा, तो दुनिया जानती है कि ऐसे नालायक अधिकारी को अपना स्थान ही खोना पड़ता है। यही हालत है हर बात में पुनर्जन्म को बीच में लाने वाले की।)

बौद्धिक आलस्य की मदद में लिये जाने वाले 'सच्चे सिद्धान्त' का हम विरोध नहीं करते किन्तु उस के दुरुपयोग की निन्दा जरूर करेंगे।

जीवन-व्यवस्था को समझाने के लिए कदम-कदम पर पुनर्जन्म की दुहाई देने वाले लोग ने समाज की जड़ता बढ़ायी है। उन्होंने न विज्ञान में प्रगति की है, न जीवन में कोई सुधार। इस लिए पुनर्जन्म का आश्रय लेने वाले लोग की जड़ता का मैं पूरा विरोध करता आया हूँ।

दूसरा एक भयस्थान इस से भी बुरा है। पुनर्जन्म को मानना एक बात है और पुनर्जन्म की बातें जानने का दावा करना दूसरी बात। काय कारणभाव को और धर्म के अटल सिद्धांतों को समझाने के लिए हमारे पुराणों में अनन्त लोक कथाएँ और काव्यमय प्रसंग रजू किये हैं। उन में मनुष्य जाति का अनुभव, लोग के बहम और कवियों की कल्पना सब की खिचड़ी की जाती है। उन सब कथाओं को अशरश सत्य मानना धार्मिकता का लक्षण नहीं किन्तु जड़ता का और मूर्खता का लक्षण है। पुराने पानी लोग समझते थे कि कई कथाएँ सत्य नहीं किन्तु अथवादी वाली होती हैं। भोले लोग ही सब बातों को सच मानते हैं, और धसा नहीं मानने वालों को नास्तिक कहते हैं। कई लोग तो, नास्तिकता के झुलझाम से बचने के लिए, कई पौराणिक बातों पर विश्वास न होते हुए भी विश्वास हाने का स्वाग या दिखावा करते हैं। ऐसे लोगों के द्वारा पुनर्जन्म को बीच में ला कर तरह-तरह के अत्याय और अनाचार का समयन किया जाता है।

इस का सब से बड़ा और भयानक उदाहरण है अस्पृश्यता का। हरिजनो के प्रति हम लोग ने पुस्त-दर-पुस्त अत्याय किया, उन को दबा कर रखा और इस सारे अधम और पाप का समयन करने के लिए मनाननियों ने बात चलायी कि 'आप लोगों ने पुनर्जन्म में महापाप किये थे इस लिए आप को अछूत जाति में जन्म मिला है। इस जन्म में नम्रता के साथ उच्च वर्णियों की श्रद्धा से सेवा कीजिए। सारे अत्यायों को पाप का प्रायश्चित्त ममज्ञ कर सहन करेंगे तो ऐसे सात जन्मों के बाद आप का सबल जाति में जन्म मिलेगा।'

ब्रह्मदेव के दरबार के ये कारभारी और व्यवस्थापक हरएक के पुनर्जन्म की

बात बराबर जानते हैं और निश्चयपूर्वक समझते भी हैं ! ! (जब दबे हुए लोग जाग्रत हो कर चिड़ जायेंगे और इन सनातनी धमनेताओं की क्रूरता का बदला लेंगे तब इन सनातनियों को पता चलेगा कि अपने पूज्यम के महापापा का ही यह फल उन्हें भुगतना पड़ रहा है ।)

भयस्थान का तीसरा नभूना पेश करते सकोच होता है किंतु दिये बिना चारा नहीं । धम के ये ठेकेदार लोग 'शास्त्रों की' बातें सुना कर समाज में गुरु का स्थान लेते हैं, दक्षिणा पाते हैं और शिष्यों के जीवनक्रम में काफ़ी दिल चस्पी भी लेते हैं । अब एक ऐसे धमगुरु के एक धनी शिष्य थे । एक दिन गुरु महाराज ने पास जा कर कहने लगे, "आज तक मेरा गृहस्थी जीवन अच्छी तरह से चल रहा है, लेकिन मेरे पड़ोस में एक खानदान आ कर रहा है । वहाँ की एक विवाहित स्त्री के प्रति मेरे मन में आकर्षण पैदा हुआ है । मुझे डर है कि यह आकर्षण उस पर भी है । मैं आप का शिष्य हूँ आप के दिये मात्र का नियमित जाप करता हूँ, तो भी ऐसा नाजायज धम-बाह्य आकर्षण, हम लोगों में क्यों पैदा हुआ ? आप त्रिकालज हैं, मेरे गुरु हैं, तो ऐसी वापवासी का कारण क्या है बताइए । आप के मात्र का जाप मुझे बचाने में असमर्थ क्यों हुआ ?"

त्रिकालज गुरु ने कहा, "मुझे इस में आश्चर्य नहीं होता । पूज्यम में आप दोनो पति पत्नी थे । उस समय के प्राक्कन का यह अवशेष है । इस लिए तो वे लोग आप के पड़ोस में आ कर रहे हैं । आप मात्र का जाप तो करते ही हैं । अब नवग्रह के दान दीजिए । सब ठीक हो जायेगा ।"

शिष्य को अपनी कमजोरी का समयन मिल गया । ईश्वर की कितनी कृपा है कि पूज्यम की बातें मनुष्य भूल जाता है । इस ज म के सम्बन्ध में भालना जहाँ दूबर है वहाँ पूज्यम की बात ला कर जीवन जटिल कहीं करने जायें ? गुरु महाराज तो पड़ोस के आदमी के पास जा कर कहेंगे कि, "तुम्हारी पत्नी पूज्यम में तुम्हारी बहन थी । इस लिए उस के साथ वैसा ही व्यवहार करो । अथवा जीवन मलिन होगा ।" अब गुरु महाराज को उन बेचारों के पूज्यम का यह ज्ञान प्राप्त हुआ उस के पहले जो बच्चे हुए होंगे उन की व्यवस्था क्या होगी ?

पूज्यम, पुनजम और जमांतर का सिद्धांत तकयुक्त है । कोई कहेगा कि अनुभवसिद्ध भी है लेकिन अगर इम के द्वारा सामाजिक अत्याय का और व्यक्तिगत कमजोरी का और दुराचार का समयन ही हो तो उस सिद्धांत की मर्यादा बांधनी पड़ेगी, नहीं तो धम के नाम अधम फलेगा और सबत्र अनवस्था

खड़ी होगी। हमारे देश में सतों की शृपा से इतनी घामिकता फली हुई थी तो भी समाज में प्राणहीन जड़ता, लज्जास्पद बुद्धूपन और सावमीय दम्भ क्यों हैं इस का कारण भी ढेंदना होगा। गीता ने कहा है—अधम को ही मानने वाली तमोगुणी जड़बुद्धि उत्तमोत्तम सिद्धांत का भी विपरीत उपयोग करती है।
(गीता १८ ३२)

(१ नवम्बर १९६६)

पाप-पुण्य पीडित

पाँच सात वष के एक स्नेही इन दिनों कमोवेश बीमार रहते हैं। मेरे स्वास्थ्य के बारे में उन्होंने हम दोनों के एक समान मित्र को पूछा होगा। मैं उस वक़्त बिहार में समवेय पब के बारे में अनेक लोगो से प्राथमिक चर्चा करने घूम रहा था। मेरी प्रवृत्तिशीलता से उन्हें सतोप हुआ और अपनी बीमारी के बारे में मदद। उन्होंने हमारे समान मित्र से पूछा—“अस्सी वष के काका साहब इतना काम कर रहे हैं और मैं विस्तर ले कर बैठा हूँ। मेरा पूवजन्म का कौन सा पाप होगा कि मैं इस तरह पगु बन कर दूसरो की सेवा ले रहा हूँ जब कि काका साहब सबत्र घूम कर प्रचार करते रहते हैं ?”

मैं भी कई बार बीमार पडा हूँ। और मुझे भी अपनी अकमप्य दशा को सोच कर ग्लानि हुई है। इस में कोई नयी बात नहीं है।

लेकिन हर दुःख के साथ किसी न किसी पाप को जोड देन की अपने लोगो की प्रवृत्ति में समझ नहीं सकता। हर दुःखद स्थिति के पीछे कुछ पाप ही होगा यह अनुमान गलत है। और अगर हम मानते हैं कि हर दुःख किसी पाप का ही फल है तो कौन से पाप का क्या फल होता है वह ढढना हमारा वैज्ञानिक कर्तव्य होता है। इस पाप का यही फल है, इतना निश्चित रूप से कह सकने का स्थिति हमारी होनी चाहिए। जो लोग काय-कारण का सम्बन्ध अटल मानते हैं उन का प्रधान कर्तव्य है कि बानानिक ढग से तलाश और सशोधन करते जायें और उस का मतीजा दुनिया के सामने धर दें। फलतः दुःख का कारण कोई अनात पाप ही होगा ऐसे कहने वाले लोगो के प्रति मन में आदर उत्पन्न नहीं होता। ये लोग बानानिक वृत्ति के नहीं किन्तु दबवाग्ने होते हैं। ‘गायद होगा’ वाली भाषा बानानवादी आदमी नहीं बोलेंगा। शायद होगा ता ढूँढा क्या

नहीं ? बौद्धिक आलस्य दाम्य वैसे किया जायेगा ?

यह हुई इस जन्म की बात । लेकिन हमारे लोग इस जन्म को छोड़ कर आसानी से पूर्व-जन्म की ओर दौड़ते हैं । इस जन्म में हम ने क्या-क्या पाप किया सो ज्यादातर हम जानते ही हैं । अज्ञात पाप पाप गिने जायें, ता भी क्षम्य होते हैं ।

कई लोग महान् दुःख सिर पर आ पड़ने पर कहते हैं, “इस जन्म में तो हम ने ऐसा कोई पाप नहीं किया है, जिस के कारण हम पर इतना बड़ा सकट आ पड़ा । इसलिए कहना पड़ता है कि पूर्वजन्म का ही कोई पाप होगा ।” इन की दलील हम समझ सकते हैं, लेकिन “दुःख और सकट का कारण पाप ही हो सकता है ।” यह सिद्धांत ध्यान में नहीं बठता । इस में कुछ अति-व्याप्ति है ।

इसी ओर ध्यान खींचने के लिए यह लेख लिखवा रहा हूँ ।

पाप की व्याख्या क्या है ? हर एक गलती को, अनवधानता का और अकलत को अगर हम पाप कहते जायें तो वैसा करने का हमें अधिकार है । गणित नहीं जानने से अगर मैं ने कोई गलती की तो वह भी पाप होगा । अगर कलम बनाते चाकू से मैं ने अपनी अँगुली काटी तो वह भी पाप होगा । लेकिन पाप शब्द का प्रयोग इतना व्यापक नहीं है ।

मनुष्य जिस जगत में रहता है उस के उस ने अनेक विभाग किये हैं । एक है भौतिक-जगत दूसरा है बौद्धिक-जगत और तीसरा है भावनात्मक जगत । अगर हम बीमार हो कर विस्तर-वश हो जाते हैं, तो उस का कोई भौतिक कारण हो सकता है, जिस का पाप पुण्य के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है । अगर किसी के घर पर मैं ने भोजन किया, उस की गलती से भोजन में कोई विपाक पदाथ आया और मैं बीमार पड़ा तो यह केवल एक दुःघटना है । इस के लिए इस जन्म का या पूर्व-जन्म का पाप ढूँढने की आवश्यकता नहीं है ।

मैं जानता हूँ और मानता हूँ कि भौतिक जगत और नैतिक एक दूसरे से अलग अलिप्त, अस्पष्ट या असम्बन्धित नहीं हैं । दोनों परस्पर ओतप्रोत हैं । लेकिन पाप का सम्बन्ध मनुष्य के जीवन से है और उस में भी धार्मिक और आध्यात्मिक दृष्टि से ही पाप की कल्पना की जा सकती है ।

इस पृथ्वी पर मनुष्य-जाति का जन्म ही नहीं हुआ था ऐसे समय पर अगर कोई ज्वालामुखी का स्फोट हो कर उस में से अग्निरस (लावा) बहने लगा और उस के कारण कोई जगल और उस में रहने वाले जानवर और नखदोक के सरोवर में रहने वाली मछलियाँ मर गयीं तो यह सारी प्राकृतिक दुःघटना

किस के पाप का फल गिना जायगा ? (म जानना है कि हमारे पौराणिक, पूव कल्प के मनुष्य, देव, पिशाच, गंधव आदि के पापा का यह फल था, ऐसा कहने को तयार होंगे । पौराणिक हमेशा सबत नस्वतत्र होते हैं ।) जहाँ भौतिक कारण स्पष्ट ह, वहाँ नैतिक कारण ढढने की आवश्यकता नही होनी चाहिए, ता भी अगर नैतिक कारण की शका हुई तो काय कारण सम्बध स्पष्ट दिखाने की जिम्मेदारी हमारी होती ह ।

मनुष्य गलती या अपराध हमेशा करता है और उस के फल भोगता ह । लकिन हर समय वह पाप या नैतिक गुनाह नही होता । भौतिक जगत के अपने नियम होते ह । गणित, गनि विज्ञान, पदार्थ विज्ञान, रसायन, खगोल विद्या आदि विद्याओ के द्वारा हम भौतिक जगत के स्थूल नियम समझ कर लाभ उठा सकते ह । जहाँ इन नियमो का ज्ञान हमे नही होता, हमें कठिनाइया उठानी पडती ह । हवामान के नियम जो नही जानते उन का स्वास्थ्य अथवा दूसरा काम बिगड गया तो उस में हमारी जिम्मेदारी हो सकती ह, गफलत के लिए हमें सजा भी मिलती ह । लेकिन इम म हम पाप की बातें नही लाते ।

भौतिक और बौद्धिक जगत के साथ हमारा भावनात्मक जगत भी ओतप्रोत अथवा अनुस्यूत है । उस का स्वतत्र विचार होना चाहिए । हर चीज को पाप और पुण्य के ढांचे में ढाल देना बौद्धिक आलस्य ह और नैतिक उत्तरदायित्व का इनकार ह ।

पाप पुण्य का विचार धम शास्त्र करता ह, सदाचार और दुराचार का विचार नीतिशास्त्र करेगा । शील के विचार में पूवजन्म का पाप वहाँ से आया ? स्वास्थ्य और आरोग्य के भी सूत्र और जटिल नियम ह । उन के बारे म बहुत कुछ अनान रहता ह । यह अनान दुर्दैव ह गफलत ह कभी-कभी ऐसा अनान अक्षम्य भी होता ह । लेकिन उस म पाप की भावना ला कर खडी करना जरूरी नही ह ।

बौद्धिक जगत का भी वसा ही है । अगर हमारी अवधान समझ शक्ति, तब शक्ति शुद्ध अनुमान निकालने की शक्ति तेज न रही तो हम असह्य गलतिया करते हैं और उन के तरह-तरह के फल हमें और औरो की भुगतने ही पडते हैं । इस में दुर्दैव हा सकता ह । सामाजिक शिष्टाचार ने क्रिया तभी तो शिष्ट और अशिष्ट, श्लील और अश्लील के भेद पैदा हुए । गुनाह और कानून का पान्न ह ता नीतिशास्त्र का विषय, लेकिन हो गया ह राजशासन का खास विषय । आरोग्य ओर अनारोग्य के भेद के लिए आरोग्यशास्त्र को पूछना होगा और धरक और आहार मोमासा की मदद लेनी पडगी ।

कोई चीज कानूनन आपत्तिजनक न होगी लेकिन सिष्टाचार को असह्य होगी ।

भावनात्मक जगत में नीति अनीति का भेद जिस तरह प्रधान है, सिष्टाचार का भी जिस तरह उस में प्राधाय है, उसी तरह कलात्मकता और विथी अथवा विकलात्मकता भी एक तरह से भावना का ही क्षेत्र है । इस में रसहानि एक तरह गुनाह होता है । अनौचित्य असह्य बनता है । कलाक्षेत्र के अपने कानून भी होने हैं । अप्रसन्नता और नाराजी से ले कर अमहयोग तक सजाए भी होती है, जिस के खिलाफ़ कोई अपील भी नहीं हो सकती । और ता भी उस क्षेत्र में पाप की बात नहीं आती ।

सधप और समन्वय, युद्ध और शांति, समझौता और बटुता ऐसे अनेक द्वन्द्व खड़े होते हैं । सामंजस्य और विषमता का अनुभव तो बदम-बदम पर होता है ।

पाप-पुण्य की ही बात दिन रात सोचने वाले लोगों को क्या कहें ? पाप-पुण्य-पीडित लोग जीवन के सब के सब क्षेत्रों में पाप और पुण्य की ही बात चला कर जीवन के आवलन को ही विकृत और भ्रष्ट कर देते हैं । ऐसे को हम कहेंगे कि किसी चीज का विकृत करना महापाप है । क्योंकि उस में जीवन-द्रोह है । जीवन है उन्नति के लिए, उद्धार के लिए, स्रष्टृति के लिए, समन्वय द्वारा जीवन सिद्धि के लिए । इस में केवल पाप-पुण्य की बात न ला कर ऊपर जिन जिन द्वन्द्वों का संकेत किया है, उन को सब दृष्टि से सोचना होगा । सभी हम सत्यार्थी, सत्यगोचक और सत्यसाधक बनेंगे और सत्यनारायण के अनुग्रह के अधिकारी बनेंगे ।

(१५ अक्टूबर १९६५)

यज्ञ धर्म का उत्तम रूप

केवल हवा को शुद्धि का ही सवाल होता तो हम फिनाइल के पानो का छिड़काव कर के घर को और इद गिद की हवा को शुद्ध करते । डामर या कोल्टार जला कर भी हवा शुद्ध की जाती है । आजकल कपडों की रक्षा के लिए डामर की सफ़ेद गालियाँ (नाफटा फिल्म) का प्रयोग होता है । गौशाला में गायों को मच्छरों के आतक से बचाने के लिए कड़वे नीम के पत्ते जलाये जाते हैं, जिस से हवा भी शुद्ध होती है और मच्छर भी भाग जाते हैं ।

यज्ञ धर्म का उत्तम रूप

बुद्धि के अभाव में कपूर और धूप जलाने का रिवाज तो है ही। और वायुमण्डल की शुद्धि के लिए सब से उत्तम साधन है साक बहनी हुआ और गूथ प्रकाश। इसी लिए तो अनल और अग्निल, आग और वायु-हवा की पारनता, पात्रकता स्वीकृत हुई है। और यह वायुमण्डल की शुद्धि का काम जो चाहे सो कर सकता है। समाज में गन्दगी दूर कर हुआ को और घर के इन्गिन् को परिस्थिति को शुद्ध करनेवाला सब से बड़ा अणुग्रहण महरत या भगी सन्धियों से काम करता आया है। किसी एक बंगाली कविता का अनुवाद (नामद रविबाबु का किया होगा) हम ने बचपन में पढ़ा था, जिस का अन्तर भगी की शुद्धिकारो भगवान् के रूप में बताया था।

अग्नि में सुगन्धित द्रव्य जलाने से हवा की शुद्धि उत्तर होती होगी। लेकिन यह बात गले नहीं उतरती कि हवा के नाम से भी जलान से जो काचन थापा बसाईड—प्राणनाक वायु पण होता है उस से हवा शुद्ध होती होगी। कई लोग ने इस बात को प्रमाणित करने की कोशिश की है, लेकिन उस से सन्तोष या विश्वास नहीं हो सका। अवश्य यह मतभेद का विषय ही सकता है।

हम मानते हैं कि हवन के द्वारा वायुमण्डल की सफाई करने का उद्देश्य याद में सोचा गया है। हवन का द्वारा हम भगवान् की पूजा करते हैं। अपनी घम भावना व्यक्त करते हैं। इस के अदर अपणवृत्ति प्रधान है। जब हवन का द्वारा चोखे जलायी जाती है तब हम अपने व्यक्तिगत और सामाजिक दोष जला डालने का सकल्प भी करते हैं। हवन की प्रवृत्ति के मूल में ईश्वर की आराधना की, आत्मशुद्धि और आत्मापण की भावना ही प्रधान है। यह चोख प्रधानतया आध्यात्मिक है। यज्ञधम हमारा प्राचीनतम धम है। हमारे धम-ग्रन्थों में हर जगह यज्ञ का रूपक आता ही है। पुरुष सूक्त कहता है यज्ञेन यगम् अयजन्त देवा तानि धर्माणि प्रथमायासत। यज्ञ भावना को परिपुष्ट करते नित्य के पच महायज्ञ सोचे गये और चलाये गये। यज्ञप्रवृत्ति रोचक हो गयी। उस में हजारा पशुओं का बलिदान होने लगा। अश्वमेध, गोमेध राजसूय यज्ञ आदि तरह-तरह के विस्तार बडे। पशुओं का और पशुओं के मालिक किसानों का क्रन्दन और आतनाद स्वग तक पटुच गया। नेमीनाथ, महावीर बुद्ध भगवान् आदि आय धम सुधारका ने ऐसे यज्ञों का तीव्र शब्दा में निषेध किया। जयदेव ने भी गाया—

निन्दसि यन्विधेरहह श्रुतिजातम्

सदयहृदय दणितपशुघातम् ।

केशव ! धतबुद्धशरीर जय जगदीश ! हरे !

लेकिन हमारी जाति का स्वभाव ही नहीं कि कोई प्राचीन चलो आयो भव्य सनातन प्रथा में दोष देते ही उस का हम त्याग करें। हम ने दोषा का निवारण किया। असली रस्म रिवाजों के मूल में जो भव्य कल्पना थी उस को उज्ज्वल रूप दिया और यज्ञ में तो हम ने विश्व-यापी सावभौम प्रक्रिया देखी। हम देवों के लिए यज्ञ करते हैं, देव हमारे लिए यज्ञ करते हैं। ऐसी परस्पर सेवा-द्वारा यज्ञचक्र, विश्व-यापी जीवनचक्र, चलता हुआ रहता है। जीवन जीने से, इंद्रियों के द्वारा उपभोग चलाने से जो विश्व शक्ति का संच होता है उस की फिर से पुनर्प्राप्ति करना यही है सच्चा यज्ञ-कर्म। कुएं के किनारे नहाकर, बतन और कपड़े धो कर जो गंदगी हम पदा करते हैं उसे दूर कर, जलाशय की ओर उस के इद गिद की भूमि की शुद्धि करना यह एक यज्ञ ही है। यात्री लोगो ने किसी गाँव में एक रात का वास किया और इद गिद काफी गंदगी की। दूसरे दिन गाँव के लोगो ने सेवा के रूप में सब कुछ साफ किया और गाँव का वायुमण्डल पहले के जसा शुद्ध बनाया। यह सारी प्रवृत्ति यज्ञ ही थी। सभ्यता प्रथा का अध्ययन चालू रखना सामाजिक, धार्मिक आदर्श लागू भूल न जायें, उन की निष्ठा सिधिल न हो जाय इस लिए स्वाध्याय को चलाना, पुराण वाचन, हरिकथा, कीर्तन द्वारा लोक शिक्षण की परम्परा अबाधित रखना यह तो यज्ञोत्तम ही है।

इस तरह गीतावार ने और हमारे साधु-संतों ने यज्ञ-भावना को यापक सावभौम रूप दे दिया। और साथ साथ जिस में पशुहिंसा है, धो, दूध, आदि अत्यन्त जरूरी आहार का नाश है, ऐसी चीजों का सत्ता ने जोरो से निषेध किया। धर्म के नाम भली बुरी रूढ़ियाँ चलाने वाले दम्भी साधुओं की फजीहत हमारे-संतों ने कर्म नहीं की है। वचन में एक गीत बण्ड किया था। उस में फटकार के साथ एक पंक्ति आती है—व्यय जालिगी तिला तादुला तुपा। नाटक तिल, चावल और घी को जलाते हो।

जिस देश में जहाँ देखें वहाँ राजा लोग हजारों ब्राह्मणों को एकत्र कर के बड़े-बड़े यज्ञ करते थे। किसानों के घरों में धुस कर यज्ञ में मारने के लिए जबरदस्ती उन के पशुओं को ले जाते थे और जहाँ रसोई परोसने वाले लोग यज्ञ में भोजन करने वाले भूदेव ब्राह्मणों को हाथ जोड़ कर कहते थे कि आज काफी पशु नहीं मिले इस लिए आप को मांस अधिक नहीं मिलेगा। कृपया शाक आदि दूसरी चीजें खा कर निभा लीजिए। कल ऐसी कमी नहीं रहेगी। (महा-भारत में लिखा है कि रत्तिदेव के यज्ञ में उस दिन केवल पचीस हजार ही पशु

in variety) लेकिन प्रत्यक्ष व्यवहार में विविधता ही बढ़ती गयी और एकता अवर रही तो वह नाममात्र और कमजोर ही। भारतीय स्वभाव ही शांति प्रिय तथा शांति प्रधान होने के कारण हमारे लोग औरों के सामाजिक सगठन में और सामाजिक नियंत्रण में हस्तक्षेप नहीं करते। इस लिए जाति-जाति के बीच बहुत से झगड़े नहीं होते थे। और सारा समाज बिना नियंत्रण के किसी तरह चलता था।

अब ऐसी स्थिति चल नहीं सकती। उच्चवर्णीय और सामायवर्णीय ऐसा भेद अब नहीं चलेगा। और अब लोग समझ गये हैं कि व्यक्ति-स्वातंत्र्य को पूरा स्वीकार करते हुए भी भिन्न भिन्न जमाता में समाज समस्त को कमोबेश हस्तक्षेप करना ही पड़ता है।

इस लिए अब हिंदू क्रायदा या हिंदू लों का महत्त्व पहले से बढ़ गया है। जब अंगरेजों का राज्य हुआ तब हमारा राजकीय और सामाजिक सगठन दोनों ढील पड़ गये और कमजोर भी। अंगरेजों की अदालत की शरण लेने के हम आदी बन गये थे। ऐसी हालत में अंगरेजों को अपनी हिंदू प्रजा की व्यवस्था करने के लिए हिंदू लों के बारे में सोचना पड़ा। अंगरेजों ने देखा कि भारत की प्रजा की राजनीतिक महत्वाकांक्षा टूट गयी है। इस वास्ते इन लोगों पर मनमाने राज्य कर सकते हैं। अंगरेजों ने यह भी देखा कि भारत की प्रजा अपनी आर्थिक उन्नति के बारे में ग्रफलत में है। भारत के उद्योग-धुनर उच्च कोटि के थे। भारत के व्यापारी तिजारत करने में कुशल थे। लेकिन सामाजिक सगठन कमजोर होने के कारण समस्त प्रजा का हित संरक्षण करने वाला कोई नहीं था। राजा लोग के पास अर्थशास्त्री (Economists) कोई नहीं थे। इस लिए अंगरेजों ने भारत का शोषण करने का काम जोरों से चलाया। यहाँ के उद्योग धुनर भी तोड़ डाले और हिंदुस्तान की बाकायदा लूट चलायी।

लेकिन अंगरेजों ने देखा कि सामाजिक व्यवस्था के बारे में भारत के लोग बड़ कट्टर रुढ़िवाणे हैं। सामाजिक सगठन में हस्तक्षेप होने से वे चिढ़ जाते हैं और उबरदस्त विरोध करने लगते हैं, इस की उन्हें कल्पना थी। अंगरेजों ने हिंदू लों बनाने में या चलाने में रुढ़िवादी लोगों के सतोप की ही बात सोची।

सती की प्रथा बंद करने के लिए हम ने कानून बनाया और अपनी प्रगतिशीलता सिद्ध की, ऐसा बड़े अभिमान के साथ अंगरेज अवश्य कहते हैं—लेकिन सती की प्रथा हमारे देश में व्यापक रूप में कमी थी ही नहीं। वहीं-वहीं कोई स्त्री पति के पीछे चितारोहण करती थी। वही-वही स्त्री को पति के पीछे चिता की अग्नि में उबरदस्ती फेंक दिया जाता था। लेकिन लोकमत उसे पसंद नहीं

करता था। सती की प्रथा करीब बन्द हो गयी थी। अंगरेजों ने सिर्फ़ क़ानून बनाने का श्रेय लिया।

जब से अंगरेजों की तरफ़ से हिंदू लॉ संगठित होने लगा, तब से सामाजिक सुधार की प्रगति नहीं, किन्तु रुढ़िवाद की स्थापना होती रही।

स्वराज्य होने के बाद अगर हम ने कोई सामाजिक क़ानून बनाया है तो वह एक ही है, अस्पृश्यता निवारण का। बाकी तो जिसे हिन्दू कोड कहते हैं वह अंगरेजों के दिनों में जो भी रूप हिन्दू क़ानून ने लिया उसी का संगठन मान है। अगर कहीं प्रगति है तो एक ही बात में कि लग्न विच्छेद परस्पर सम्मति से हो सकता है। इस हिन्दू कोड में प्रगति के लक्षण कहीं नहीं देख पड़ते हैं। पुरुष या स्त्री के लिए एक ही पत्नी और एक ही पति हो, यह क़ानून भी प्रगति की निशानी माना जाता है। लेकिन इस के बारे में अधिक सोचना होगा।

मुख्य सवाल यह है कि क्या हिन्दू जीवन की विशेषता हम कायम रखें या उसे छोड़ दें। सामाजिक संगठन और सामाजिक नियंत्रण राज्य के हाथ में न रहे, लोग अपने आप अपना संगठन कर लें और सामाजिक संगठन ही समाज का नियंत्रण करे यह आदर्श छोड़ देना चाहिए। ऐसा देख पड़ता है कि आज सामाजिक संगठन बहुत ही दुबल हुआ है और समाज के स्वाभाविक नेता समाज शास्त्र में पूरे प्रवीण नहीं हैं। ऐसी हालत में अगर प्रजा को सामाजिक संगठन का स्वातन्त्र्य दे दिया और राजकीय क़ानून ने अपनी जिम्मेवारी छोड़ दी तो आज की हालत में समाज का भला नहीं होगा। प्रतिगामी विचारों का गाँवों में अभी तक जोर है। जाति व्यवस्था की ब्रुनिय्याद में ऊँच-नीच भाव बरा हुआ है और गाँव के नेता अब भी मानते हैं कि आतंक फला कर अपना अधिकार मजबूत करने का उन्हें अधिकार है। ऐसी हालत में हिन्दू-समाज का नियंत्रण सरकार के हाथ में रहे, यही इष्ट है। समाज के नियंत्रण के लिए जो भी क़ानून बनाने हैं, सरकार ही बनावे। जो लोग आज राज्य चलाते हैं, स्वराज्य की बागडोर जिन के हाथ में है, ऐसे लोग आज काफ़ी प्रगतिशील हैं। वे ही हिन्दू-समाज के सामाजिक दोष दूर करने के लिए आवश्यक क़ानून कर सकते हैं। लेकिन हमें डर है कि सरकार के हाथ में अगर सामाजिक नियंत्रण के क़ानून बनाने की सत्ता चली गयी तो फिर सरकार की सत्ता ही मजबूत होती जायगी और सामाजिक संगठन करने की शक्ति हमेशा के लिए टूट जायेगी।

हम मानते हैं इस बबत हिन्दू कोड पास कर के हमें सन्तोष नहीं मानना चाहिए। सामाजिक प्रगति के लिए जो भी नये क़ानून आवश्यक हैं, उन को हम बनायें। पुराने क़ानूनों में जो दोष हैं उन्हें दूर करें और सामाजिक आदर्शों

के बारे में देग के नेताओं ने जो नये विचार बनाये हैं उन का प्रचार हम जोरा से जनता में करें।

जनता शिक्षित और अद्यतन बनने के बाद सरकार को चाहिए कि यह अपने सामाजिक काम रद्द करे और समाज का संगठन और नियंत्रण समाज के हाथ में ही छोड़ दे।

(सितम्बर १९१६)

द्वि भाषा विरोध

सामाजिक मनुष्य के लिए पूरा व्यक्ति-स्वातंत्र्य हो नहीं सकता। सामाजिक जीवन में ही व्यक्ति का विकास हो सकता है। इस लिए व्यक्तिगत जीवन पर कुछ हद-तक, अक्रुश रखने का अधिकार, समाज को दिया गया है। मनुष्य दूसरे को चीज नहीं ले सकता, रास्ते पर गलत दिशा से नहीं जा सकता, रात को अपने घर में भी जोरा से आवाज नहीं कर सकता लोगों के बीच नगा नहीं रह सकता, यहाँ तक कि मनुष्य को आत्महत्या करने की भी इजाजत नहीं है।

लेकिन समाज का यह अधिकार, व्यक्ति के जीवन पर अक्रुश रखने की यह सत्ता समाज किस तरह अमल में ला सकता है ?

- १ लोकमत का नतिक प्रभाव डाल कर ?
- २ कानून के जरिये व्यक्ति को रोक कर ? या
- ३ व्यक्ति को जबरदस्ती रोक कर ?

इस तीसरे उपाय से तो दुःख-वस्था पैदा होगी। मन में आया इस लिए, हर एक आदमी दूसरे को रोकन लगे तो दुनिया का व्यवहार चल नहीं सकेगा। इस लिए तीसरा इलाज समाज ने छोड़ दिया है।

समाज अपन अगुवा या प्रतिनिधियों के द्वारा कानून बनाता है। और अपनी सरकार के द्वारा उस का अमल करवाता है। मनुष्य की संस्कृति इस कानून रचना तक आयी है। लेकिन सब से अच्छा तरीका यह नहीं है।

सब से अच्छा तरीका पहला है—जिस में समाज अपनी पसंदगी या नापसंदगी जाहिर कर के सतोष मानता है। समाज को जो पसंद नहीं है वह करते व्यक्ति के मन में सकोच रहता है। समाज सजा न करे तो भी, समाज के धिक्कार से आदमी रुक जाता है।

अगर हम में सच्ची श्रद्धा, धीरज और आस्तिकता होती तो हम सरकारें, उन के कानून, और उन की सजाएँ, इन सब से दूर रह कर प्राकृतिक समाज की स्थापना करते और लोकमत के जरिये जो कुछ भी भलाई, व्यक्ति के मन में और रहन-सहन में पैदा कर सकें, उसी से सतोष मानते। सरकारों की मदद से जितना दुःख दूर होता है उस से अधिक कठिनाइयाँ पैदा होती हैं। अगर हम राज्य-तंत्र के बिना लोकसंगठन कर सकें तो शायद सत्ययुग स्थापित हो जाये।

हम कहते हैं कि घम निरपेक्ष जनता तंत्र ही—Secular Democracy ही—समाज का उद्धार कर सकेगा। असली बात तो यह है कि राजतंत्र निरपेक्ष समाज-व्यवस्था ही मानवता को बचा सकेगी।

उपरोक्त ढंग के जिस के सिद्धांत हैं, वह मद्यपान निषेध, हिन्दू-कानून सुधार आदि आवश्यक बातों के लिए भी सरकारी मदद के बारे में उदासीन रहा तो कोई आश्चर्य नहीं है।

हमारे यहाँ एक-पत्नी-व्रत का आदर्श अकेले श्रीरामचंद्रजी ने ही दिखाया। तीन रानियों के होने से पिता की क्या हालत हुई यह रामचंद्र ने देखा था। उन्होंने एक शब्द से भी अपने पिता की या माताआ की कभी निंदा नहीं की। केवल अपने आचरण से श्रीरामचंद्रजी ने बताया कि एक-पत्नी-व्रत ही मनुष्य जीवन के लिए सच्चा और अच्छा आदर्श है।

श्री रामचंद्रजी का गौरव सब करते हैं। उन के बाद उन का अनुकरण किसी ने किया हो तो इतिहास पुराणा में उस का जिक्र नहीं है।

इस का अर्थ यह नहीं कि हमारी जाति में बहु-पत्नीकत्व का आदर्श ही सब-सामाय था। दुनियाभर के सब भले सादे भोले लोग एक पत्नी से सतोष मानते हैं और दुःख-व्यथ के जीवन में भी प्रेम और निष्ठा का स्वर्ग पैदा करते हैं। लेकिन हमारे घमों में, हमारी स्मृतियाँ में, हमारे कानूनों में, अनेक पत्नीत्व का कहीं विरोध नहीं है, निषेध नहीं है।

सिर्फ स्त्रियों के बारे में हमारे समाज ने, बड़े ही उत्साह के साथ, सर्वोच्च आदर्श रखा कि स्त्री के लिए जीवन में और मरण में एक ही पति हो सकता है। हमारी देवियाँ भी, एक नहीं सात-सात जन्म के लिए एक ही पति की कामना रखती हैं। स्त्रियों के उद्धार के लिए हम लोगों ने सती की प्रथा भी जारी की। उस में होने वाली जबरदस्ती के सवूत हमने कही रहने नहीं दिये। पति के लिए सब तरह की आज्ञादी, और पत्नी के लिए सब तरह का बचन, समय और आदर्शनिष्ठा—यह है हमारी आय सस्कृति का वैभव !! You must

be bound, My dear and I must be free (तुम बंधे रहो लेकिन मैं तो आजाद रहूँ) यही युक्ति हर एक पति की, अपनी अपनी पत्नी के प्रति होती है । भले यह युक्ति किसी अमेरिकन कवियित्री की हो ।

जब से अंगरेज शासक, शिक्षक और धर्मोपदेशक हमारे देश में आये, एक पत्नीव्रत का आदर्श हमारे सामने रखा गया । ब्रह्म-समाज आदि पक्षों ने उस का जोरो से समर्थन किया । सामाजिक सुधार-दल ने द्विभार्या निषेध पर जोर दिया । इस आन्दोलन का अच्छा असर हुआ । एक स्त्री के जीते जी दूसरी स्त्री के साथ शादी करते लोग शरमाने लगे और एक पत्नी का नियम श्रोत्र-श्रोत्र सावधिक हुआ । जब तक परराज्य था, सामाजिक कानून बनाना आसान नहीं था । विदेशी सरकार की मदद से स्वदेशी लोगों का कानूनी दमन करना, पापद इष्ट भी न था ।

लेकिन पिछले दस पन्द्रह बरसों का हमारा सामाजिक इतिहास आशास्पद नहीं है । इन दिनों कई सुशिक्षित महिलाओं ने ऐसे पुरुषों के साथ शादी करना पसन्द किया जिन की पहली स्त्री जीवित थी । समाज ने ऐसे विवाहों को धिक्कारा नहीं । वहीं वहीं युवकों ने और युवतियों ने यह कह कर कि उस में बड़ा ही नीति धय था, ऐसे विवाहों का प्रकट रूप में अभिनन्दन भी किया ।

अगर अच्छे घरों की लिखी पढी सस्कारी स्त्रियाँ भी द्विभार्या की बात पसन्द करें तो द्विभार्या विरोध का कानून पास करवाने का अर्थ क्या ?

इस में तो ज़रा भी शक नहीं कि एक भार्या का नियम ही मनुष्य जीवन के लिए अच्छा और इष्ट है । जहाँ लग्न विच्छेद, (तलाक) और पुनर्विवाह के लिए समाज मानस अनुकूल नहीं है वहाँ दूसरी पत्नी घर पर आने पर जो हालत होती है उसे देखते मन कहता है कि द्विभार्या विरोध का कानून तुरन्त ही पास होना चाहिए । परन्तु इस के लिए जितनी शक्ति हम कानून पास करवाने में लगाते हैं, इस से कहीं अधिक शक्ति लोकमत तयार करने में लगानी चाहिए । यह काम अकेले पुरुषों का नहीं है अकेली स्त्रियों का भी नहीं । सब को मिल कर एक-पत्नीत्व का वायुमण्डल तयार करना चाहिए । साथ साथ लग्नविच्छेद और पुनर्विवाह की सहूलियत स्त्रियों के लिए प्राप्त होनी चाहिए । आर्थिक परत-प्रता स्त्रियों के लिए सब तरह से बाधक है । लेकिन धन कमाने का कतव्य स्त्रियों पर लादना यह भी एक अध्याय है । द्विभार्या विरोधक कानून को सब तरह से पुष्टि देते हुए हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि केवल कानून बस नहीं है । लोकमत को जाग्रत करना चाहिए और उसे शिथिल भी नहीं होने देना चाहिए ।

(अप्रैल १९१७)

समुद्र यात्रा की कायरता

जाति भेद के दूसरे दोष तो है ही, लेकिन एक बड़ा दोष यह है कि जातिबद्ध समाज में हर एक व्यक्ति का पूरा विश्वास नहीं होता।

हमारे वैश्य राष्ट्रीय अर्थशास्त्र कहा तक जानते थे यह तो हमें नहीं मालूम। लेकिन हमारे क्षत्रिय, राज्यकर्ता होते हुए भी, राष्ट्रीय अर्थशास्त्र से अवसर अनभिन्न रहते थे। और सूद तो अर्थशास्त्र का आरम्भ भी नहीं जानते थे।

दूसरी एक महत्व की बात। देश की रक्षा का भार क्षत्रियों ने उठाया इसलिए राष्ट्र रक्षा का विचार तक बाकी के लोगों ने छान दिया। अगर क्षत्रिय हारे तो सामान्य जनता शत्रु के अधीन होते देरी नहीं लगाती थी। आज भी यह हालत सुधरी हुई नहीं है।

गांधीजी ने भारपूवक कहा था कि जिस आदमी को भूख लगती है और अन्न के आहार के बिना जो जी नहीं सकते उन सब को खेती का कुछ-न-कुछ काम कमोबेश करना ही चाहिए। यही नियम देश की रक्षा के बारे में लागू है।

भारत का इतिहास पढ़ते हम स्पष्ट रूप से देखते हैं कि विदेशी लोगों ने इस भूमि पर जब कभी आक्रमण किया, या तो हमारे सरहद के पहाड़ लाँघ कर, या समुद्र के रास्ते आ कर। यह सब स्पष्ट जानते हुए भी हमारी सेना को आधुनिक ढंग के पहाड़ी जग को पूरी शिफा शायद नहीं दी गयी है। अफगानिस्तान की सरहद के बारे में साँचने की अब जरूरत नहीं है। लेकिन असम, मणिपुर की ओर सजग-सतर्क तो रहना ही होगा।

लेकिन आज यहाँ इस पहाड़ी रक्षा की बात नहीं करनी है। सन् १४५० से विदेशी लोग दरिया के रास्ते हमारे यहाँ आने लगे। पोर्तुगोज, डच, फ्रेंच, अंगरेज सब ने आ कर यहाँ राज्य किया। लेकिन आज तक हम लोगों ने समुन्द्र का विज्ञान और नौकानयन की कला में जरूरी प्रगति नहीं की। सारा-का-सारा देश जैन नहीं बना है। भास और मच्छी खाने वाले लोग देश में बाँकी हैं। अंगरेजों के जहाज पर नौकरी करन वाले भारतीय खलासों काफ़ी हैं। लेकिन हम लोगों ने दरियाई तिजारत की महत्वाकांक्षा कभी रखी ही नहीं। जापानी लोग अपने जहाज ले कर हमारे यहाँ आते हैं। स्वीडन, नार्वे के जहाज आते हैं। अमेरिकन, रशियन जहाज भी आते हैं। अंगरेजों के जहाज तो अब

समुद्र यात्रा की कायरता

भी हमारे सागर पर अपना प्रभुत्व जमाने हुए है।

भारतीय स्वराज्य सरकार के पास जमीन जहाज बनाने है ? हमारी नौसेना कितनी ठीक है ? यह सवाक महारत का है ही। लेकिन जग में भी अनेक महारत का सवाक है कि हमारा क्या तरीका जहाज बनाने है ? भारत के पास अनेक सम्पत्ति, जगत की सम्पत्ति बहुत है। हमारे यहाँ अनेक हमारा जल-नारगाओं का माल भी बढ़ रहा है। विदेश के लोग अगर अपना माल अपने जहाजों में लाकर हमारे यहाँ बेचने लाते हैं तो हम भी अपना माल अपने जहाजों में भर कर विदेश बेचने क्यों न जायें ?

जब मैं देखा है कि हमारा समुद्र किनारे के धारे में और हिन्द महासागर के धारे में विदेशी लोगो की ओर से लिफ्ट हुए अच्छे-अच्छे सीढ़ी प्राय है और हमारी ओर से कुछ भी लिफ्ट हुआ नहीं है, तब मुझे बड़ा ही दुःख होता है। और राम की बात तो यह है कि विदेशी लोगों की ओर से लिफ्ट हुए बौद्ध-बौद्ध ही प्राय है, उस का भी पता हमें नहीं है। और जब कोई एके प्राय हमारे सामने आते हैं तब उन्हें पढ़ने की दिलचस्वी भी हमारे लोग नहीं बन करती।

हमारे यहाँ सारवा या सलाही जाति के जो लोग हैं उन की हिम्मत, उन का बौद्धत्व, उन की प्रामाणिकता और उन की सज्जता सब लोग जानते हैं। दुनिया में इन का नाम इन गुणों में उच्च स्थान पर है। लेकिन इस जाति को हम ने कभी आज तक अपनाया नहीं है, इन की बदर की नहीं। भारतभूयण आदि इन्काब आज तक हम ने इन लोगों को नहीं दिया। प्रो० बुध जैसे नौबानधन विचारक हमारे देश में बौद्ध-बौद्ध कितने हैं मह देण कर उन के पास देण के नवमुवकों की भोजना चाहिए। ताकि सागरीय-यात्रा और नौबानधन विद्या के धारे में समस्त देण में एक गया उत्साह पैदा हो जायें।

आजकल विदेश से आये हुए विद्यापियों को भारत भ्रमण के लिए काफ़ी सहूलियतें और प्रोत्साहन दिया जाता है। देश के मुषका को भी थोड़ा कुछ प्रोत्साहन मिलता है। लेकिन यह सब रेल की मात्रा तक सीमित है। रेल, बस और पैदल यात्रा तो हमारे लोग जानते हैं। हम आखिरकार जमीन के जीव हैं। कोकण पश्चिम किनारे पर रहने वाले लोग बम्बई से मंगलूर तक आते-जाते रहते हैं। इन्हें समुद्र की ही यात्रा करनी पड़ती है। लेकिन मध्यम वर्ग के इन लोगों में से कितने लोगो ने समुद्र-यात्रा का उत्साह दिखाया है ? जिन्हें समुद्र-यात्रा करनी पड़ती है वे मानी जुलाब की दवा ली हो ऐसा मुँह कर के समुद्र-यात्रा के कष्टों का वर्णन करते हैं। इन्हें अगर स्वराज्य प्राप्ति के बाद एक चीज के उबाव आते होंगे तो वे बम्बई से मंगलूर तक बने रेलवे बनाने के हैं।

ताकि जहाज की यात्रा करनी न पड़े। समुद्रयात्रा का कुछ उत्साह दीख पडा कच्छी लोगा में, कयाकुमारी की ओर पूवसमुद्र के किनारे पर और थोडा कुछ पूव बंगाल में। बाकी सब भारतीय समुद्रयात्रा निषेध युग के ही लोग हैं।

(१ जून १९६७)

चरैवेति चरैवेति

समुद्र यात्रा करके हमारे लग सीलोन बसे हुए हैं। सीलोन की असली प्रजा भी क्यादातर प्राचीन काल में भारत से ही जा कर वहाँ बसी हुई है।

हमारे लोगा ने धर्मा, जावा, चम्पा, स्याम आदि प्रदेशा में जा कर धम प्रचार किया और व्यापार भी बढ़ाया। आज हमारे भारतवासी सुदूर फिजी टापू में जा कर बसे हैं और वहाँ के वाशि ने बने हैं। दक्षिण-पश्चिम में मौरिशास टापू में भारतीयों की सख्या काफी ह। हमारे पश्चिम की ओर पूव अफ्रीका में लाखों भारतीय जा कर बसे हुए हैं। दक्षिण अफ्रीका में भी उन की सख्या काफी ह। गोरी प्रजा हमारे लोगा को वहाँ आराम से रहने नहीं देती।

दक्षिण अमेरिका की उत्तर की ओर भी ट्रिनिदाद, सुरिनाम और ब्रिटिश गियाना में हमारे लोग काफी सख्या में ह।

जब युरोप की प्रजा दुनिया के सब खण्डों में और टापुओं में जा कर बसी तब हम घोर निद्रा में पड़े हुए थे। अब तो हिन्दुस्तान के बाहर जा कर कहीं भी बसना आसान नहीं रहा। जहा जाने की कोशिश करें दरवाजा बंद मालूम पड़ता ह। लेकिन हम बिद्या-अर्जन के लिए, तिजारत के लिए या नये-नये मुल्क देखने के उद्देश्य से जरूर दुनिया घूम सकते हैं।

लेकिन हमें न अपने देश के बारे में पूरी जानकारी ह, न पड़ोस के या दूर के देशा के बारे में। जब से काश्मीर का मामला दुनिया के सामने पडा हुआ है, विदेश के लडके-लडकियां काश्मीर जा कर वहाँ की हालत अपनी नजरों देख रहे ह। अभी मेरे पास स्विट्जरलड के उन्नीस-उन्नीस बरस के दो लडके आये थे। घर के कोई अमीर नहीं हैं। सारी दुनिया का भ्रमण करने का सकल्प है। हर तरह की कठिनाइयां झेलते हुए घूम रहे हैं। मेरे पूछने पर हँसते हँसते उहाने कहा कि एक दफे तुर्किस्तान में हमें दस दिन ज़ाका करना पडा। जेब में कुछ था ही नहीं। फिर अखबार के लिए कुछ लिखा पैसे कमाये और आगे चले।

चरैवेति चरैवेति

४०९

हमारे देश के नवयुवकों को रुढ़िया देगने के लिए और आने शात की वृद्धि करने के लिए घुमक्कड़ बनना चाहिए। हमारे युवक बारह बरग की पढ़ाई के बाद तीन साल तक भारत भ्रमण करते थे। उन के बाग घागे कर के नहीं भी स्थिर होते थे। बागी रामेश्वर की यात्रा की, द्राविडा, बामानुमारी, जगन्नाथपुरी और बद्रोतारामण की यात्रा की तब वे मानते थे कि उन्होंने रुढ़िया देव ली। उन के जमाने के लिए वह ठीक था। मुगलान के जमाने में भारत और ईरान के बीच लोगो का आवागमन रूब होता था और संस्कृति का आगन प्रदान भी। अब तो हमें दुर्गिया के सब देगों में जाता है। लेकिन कम से कम भारत से पहोस के देगा का और टागुआ का शात तो हमें लेना ही चाहिए।

आजकल भारत के अदर गान यात्रा और सेमीनार का योजबाला बहुत ह। जो नवयुवक चार सेमीनार में उपस्थित रहा उसे पुरस्कार-रुग प्रमाण-पत्र मिलता ह। यह अच्छा ह। लेकिन साम-साप हमें एक राष्ट्रीय फ्रेहरिस्त रगनी होगी, जिस में अपने ही उरसाह से जो नवयुवक विदेश हो आये ह उन की योग्यता दज की हो। ऐसे लोगो की उन के लायक काम बूँड़ कर के देगा राष्ट्रीय सरकार का कतब्य है। ऐसी फ्रेहरिस्त पाँच-दश साल तक हो रगनी होगी। उस के बाद विदेश हो कर आये हुए नवयुवको की सरवा इतनी बड़ेगी कि उन की फ्रेहरिस्त मानो मदुम-शुमारी बन जायेगी। लेकिन भारतभ्रमण और विश्वभ्रमण की खास प्रोत्साहन देने की जरूरत ह।

भारत के जातिभेद के, ऊँच नीच के और ऐसे ही दूगरे सामाजिक सवाल हल करने का यही अच्छा तरीका होगा।

(११ जून १९६०)

समानता की साधना

किसी भी जाति के धार्मिक, सामाजिक रीति रिवाज उस के आध्यात्मिक आदर्शों के अनुसार ही होने चाहिए। आदर्शों में अगर सुधार या परिवर्तन हुआ तो सस्कार और रस्म रिवाजों में भी परिवर्तन होना चाहिए। लेकिन ऐसा नहीं होता। रस्म रिवाज एक दफे बन गये तो बन गये, फिर तो उन में परिवर्तन करने की गति व्यक्ति के हाथ में नहीं रहती। सारा समाज तयार होगा अथवा कोई बडा जबरदस्त आन्दोलन आ खडा होगा तभी परिवर्तन हो सकते ह।

हमारे यहाँ वैदिक काल के आदश अलग थे। वैदिक सभ्यता का काफ़ी विकास होने पर वेदांतिक सभ्यता का उदय हुआ। वेदान्त के साथ भोग आया। स्वर्ग और यज्ञ गौण हो गये। मोक्ष के आदश के कारण वैदिक कमकाण्ड की जगह कमयोग की स्थापना हुई। लेकिन वेदांत के उत्साह ने एक तरफ ज्ञानयोग और दूसरी तरफ भक्तियोग को प्रधान बनाया। ज्ञान का और भक्ति का पूरा-पूरा प्रचार और अनुभव होने के बाद कमयोग की प्रधानता अपने-ही-आप आगे आयी।

ज्ञानयोग हो या कमयोग परब्रह्म की उपासना उस के साथ थी ही और ब्रह्म रहा निर्दोष और सम (निर्दोष ही समम् ब्रह्म)। इस लिए मनुष्य की साधना में जीवन शुद्धि और समाज में समता का आना जरूरी था।

लेकिन ऐसा नहीं हुआ। यज्ञमार्गी लोग हिंसा को छोड़ने को तैयार नहीं थे और अहिंसा के बिना जीवन शुद्धि हो नहीं सकती। कमकाण्डी लोगों ने दलीलें चलायी—यागीया पशुहिंसा हिंसा न भवति।—यज्ञ के लिए पशु को मारना हिंसा नहीं है। ऐसा कहने तक उन्होंने हिम्मत की। पशु तो रोते रोते मरते थे और मार कर खाने वाले लोग कहते थे, 'इस में हिंसा नहीं है। कमकाण्डी लोगों ने अपनी धमबुद्धि को सन्तोष देने के लिए दलीलें चलायी कि यज्ञ में जो पशु मारे जाते हैं उन को स्वर्ग मिलता है। अतएव उन का कल्याण ही होता है। इन की हँसी उड़ाते चार्वाक कहने लगे, "अगर ऐसा ही है तो यज्ञ में अपने पिता की बलि क्यों नहीं देते? वे तो स्वर्ग की कामना भी करते हैं, बेचारे पशु स्वर्ग की बात भी नहीं जानते और इच्छा भी नहीं करते।"

यज्ञ के लिए लकड़ा चाहिए और पशु चाहिए। दोनों का नाश करने से स्वर्ग मिलता है, यह दलील जिन की समझ में नहीं आयी वे पूछने लगे—अगर पेड़ को काट कर, पशुओं को मार कर और लहू को कीचड़ बना कर स्वर्ग जाया जाता है तो नरक जाने का उपाय कौन-सा है? धीरे धीरे यह सभ्यता अप्रतिष्ठित हो गयी और वेदान्तियों ने यज्ञ का बड़ा व्यापक अर्थ किया और पशुवध बढ़ हो गया। न जाने इतना सुधार करते कितने उमाने बीत गये।

ब्रह्म के दो लक्षण हैं—निर्दोष और सम। अगर मनुष्य अपने जीवन द्वारा परब्रह्म की उपासना करना चाहे तो सत्य (ईमानदारी) अहिंसा और सधर्म के द्वारा ही मनुष्य निर्दोष हो सकते हैं। परब्रह्म का दूसरा लक्षण है समम्। मनुष्य हृदय में और समाज में समानता किये बिना ब्रह्म की उपासना कैसे हो सकती?

सुग-दुःख के वारे में समम् बनने की साधना वेदान्तियों ने अच्छी की। लाभ-हानि, जय-पराजय के वारे में समानता धारण करने का उपदेश भी काफ़ी

हुआ। लेकिन विद्या विनय-सम्पन्न ब्राह्मण, गाय, हाथी, भृत्ता और भृत्से को मार कर पका कर खाने वाला चाण्डाल—इन में भीषण समदृष्टि रगते का उद्गम हमारे आर्य-संस्कृति ने गीता में ही रहने दिया। पण्डित कहने लगे, “गीता ने दृष्टि समान रखने को कहा है, आचरण समान रखने को कहाँ कहा है? (पण्डिता समदर्शन न तु समवर्तिन) ऐसी दलील से न करें तो चातुर्वर्ण का उच्च-नीच भाव छोड़ना पड़ेगा। सनातनियों का सिद्धांत था कि ब्राह्मण भ्रष्ट हुआ तो भी ह्तर वर्णों से श्रेष्ठ है। दूतों की अपेक्षा द्विजातीय श्रेष्ठ। उा म भी ब्राह्मण श्रेष्ठ। ऐसी व्यवस्था छोड़ने को सनातनी सवार नहीं थे। आज भी नही ह। हिन्दू जाति और हिन्दू संस्कृति की बुनियाद में ही यह उच्च-नीच भाव भरा ह। दुनिया के दूसरे लोगों में और दूसरी संस्कृतियों में अभिमान, मशहरी और दूसरी के प्रति तुच्छता काफ़ी है लेकिन उसे उन्होंने घम की बुनियाद नहीं दी। हमारे यहाँ मनुस्मृति में भी वर्णों का श्रेष्ठत्व और कनिष्ठत्व पूरा-पूरा पाया जाता ह। अनुलोम और प्रतिलोम का भेद भी नहीं तो कहाँ से आता ?

असल में पुरुष श्रेष्ठ और स्त्री कनिष्ठ ऐसा भेद भी हमारी संस्कृति में और दुनिया की अनेक संस्कृतियों में दुरू से आज तक मौजूद ह। (कितना अच्छा कि पदाओ में नहीं है !) ईसाई लोगों में पहले ऐसी भी मान्यता थी कि स्त्री की आत्मा ही नहीं होती ह। प्राण ह, सुख-दुःख है, बुद्धि और भावना ह लेकिन आत्मा नहीं ह।

संस्कृति के दोष दूर कर के विचार शुद्धि और जीवन-शुद्धि करने वाले बुद्ध भगवान् भी इस सकुचितता से मुक्त नहीं थे। इस लिए प्रथम उन्होंने स्त्रियों को दीक्षा देने से इनकार किया और जब दीक्षा देनी पड़ी तब नियम बनाया कि बिल्कुल नयी दीक्षा जिसे मिली ह ऐसा पुरुष भिक्षुक बूढ़ से बूढ़ पुरानी भिक्षुणों से भी श्रेष्ठ माना जाय और तमाम भिक्षुणियाँ उसे बंदन करें।

यह सारा उच्च-नीच भाव हमारे मानस में उतर गया और रस्म रिवाजों में भी पाया जाता ह। हम अगर समानता की बात करें और रस्म रिवाज पुराना रखें तो स्वभाव में परिवर्तन नहीं होगा। इस लिए समाज को जो रस्म रिवाज मान्य ह, पसंद ह, पूज्य ह, ऐसी का भी फिर से विचार करना ही चाहिए। बाह्य आचार में परिवर्तन करने से भी मानस-परिवर्तन हो सकता ह और समाजमाय बनता है।

किसान जाति का एक बड़ा अफ़सर कभी जज, कभी कलेक्टर बनता था। रिवाज के अनुसार उस के नौकर बूट पहनने में उस की मदद करते थे, बूट साफ़ कर सकते थे। यह बिल्कुल स्वाभाविक था। अब एक दफे उस की

कचहरी में एक गरीब ब्राह्मण चपरासी बन कर नौकरी पर लगा। बूट उतारने के लिए अफसर ने प्रथम उस को बुलाया। तुरंत उस को खयाल आया कि यह नौकर जाति का ब्राह्मण है। ब्राह्मण जाति के हाथ से बूट उतरवाने की उस की हिम्मत न चली। जाति-पात को न मानने का उस का सिद्धांत था। इस लिए उस ब्राह्मण नौकर को अब मना करना भी मुश्किल हो गया। उस अफसर ने अपने मन की दुविधा मेरे सामने व्यक्त की। मैं ने कहा, यही तो सस्कारा का महत्व है और इसी लिए सिद्धांत के अनुसार सस्कार भी बदलने चाहिए।

अब दूसरी एक बात देखिए। हम ने अपने शरीर में भी मान लिया कि सिर ऊंचा है इस वास्ते वह थोड़ा है। पाँव जमीन पर चलते हैं इस लिए वे कनिष्ठ हैं। किसी को गलती से हमारे हाथ का स्पर्श हुआ तो इस का किसी को बुरा नहीं लगता, लेकिन पाँव का स्पर्श हुआ, बिल्कुल गलती से, तो भी मनुष्य बार-बार माफी माँगता है। वेद में भी चार वर्णों की एकारमता बताने के लिए पुरुषसूक्त बनाया गया। उस में कहा है—ब्राह्मण समाज-पुरुष का मुख है। क्षत्रिय उस के बाहु हैं, वैश्य समाज-पुरुष की जाँघ है और शूद्र तो वेचारे पाँव में से पैदा हुए।

अब ऐसी व्यवस्था में अगर किसी को मैं आदर दिखाना चाहूँ तो कहूँगा, 'आप इतने बड़े और ऊँचे हैं कि जहाँ आप के पाव हैं वहाँ मेरा सिर रहेगा। (बुद्ध भगवान् ने तमाम स्त्री भिक्षुणियों को पुरुष भिक्षुसभ के नीचे रखा—वसी ही यह बात है।) स्त्रियाँ को और शूद्रों को वेदमंत्र धोलने का अधिकार नहीं, ऐसा नियम बनाने से स्मृतिकारों को सन्तोष नहीं हुआ। शूद्र लोग वेदमंत्र सुनें भी नहीं, ऐसा नियम बनाया गया। इस के आगे जा कर नियम बनाया कि घमशास्त्र पढ़ने का अधिकार केवल विद्वान ब्राह्मण को ही है औरों को यह अधिकार नहीं है। और आखिरकार उठोने नियम बनाया कि शूद्र लोग संस्कृत भाषा ही न सीखें। और इस नियम के लिए स्पष्टता की कि जो ब्राह्मण नहीं हैं उन सब को कलियुग में शूद्र ही गिनना चाहिए। संस्कृत तो देववाणी है, उसे पवित्र रखना चाहिए।

मनुस्मृति में अमूल्य बातों में यह ऊँच-नीच भेद चलाया गया है। दण्ड कितना ऊँचा हो ब्रह्मचारी के कपड़े किस रंग के हों, नमस्कार का प्रकार वैसा हो, हर एक जाति के लिए नियम अलग। और जाति-व्यवस्था में स्थान ऊँचा या नीचा।

यह सब तोड़ना ही चाहिए। यह नियम आप-ही आप टूट गये लेकिन समानता की साधना

बहुत-से रहे ह। जो उम्र में बड़े ह, जाति में श्रेष्ठ ह अपना पुरख हैं उन को नमस्कार करते कम योग्य लागे को उन के चरणों पर अपना माथा रमना चाहिए। माथा नहीं रखा जाता तो कम से कम हाथ से चरणों को स्पश करना चाहिए। स्पश सेवा का द्योतक ह और उसे नमना भी धताया जाता ह।

अपने गुरु का जिऊ नाम से गही करना चाहिए सो बात तो ठीक, लेकिन गुरु का जिऊ गुरु दृष्ट से भी नहीं करना चाहिए। गुरुचरण बहना चाहिए। नम्र और निष्ठावान् शिष्य कभी नहीं बहेगा कि गुरु की आज्ञा शिरोधार्य ह। वह बहेगा गुरुचरणों की आज्ञा शिरोधार्य ह। बड़ों के चरण और छोटों का सिर इही का सम्बन्ध बन सकता ह।

गुरु शिष्य सम्बन्ध, मालिक और नौकर का सम्बन्ध, उच्च और हीन जाति का सम्बन्ध पति-पत्नी का सम्बन्ध सब में आदर और नम्रता बताने के लिए चरण तो लाने ही पडते ह। मेरे जसा बहेगा कि गांधीजी के चरणों में बठ कर जो हम ने पाया, वही आप को कहता हूँ इत्यादि। नम्रता दिखाने के लिए ऐसी भाषा शायद ठीक ह लेकिन सामाजिक समानता की तो इस से हत्या ही होती ह।

दुनिया में आदर, निष्ठा, पूज्यभाव और उस के साथ नम्रता आदि सद्गुण रहने ही चाहिए। ये सद्गुण जब लुप्त हो जायेगे तब मानवजाति में सस्कारिता रहेगी ही नहीं। बड़ों के प्रति आदरभाव होना ही चाहिए। समान लोगों के प्रति सदभाव होना चाहिए। छोटों के प्रति धातसत्यभाव न रहा तो भी उन की इज्जत तो करनी ही चाहिए। लेकिन यह सब दिखाने के लिए अपने को हीन बनाने की क्या जरूरत ह ?

इसलिए सारा पुरा विचार कर के मैं इस नतीजे पर आया हूँ कि चरणों पर माथा टेकने की और चरण स्पश की बात तो निकालनी ही चाहिए। दूसरे समाजों में यह रिवाज नहीं ह तो क्या उन लोगों में नम्रता और आदर नहीं है ? नम्रता और आदर मनुष्यमात्र में होते ही ह और बताने के तरीके भी होते ह। लेकिन अपने को हीन बनाने की बात उस में नहीं होती। इसलिए मैं लोगों को समझा रहा हूँ कि आदर दिखाने के लिए हम हाथ जोड कर खडे-खडे नमस्कार करें। बहुत हुआ तो सिर जरा-सा झुके। लेकिन कमर पुता कर नमस्कार करने का और पाव छूने का रिवाज छोड हा देना चाहिए।

मेरे इस नये नियम का विरोध कोई अच्छे-अच्छे लोगो ने किया है। उन के प्रति मेरे मन में आदर ह। लेकिन अपनी बात पर अब मैं दृढ हूँ।

एक दिन मैं बम्बई से अहमदाबाद या सावरमती गया। उन दिनों में

गुजरात विद्यापीठ चलाता था। स्वाभाविक था कि मेरे चंद विद्यार्थी मेरा स्वागत करने के लिए स्टेशन पर आवें। इस तरह विद्यार्थी आते भी थे। लेकिन इन में से एक महाराष्ट्रीय जवान मेरी ओर विशेष आकर्षित हुआ। रेलगाडी से मैं जैसे ही उतरा, उस ने था कर मेरे पाँव छूए और उस के साथ आये हुए दूसरे चार-पाँच लडके क्या करें? दक्षादेखी उहाने भी चरण स्पर्श किया, जो वे चाहते नहीं थे। उन का रिवाज भी वैसा नहीं था। मैं ने उस महाराष्ट्रीय विद्यार्थी का समझाया कि तुम ने सब को और मुझ को भी सक्कट में डाला यह अच्छा नहीं है। मन में आदर कम हो या ज्यादा। उस को बताने का तरीका सब माय होना चाहिए। जब वह नहीं माना तब उसे मैं ने बीच का रास्ता बताया। जब तुम अकेले मिलो तब चाहे चरण स्पर्श करो, तुम्हारे लिए मैं सहन कहूँगा। (राज्जी तो हरगिज नहीं हाजँगा) लेकिन दूसरों के सामने पाँव छूना और कमर झुकाना बिलकुल मना है। बाद में उस ने देख लिया कि दा डग का रिवाज चल नहीं सकता। क्योंकि चरण स्पर्श चोरी का मामला हो गया। फिर उस ने वह भी छोड दिया।

आज के जमाने को हम डेमोक्रेटिक जमाना कहते ह। जनता का, प्रजा का, सामान्य मनुष्य का और समानता का यह जमाना ह। इस में उच्च-नीच भाव की शका भी आ जाये ऐसे सब रस्म रिवाज छोड देने चाहिए। और भारतीय सस्कृति में श्रेष्ठ-कनिष्ठ का पाप हम ने इतना चलाया ह और सावभौम बनाया ह कि हमें तो ये सारे पुराने रस्म रिवाज प्रयत्नपूर्वक और प्रतिनापूर्वक छोड देने ही चाहिए। बडी कडाई से बंद करने चाहिए।

किसी ने कहा "आज कल के जमाने के लोगो मे आदर रहा ही कहाँ ह? आप का नियम आज के नवयुवक खुशी से पसंद करेंगे।"

मं ने हँस कर कहा, 'अगर बात ऐसी है तो मेरी बात जोरो से और जल्दी चलानी चाहिए ताकि नवयुवको को उद्दाम न होना पडे।'

हम चरणस्पर्श चाहें और माग लें और उस की अपेक्षा रख और जवान लोग उस में अशुचि और सकोच बतावें इस में दोनों की शोभा नहीं ह। हम ही अपनी ओर से गलत रिवाज को तोड दें तो बितना अच्छा?

और एक बात ह। जब हमारी स्त्रियाँ पुण्यों के प्रति आदर दिखाने के लिए नीचे झुकती है जमीन पर माया टेकती ह अथवा पाव को छूती ह तब मैं धरम का मारा अधमुआ हो जाता हूँ। स्त्री जाति के प्रति आदर दिखाना पुण्यो का काम ह। उम्र में छाटी हो या बडी स्त्री को तो आदर दिखाने के लिए हरगिज नीचे नहीं झकना चाहिए। हाय जुडें, सिर जरा-सा झुके इतना काफी ह।

देश के और समाज के पुराने और नये नेताओं से मेरी प्रार्थना है कि हमारी सभ्यता में से सबध्यायी, सावधीम, ऊच-नीच भाव को दफनाने के लिए इतना सुधार जरूर करें कि कमर झुकाना, चरण स्पर्श करना, जमीन पर माथा टेकना और वसी भाषा बोलना एकदम बन्द कर दें। इस से धार्मिकता की हानि होने वाली नहीं है, लाभ ही है और भगवान् 'निर्दोषं हि समग्रह' हमारे जमाने की आशीर्वाद देगा।

(१५ जनवरी १९६६)

नीति याने सदाचार

सदाचार की बात सोचते ही 'नीति' शब्द सब से पहले ध्यान में आता है। राजा भतहरि ने नीति के सी श्लोक लिख कर धार्मिकों को सदाचार का रास्ता बताया है। नीतिमान् धीमान् आदि शब्द इसी अर्थ में प्रचलित हुए हैं।

धर्म की कल्पना में भी सदाचार आ जाता है इस में जब धर्म अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थों की बात आ जाती है तब उस में धर्म से तो केवल आरम्भ होता है। वहाँ धर्म का भाव है सामाजिक सदाचार के नियमों का पालन। इस से जो उच्च धर्म है वह है मोक्ष का धर्म। मोक्ष धर्म ही सर्वोच्च पुरुषार्थ माना गया है। हालांकि मोक्ष से श्रेष्ठ भूमिका है विश्वात्मक्य की।

भतहरि ने भी प्रारम्भिक सदाचार के लिए 'नीतिशतक' लिखने के बाद अन्तिम उपदेश दिया 'वराह्य शतक' के द्वारा। ('विज्ञान शतक' शायद भतहरि का नहीं है।)

अब सभ्यता में और हमारी देशी भाषाओं में भी 'नीति' का अर्थ बहुत कुछ गिर गया है। यहाँ तक कि नीति का अर्थ धूर्तता छल-कपट भी हो सकता है।

'नीति' का मूल अर्थ है सदाचारी लोगों के आचरण के नियम, जीवन की एक विशेष परिपाटी। सच बोलना इन्द्रियों पर काबू रखना, दिये हुए वचन का पालन करना, दूसरे के भले के लिए अपने स्वार्थ को छोड़ देना, जीवों के प्रति दयाभाव रखना, क्रूरता का त्याग करना काम क्रोध, लोभ आदि मनो विकारों पर अक्रूर रखना इत्यादि बातें मिल कर नीति बनती है।

ऐसी नीति का पालन अपनी अन्तरात्मा के सन्तोष के लिए और समाज के कल्याण के लिए जरूरी माना गया है।

जो सच बोलता है उस के वचन पर सब का विश्वास बैठता है। लोग उस का आदर करते हैं। यह हुआ सत्यवादिता से मिलने वाला स्वाभाविक लाभ। ऐसे लाभ को हम भूलें नहीं। लेकिन ईमानदारी का पालन ऐसे लाभ के लिए आदमी नहीं करता। जो लोग ईमानदारी से होने वाले लाभ को ही महत्व का मानते हैं उन्हीं की बनायी हुई कहावत है—'Honesty is the best policy' यहाँ policy का अर्थ है 'नीति'। हमारे लोग भी कभी कभी 'नीति' शब्द का उपयोग policy के अर्थ में करते हैं।

व्यक्ति का आचरण कैसा हो इस के नियम कुल परम्परा की रीति में पाये जाते हैं। हर एक जाति के अगुआ अपनी अपनी जाति के लिए नीति नियम बनाते हैं। सब के लिए एक-से नियम नहीं होते। ब्राह्मण तपोभ्रष्ट होने से डरेगा। क्षत्रिय युद्ध में पीठ दिखाने से डरेगा। वैश्य दिवाला निकलने पर आत्महत्या करेगा। अपनी-अपनी जाति या वर्ग की खास नीति के लिए अँगरेजी शब्द है, 'Persona'

थब ऋषि-मुनियो ने वर्ण के अनुसार और जाति के अनुसार सदाचार के नीति नियम बनाये। उन में राजा के लिए (अब राजा लोग रहे नहीं, किन्तु राज्यकर्ता—राजपुरुष हैं, उच्चाधिकारी और अमलदार हैं।) ये हैं

राजा को सफलतापूर्वक राज्य चलाना है, जागरूक रह कर प्रजाहित करना है तो मामूली नीति से उस का काम नहीं चलेगा। राजा के स्थान पर नियुक्त होते ही उसे सोचना पड़ता है

(१) दूसरे राजाओं के साथ मेरा व्यवहार कसा हो ?

(२) अपनी प्रजा के साथ सम्बन्ध कैसा रखा जाय ?

(३) अपने ही मंत्री, सलाहकार और अपने अपने महकमे के राज कर्मचारियों के साथ मेरा सलूक कसा हो ?

(४) राजगद्दी पर लोभी नजर रखने वाले अपने दामादों के प्रति व्यवहार कैसा हो ?

(५) और अपनी स्त्री, पुत्र, मित्र व स्नेही और दास दासियों के साथ व्यवहार कसा हो ?

सब के ऊपर एक-सा विश्वास रखना राजा के लिए घातक होगा। राजा अगर नरम रहा तो लोग उस का अनादर करते हैं। उस के चिर पर चढ़ बैठते हैं।

इस से उलटा राजा अगर कड़क और कठोर रहा तो लोग उस से प्रसन्न होते हैं, उस से दूर भागते हैं। ऐसे राजा की प्रजा की निष्ठा नहीं मिलती।

इस लिए राजा की नीति नरम-नरम होनी चाहिए ।

पड़ोसी राजा धोका दे सकता है, दुश्मन बन सकता है, इस लिए उस के साथ संभल कर चलना चाहिए । अगर उस ने धोखा दिया तो आत्म रक्षा के लिए उसे धोखा देने में हर्जा नहीं है ऐसी ऐसी बातें राजनीति में आती हैं । राजा को कहा गया है कि वह अपनी पत्नी को भी रहस्य की सब बातें न बदे, उस का विश्वास न करे । स्त्रियों के साथ सचेत हो कर चलना चाहिए और रहस्य की बात उन्हें कभी नहीं कहनी चाहिए, इत्यादि नियम सब देशों के पुरानों में बनाये हैं ।

राजा लोग तो सभी के साथ घूतता से चलेंगे ही । लेकिन राजा को लोगों से भी सीधे ढग से नहीं चलना चाहिए ऐसी सलाह दी जाती है—‘नयो नृपजने’—और ‘नारीजने घूतता तो है ही ।

‘स्वदेश में चलाना घम की और शत्रु के देश में फटाना अधम’ ऐसी विचित्र और अनपकारी सलाह भी नीति-ग्रन्थों में पायी जाती है ।

राजा लोगो को और समय लोगो को भी सीधे ढग से नहीं चलना चाहिए ऐसी सलाह दी गयी है, क्योंकि सीधा चलने में छतरा है ऐसा बताया जाता है, हालाँकि दूसरे लोग कहते हैं कि दुबल आदमी के लिए घम-पालन का आग्रह हम नहीं रखेंगे । दुबल आदमी जसा बन सके अपने को बचा ले, समय होने पर घम का आचरण करे, ऐसा भी बताया गया है ।

‘समर्थो घममाचरेत्’ ।

सदाचार पर जिन का विश्वास है ऐसे लोगो का वचन है—

‘घमो रक्षति रक्षित’

लेकिन दुनिया कहती है कि ऐसा हमारा अनुभव नहीं है । सदाचारी लोग दु स्थिति में पाये जाते हैं और दुजनों को भी तरक्की होती है । चन्द ईश्वर निष्ठ लोग भले ही कहें कि ‘भगवान् भलों का भला ही करता है, और दुजनों का नाश,’ लेकिन अनुभव ऐसा नहीं है । सज्जनों का भला ही होता तो लोग बुराई का रास्ता लेते ही क्यों ? हम सब चाहते हैं कि सदाचार का फल अच्छा ही हो । सदाचारी को सब तरह का सुख मिले सतति, सम्पत्ति मिले, ऐसी हमारी भी इच्छा है । लेकिन बसा होते दीख नहीं पड़ता । तिजारत करने वाले को मुनाफा मिलना चाहिए लेकिन घम का पालन करने वाले को सब तरह का लाभ ही हो ऐसा आग्रह नहीं रखा जाता । जब घमराज से पूछा गया कि आप इतने धर्मात्मा हैं तब आप की ऐसी दुःखता क्या हुई ? तब उन्होंने जवाब में कहा,

“मैं धम को तिजारत नहीं करता। दुदशा भी जीवन की उन्नति के लिए जरूरी तत्व है। दुदशा को हम दुर्वै क्या मानें ? उसमें से भी हमारा भला ही हो सकता है।”

जीवन की सफलता के लिए मनुष्य अनेक तत्व आजमाकर देखता है।

(१) सक्ठो के सिलाफ़ अपना पूरा बल लगा कर लड़ना।

(२) जीवन की सफलता के लिए बुद्धि का सहारा लेना।

(३) सफलता पाने के लिए समय संगठन खड़ा करना।

(४) याय के अनुसार चल कर विश्वास रखना कि जब “मैं किसी का बुरा नहीं करता, मेरा बुरा हो ही नहीं सकेगा।”

Wishing no body aught but good Naught but good can come to me,

(५) सभी के प्रति क्षमा, उदारता, कृपा और सरलता का व्यवहार कर के विश्वास रखना कि ऐसी साधुता का अच्छा फल मिलेगा ही। ऐसे लोगों को जब सिद्धि नहीं मिलती तब भक्त लोग कहते ह, ‘तुम्हारी साधना में ही कुछ कमी रही होगी, वरना भगवान् के नियम तो अटल ह।’

सच्चे जीवन उपासक गीता धर्मी होते हैं। वे जानते हैं कि भला करने वाले की कभी दुर्गति नहीं होती। लेकिन सिद्धि-असिद्धि का शास्त्र गूढ़ ह। भले लोगों की मदद तो भगवान् अवश्य करते ही ह, लेकिन आध्यात्मिक उन्नति में मदद करते ह। सांसारिक सिद्धि देंगे ही ऐसा वचन कभी उन्होंने दिया नहीं है। सिद्धि के बारे में तटस्थ रहने की ही नसीहत दी है।

भले का भला ही होगा, यह सिद्धांत केवल आध्यात्मिक क्षय में ही सही है। सत्य की ही विजय ह ऐसा कहते हुए ऋषि ने परस्मैपदी धातु को आत्मने पदी बनाया, यह बताने के लिए कि सत्य की विजय ध्रुव ह, किन्तु वह आत्मने पदी विजय होगी। दुनिया की दृष्टि से भी विजय होगी, तुरत या यथा समय होगी ही ऐसा विश्वास रखने का कोई कारण नहीं ह।

हमें यह विश्वास होना चाहिए कि इस लोक में सारभूत तो सत्य का पालन ही ह।

‘सच्चमिह सारभूम लोकमिह

दुनिया के लोग कहें या न कहें, आचरण में नीति का पालन यथा-शक्ति करते हैं और जब सत्य बोलना कठिन होता ह, मौन का सहारा लेते ह। मौन भी ईश्वर की एक विभूति ही है।

शास्त्रकारों ने भी सत्य बोलने में सज्जनों को कभी कभी जो कठिनाई होती

है, उसे ध्यान में रखते ब्रह्मा ह, 'असत्य कभी भी नहीं बोलना । इस में तो अपवाद नहीं हो सकता । सत्य बोलने में जब नतिक दोष आता है, तब मौन से चला लेना ।'

यहाँ तक जो विवेचन अथवा मनन किया, उस पर से स्पष्ट होगा कि नीति शब्द स्पष्ट नहीं है, इस लिए 'सदाचार' शब्द का प्रयोग ही चलाना चाहिए ।

सदाचार के दो अर्थ होते हैं । सीधा अर्थ है सद् आचार याने अच्छा आचार, शुद्ध आचार, बरतानकारी आचार । दूसरा अर्थ है, सज्जनों की ओर से चलाया आचार । दूसरे अर्थ में आचार के अर्थ में सज्जन साधुपुरुष, नेक आदमी अथवा अल् अमीन लोग ही प्रमाण माने जाते हैं । पुराने जमाने में साहूकार का यही अर्थ था । सारा समाज जिस की नेकी पर विश्वास करता है, उसी को साहूकार कहते थे । जो खोर नहीं है, दुराचारी नहीं है, उसी का कहते थे साहूकार । लेकिन जिस तरह नीति शब्द बिगड़ गया उसी तरह साहूकार शब्द भी बिगड़ गया है । आज बल जिस के पास बहुत धन है और जो बर्जा दे कर सूद लेता है उसी को साहूकार कहते हैं ।

धन की बात हम छोड़ दें । जो लोग ईमानदार हैं, सदाचारी हैं, जिन की नेकी पर समाज का विश्वास है, वे ही समाज का उत्तम धन हैं । लोगों की चारित्र्य-सम्पत्ति ही किसी भी समाज की पूँजी है ।

(१५ जनवरी १९६५)

बौद्धिक आलस्य

सृष्टि के नियमों को पहचान लेना, हर घटना का कारण समझ लेना, मुसीबतों को दूर करने का उपाय ढूँढना और इरादों में कामयाब होने के लिए छोटी-बड़ी योजनाएँ चलाना, ये सब हैं मनुष्य के पुरुषार्थ के प्रकार । अपनी विचारशक्ति और कामशक्ति काम में लाना यही है—जीवनानन्द पाने का सबसे अच्छा तरीका । इस रास्ते बुद्धि तेज होती है । विचारशक्ति शुद्ध होती है । अनेक चीजों का एक साथ आकलन करने की आदत पड़ती है और मनुष्य समय बनता है । ज्ञान की उपासना करते और योजनाएँ कार्यान्वित करते मनुष्य के ध्य की कसौटी होती है और ध्य ही मानवीय जीवन का विशेष लक्षण है । किसी महान् उद्देश्य की सिद्धि के लिए बारह-बारह बरस तक प्रयत्न करते रहना

क्या है ? जो होने वाला है, हो कर ही रहेगा । हम लाख प्रयत्न करेंगे तो भी न होने वाला कभी नहीं होगा और हाने वाला कभी टल ही नहीं सकेगा । जिस ने देव का इस तरह सहारा लिया उस की बुद्धि क्या कर चलेगी ? उस का पुरुषार्थ मन्द होते-होते बन्द हो जायेगा ।

आस्तिक लोग का देववाद कभी-कभी ईश्वर निष्ठा का रूप धारण करता है । भगवान् कतुम अकतुम और अयथा कतुम समथ है । कराना, नहीं करना और किये हुए का उलटा करना यह सब भगवान् का ही अधिकार है । ऐसी हालत में हम पुरुषार्थ क्यों करें ?

ईश्वर की इच्छा या हेतु समझने का प्रयत्न भी हम न करें । भगवान् की वह सब लीला है । और लीला तो निहंतुक्त ही हाँ सबती है ।

बौद्धिक आलस्य का दूसरा एक सहारा है आनुवंशिक संस्कार का सिद्धांत । एक आदमी होगियार है, दूसरा होगियार नहीं है, एक की बुद्धिशक्ति तेज है, दूसरा बुद्ध है इस का कारण हम क्यों ढूँँ ? दिमाग चलाना हमारा काम नहीं है । क्या हम नहीं जानते कि मनुष्य के स्वभाव की सारी खबियाँ और खामियाँ उन्हें उन के माँ बाप के या पुरखों के आनुवंशिक संस्कारों से ही मिलती है । बनिया का बच्चा पैसे के हिमाव में चतुर होने वाला ही है । दूध का बच्चा कही हिसाब रखने में समय हुआ है ? जिस का काम उसी के द्वारा हो सकता है, दूसरा करने लगा तो ठोकर ही खायेगा ।

यही कारण है कि हमारे यहाँ लोगों के मन में शिक्षा के प्रति पूरा उत्साह नहीं पाया जाता । और हमारी बहुत सी जातियाँ हमेशा पिछड़ी हुई ही रहती हैं । आज कोई आदमी दुखी और दरिद्र है इस का हम शोक क्यों करें ? पूवजम में उस ने अच्छा काम नहीं किया होगा इस लिए आज ऐसी बुरी हालत में पड़ा हुआ है । यह दलील है बौद्धिक आलस्य का तीसरा सहारा । इसे कहते हैं पुनजम के सिद्धांत पर विद्वान् । एक आदमी शरीर से दुबल है इस का कारण हम क्यों ढूँँ ? क्या हम नहीं जानते कि पूवजम में इस ने कुछ पान किया था । इस लिए इस जम में इन के शरीर का भास नहीं रहेगा ।

दब, आनुवंशिक संस्कार और पुनजम का असर कुछ-न-कुछ होगा तो जरूर । लेकिन हर चीज में उसी का सहारा ल कर बैठ जाना साधने की एकलोक न उठाना पुरुषार्थ न करना यह हो गयी है हमारी आदत । उसी की मैं बौद्धिक आलस्य कहता हूँ । यह रोग और किसी भी रोग से ज्यादा भयानक है ।

और जब लोग दब, आनुवंशिक संस्कार और जमातरक परिणाम की

आगे कर के सामाजिक अत्याय का समायन करने बैठते हैं तब तो बौद्धिक आलस्य के साथ नैतिक आलस्य भी काम करने लगता है। अत्याय और अत्याचार को देख कर हमारा पुण्य प्रबोध जागृत होना चाहिए। लेकिन हम तो आराम से कहने लगते हैं, 'पूव जन्म में कुछ बुरा काम किया होगा इस लिए इस जन्म में ऐसा नसीब ले कर आदमी आया है। इस का इलाज हम क्या करें? अपना-अपना भुगतने के लिए ही तो मनुष्य को जन्म मिलता है।'

जहाँ-जहाँ जनता को उपदेश दिया जाता है, धर्मप्रवचन किये जाते हैं, शिक्षा का प्रबोध है या राष्ट्रीय दुर्दैव की मोमासा होती है वहाँ-वहाँ हमारे बौद्धिक आलस्य के बारे में लोगों का ध्यान खींचना ही चाहिए।

(१ फरवरी १९७०)

भावनात्मक एकता की बुनियाद

विविधता न एकता यही है वृक्ष का नियम। विविधता में एकता की स्थापना करना यही है सब सञ्चतियाँ की प्रेरणा। विविधता के बिना सन्तोष नहीं। विविधता बिना समृद्धि नहीं। और एकता के बिना न सिद्ध होता है प्राण, न बढ़ता है सामर्थ्य। विविधता को गूँथ कर के एकता की स्थापना करना बड़ा आसान है सस्ता है। लेकिन उस में जीवन की सायकता नहीं है।

हम अनाज पीस कर आटा बनाते हैं। आटे के कणों में एक-दूसरे को पकड़ रखने की शक्ति नहीं है। आटे में पानी डालने से हम उसे बाँध सकते हैं। उसी आटे को सेंक कर जब उस में घी और चीनी का पाक डालते हैं तब उस का लड्डू बनता है। शीतकाल के दिना में वह लड्डू और भी सख्त और मजबूत बनता है। इस तरह एकता लाने के प्रधान तत्त्व चार हुए—पानी, जिसे हम जीवन भी कहते हैं, घी जिसे हम स्नेह कहते हैं और चीनी जिसे हम माधुर्य कहते हैं। और शीतकाल की सर्दी से परेशान होने वाले हम लोग ठंडक को सक्कट कह सकते हैं। भावनात्मक एकता अगर सिद्ध करनी है तो उस के लिए चाहिए स्नेह, माधुर्य, समान सक्कट और सहजीवन का अनुभव।

हमारे पुरखाने जब भावनात्मक एकता की आवश्यकता महसूस की तब उन्होंने उस के लिए शातकाल का एक त्योहार मुकरर किया और तय किया कि उस दिन छोटे-बड़े सब लोग मतभेद, मनमुटाव, अपमान, वमनस्य आदि सब

मूल वर एक दूसरे से मिलें और तिल और गुड़ के लड्डू प्रेम से एक-दूसरे को दे दें। तिल और गुड़ का आहार पीतबाल में पीष्ट होना ही है। भावनात्मक एकात्मता के इस त्योहार को सन्नाति का त्योहार कहते हैं। इस दिन पीतबाल का जोर कम होता है और वसन्तकाल के यौवन की आभा पैदा होती है। सन्नाति के त्योहार का कहना है कि आपस में स्नेह बढ़ाओ, माधुर्य बढ़ाओ। जीवन के सहयोग के द्वारा परस्पर ओतप्रोत हो कर हार्दिक सगठन मञ्जूर करो और सबका पर विजय प्राप्त करो।

जिन लोगों में आत्मोद्यता है उन में ईर्ष्या, अगुणा, मत्सर, एकांगिता, सकुचितता, लोभ और अमप नहीं आ सकते। मेरे हित सम्बन्ध जिन के हाथों में मैं सुरक्षित मानता हूँ वे सब मेरे आत्मीय हैं। जब हम सोने हैं तब बाहर से आ कर हमें कोई मार न डाले इसलिए हम दरवाजा बन्द कर के सोते हैं। पर के लोग एक-दूसरे से डरते नहीं। घर में जितने स्वजन अधिष्ठ हों उतने हम सुरक्षित हैं। बच्चे अपनी प्यारी चीजें, अपने खिलौने, सुखी से माँ के हाथ में सौंप देते हैं। और किसी को छूने तक नहीं देते। उन को विश्वास है कि माँ के मन में बच्चे का हित ही प्रधान है। स्वार्थत्याग कर के भी माँ अपने बच्चे को प्रसन्न रखती है। यह प्रेम, यह विश्वास और स्वाथत्याग ही भावनात्मक एकात्मता की बुनियाद है।

स्त्री और पुरुष के बीच शरीर रचना और मनोरचना का बिल्गण भेद होता है। लेकिन ऐसे भेद के कारण वे एक-दूसरे के दुश्मन नहीं बनते। एक दूसरे से भागते भी नहीं। दोनों के बीच जो भेद होता है वही उन का एक-दूसरे के प्रति आकर्षण होता है। प्यारी चीज एक-दूसरे को देने में, एक-दूसरे की सेवा करते थक जाने में उन्हें विशेष आनन्द मिलता है। यह भी अक्सर पाया गया है कि भेद के तत्त्व उत्तान और छिछले होते हैं। और वे स्थायी भी नहीं होते। इस से विपरीत एकात्मता के तत्त्व गहरे, परस्पर पोषक और स्थायी होते हैं। इसीलिए तो यह दुनिया टिकी है और सामाजिक जीवन सब तरह के प्रत्यवाय होते हुए भी अबाधित चलता आया है।

विज्ञान कहता है इस विश्व में परस्पर विरोधी दो बल काम करते हैं। एक बल होता है हर चीज को केन्द्र की ओर खींचने का और दूसरा बल होता है उसी चीज को केन्द्र से हटाने का, दूर हटाने का। इन दो परस्पर विरोधी शक्तियों के सहयोग से चीजें गोल माल धूमती हैं। जब गोफन में ककड रख कर हम जोर से घुमाते हैं, तब ककड हमारे हाथ से दूर भागना चाहता है और गोफन की रस्सी उसे हमारे हाथ की ओर खींचना चाहती है। इसीलिए गोफन

गोल गोल धूमती है और उस की रस्सियाँ कसी हुई तग रहती हैं। आकाश में चन्द्र पृथ्वी के इद गिद घूमता है पृथ्वी आदि ग्रह सूर्य के इद गिद घूमते हैं इस में यह दो बल काम करते हैं। चन्द्र अपनी जडगति के कारण पृथ्वी से दूर भागता है और पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण उसे अपनी ओर खींचता है। खींचने की शक्ति को अभिकेंद्रीय शक्ति कहते हैं। चन्द्र से दूर भागने की शक्ति को अपकेंद्रीय शक्ति कहते हैं। दोनों के सहयोग से चक्राकार गति सतत चलती रहती है।

बहुत कम लोग जानते हैं कि भावनात्मक एकता बनाये रखने के लिए ऐसे दोना बलों के सहयोग की आवश्यकता होती है। विविधता भी एक बल है, एकता दूसरा बल है। इन दोनों के सहयोग से ही समाज का स्वास्थ्य कायम रहता है और प्रगति भा सिद्ध होती है।

आजकल हमारे राज्यकर्ता और विद्यागुरु दोनों मानने लगे हैं कि देश में अनेक भापाएँ होने के कारण देश की एकता खतरे में आयी है और अँगरेजी के द्वारा ही देश की भावनात्मक एकता टिक सकती है। हम इस चीज को नहीं मानते। आज के राज्यकर्ता को अँगरेजी में राज्य चलाने की आदत पड गयी है। यह इनकी जडता है। राष्ट्रीय भावनात्मक एकता अँगरेजी पर निर्भर नहीं है, इतना ही नहीं अँगरेजी ने ही हमारी भावनात्मक एकता गिथिल कर डाली है। अँगरेजी जानने वाले लोग एक अपनी जातीय जमात बना बडे ह। सामाजिक, औद्योगिक और राजनीतिक नेतृत्व इही का है। फौज में दाखिल हो कर देश की रक्षा के लिए अपना खून कोई देना चाहे तो उसे भी कहा जाता है—अँगरेजी सीखे बिना तुम्हें यह अधिकार भी नहीं मिल सकता। अँगरेज कहते थे अँगरेजों के राज की बदौलत ही देश की एकता टिकी हुई है। अँगरेज तो चले गये। अब उन के शिष्य कहते हैं कि अँगरेजी के कारण ही देश की एकता टिकी हुई है। एकता मजबूत करना ही तो अँगरेजी का राज मजबूत करो। वे कोई नयी बात लाना नहीं चाहते। वे कहते हैं राज अँगरेजी में चल ही रहा है। उसी को कायम करो। उन की बातें सुन कर प्रजा ने, जनता ने अपना हर प्रकार का सामाजिक और सावजनिक काम भी अँगरेजी में चलाया है और यह रिवाज बढ़ता चला जा रहा है। यहाँ तक कि अँगरेजी को हटाने का आन्दोलन भी सफलतापूर्वक चलाना है तो उसे भी अँगरेजी के द्वारा ही चलाना होगा। काँटे को निकालने के लिए काँटा ही चाहिए।

हमारा स्पष्ट अभिप्राय है कि जहाँ तक भाषा का तात्त्विक है, भावनात्मक एकता भारतीय भाषाओं के द्वारा ही सिद्ध हो सकती है।

भावनात्मक एकता लाने के लिए जरूरी है सवधम समभाव, जरूरी है

भावनात्मक एकता की बुनियाद

भारत की सब भापाओं के प्रति प्रेम और भापाओं की पारिवारिक भावना।
 खरूरी ह उच्चनीच भाव का उच्चाटन।

हमारे पुरखो ने देखा कि एक ही छानदान वा एक समाज न बने, एक ही कुनवे वा एक राष्ट्र न बने। इसलिए उन्होंने नियम बनाया कि एक ही छानदान के अदर स्त्री-मुख्य के विवाह नही हो सकते। जिसे अंगरेजी में Prohibited degree of relationship कहते हैं और जिसे हम सगोत्र और सपिण्ड विवाह का निषेध कहते हैं उस का उद्देश्य ह हमारी भावनात्मक एकता बिल्कुल सन्तुष्ट न हो। इसी इलाज को व्यापक बना कर हम कह सकते हैं कि विवाह तो अपनी जाति के बाहर ही होने चाहिए। जिस तरह आज एक छानदान के अदर विवाह हो गही सकते उसी तरह एक जाति के स्त्री-मुख्य वा विवाह अदर अदर नही होना चाहिए।

राज्य का अधिकार चलाने वाले प्रधान, मंत्री आदि जब अपने सेक्रेटरी नियुक्त करते हैं तब भी यही नियम होना चाहिए कि कायस्थ वा सेक्रेटरी कायस्थ न हो। केन्द्रीय सरकार में बगाली अफसर का सेक्रेटरी बगाली न हो। सामाजिक सम्बन्धों में जो जितना नजदीक ह उस वा सहयोग कम लिया जाये। जो लोग दूर दूर के हैं उही को अपनाया जाये। वसोयतनामा कर के जब हम अपनी जायदाद दूसरे को देते हैं तब भी यही दृष्टि रखनी चाहिए।

श्री विनोबा का भूदान ग्रामदान का आन्दोलन भी भावनात्मक ऐक्य के लिए हर तरह से पोषक ह। निस्वार्थ सेवा का कोई भी कार्यक्रम भावनात्मक एकता को बढ़ावा देता ह।

असली बात तो भावना की ही ह। जब हम अपने सब के सब देशवासियों को स्वकीय आत्मीय मानने लगते ह तब हम यथितश राष्ट्रीय एकता ही मजबूत करते हैं।

(१ अक्टूबर १९६८)

भावनात्मक एकता, जीवनात्मक एकता

हाथ, पाँव नाक और आँखें आदि अवयव मिल कर शरीर बनता ह। ये अवयव अलग-अलग जी नही सकते। एक दूसरे के सहयोग के बिना अपना काम भी नही कर सकते। जीने के लिए जीवन सफल बनाने के लिए, जीवन वा उद्देश्य

घरितार्थ करने के लिए सब अवयवों की आवश्यकता है और इन सब अवयवों का सहयोग स्वाभाविक भी है। इसी लिए हम शरीर को जीवन का एक अविभाज्य एकम कहते हैं। और अवयव समुदाय को एक व्यक्ति कहते हैं। क्योंकि इन की एकता स्पष्ट है, अपरिहाय है।

माता पिता, पुत्र-कन्या, भाई-बहन, पुत्र-पौत्र आदि अनेक व्यक्ति मिल कर कुटुम्ब बनता है। कुटुम्ब भी एक व्यक्ति है। माता पिता, पुत्र-पुत्री आदि सब इस के अवयव हैं। लेकिन ये अवयव स्वतंत्र जो सकते हैं। हर एक में अपना अपना अलग कुटुम्ब बनाने की क्षमता है। लेकिन परस्पर सहयोग के बिना, एक-दूसरे के साथ घनिष्ठ सहयोग किये बिना कुटुम्ब नहीं बन सकता। जब दो मिल कर के एकचित्त होते हैं, एकहृदय होते हैं, पूरा सहयोग के द्वारा दोनों का जीवन ओतप्रोत हो कर एक नया, समय जीवन पैदा होता है तब उसे कुटुम्ब कहते हैं। कुटुम्ब में सब व्यक्तियों का जीवन ऐसा ओतप्रोत रहता है कि उन में विशाल और सफल जीवन की एकता आप ही आप सिद्ध होती है और वह भावनात्मक एकता द्वारा प्रकट होती है। जीवनात्मक एकता जितनी अधिक उतनी ही भावनातीत एकता स्थायी और बुलन्द होती है।

कुटुम्ब एक सस्था है। शरीर भी सब अवयवों की एक समन्वित सस्था है। इसी तरह एक गाँव, एक शहर, एक पाठशाला, एक दूकान, एक कारखाना, एक नगरपालिका आदि सब सस्थाएँ ही हैं। इन सस्थाओं में परस्पर सहयोग करने वाले व्यक्ति मानो उस सस्था के अवयव हैं, सब मिल कर सस्था का कलेवर बनता है। उन सब की साभिप्राय सहप्रवृत्ति ही सस्था का प्राण है। यह प्रवृत्ति या प्रवृत्तियाँ जितनी जीवन व्यापी हों उतनी ही उस सस्था की स्थिरता, दृढ़ता और निरोगिता सिद्ध होती है। वहीं कही सहयोग कुछ मतलब तक ही सीमित होता है। कोई नाटक मण्डली भी एक सस्था है। नाटक देखने वाले प्रेक्षकों के बिना नाटक धम्पनी का अस्तित्व नष्ट होगा। लेकिन नाटक करने वाले नट और देखने वाले प्रेक्षक इन का सहास या सहयोग केवल नाटक देखने तक ही सीमित होता है। इन के जीवन नाट्यशाला में ही ओतप्रोत होते हैं, अथवा वे बिल्कुल अलग हैं, स्वतंत्र हैं, असम्बद्ध हैं।

हमारे जमाने में सहयोगी सस्थाएँ चलती हैं। हर एक की थोड़ी थोड़ी पूँजी एकत्रित कर के एक सहकारी मण्डली स्थापित करते हैं। वह एक अच्छी मुख्य वस्तुयुक्त सस्था होती है। किन्तु ऐसी सहकारी सस्थाओं में सहयोग परिमित अल्पमात्र ही होता है। जिस काय के लिए अथवा जिस हेतु से प्रेरित हो कर इन में सहयोग चलता है, उस बचन तत्त्व को अंगरेजी में nexus कहते हैं।

द्वानदार और ग्राहक के बीच पैसे और चीज का स्नेहन ही nexus होता है। यह नेक्सस या बंधनतत्त्व जितना गहरा और व्यापक होगा उतनी उम्र सम्बन्ध की, उस सस्या की भावनात्मक एकता अधिक् होगी। कुटुम्ब में पति-पत्नी और उन के बाल बच्चे मिल कर जो सस्या बनती है उस में नेक्सस होना ही गढ़ और स्थायी प्रेम का। स्वतः से पैदा हुआ यह स्नेह इतना उत्कट और स्वायी होता है कि हम उसे आध्यात्मिक सम्बन्ध कहते हैं। उसी परिवार में जब घर का काम करने के लिए नौकर रखे जाते हैं, तब वे नौकर भी घर का सब काम करते हैं। सब के लिए एक साथ रसोई बनती है। सब मिल कर वे पारिवारिक जीवन सम्पन्न करते हैं। ता भी नौकरों का जीवन कुटुम्ब-परिवार में इतना घनिष्ठ व इतना स्थायी नहीं होता। नौकर और मालिक के बीच स्नेह-सम्बन्ध पदा हो सकता है। किन्तु वह इतना घनिष्ठ व स्थायी नहीं होता। उन के बीच नेक्सस अलग होता है। तनटवाह या मजदूरी ही स्वामी-सेवक को बाँधती है। यह बंधन आसानी से टूट सकता है। लेकिन हमारे देश में ही नहीं, दुनिया के सब देशों में कभी-कभी स्वामी-सेवक का सम्बन्ध पुस्त-दर-पुस्त चलता है। फिर वहाँ सेवा और मजदूरी का नेक्सस मौन होता है। परस्पर स्नेह और उस में से पदा होने वाली परस्पर निष्ठा ही मुख्य नेक्सस बनता है। यही ही अनन्त फलदायी भावनात्मक एकता। इस में व्यक्ति अपने स्वाय को भूल जाता है। दूसरे के हित को, दूसरे के सुख को और दूसरे की प्रसन्नता को ही प्रधानता दी जाती है। नौकर के बीमार पडने पर जब मालिक अपने लडके के समान ही उस को सेवा करता है तब दोनों के बीच प्रगाढ स्नेह सम्बन्ध बँध जाता है। इसी को सन्त तुकाराम ने कहा है—'दया करणें जें पुत्रासी, तचि दासा आणि दासी।' भावनात्मक स्नेह, सहयोग और अतिम एकता ही सम्बन्ध को पवित्र बनाती है और उसी में जीवन का चरम साफल्य है। ऐसे दृढ़ स्नेह के द्वारा ही शरीर, कुटुम्ब, सस्या, जाति, देश, राष्ट्र, धर्म आदि सस्याएँ टिकी हुई हैं और जीवन साफल्य प्राप्त कर सकी हैं।

भिन्न भिन्न सस्याओं के अवयवों को या व्यक्तियों को बाँधने वाले तत्त्व अथवा नेक्सस अलग-अलग होते हैं। ऐसे तत्त्वों को ही हमारी संस्कृति ने सामान्य नाम दिया है धर्म। धर्म संभालने से व्यक्ति और समाज, अवयव और शरीर एकत्र रह सकते हैं—धर्मो रक्षति रक्षित। अगर धर्म का हमने पालन किया तो धर्म हमारा पालन अवश्य करेगा। इसी को कहते हैं Element of Cohesion अथवा घृति। धर्म में यह घृति कहाँ से आती है? हीरे मणि आदि रत्नों के अदर सूक्ष्म परमाणु जिस आकर्षण से एक दूसरे को पकड़े रहते हैं उस तत्त्व

को कहते हैं Water of Crystallization हम उसे घमत्त्व कह सकते हैं। पदार्थ के गुणधर्म इसी में से पैदा होते हैं। परमाणुओं को एकत्र रखने वाला यह जो तत्व है उसी को हमारे शास्त्रों ने धृति कहा है। ऐसी धृति जब नष्ट होती है, सब सेना के सैनिक तितर बितर होते हैं और सेना का नाश होता है।

हिंदू, मुसलमान, ईसाई आदि धर्मों में जो धृति है वह अच्छी है, लेकिन पर्याप्त नहीं है। सारे राष्ट्र को एकत्र रखने की शक्ति उस में नहीं है। इस्लाम और ईसाई घमत्त्व हमारी एक राष्ट्रीयता को मजबूत नहीं करते। उन का अपना स्नेहत्त्व दुनिया के अनेक ईसाइयों से और मुसलमानों से एकता स्थापित करता है। किंतु एक राष्ट्र के अंदर की राष्ट्रीय एकता को सिधिल करता है। इस खतरे को देख कर ही आज के जमाने की कोशिश है कि धर्मों की साम्प्रदायिकता पहचान कर उसे गौण बनाया जाये और इस युग का तकाजा पहचान कर राष्ट्र धर्म को, राष्ट्रीय एकता को प्रधानता दी जाये।

और राष्ट्रधर्म भी जब सकुचित-सा मालूम होने लगा तब हम मानवता को प्रधानता देने की कोशिश में हैं।

कुल, परिवार जाति, वंश, वंश, वंश, राष्ट्र सम्प्रदाय आदि भावनात्मक एकता के सब तत्त्वों को पहचान कर, उन की योग्य कदर कर, हम सब को मानवता की छत्रछाया के नीचे लाना चाहते हैं। मानवता ही सार्वभौम धर्म है। 'सर्वेभ्य सुखिन सन्तु सर्वे सन्तु निरामया' यह है मानवता का भावनात्मक मंत्र। 'जय हिंद के साथ 'जय जगत है हमारा उदघोष। हम अनुभव करने लगेंगे कि मानवता की उत्तमोत्तम आदर्शों से अनुप्राणित करने वाले नारायण को जब हम साय लेते हैं तभी मानवता में आर्यता और सबकल्याणकारिता आ सकती है।

मानवता का आदर्श है श्रेष्ठ और निवृत्तवर्ती भविष्य के लिए सब तरह से अनुकूल। लेकिन वह आदर्श भी चरम कोटि का नहीं है। हमें तो अत में मानव जाति के द्वारा समस्त जीवकोटि की सेवा करनी है और इस तरह विश्वात्मव्य का अनुभव करना कराना है। चंद व्यक्ति आज भी विश्वात्मव्य तक पहुँच सकते हैं और व्यक्तिगत भोक्ष पा सकते हैं। लेकिन पूर्ण आदर्श तो सबमुक्ति का है और इसी लिए मानवता की उपासना में मानवों के हृदय में विराजमान नारायण की भी उपासना चाहिए। आज नारायण का यह स्मरण केवल सकल्पमात्र ही क्यों न हो, उसे हम छोड़ नहीं सकते। नारायण की स्मृति से हम असह्य आपत्तियों से बच जाते हैं।

“विपद् विस्मरण विष्णो सम्पन्नारायणस्मृति ।”

सर्व विद्वय में बसाने वाले सिन्धु का भुज जाग महो एव बड़ी विनयि है और मानव समुदाय के हृदय में रहने वाले नारायण की स्मृति कायम रगना एव से बड़ी नियामक है ।

(११ प्रश्नो ११७)

धार्मिक-सांस्कृतिक क्रान्ति

जब गांधीजी ने आदिम जाति संघ का स्थापना की तब उन्होंने मुझ से कहा था कि ' मेरे पास रचनात्मक काम की संकल्पों योजनाएँ हूँ जिन्हें मैं जिन भी नहीं करता । आदिम जाति की सेवा के लिए ठहरना याता मिले, तब मैं ने एव संघ खड़ा किया । जब तक संघ का काम के लिए आदमा मिलते नहीं, तब तक उस की चर्चा करने से क्या लाभ ? '

धम-मुघार, सामाजिक मुघार देग की गिना विनयन और ओचोगिक हालत में मुघार—ऐसे अनेक कायक्रम उन के पास थे । लेकिन अनुभव से वे इस नतीजे पर आये थे कि देग की आजादी के जिना समाज में चारित्र्य-तेज प्रगट नही हो सकेगा । इसी लिए राष्ट्रीय एकता और अत्याय निमूलन के ऊपर ही उन्होंने अपनी सारी शक्ति केन्द्रित की । और इसी लिए उन्होंने समाजमुघार के सब से बड़े दो कायक्रम ही राजनीतिक क्षेत्र में दाखिल किये । (१) हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, यहूदी, पारसी आदि धमसमाजों में सामजस्य स्थापन किये बिना भेद-नीति-पटु अंगरेजा की हम यहाँ स हटा नही सकते और (२) अस्पृश्यता जैसे घोर अत्याय को दूर करने के लिए धम मुघार किये बिना चारा नही । इन दो घातों पर उन्होंने अधिक जोर दिया । हमारी राजनतिक और राष्ट्रीय कम जोरियाँ हूँ उन्हें पहचान कर उन से लाभ उठाने वाले विदेशी राज्यकर्ता और धमप्रचारक क्या कहते हूँ उस पर ध्यान देना जरूरी था ।

हम लोग अपने को मुघारे बिना केवल दोष बताने वाले पर चिढ़ जाते थे और मिशनरियाँ का और गोरों का द्वेष करने लगे थे । गांधीजी ने बताया कि द्वेष से हमारी शक्ति नहीं बढेगी । निष्प्राण और निर्वाय लोग जब और कुछ नहीं कर सकते हूँ, तब विरोधियों का द्वेष करते हूँ, निन्दा करते हूँ और अघा विरोध करते हूँ ।

हिन्दू समाज असह्य जातियाँ में विभक्त होने से कमजोर हूँ । इन जातियों

में कुल मिला कर जैसी आत्मीयता चाहिए वैसी नहीं है। 'आत्मीयता तो परस्पर आदर और सेवा के द्वारा ही बढ सकती है,' इतनी सीधी बात लोग नहीं समझते थे। (और दुःख के साथ कहना पड़ता है कि आज भी समझ नहीं रहे हैं।) केवल अभिमान के बल पर सगठन करने गये तो नाम का सगठन हो सकेगा, लेकिन शक्ति का सगठन नहीं होगा। बिना चर्चा किये गांधीजी ने राष्ट्र के सामने यह बात रखी।

जिस किस्म की समाज रचना और राष्ट्रीय एकता देश के लिए जरूरी थी, उसे प्रत्यक्ष जीवन में लाने के लिए और आदर्श नमूना पेश करने के लिए गांधीजी ने अपने आश्रम की स्थापना की। जहाँ पर हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि सब धर्मों के लोग, और ब्राह्मण से ले कर हरिजन तक सब हिन्दू एकत्र रहें और जीवनव्यापी सहयोग करें ऐसा आदर्श वायुमण्डल था। तनिक भी भेद के बिना सब लोग टट्टियाँ साफ करें, सब साथ मिल कर रसोई बनावें, एक साथ मिल कर खायें और प्रायना भी एक साथ कर ऐसा वायुमण्डल उन्होंने देश के सामने रखा।

स्त्री जाति की समानता और स्वतंत्रता पर भार दे कर आश्रम में स्त्रियों से सब तरह के काम लेना उन्होंने शुरू किया और स्त्रियों में काम संभालने का कौशल और आत्मविश्वास बढाया। सब प्रांता और सब भाषाओं के लोग आश्रम में एकत्र रहते थे। सब प्रादेशिक भाषाओं की वहाँ पूरी प्रतिष्ठा थी। और साथ साथ सभी की सम्मति से राष्ट्रभाषा हिंदी का भी वहाँ विकास होता था।

एसी पूव तयारी कर के गांधीजी ने स्वराज के आन्दोलन के लिए कांग्रेस जैसी सस्था को पसन्द किया। कांग्रेस ने स्वराज का आन्दोलन जोरा से चलाया सही और गांधीजी का नेतृत्व पाने के हेतु गांधीजी को शर्तें भी मजूर की। लेकिन आज का अनुभव बताता है कि अधिकांश कांग्रेसी लोगों ने गांधीजी की जीवन-दृष्टि हृदय से अपनायी नहीं थी। अगर सारे राष्ट्र ने सब धर्म-स्वभाव को मजूर किया होता तो देश का बँटवारा नहीं होता।

प्रांतीय भाषाओं का ईश्वर निर्मित अथवा इतिहास सिद्ध महत्त्व बढूल किया होता तो भाषा के झगडे आज खडे नहा हाते। जवाहरलालजी जैसे कांग्रेसी नेताओं को विश्वास था कि देश को एकता अँगरेजी के द्वारा ही आज संभाल सकते हैं। उन की प्रांतीय भाषाओं की राष्ट्रीय शक्ति पर विश्वास नहीं था। इस लिए उन्होंने भाषावार प्रांतरचना का (राज्य रचना का) हृदय से विरोध किया और अंत में लाचारी से स्वीकार किया। नतीजा यह हुआ कि प्रांतीय

भाषाओं का नेतृत्व जो राष्ट्रीय वृत्ति के लोगों के हाथ में था वह वहाँ से फिसल गया और संकुचित वृत्ति के लोगों के हाथ में पहुँच गया ।

इस सच्ची बात को न समझने वाले लोग मानने लगे हैं कि प्राचीन भाषाओं के कारण ही प्राचीनता बढ़ती है और राष्ट्रीय एकता खतरे में आती है ।

पिछले बीस बरस की गलत नीति के कारण अँगरेजी का पक्ष मजबूत हो रहा है । और हिंदी वाले अब अपने अंधे विरोध से उसी अँगरेजी पक्ष को मजबूत कर रहे हैं ।

लोग प्राणपन से चाहते हैं भारत की एकता लेकिन प्रत्यक्ष क़ाय से (पर स्पर द्वेष और कटुता से) देश के टुकड़े करने की ही मानो पूँव तयारी कर रहे हैं । केवल बहुमत से एक पक्ष अपना आप्रह दूसरे पक्ष पर लादने की कोशिश करेगा तो दूसरा पक्ष एकता को तोड़ कर अलग होने की कोशिश करेगा ही ।

किसी समय अमरीका के युनाइटेड स्टेट्स ने राष्ट्र का बँटवारा टालने के लिए सशस्त्र गृहयुद्ध किया । उत्तरी राज्यों ने दक्षिणी राज्यों का सशस्त्र विरोध किया और उन्हें हरा कर राष्ट्र की एकता कायम की । उस ज़माने में वह हो सका । आज के युग में भारत के लिए, यह बिल्कुल शक्य नहीं है । केवल समझौते से ही काम कर सकते हैं । देश में काफ़ी अहिंदी लोग हिंदी के पक्ष में हैं । वे सब मिल कर अगर दक्षिण का अनुनय करें, सेवा और त्याग के द्वारा उन्हें जीत लें, तो हम हिंदी के लिए फिर से अनुकूल वायुमण्डल बना सकेंगे, जो गांधीजी के दिनों में था ।

गांधीजी ने केवल हिंदू मुस्लिम एकता, अस्पृश्यता निवारण और आदिम जाति की सेवा पर ही जोर दे कर प्रारम्भ किया, लेकिन वही पर हमें ठहर नहीं जाना है । जहाँ-जहाँ सामाजिक छोटे-बड़े का भाव है और पिछड़ापन है, वहाँ वहाँ दृढ-सकल्प से न्याय और समानता की स्थापना करनी चाहिए । 'सब वर्गों को शिक्षा मिले और सब की आर्थिक उन्नति हो, यह जरूरी है । किंतु केवल आर्थिक उन्नति से हमारे सामाजिक और सांस्कृतिक दोष दूर नहीं हो सकते । हमारी छिन्नभिन्नता भावनात्मक भी है और सांस्कृतिक दोषों के कारण भी है । समाजवादकी दुहाई दे कर, और आर्थिक उन्नति का नारा लगा कर यदि देश की हालत सुधर जाती तो इन बीस बरसों में राष्ट्र ने स तोपकारक प्रगति कर ली होती । 'सामाजिक समानता' स्थापन करने के लिए समाज में मजबूत सामाजिकता का होना जरूरी है । कांग्रेस ने माना था कि घमभेद होते हुए भी भारत के हिंदू-मुसलमानों में एकराष्ट्रीयता है । अनुभव ने बताया कि जहाँ

सामाजिक भेद के कारण अलगाव है, वहा राष्ट्रीय एकता टिक नहीं सकती । देश का बँटवारा क्रबूल करना पडा यह इस बात का इतिहास सिद्ध प्रमाण है ।

इस अनुभव से अगर हम सयाने न हुए तो बँटवारे की बात फिर से सामने खडी ही जायेगी । आज कोई बँटवारे की बात मुँह से नही करता लेकिन प्रत्यक्ष आचरण में हम उसी को अपरिहार्य बना रहे हैं ।

सामाजिक समानता और साथ साथ हृदय की आत्मीयता स्थापित करने के लिए प्राणपण से चेष्टा करना, यही मुख्य काम है । बाह्य उपायों से यह अपने आप नही होगा । इस के लिए सामाजिक धार्मिक सांस्कृतिक और आध्यात्मिक कार्यक्रम बना कर उसी में सारी राष्ट्र शक्ति लगानी चाहिए । साम्कृतिक क्रान्ति का ही यह काम है ।

(१ फरवरी १९८८)

क्रान्ति का रास्ता खुला कर दें

घर बनाते समय उस की रचना हम उस प्रकार की करते हैं, जिस प्रकार का जीवन हम उस में जीना चाहते हों । कौटुम्बिक जीवन और गृह रचना क बीच प्रारम्भ में अच्छा मेल होता है । जीवन का ढग जैसा का तैसा रहा और केवल कुटुम्ब का विस्तार बढा ता अमुक समय तक घर म कुछ मुधार कर के काम चलाया जा सकता है । जसी जीवन-वृद्धि वैसी गृह रचना—इस नियम का सवत्र पालन होता है ।

लेकिन कालांतर से जीवन का ढग बदलता है । बदल के कारण अनेक हा सकते है । कुछ कारण हमें अनुकूल लगेंगे, कुछ प्रतिकूल, लेकिन जब तक ये मौजूद है तब तक हम अपना जीवनक्रम बदलना ही पडेगा और यह बदला हुआ जीवनक्रम एक बार अनुकूल सिद्ध हुआ ता उस के अनुसार सारी गृह रचना बदले बिना चारा ही नहीं ।

लेकिन मनुष्य जिस प्रकार अपना आदतें झटपट छोड नही सकता उसी प्रकार जीवन क्रम बदल जाने पर भी गृह रचना छाडन को वह तयार नहीं हो जाता । अमुविधा सहेगा लेकिन पुराने ढग का आपह व साथ पकड रमेगा । अमुक हद तक यह मयास्थितिकर वृत्ति इष्ट भी होती है । लेकिन वह अनन्तकाल तक नही चल सकती । उस पुराना मकान ताड कर उस के स्थान पर नये ढग

क्रान्ति का रास्ता खुला कर दें

४१३

कर इस भेद का उपेक्षा कर के सत्ताप मानते ह । लेकिन यह कमजारी अब आपदा बरदास्त नहीं हो सकेगी । हर एक धर्म-ममाज के अगुआ शान्त-समाना भाव धारण कर के आज भी अधिक नौकरिया, अधिक अधिकार और विधानमाय पक्षपात मांगते ही जाते हैं ।

स्त्री-पुरुषों के अधिकार, जातपात और धर्मभेद इन तीन सामाजिक भेदों का अब तक उल्लेख किया । उस के साथ आर्थिक परिस्थिति को ले कर जो अयम चलता ह, गोपण बढ़ता ह और अतंतोगत्वा बग विग्रह खडा होता ह उसे भी ध्यान में रखना चाहिए । राष्ट्रीय समस्या के इन सवाल को हम ने अपनी परिस्थिति का अध्ययन कर के अपने ढंग से गीघ्रता से हल किया होता ता बात अलग थी । लेकिन हम यह अध्ययन परिश्रम करना नहीं चाहते ।

आर्थिक व्यवस्था के इस रोग की ओर पहले ध्यान आकर्षित किया पश्चिम क लोग ने । चुनावे इस रोग का इलाज भी हम पश्चिम से प्राप्त करने लगे ह ।

और शिक्षा के सम्बन्ध में तो जैसे-जैसे चर्चा बढ़ती है वैसे-वैसे अविचार और तत्र की तानाशाही बढ़ती ही जाती ह ।

और 'अभिरचि की अराजकता तो पश्चिम की अपेक्षा हमारे यहाँ अधिक ह । उसे अराजकता कहें या अभाव कहें यही समझ म नहीं आता । उस की चर्चा भी तो गति से नहीं होता ।

इन सब क्षेत्रों में पुरानी व्यवस्था कब की सड गयी है, टूट गयी ह और फिर भी उस की चर्चा करने को भी कोई तयार नहीं ह ।

छोटे-बड कल कारखाना में अथवा तत्र 'याय का या सर्वोदय का विचार किये बिना सब के पास स तत्रनिष्ठा का अपेक्षा रखता ह । शिक्षा का तत्र एक साथ जावन-ध्यापी भी बन रहा ह और तानाशाह भी बनता जाता है । नौकरी के कारण और घाट आदि आर्थिक सहायता के कारण यह आर्थिक तत्र तग बनता जा रहा है पाठ्य पुस्तक अभ्यासक्रम की का बोध, परीक्षाओं का ढाँचा और नौकरी में प्रवण पान का गतें—इन सब के कारण उदीयमान पीढ़ी का जीवन बचपन से ही गिबजे में लन की कोर्गिर्ण करता ह और अब तो शिक्षा के तत्र का उपयोग कहीं-कहीं राजनीतिक पक्षों के हित में भी होने लगा ह ।

राजनीतिक सिद्धांतों की शास्त्रिक चर्चा के पाछे देश में पाटोंवाजी इस हद तक बढ़ गयी ह कि चुनाव क दिन आते ही सट्टा और गेयर बाजार का सा वायु मन्गल सारे देश में फल जाता ह । जुआ पड्यत्र और शीतयुद्ध को मिला कर बनाये गये रसायन का नाम ह चुनाव । ऐसी हालत आज देश में चीतरका दिखाई देती है ।

ऐसी हालत में समाजतंत्र, राज्यतंत्र, अर्थतंत्र, शिक्षातंत्र, कल कार-
खाना का तंत्र और भगवान जाने दूसरे कौन कौन से तंत्र और गिनने पड़ेंगे,
कोई भी तंत्र अपनी नतिक भ्रष्टता के कारण हमारे मन में आदर पदा नहीं कर
सकता। तंत्रनिष्ठा का आग्रह Departmental Enquiry का रूप पकड़ता जा
रहा है। ईश्वर निष्ठा, मानव निष्ठा, धर्म निष्ठा, नीति निष्ठा, समाज कल्याण
की निष्ठा और चाननिष्ठा का ऐसी सब पवित्र निष्ठाओं को बिलकुल गौण बनाकर
सबत्र तंत्रनिष्ठा को सावभौम महत्त्व दिया जा रहा है। और लोकसत्ता
का नाम आगे घर के सत्ता वाले सत्याग्रह जैसे पवित्र तत्त्व को भी तत्त्वतः
दवाना चाहते हैं। विदेशी सत्ता के खिलाफ हम उठकर हो सकते हैं, राजसत्ता के
खिलाफ लड़ सकते हैं लेकिन बहुमत की सत्ता के खिलाफ सत्याग्रह नहीं
कर सकते इस तरह की हवा चलने लगी है। सत्याग्रह के नाम से अंधे और
स्वार्थी लोग जहाँ-तहाँ सत्याग्रह का दुर्व्ययोग करते हैं। इस का लाभ उठा कर
लोकनेता बहने लगे हैं कि लोकसत्ता के खिलाफ सत्याग्रह करना ही नहीं
चाहिए।। चाहे जितनी बदहजमी हुई हो तो भी उपवास नहीं रखना चाहिए
ऐसी ही कुछ यह दलील हुई। लेकिन सच्चा सत्याग्रह नेनाओं की सम्मति की
राह देखता ही नहीं।

भर ! इन सब वस्तुओं का एक साथ विचार करने के बाद लगता है कि
अब भारतीय सभ्यता का आमूलग्र नवसंस्करण का समय आया है। ऐसे समय
उदीयमान पीढ़ी के नवजवानों को तंत्रनिष्ठा के स्तोत्रपाठ हम कब तक पढ़ाते
रहेंगे ? तंत्रनिष्ठाओं की सख्या इतनी अधिक बढ़ गयी है कि एक तंत्र के प्रति
निष्ठा धारण करते हुए दूसरी तंत्रनिष्ठा का द्रोह होता है।

इस लिए अब हमें समझ लेना चाहिए कि आमूलग्र सार्वभौम क्रांति की
बेला आ पहुँची है। जो तंत्र इस क्रांति के आड़े आँगे वे अब टिकने के नहीं।
अब तंत्र नहीं किन्तु लोक कल्याण का तत्त्व ही सर्वोपरि होना चाहिए और
क्रांति का माग खुला कर देना चाहिए।

यह कोई नियम नहीं है कि क्रांति अंधी ही होनी चाहिए। सयाने लोग जब
अंधे बन जाते हैं तभी क्रांति अंधा होती है और महँगी सिद्ध होती है।

(१ फरवरी १९६२)



पर इस भेद को उभेगा कर के सनाप मानत ह । लेकिन यह कमजारी अब मायदा बरदास्त नही हा सवेगी । हर एक धम-गमाज व अगुआ शात पयाना भाव धारण कर के आज भी अधिक नौकरियाँ, अधिक अधिकार और विधानमाय पणपात मांगते ही जाते हैं ।

स्त्री-पुरुषा के अधिकार, जातपात और धमभेद इन तीन सामाजिक भेदा का अब तक उल्लेख किया । उस के साथ आर्थिक परिस्थिति का ले कर जो अयाय चलता ह, गोपण बढ़ता ह और अततोगतया वग निग्रह गढा हाता ह उसे भी ध्यान में रचना चाहिए । राष्ट्रीय समस्या व इन सबाला का हम ने अपनी परिस्थिति का अध्ययन कर के अपने ढंग स गोघ्रता से हल किया होता ता बात अलग थी । लेकिन हम यह अध्ययन परिश्रम करना नहीं चाहते ।

आर्थिक व्यवस्था के इस रोग की ओर पहले ध्यान आकर्षित किया पश्चिम क लोगो ने । चुनावे इस रोग का इलाज भी हम पश्चिम स प्राप्त करने लगे हैं ।

और शिक्षा के सम्बन्ध में तो जैसे-जैसे चर्चा बढ़ती ह वस-वसे अविचार और तत्र की तानाशाही बन्ती ही जाती ह ।

और 'अभिर्चि की अराजकता' तो पश्चिम की अपेक्षा हमारे यहाँ अधिक ह । उसे अराजकता कहें या अभाव कहें यही समझ में नही आता । उस की चर्चा भी तो गति से नही होती ।

इन सब क्षेत्रा में पुरानी व्यवस्था का की सड़ गयी ह टूट गयी ह और फिर भी उस की चर्चा करने को भी कोई तयार नही ह ।

छोटे बड़े कल कारखाना में अथवा नयाय का या सर्वोदय का विचार किये बिना सब के पास स त त्रनिष्ठा की अपेक्षा रखता ह । शिक्षा का तत्र एक साथ जीवन यापी भी बन रहा ह और तानाशाह भी बनता जाता ह । नौकरी के कारण और प्राप्त आदि आर्थिक सहायता के कारण यह आर्थिक तत्र तग बनता जा रहा है पाठय पुस्तक अम्मासक्रम की का बोध, परीक्षाका का ढाँचा और नौकरी में प्रवेश पाने की शर्तें—इन सब के कारण उदीयमान पीढी का जीवन बचपन से ही शिक्षा में लेने की कोशिशें करता ह और अब तो शिक्षा के तत्र का उपयोग कही-बही राजनीतिक पणो के हित में भी होने लगा ह ।

राजनीतिक सिद्धांतों की तात्त्विक चर्चा के पीछे देश में पार्टीबाजी इस हद तक बढ़ गयी ह कि चुनाव के दिन आते ही सट्टा और नेयर बाजार का सा वायु मण्डल सारे देश में फैल जाता ह । जुआ पड्यत्र और गीतयुद्ध को मिला कर बनाये गये रसायन का नाम ह चुनाव । ऐसी हालत आज देश में चीतरका दिखाई देती है ।

ऐसी हालत में समाजतंत्र, राज्यतंत्र, अथतंत्र, शिष्यातंत्र, कल कार-
खाना का तंत्र और भगवान जाने दूसरे कौन कौन से तंत्र और गिनने पड़ेंगे,
कोई भी तंत्र अपनी नतिक भ्रष्टता के कारण हमारे मन में आदर पैदा नही कर
सकता। तंत्रनिष्ठा का आप्रह Departmental Enquiry का रूप पकड़ता जा
रहा है। ईश्वर निष्ठा, मानव निष्ठा, धर्म निष्ठा, नीति निष्ठा, समाज वल्याण
की निष्ठा और माननिष्ठा को ऐसी सब पवित्र निष्ठाओं को बिलकुल गौण बनाकर
सबत्र तंत्रनिष्ठा को सावभौम महत्व दिया जा रहा है। और लोकसत्ता
का नाम आगे कर के सत्ता वाले सत्याग्रह जैसे पवित्र तत्त्व को भी तत्त्वत
दवाना चाहते हैं। विदेशी सत्ता के खिलाफ हम जबर हो सकते हैं, राजसत्ता के
खिलाफ लड़ सकते हैं लेकिन बहुमत की सत्ता के खिलाफ सत्याग्रह नही
कर सकते इस तरह की हवा चलने लगी है। सत्याग्रह का नाम से अंधे और
स्वार्थी लोग जहाँ-तहाँ सत्याग्रह का दुरुपयोग करते हैं। इस का लाभ उठा कर
लोकनेता कहने लगे हैं कि लोकसत्ता के खिलाफ सत्याग्रह करना ही नही
चाहिए।। चाहे जितनी बदहजमी हुई हो तो भी उपवास नही रखना चाहिए
ऐसी ही कुछ यह दलील हुई। लेकिन सच्चा सत्याग्रह नेताओं की सम्मति की
राह देखता ही नही।

खर ! इन सब वस्तुओं का एक साथ विचार करने के बाद लगता है कि
अब भारतीय सस्कृति का आमूलग्र नवसस्करण का समय आया है। ऐसे समय
उदीयमान पीढ़ी के नवजवानों को तंत्रनिष्ठा के स्तोत्रपाठ हम कब तक पढ़ाते
रहेंगे ? तंत्रनिष्ठाओं की संख्या इतनी अधिक बढ़ गयी है कि एक तंत्र के प्रति
निष्ठा धारण करते हुए दूसरी तंत्रनिष्ठा का द्रोह होता है।

इस लिए अब हमें समझ लेना चाहिए कि आमूलग्र सार्वभौम क्रांति की
वेला आ पहुँची है। जो तंत्र इस क्रांति के आडे आयेंगे वे अब टिकने के नही।
अब तंत्र उही किन्तु लोक वल्याण का तत्त्व ही सर्वोपरि होना चाहिए और
क्रांति का भाग खुला कर देना चाहिए।

यह कोई नियम नही है कि क्रांति अभी ही होनी चाहिए। समयाने लोग जब
अंधे बन जाते हैं तभी क्रांति अभी होती है और महँगी सिद्ध होती है।

(१ फरवरी १९६२)

